बीसवीं शताब्दी की

जैन विभूतियाँ

लेखक

श्री मांगीलाल भूतोड़िया

लेखक द्वारा लिखित
"ओसवाल जाति का इतिहास" कसौटी पर

"आपकी शोध अनुसंधान एवं अनुशीलन भारतीय समाज शास्त्रियों एवं समाजिक इतिहास के अध्येताओं के लिए अत्यंत महत्व पूर्ण है। जिनका सम्बंध ओसवाल परम्परा और उसकी जड़ों और शाखाओं से अंतरंग है, उनके लिए इतिहास के ये पृष्ठ अत्यंत मनोरम होंगे।"

—डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट)
नई दिल्ली

"सचमुच आपने अत्यंत अध्यवसाय, लगन और परिश्रम से ओसवाल समाज की उत्पत्ति और तज्जन्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सामग्री का गहन अध्ययन किया है। मैं अभिभूत हो गया। इस वैदुष्य का लाभ सबको मिलना चाहिए। ... आपने एक ऐतिहासिक महत्व का काम किया है जिसकी महत्ता वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए निर्विवाद है।"

—डा. कल्याणमल लोढ़ा, कोलकाता

"ओसवाल वंश का इतिहास कई दशकों पूर्व श्री भंडारी ने प्रस्तुत किया था। परन्तु वह श्रीमंत परिवारों का इतिहास था। युग के बदले हुए परिप्रेक्ष्य में ओसवाल वंश की उपलब्धियों के विविध आयामों का यह समग्र आकलन समाज की दृष्टि से ही नहीं, समाज शास्त्रीय दृष्टि से भी आपका एक महत्वपूर्ण अवदान होगा।"

—डा. मूलचन्द सेठिया, जयपुर

"ओसवाल समाज के सम्बंध में ऐसा शोध ग्रंथ देखने में नहीं आया। वस्तुतः यह ग्रंथ एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। ... वृहद् ओसवाल समाज की शक्ति को पहचानने की दृष्टि से यह विशिष्ट उपलब्धि है।"

—श्री कन्हैयालाल सेठिया, साहित्य वाचस्पति

"इस ग्रंथ को लिख कर श्री मांगीलाल भूतोड़िया ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसके लिए मैं उनका समादर करते हुए उनको हृदय से धन्यवाद देता हूँ–भारतीय इतिहास की इस महत्वपूर्ण कड़ी का प्रामाणिक विवेचन हमें यों सुलभ हो गया। यह ग्रंथ पठनीय ही नहीं, अध्ययनीय और सयत्न संग्रहणीय भी है।

—डा० रघुबीर सिंह, डी. लिट. सीतामउ

बीसवीं शताब्दी की

जैन विभूतियाँ

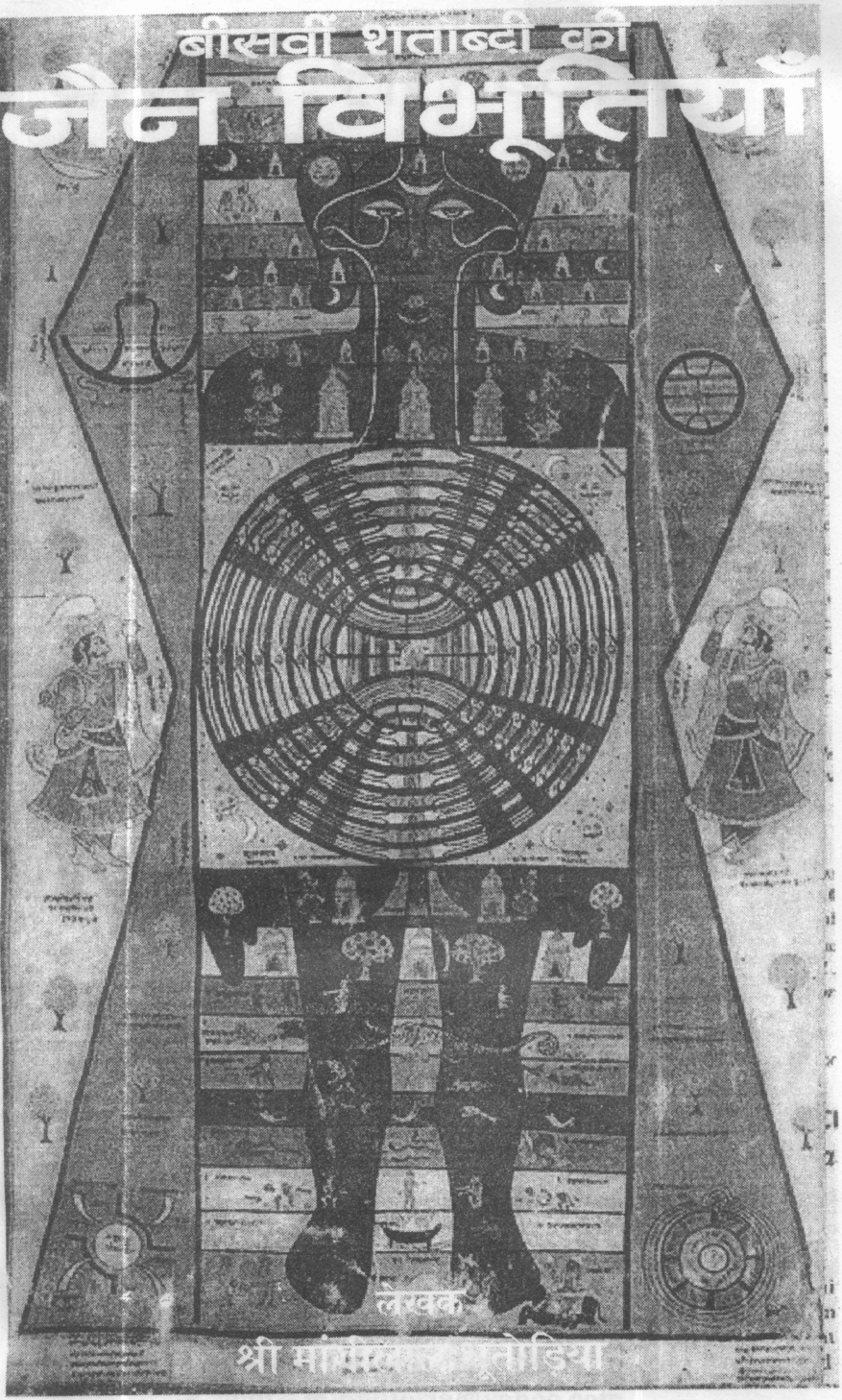

लेखक

श्री मांगीलाल मुणोत

प्राकृत भारती पुष्प—180 पि.प्र. पुष्प—15

बीसवीं शताब्दी की
जैन विभूतियाँ

लेखक
श्री मांगीलाल भूतोड़िया
एम.ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्न

संयुक्त-प्रकाशक
प्राकृत भारती अकादमी
13A मेन मालवीय नगर, जयपुर-302 017
(फोन—0141-2524827)
एवं
प्रियदर्शी प्रकाशन
छठी पट्टी, लाडनूं (राजस्थान)—341 306
*
7, ओल्ड पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट, कोलकाता—700 001
(फोन—2248-0260/2411-7517)
e_mail—mlbhutoria@yahoo.com

बीसवीं शताब्दी की

जैन विभूतियाँ

(सन् 1900-2000 के बीच हुए दिवंगत
108 इतिहास पुरुषों के प्रेरक जीवन प्रसंग)

लेखक– ***श्री मांगीलाल भूतोड़िया***
एम. ए., एल. एल. बी., साहित्यरत्न
अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, कोलकता
e_mail-mlbhutoria@yahoo.com

संयोजक– ***श्री हजारीमल बांठिया,*** *52/16, शकरपट्टी, कानपुर-1*
श्री ललित नाहटा, *21, आनन्दलोक, नई दिल्ली-49*

संयुक्त-प्रकाशक–

प्राकृत भारती अकादमी
13A मेन मालवीय नगर, जयपुर-302 017
(फोन–0141-2524827)

एवं

प्रियदर्शी प्रकाशन
7, ओल्ड पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट, कोलकता–700 001
(फोन–2248-0260/2411-7517)

*

6ठी पट्टी, लाडनूं (राजस्थान)–341 306

*

सम्पर्क– *मुम्बई–28792137; पूना–27490368; जयपुर–2654631*

प्रथम संस्करण– सन् 2003-04

मूल्य– पांच सौ रुपये मात्र

ISBN–81-900940-0-9

© कापी राईट के समस्त अधिकार लेखकाधीन

लेजर टाईप सेटिंग– मोहन कम्प्यूटर्स एंड प्रिंटर्स, लाडनूँ

मुद्रण–

प्रसिद्ध पुरातत्त्व शोध-प्रणेता,
धर्म एवं तीर्थ प्रभावक,
समाज उन्नायक,
साहित्य मनीषी
स्व. हजारीमलजी बांठिया
की पावन स्मृति
को सादर समर्पित है
"जैन विभूतियाँ"

प्रस्तावना

मैं स्व. हजारीमलजी साहब बांठिया का अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने 'जैन विभूतियाँ' ग्रंथ की प्रस्तावना लिखने का दायित्व मुझे दिया। उनकी अचानक मृत्यु से जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

ग्रंथ के लेखक श्री माँगीलाल भूतोड़िया साहब से ग्रंथ की रूपरेखा पर चर्चा के दौरान मैं भी ग्रंथ के पूर्व नाम ''जैन शलाका-पुरुष'' से सहमत नहीं था। मुझे खुशी है ग्रंथ का परिवर्तित नाम ''जैन विभूतियाँ'' बहुत ही उपयुक्त है।

''ओसवाल जाति का इतिहास'' के लेखक श्री भूतोड़िया से मेरा परिचय है। उनकी शोधपरक वृत्ति एवं बोधगम्य सरल लेखन शैली से मैं बहुत प्रभावित हूँ। जैन विभूतियाँ ग्रंथ के लिए 108 इतिहास पुरुषों का चयन उन्होंने निष्पक्षता पूर्वक एवं उनके जीवन प्रसंगों का लेखन बड़ी सूझबूझ से किया है। परम ''गाँधीवादी महात्मा भगवानदीन'' एवं सर्वधर्म समीक्षक ''आचार्य रजनीश'' को ग्रंथ के जैन-नायकों में सम्मिलित कर उन्होंने साहस एवं अपनी रचनाधर्मी सुयोग्यता का परिचय दिया है।

जैन समाज के 20वीं सदी के दिवंगत महापुरुषों की सूचि बहुत लम्बी एवं विवादास्पद हो सकती है एवं सभी को सम्मिलित करना सम्भव नहीं होता। अत: लेखकीय प्रतिबद्धता का ईमानदारी से निर्वाह कर श्री भूतोड़िया साहब ने ग्रंथ का जो स्वरूप निखारा है वह अवश्य ही प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि समाज उनकी इस श्रम साध्य प्रस्तुति से लाभान्वित होगा।

देवेन्द्र राज मेहता

स्वकथ्य

''ओसवाल जाति का इतिहास'' मेरे लेखन का शिखर बिन्दु था। जिस तरह मैंने उसे जिया, मेरा पेशा, गृहस्थी, समय एवं सच कहूँ तो सारी सोच उसी को समर्पित थी। उसके प्रकाशित होने के बाद ही पता लगा कि जो मैं कर पाया वह सागर की एक बूँद मात्र है। पर यही बूंद-दर-बूंद मन को विराट सागर के अहसास से इस कदर लबालब भर देती है कि जीवन सार्थक लगता है।

ऐसे ही 'जैन' होने का बोध मात्र संस्कार नहीं है, मैंने उसे सामाजिक एवं परम्परा संदर्भ से ओढ़ा नहीं है वरन् वह मेरा नैसर्गिक आत्मधर्म है। जब श्री हजारीमलजी बांठिया ने बीसवीं शदी के दिवंगत जैन शलाका पुरुषों के जीवन-प्रसंग लिखने का प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा तो मुझे अपार खुशी हुई, वह भी इतिहास लिखने जैसा ही था।

'शलाका-पुरुष' जैसे शब्द से मेरा परिचय नहीं था। इस हेतु मुझे 'अभिधान राजेन्द्र कोश' की शरण लेनी पड़ी। मैं हैरान था जानकर कि कतिपय शब्द कैसे रूढ़ हो जाते हैं। इतिहास पुरुषों के चुनाव से पूर्व मेरी सोच इस एक शब्द पर ही केन्द्रित हो गई। जैन विद्वानों ने एक स्वर से ग्रंथ का नाम बदल देने की सलाह दी। अस्तु ग्रंथ का नाम ''जैन विभूतियाँ'' कर दिया गया। परन्तु ग्रंथ के आवरण चित्र में शास्त्रोक्त शलाका पुरुष को रूपायित करने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

तदुपरांत इतिहास-पुरुषों के चयन का प्रश्न उठा। ग्रंथ-संयोजकों ने ग्रंथ हेतु वितरित परिपत्र में प्रस्तावित सूची प्रकाशित कर सुझाव आमंत्रित किए थे। अनेक नवीन नामों के सुझाव आए। यह चुनाव मेरी परीक्षा ही साबित हुआ। मैं अनवरत बहते जीवन का हामी हूँ, विध्वंश एवं निर्माण को विकास के आवश्यक पहलू मानता हूँ। यथावत स्थितियों की पकड़ से आजाद हुए बिना जीवन में क्रांति घटित नहीं होती। इसी तुला से मैंने

इतिहास पुरुषों का चयन किया। कुछ अतिरेक या स्खलन भी हुए होंगे। इसका आकलन सुहृदयी पाठकों के हाथ है।

ग्रंथ के साथ जैन समाज में जीवंत गणमान्य स्त्री-पुरुषों का ''Who is who'' प्रकाशित करना संयोजकीय योजना का अंग था। परन्तु ऐसे प्राप्त विवरणों की संख्या इतनी अधिक हो गई कि 'किसे दें और किसे छोड़ें' निर्णय करना सम्भव नहीं रहा। अत: ग्रंथ की सीमा देखते हुए उन्हें प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। मैं सभी विवरण-प्रेषकों से क्षमा चाहता हूँ।

जैन धर्म मूलत: अपने तथाकथित धर्म-सम्प्रदायों के शिकंजे से परे है—यह अहसास मेरे इस लेखन की चरम उपलब्धि है। इस यात्रा-पथ में डॉ. सुगनचन्द सोगानी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बंसल, डॉ. शशिकान्त जैन, डॉ. विमल प्रकाश जैन, श्री उपध्यानचन्द कोचर, डॉ. बुधमल शामसुखा, डॉ. अनुपम जैन, डॉ. कपूरचन्द जैन, डॉ. सम्पतराय जैन, श्री जमनालाल जैन, प्रभृति सुविज्ञ आत्मीय जनों के सहयोग एवं निर्देशन से मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। इस रचना यज्ञ में जिन्होंने संरक्षण-राशि की आहुति दी है, मैं सदैव उनका अनुगृहित रहूँगा। मूलत: ग्रंथ की कल्पना, संयोजन एवं संरक्षण राशि के संग्रह का श्रेय श्री हजारीमलजी बांठिया को है। उनके आकस्मिक निधन से जैन समाज ने एक सधा और निस्पृही धर्मोपासक ही नहीं खोया, अपितु प्राचीनतम सांस्कृतिक धरोहर का सुविज्ञ-पोषक खो दिया है। यह ग्रंथ उनकी पावन-स्मृति को समर्पित है।

आदरणीय श्री देवेन्द्रराज मेहता (श्री डी.आर. मेहता) ने अपने प्राकृत भारती अकादमी के संयुक्त प्रकाशन में ग्रंथ को प्रकाशित करने की महती कृपा की है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

—मांगीलाल भूतोड़िया

बीसवीं शताब्दी की
जैन विभूतियाँ

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड : जैन आचार्य/महात्मा/मुनि/साध्वीगण

			पृष्ठसं.
1.	आचार्य विजय राजेन्द्र सूरि	1827-1906	1
2.	आचार्य विजयानन्द सूरि	1835-1896	5
3.	श्रीमद् राजचन्द्र	1867-1900	9
4.	आचार्य विजयवल्लभ सूरि	1870-1954	13
5.	आचार्य बुद्धिसागर सूरि	1874-1924	17
6.	संत श्रीगणेश प्रसाद वर्णी	1874-1961	21
7.	आचार्य जवाहरलालजी	1875-1942	26
8.	ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद	1879-1942	30
9.	मुनिश्री ज्ञानसुन्दर	1880-	34
10.	महात्मा भगवानदीन	1884-1962	37
11.	आगमोद्धारक आचार्य घासीलाल	1884-1973	41
12.	पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिन विजय	1888-1976	45
13.	पूज्य कानजी स्वामी	1889-1980	50
14.	मरुधर केसरी मुनिश्री मिश्रीमल मधुकर	1891-1984	53
15.	आगम प्रभाकर मुनि पुण्य विजय	1895-1971	57
16.	उपाध्यायश्री अमर मुनि	1902-1992	62
17.	आचार्य हस्तीमल	1910-1991	66
18.	प्रवर्तिनी साध्वी विचक्षणश्री	1912-1980	69
19.	योगिराजश्री सहजानन्द घन	1913-1970	71

20. आचार्य तुलसीगणि 1914-1997 **74**
21. आचार्य आनन्द ऋषि 1900-1992 **78**
22. आचार्य नानालाल 1920-1999 **82**
23. महत्तरा साध्वी मृगावती 1925- **85**
24. आचार्य सुशील कुमार 1926-1994 **87**
25. आचार्य रजनीश 1931-1990 **95**
26. आचार्य देवेन्द्र मुनि 1931-1999 **102**

द्वितीय खण्ड : न्यायविद्/वैज्ञानिक/पण्डित/लेखक/राजनेता/कलाकार/प्रशासक

27. श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर 1875-1936 108
28. सर सिरेमल बाफना 1882-1964 113
29. जस्टिस फूलचंद मोघा 1888-1949 117
30. श्री वीरचन्द राघवजी गांधी 1863-1901 119
31. बैरिस्टर श्री चम्पतराय 1872-1942 122
32. बाबू तखतमल जैन 1894-1976 125
33. डॉ. मोहनसिंह मेहता 1895-1985 128
34. पं. सुखलाल संघवी 1880-1978 132
35. श्री सुखसम्पतराय भण्डारी 1893-1961 136
36. श्री अर्जुनलाल सेठी 1880-1941 138
37. पं. बेचरदास दोशी 1889-1982 143
38. डॉ. हीरालाल जैन 1899-1973 146
39. श्री कुन्दनमल फिरोदिया 1885-1968 153
40. श्री बिशनदास दूगड़ 1864- 155
41. श्री पूरणचन्द श्यामसुखा 1882-1967 157
42. श्री पूनमचन्द रांका 1899- 163
43. श्री बलवंतसिंह मेहता 1900-2003 164
44. श्री जुगल किशोर मुख्तार 1877-1968 173
45. पं. फतहचन्द कपूरचन्द लालन 1857-1953 180

46. पं. नाथूराम प्रेमी	1881-1959	183
47. पं. अजीतप्रसाद जैन	1874-1951	187
48. डॉ. शार्लोटे क्राउजे	1895-1980	196
49. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	1912-1988	206
50. डॉ. दौलतसिंह कोठारी	1905-1992	215
51. श्री भंवरमल सिंघी	1914-1984	217
52. जस्टिस रणजीतसिंह बच्छावत	1907-1986	223
53. श्री इन्द्रचन्द्र हीराचन्द दूगड़	1918-1989	225
54. श्री अगरचन्द नाहटा	1911-1983	230
55. डॉ. विक्रम साराभाई	1919-1971	233
56. श्री भंवरलाल नाहटा	1911-2002	237
57. श्री गणेश ललवानी	1924-1994	244
58. श्री देवीलाल सामर	1911-1982	251
59. श्री यशपाल जैन	1912-	256
60. श्रीमती सुशीला सिंघी	1924-1998	258
61. श्री हरखचन्द बोथरा	1904-1989	262
62. श्री जैनेन्द्रकुमार जैन	1909-1988	265
63. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये	1906-1975	271
64. श्री रामचन्द्र जैन	1913-1995	274
65. लाला सुन्दरलाल जैन	1900-1978	278
66. श्री विजयसिंह नाहर	1906-1997	282
67. श्री मोहनलाल बांठिया	1908-1976	287
68. डॉ. कामता प्रसाद जैन	1901-1964	290
69. श्री ऋषभदास रांका	1903-1977	294
70. श्री कस्तूरचन्द ललवानी	1921-1983	297
71. पं. दलसुख भाई मालवणिया	1910-1994	301
72. श्री माणकचन्द रामपुरिया	1934-2003	303

तृतीय खण्ड : उद्योगपति/श्रेष्ठि/धर्म प्रभावक

73. सेठ प्रेमचन्द रायचन्द्र	1831-1905	306
74. सेठ खेतसी खींवसी दुल्ला	1854-1921	308
75. रा.ब. सेठ बद्रीदास मुकीम	1832-1917	310
76. सर वसनजी त्रीकमजी	1865-1925	314
77. श्री छोगमल चोपड़ा	1884-1960	315
78. श्री बहादुरसिंह सिंघी	1885-	317
79. श्री भेरूदान सेठिया	1866-1961	319
80. सेठ चैनरूप सम्पतराम दूगड़	1866-1928	325
81. सेठ चाँदमल ढ़ढ़ा	1869-1933	330
82. सेठ माणिकचन्द जे.पी.	1851-1914	332
83. राजा विजयसिंह दूधोड़िया	1881-1933	336
84. सेठ सोहनलाल दूगड़	1895-1968	338
85. सेठ कस्तुरभाई लालभाई	1894-1980	342
86. सेठ बालचन्द हीराचन्द शाह	-1953	345
87. श्री गुलाबचन्द ढ़ढ़ा	1867-1952	347
88. श्री लालचन्द ढ़ढ़ा	1898-1968	349
89. सेठ आनन्दराज सुराना	1891-1980	352
90 सेठ अचलसिंह	1895-1983	354
91. सर सेठ हुकमचन्द	1874-1959	357
92. सेठ अम्बालाल सारा भाई	1890-1967	362
93. सुश्री चन्दा बाई, आरा	1889-1977	364
94. सेठ रामलाल गोलछा	1898-1983	367
95. श्री हरखचन्द नाहटा	1936-1999	370
96. सेठ शान्तीलाल बनमाली सेठ	1911-2000	375
97. सेठ चम्पालाल बांठिया	1902-1987	381
98. श्री मेघराज पेथराज शाह	1904-1964	384
99. श्री मोहनमल चोरड़िया	1902-1985	390

100. श्री नवलमल फिरोदिया	1910-1997	392
101. लाला लाभचन्द जैन	1910-1994	395
102. श्री राजरूप टांक	1905-	397
103. सेठ राजमल ललवानी	1894-	399
104. श्री शांति प्रसाद साहू	1911-1977	402
105. सर सेठ भागचान्द सोनी	1904-1983	406
106. श्री कंवरलाल सुराणा	1928-1996	409
107. श्री वल्लभराज कुम्भट	1922-2002	411
108. श्री खैरायतीलाल जैन	1902-1996	415

परिशिष्ट –

ग्रंथ के परम संरक्षक	419
ग्रंथ के संरक्षक	430
ग्रंथ के संयोजक	439
ग्रंथ के सह-संयोजक	440

बीसवीं शदी का अभूतपूर्व आभार प्रदर्शन

भारतीय संविधान की मूल सुलिखित प्रति में अंकित जैनों के 24वें तीर्थंकर महावीर की ध्यानस्थ मुद्रा का चित्र

जैन विभूतियाँ

जैन आचार्य/महात्मा/मुनि/साध्वीगण

1. आचार्य विजय राजेन्द्र सूरि (1827–1906)

जन्म	:	भरतपुर, 1827
पिताश्री	:	ऋषभदास पारख
माताश्री	:	केसर बाई
दीक्षा	:	यति दीक्षा, 1847
पन्यास पद	:	नागौर, 1852
दिवंगति	:	1906

विक्रम संवत् के बीसवें शतक के पूर्वार्ध की जैन धर्म प्रभावक महान विभूतियों में आचार्य विजय राजेन्द्र सूरि का स्थान सर्वोपरि है। यति एवं साधु जीवन में व्याप्त शिथिलाचार के प्रति सर्वप्रथम क्रांति शंख फूंकने का श्रेय सूरिजी को है। विश्व विख्यात कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोश' के रचनाकार के रूप में आप चिरस्मरणीय हैं।

भरतपुर नगर में सन् 1827 की पोष सुदी सप्तमी गुरुवार के शुभ दिन श्रेष्ठीवर्य श्री ऋषभदासजी पारेख की भार्या केसरबाई की कुक्षी से एक ऐसे दिव्य नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने जिन-शासन की महान् विभूतियों में स्थान प्राप्त किया एवं जिन्होंने अपने तप, त्याग और संयम द्वारा राजा, महाराजा, बादशाह और नवाबों को प्रभावित कर जनोपयोगी कार्य करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। श्रीमद् अपने बचपन में रत्नराज नाम से जाने जाते थे। शिक्षा शुरु की। वे अपनी बुद्धिचातुर्य और परख करने की कला से उत्साहित हो बहुत जल्द ही अग्रजभ्राता माणेकचंद के साथ द्रव्योपार्जन करने के लिए माता-पिता की अनुमति प्राप्त कर कलकत्ता (बंगाल) होते हुए सिंहलद्वीप (श्रीलंका) पहुँचे जहाँ आप रत्नपरीक्षक के रूप में प्रख्यात हुए। माता पिता की बिमारी की खबर मिलते ही आप तत्काल अपने घर लौट आये और देहावसान तक उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करते रहे। आपकी सुषुप्त वैराग्य वृत्ति उस वक्त प्रज्वलित हुई जब सन् 1847 में श्री प्रमोदसूरिजी के प्रवचनों का श्रवण किया। अपने

अग्रज से अनुमति प्राप्त कर आप श्री हेमविजयजी के कर-कमलों द्वारा उदयपुर में अपनी शिखा पर वासक्षेप प्राप्त करते हुए यति रूप में दीक्षित हुए।

खरतगच्छीय यति श्री सागरचन्द्रजी के सान्निध्य में न्याय, कोश, काव्य, अलंकार इत्यादि का विशेष अभ्यास करते हुए आपने व्याकरण पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अपने आत्मोत्कर्ष एवं ज्ञान सूर्य की सहस्त्र रश्मियों से आपने भारतीय दर्शन को प्रोद्भाषित किया। आपकी अनेकानेक विशेषताओं के कारण आहारे नगर में श्रीसंघ की सम्मति से श्री प्रमोदसूरिजी ने समारोह पूर्वक आपको 'सूरि' पद देते हुए आपका नाम 'राजेन्द्र सूरि' घोषित किया और श्रीसंघ ने भक्तिपूर्वक महोत्सव मनाया। उस वक्त चारों दिशाओं में एक ही नाम राजेन्द्रसूरि की गूँज ध्वनित होती रही। वह दिन स्वयं अमर हो गया। आपने गच्छ सुधार निमित्त यति समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, जर्जर और विकृत परम्परा, रूढ़ियों और शिथिलता को समाप्त करवाने के लिए नौ-सूत्री सुधार योजना प्रस्तुत की जिसे श्रीसंघ से स्वीकृत कराकर आप सुधारवादी नायक के रूप में स्थापित हुए। आपने संसार-वर्धक समस्त उपाधियों का त्यागकर सदाचारी, पंचमहाव्रतधारी जैसे सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त करने हेतु संपूर्ण क्रियोद्धार द्वारा सच्चे साधुत्त्व का अधिग्रहण किया।

सूरि पदवी के पश्चात् आपका पहला चातुर्मास खाचरौद नगर में हुआ। इस चातुर्मास की खास विशेषता रही त्रिस्तुतिक सिद्धांत का पुनरोद्धार। तत्कालीन श्रमण समाज में इस सिद्धांत को लेकर कई आचार्यों ने, मुनिवरों ने भयंकर बवाल खड़ा किया, तब आपने उन चुनौतियों को स्वीकार कर उनसे शास्त्रार्थ करते हुए विजयश्री प्राप्त की। आपने समाज के उत्थान हेतु कन्यापाठशाला, दहेज उन्मूलन, वृद्धविवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। आप पर्वतों की हरियाली को वन-उपवनों की शोभा, शांति एवं अन्तर सुख देने वाली बताकर, उनकी रक्षा हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है—कहकर पर्यावरण रक्षण के लिए जोर देते रहे। आत्मशुद्धि हेतु अभिग्रह परम्परा आपको बहुत ही प्रिय

थी, अतः आपने अभिग्रह व्रत लेने की शुरुआत की। इस अभिग्रह के अंतर्गत आप कभी तीन-चार तो कभी आठ-आठ उपवास, कभी खड़े-खड़े तो कभी बिना पानी के, इस प्रकार इन अभिग्रहों को उपाश्रयों से लेकर, मांगी-तुंगी पहाड़, चामुण्डवन जैसे गहरे भयावह जंगलों तक ले गये। इन भयावह जंगलों में आप अपनी काया को तपाते हुए, अपने मनोबल की स्वयं परीक्षा लेते रहे। वहां रात को चित्तों, भालुओं का भी आक्रमण हुआ मगर आप अडिग रहे। नवकार मंत्र की साधना में ऐसे लगे रहे कि वे आपकी परिक्रमा करने एवं रुकने पर मजबूर हुए, जंगली जनवर आपके पास बैठने लगे। आपने इस प्रकार साधना से संचित अमूल्य आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग कभी चमत्कारों हेतु नहीं किया। आपने इन शक्तियों को प्राप्त करने के लिए जिनवाणी पर श्रद्धा रखने पर विशेष जोर दिया। जिन शासन में चमत्कारों को कोई स्थान नहीं—ऐसी ब्रह्म घोषणा कर आपने डोरे, धागे, ताविज द्वारा जन-मानस को लूला करने वाले लोगों को जबरदस्त फटकार लगाई।

आपने अपने श्रमण जीवन में कई पाठशालाएँ स्थापित की। सैकड़ों जीर्ण बने मंदिरों का जिर्णोद्धार किया, मोहनखेड़ा जैसे नये तीर्थ की स्थापना की, जालोर दूर्ग के मंदिरों में पड़े शस्त्रों को हटवाया, पालनपुर, मांडवा, कोरंटाजी जैसे कई तीर्थों का पुनरोद्धार किया। आपने अपने जीवन काल में सैकड़ों मन्दिरों की प्राण प्रतिष्ठा कराई। आहारे में एक साथ 951 जिनबिम्बों की अपने करकमलों से स्थापना की एवं वहाँ अंजनशलाकाएँ भी स्थापित की। यह ऐसा समय था जब न वाहन थे, न रेलगाड़ियाँ, तो भी इस अजीब प्रसंग को अपने नयनों से देखने करीब 50 हजार श्रावक-श्राविकाएँ वहाँ उपस्थित हुए एवं उस प्रसंग को ऐसा अजर/अमर बना दिया कि न भूतो न भविष्ययति—आज तक ऐसा प्रसंग देखने/सुनने में नहीं आया।

साहित्य की धुन आपको ऐसी सवार थी कि आपने अपने संयमित जीवन में छोटे-बड़े कुल 64 ग्रन्थ लिखे, जिनमें अधिकांश कृतियाँ अप्रकाशित एवं हस्तलिखित हैं। इनकी शोध एवं समीक्षा अभिप्सित है।

आपकी सबसे बड़ी एवं अनोखी रचना थी अभिधान राजेन्द्र कोष। यह अभिधान राजेन्द्र कोश की विशेषता ही है कि इसमें आगम ग्रंथों के साथ ऋग्वेद, महाभारत, उपनिषद, योगदर्शन, चाणक्यनीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों के साथ चरकसंहिता आदि प्राचीन वैद्यकीय ग्रंथों को भी स्थान देकर आपने इसे विश्वकोष का रूप/स्वरूप दिया। तब ही तो प्रो. सेल्वेन लेवी, सर जार्ज ग्रियर्सन, आर.एल. टर्नर, सिद्धेश्वर वर्मा, डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन, वाल्थर शुब्रिंग, पी.के. गौड़, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, के.ऐ. धरवैन्द्रेया, गुलाबराय एम.ए. जैसे भारतीय एवं पाश्चात्य जगत के विद्वानों ने इसका अध्ययन, मनन कर स्वयं को कृत्य-कृत्य करते हुए मुक्त मन से प्रशंसा की और इसे विश्वकोष की उपमा दी। इसे सारे विश्व में समान रूप से सम्मान प्राप्त हुआ। लगभग दस हजार पन्नों में संग्रहित इस कोष में 60 हजार पारिभाषिक शब्दों का 450 संस्कृत-प्राकृत भाषा ग्रंथों के श्लोकान्वय से सम्पूर्ण अर्थ के साथ विवेचन किया गया है। जब श्रीमद् की वय 60 वर्ष थी तब से शुरु हुआ यह कोष 80 वर्ष की आयु पर्यन्त लगातार अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर होता रहा। इस कोष ने आपको विश्वपूज्य की उपाधि से अलंकृत करवाया।

सन् 1906 में आपका पार्थिव शरीर पंच भूतों में विलीन हो गया।

2. आचार्य विजयानन्द सूरि (1835–1896)

जन्म	:	सन् 1835, लहरा ग्राम (फिरोजपुर)
पिताश्री	:	गणेशचन्द कलश (क्षत्रिय) कपूर
माताश्री	:	रूपा देवी
पालन	:	लाला जौधमल नौलखा
दीक्षा	:	मलेर कोटला, 1853, द्वितीय दीक्षा–अहमदाबाद, सं. 1875
आचार्य पद	:	पालीताना, सं. 1886
दिवंगति	:	1896, गुजरान वाला

महान् क्रांतिकारी आचार्यश्री विजयानन्द सूरि का जीवन अनेक प्रेरक एवं रोमांचक घटनाओं से भरा था। पंजाब की सिख परम्परा से जैन धर्म को मिली यह विभूति धर्म प्रभावक एवं युग प्रवर्त्तक संतों की श्रेणी में अग्रणीय थी। असाधारण दार्शनिक एवं सर्वदर्शन निष्णात आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) का जन्म पंजाब के लहरा ग्राम (जिला फिरोजपुर) में 1835 में कलश (क्षत्रिय) कपूर गोत्रीय श्री गणेशचन्द के घर हुआ। बालक का नाम दित्ताराम रखा गया। पिता महाराज रणजीतसिंह की सेना में सैनिक थे। लहरा के जागीरदार अन्तरसिंह की इच्छा दित्ताराम को धर्म-गुरु के तौर पर दीक्षित करने की थी। परन्तु पिता गणेशचन्द राजी न हुए। अत: उन्हें जेल में डाल दिया गया। वे जेल से किसी तरह भाग निकले तो अंग्रेज कम्पनी सरकार से संघर्ष करना पड़ा। उन्हें पकड़कर आगरा की जेल में बन्दी रखा गया। वहीं एक दुर्घटना में गोली लग जाने से उनकी मृत्यु हुई।

अल्पवय में ही पिता का देहान्त हो जाने से दित्ताराम का लालन-पालन समस्त पिता के परम मित्र ओसवाल भावड़ा नौलखा गोत्रीय जीरा

निवासी लाला जोधामलजी के घर हुआ। लाला जी ढूँढक मतावलम्बी थे। 1853 में 18 वर्ष की अवस्था में बालक दित्ताराम ने ढूँढक मुनि जीवनराम जी से दीक्षा ली। उनका दीक्षा नाम आत्माराम रखा गया। 5-6 वर्षों में बालक मुनि सूत्रों में निष्णात हो गये। मूल आगम, चूर्णि, टीका निर्युक्ति भाष्यों आदि के सूक्ष्म अध्ययनोपरान्त आगम ग्रंथों के प्रचलित अर्थ से सत्योन्मुखी आत्माराम संशय से भर उठे। समुचित समाधान न पाकर उन्होंने क्रांति का बिगुल फूँका। 1875 में उन्होंने अपने 15 साथियों के साथ अहमदाबाद में तपागच्छीय मुनि बुद्धिविजय जी से नूतन दीक्षा ग्रहण की। 1878 में वापिस पंजाब पधार कर आपने अनेक जिन मन्दिरों का निर्माण एवं प्रतिमा प्रतिष्ठाएँ करवाईं। अनेक मुमुक्षुओं को दीक्षा दी। 1886 में पालीताना में तपागच्छ धर्म संघ द्वारा पिछली चार शताब्दियों में आप पहली बार आचार्य पदवी से विभूषित किये गये एवं तब से आप आचार्य विजयानन्द सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपके आचार्य पद समारोह में पंजाब एवं राजस्थान से 35,000 श्रावक-श्राविकाएँ सम्मिलित हुए। आपने अनेक जैन तीर्थों की यात्रा की। उस समय तक धार्मिक उपासरों पर यतियों का शिकंजा कायम था। किसी भी साधु को चातुर्मास करने से पूर्व यतियों की इजाजत लेनी पड़ती थी एवं उधर से गुजरते हुए यतियों को वन्दन करना अनिवार्य था। आचार्य प्रवर ने इस प्रथा के औचित्य को स्वीकार नहीं किया। शनैः-शनैः यह प्रथा ही विलुप्त हो गई।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। प्रशस्त ललाट एवं अलौकिक तेजमय नेत्र धारी क्षत्रियोचित देह यष्टि साधारण जन-मानस में श्रद्धा का संचार कर देती एवं प्रत्युत्पन्न मति वालों को सहज ही परास्त कर देती थी। आचार्यश्री के शारीरिक बल एवं हृदय की करुणा दर्शाते अनेक प्रसंग प्रचलित हैं। वे समय के बड़े पाबन्द थे। अहमदाबाद से बिहार के समय का एक प्रसंग उनकी आत्म निर्भर साहसिकता का परिचायक है। उस समय नगर सेठ प्रेमा भाई का श्रावक समाज पर बड़ा प्रभाव था। किसी कारणवश विहार का समय हो जाने पर भी वे उपस्थित

नहीं हो सके। श्रेष्ठि वर्ग ने अर्ज कर आचार्यश्री से रुक जाने की अर्ज की। आचार्यश्री ने बड़ी शालीनता से उस आग्रह को ठुकरा कर समय पर विहार किया। इसी तरह बड़ोदरा से बिहार के समय एक ओर प्रसंग बना। कलकत्ता से सेठ बद्रीदास मुकीम पधारे थे। एक दिन और रुक जाने की अर्ज को आचार्यश्री ने अमान्य कर दिया। उन्होंने श्रीमंतों की पराधीनता कभी स्वीकार न की एवं उन्हें खुश करने के लिए एकाधिक राहें खोज कर अपने साधुत्व को कभी मलिन नहीं किया।

शनैः-शनैः आचार्यश्री की ख्याति विदेशों में भी फैली। सन् 1893 में अमरीका के शिकागो शहर में विश्व धर्म परिषद् का आयोजन हुआ जिसमें आचार्यश्री को निमंत्रित किया गया। आचार्यश्री स्वयं तो न जा सके। आपने अमरीका (शिकागो) में हुई प्रथम 'विश्व धर्म परिषद्' में जैन श्रावक श्री वीरचन्द्र राघवजी गाँधी को अपने प्रतिनिधि के रूप में धर्म प्रचारार्थ भेजा। समुद्र पार जाने के कारण उस वक्त समाज में वीरचन्द्र भाई को संघ बहिष्कृत करने का आन्दोलन उठा, पर गुरुदेव आत्मारामजी के प्रभाव से वह अपनी मौत स्वयं मर गया। रायल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के तत्कालीन मन्त्री डॉ. रुडोल्फ हारनाल ने आपको जैनधर्म की धुरी माना। आचार्यश्री का संस्कृत एवं अर्धमागधी भाषा पर पूरा अधिकार था। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं—जैन तत्त्वादर्श, अज्ञान तिमिर भास्कर, तत्त्व निर्णय प्रासाद, सम्यक्त्व शल्योद्धार, श्री धर्म विषयक प्रश्नोत्तर, नव तत्त्व, उपदेश बावनी, जैन गतवृक्ष, शिकागो प्रश्नोत्तर, जैन मत का स्वरूप, ईसाईमत समीक्षा, चतुर्थ स्तुति निर्णय आदि। उन्होंने अनेक स्तवनों की रचना की। ये सभी ग्रंथ आपके अगाध शास्त्र ज्ञान के परिचायक हैं। ''अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रंथ में आपने वैदिक कर्मकांडों, मांसाहार, विभिन्न मतों में मुक्ति की 'अवधारणा' आदि विषयों की विशद् चर्चा की है। आप मंत्रविद्या के उपासक थे।

1896 में चतुर्मास हेतु आचार्यश्री गुजरानवाला (पाकिस्तान) पधारे। वहीं आपका स्वर्गवास हुआ। आपके पट्टधर श्री विजय वल्लभ सूरि ने

1924 में गुजरानवाला में 'श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल' की स्थापना कर आपकी स्मृति अक्षुण्ण बना दी।

वर्तमान युग के आप ही ऐसे युगप्रधान आचार्य हुए हैं जिनकी एकमात्र प्रतिमा श्री सिद्धगिरि पर विराजमान की गयी है। आप स्वभाव से परम विनोदी एवं शास्त्रीय राग-रागनियों के जानकार थे। आपका अगाध शास्त्र ज्ञान सदैव शास्त्रार्थ में विजयश्री दिलाता रहा।

3. श्रीमद् राजचन्द्र (1867-1900)

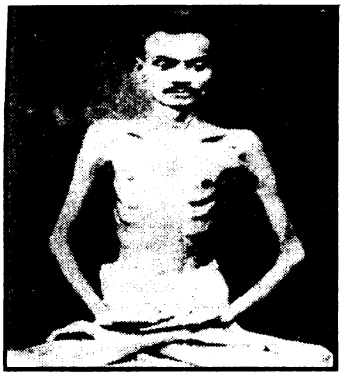

जन्म : बवाणिया (काठियावाड़), 1867
पिताश्री : श्री रवजी भाई मेहता
माताश्री : श्रीमती देवाबा
उपलब्धि : जाति स्मरण ज्ञान, 1874
दिवंगति : राजकोट, 1900

ओसवाल (श्रीमाल) जाति के अनमोल हीरों में एक श्रीमद् राजचन्द्र थे। उनके सत्संग में बैठने वालों एवं प्रशंसकों का कहना है कि वे पच्चीसवें तीर्थंकर समान थे एवं उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। उनका पूरा नाम श्रीमद् राजचन्द्र रवजी भाई मेहता था। श्रीमद् का जन्म काठियावाड़ के बवाणिया गाँव में संवत् 1924 (सन् 1867) की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ। आपके पिता रवजी भाई एवं दादा पंचाण भाई मूलत: माणकवाड़ा (मोरवी) से सं. 1892 में बवाणिया आकर बसे थे। जब आप सात वर्ष के थे, तभी किसी परिचित गृहस्थ की सांप के डसने से अकाल मौत हो गई। उसे देखकर आपके मानस में उथल-पुथल मच गई। मृत्यु संबंधी तीव्र जिज्ञासा ने मन के आवरण हटा दिये। कहते हैं उसी समय आपको पूर्व जन्म का आभास (जाति स्मरण ज्ञान) हुआ एवं आपके अन्त:करण में वैराग्य के अंकुर फूटे। प्रारम्भ में आप दादा की तरह कृष्ण भक्त थे। एक साधु रामदास से कंठी भी बंधवाई थी। परन्तु आपका वैराग्य एवं त्यागप्रधान चित्त धीरे-धीरे जैन धर्म की ओर झुकता गया। तेरह वर्ष की आयु में पूर्णत: जैन रंग में रंग गये। आप असाधारण स्मरण शक्ति के धारक थे। एक बार पढ़ लेने मात्र से कालान्तर में उसे ज्यों का त्यों दोहरा देना आपके लिए सहज था। 14-15 वर्ष की उम्र में ही आप अवधान करने लगे थे। 19 वर्ष की वय में बम्बई में डॉ. पिटर्सन की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा में शतावधान कर आपने

अद्‌भुत धारणा शक्ति का परिचय दिया। तत्कालीन भारत में वे ही एकमात्र शतावधानी थे। संवत् 1943 में श्रीमद् रायचन्द के शतावधान प्रयोग से सारे भारत में तहलका मच गया था। हाई कोर्ट के जजों, विद्वानों एवं महात्माओं ने उनकी स्मरण शक्ति के चमत्कार की प्रशंसा की थी। वे रातों-रात प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचे गए पर श्रीमद् ने इसे कभी महत्त्व नहीं दिया। वे अवधान के साथ ही अलौकिक स्पर्शेन्द्रिय के स्वामी थे। एक बार देखकर आँख बन्द करके मात्र स्पर्श से विभिन्न पुस्तकों के नाम बता सकते थे। रसोई को देखकर चखे बिना और स्पर्श किये बिना कौन-सी बानगी में नमक कम या अधिक है—कह देना उनकी इन्द्रिय शक्तियों के चरमोत्कर्ष का साक्षी था। उनके अतीन्द्रिय ज्ञान संबंधी अनेक घटनाएँ प्रचलित हैं। इस प्रकार श्रीमद् में अलौकिक विभूतियों का साक्षात्कार देखकर आत्मा की अनन्त शक्तियों की प्रतीति होती है।

वि.सं. 1944 में उनका विवाह गाँधीजी के परम मित्र डॉ. प्राण जीवन मेहता के बड़े भाई पोपटलाल की पुत्री झंबकबाई से हुआ। विवाहोपरांत वे जवाहरात के व्यापार में लग गए। ग्यारह वर्ष तक वे गृहस्थाश्रम और व्यापार में संलग्न रहे। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। संवत् 1946 में श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवन के साझे में बम्बई में जवाहरात का काम शुरु किया। व्यापार में कुशल होते हुए भी इसे वे संसार की माया और प्रपंच मानकर तटस्थ बने रहते थे। किसी को ठगने के लिए कुछ नहीं करते थे। ग्राहक या विक्रयकर्त्ता की चालाकी वे शीघ्र समझ जाते थे। उन्हें वह असह्य होती थी। हीरे मोती की परीक्षा अत्यन्त सूक्ष्मता से करते। उनका अनुमान प्रायः सत्य सिद्ध होता। लाखों रुपए के सौदे की बात करके तत्क्षण आत्मज्ञान की गूढ़ बातें पढ़ने या लिखने बैठ जाते—ऐसा व्यापारी नहीं, ज्ञानी ही कर सकता है। उनका कहना था कि धार्मिक मनुष्य का धर्म उसके प्रत्येक कार्य में दिखाई देना चाहिए। धर्मकुशल मनुष्य, व्यवहार कुशल नहीं होता—इस वहम को राजचन्द्र भाई ने असत्य सिद्ध कर दिखाया।

कई बार एकान्त साधना के लिए वे चरोत्तर एवं इडर के जंगलों में चले जाते थे। इस तरह पाँच वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। एक

गृहस्थ बंधु के अनुरोध पर 'आत्म सिद्धि' नामक ग्रंथ की रचना की, जो गुजराती में जैन धर्म का सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। श्रीमद् ने इसमें 142 दोहों के माध्यम से जैन दर्शन का सार प्रस्तुत किया है। स्त्री-नीति-बोध, काव्यमाला, वचन सप्तसती, पुष्पमाला आदि उनकी 16 वर्ष वय पूर्व की रचनाएँ हैं।

उनके जीवन के हर कार्य में निर्ग्रन्थ की सी अनासक्ति झलकती थी। स्त्री को वे सत्संगी समझते थे। कभी किसी ने उन्हें किसी वैभव के प्रति मोह करते नहीं देखा। धोती, कुरता, अंगरखा और पगड़ी—यही उनकी वेश-भूषा थी। उनके हर कार्य में वीतराग की विभूति के दर्शन होते थे। उनकी दैनन्दिनी में लिखे विचारों में कहीं कृत्रिमता नहीं है।

वे ज्ञानी और कवि तो थे ही, पर मुख्यत: आत्मार्थी थे। वे कहते थे : ''काव्य, साहित्य एवं संगीत आदि कलाएँ आत्मार्थ हो, तभी श्लाघ्य हैं अन्यथा निरर्थक। वास्तविक ज्ञान शास्त्र, काव्य चातुरी या भाषा सौष्ठव से परे आत्मा से संबंधित है।'' महात्मा गाँधी उनसे बहुत प्रभावित थे। सन् 1893 में दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी को सेवा परायणता के ईसाई दर्शन से भारतीय अध्यात्म की ओर मोड़ने का श्रेय श्रीमद् राजचन्द्र भाई को ही है।

शतावधान और ज्योतिष उनके ज्ञान का अंग अवश्य थे, पर स्मरण शक्ति का प्रयोग करना एवं पूर्व जन्म की बातें करना कुछ समय बाद उन्होंने छोड़ दिया था। वे सदा आत्मा साधना में लीन रहने लगे। इस सम्बन्ध में उनकी दैनन्दिनी का एक उल्लेख उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन को उद्घाटित करता है—''हम अपने किसी भी प्रकार के अपने आत्मिक बंधन के कारण संसार में नहीं रह रहे हैं। स्त्री से पूर्व में बाँधा हुआ कर्म निवृत्त करना है, कुटुम्ब का पूर्व में लिया हुआ कर्ज वापस देकर निवृत्त होने के लिए उसमें निवास करते हैं। उन जीवों की इच्छाओं को भी दु:खित करने की इच्छा नहीं होती। उसे ही अनुकम्पा से सहन करते हैं, परन्तु इसमें किसी प्रकार की हमारी इच्छा नहीं है।''

ज्यों-ज्यों संस्कार क्षय हुए, वे आत्म समाधि में लीन रहने लगे। संवत् 1947 में एक पत्र में लिखे श्रीमद् के उद्‌गार आत्म-साधकों के मार्गदर्शन में सहायक हो सकते हैं :

''परिपूर्ण स्वरूप ज्ञान उत्पन्न होने के बाद इस समाधि से निकलकर लोकालोक के दर्शन को जाना कैसे बनेगा? अब हमें मुक्ति न चाहिए, न जैनों का केवल ज्ञान। अब हम अपनी दशा किसी प्रकार नहीं कह सकेंगे, निरुपायता है।''

संवत् 1957 में 33 वर्ष की अल्पायु में राजकोट में श्रीमद् राजचन्द्र ने शरीर त्याग कर महाप्रयाण किया। उनकी स्मृति में रत्नकूट, हम्पी (मैसूर) में बनाया गया 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' जैन जगत एवं समस्त अध्यात्म प्रेमियों के लिए उपयुक्त साधना स्थली है।

4. आचार्य विजयवल्लभ सूरि (1870-1954)

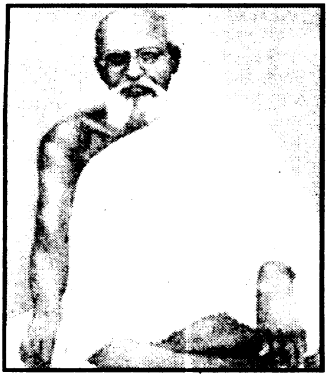

जन्म	:	बड़ौदा, 1870
पिताश्री	:	दीपचन्द श्रीमाल
माताश्री	:	इच्छा बाई
दीक्षा	:	1886
दिवंगति	:	1954, मुम्बई

बीसवीं सदी के सुप्रसिद्ध धर्मगुरु, तत्त्वज्ञ, शिक्षा प्रेमी एवं समाज सुधारक आचार्य विजय वल्लभ सूरि तपागच्छीय आचार्य विजयानन्द सूरि (आत्मारामजी) के पट्टधर थे। आपने सारे भारत विशेषत: पंजाब में 'जैन धर्म' को लोकप्रिय एवं सुदृढ़ बनाया। आपका जन्म वि.सं. 1927 में बड़ौदा में हुआ। आपके पिता बीसा श्रीमाल शाह दीपचन्द जी एवं माता इच्छाबाई ने आपका नाम छगनलाल रखा। अल्प वय में ही माता-पिता की मृत्यु हो गई। वि.सं. 1943 में आपने 17 वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण की। आचार्य आत्मारामजी के पास रहकर ही आपने विद्याभ्यास प्रारम्भ किया। आप जल्द ही आगम, न्याय, व्याकरण एवं ज्योतिष शास्त्रों में निष्णात हो गए। अचानक सं. 1953 में आचार्य आत्मारामजी का गुजरानवाला में देहांत हो गया। श्रावक समाज में एक समर्थ शास्त्रज्ञाता एवं व्याख्याता के रूप में आपकी ख्याति बढ़ती गंई। सं. 1964 में जब गुजरात की तरफ विहार कर रहे थे तभी सहवर्ती संत विजय कमल सूरि का तार मिला कि ''गुजरानवाला में सनातनधर्मी एवं जैनेतर लोगों ने गुरुदेव आत्मारामजी के ग्रंथों 'अज्ञान तिमिर भास्कर' की आलोचना कर जैनियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी है।'' ऐसे उपद्रवों का निडरता पूर्वक सामना करने में अभ्यस्त विजयवल्लभजी तुरन्त गुजरानवाला के लिए रवाना हो गए। गुरु के आदर्शों पर आई आँच उन्हें सहन नहीं हुई। साढ़े चार सौ मील का सफर बीस दिन में उग्र विहार से तय कर वे गुजरानवाला पहुँचे। बेहद गर्मी के कारण उनके पाँवों में

छाले पड़ गए। परन्तु उनके आगमन की खबर सुनकर ही सारे उपद्रव शांत हो गए। इसी तरह स्थानकवासी मुनि सोहनलालजी की ''जैन तत्त्वादर्श'' विषयक मूर्तिपूजा के विधान को दी गई चुनौती का भी वही हश्र हुआ।

आचार्य विजय वल्लभसूरि विशिष्ट प्रकार की सर्जक प्रतिभा के धारक थे। शब्दों पर उनका असाधारण प्रभुत्व था। वे शास्त्रज्ञाता तो थे ही, हर विषय में उनका ज्ञान अगाध था। वे सहज काव्य सर्जक थे। उन्होंने भक्ति रस से ओत-प्रोत अनेक ढ़ालों की रचना की। उन्होंने 'नवयुग निर्माता' नाम से अपने गुरु आत्माराम जी महाराज का जीवन चरित्र लिखा। सिद्धांत चर्चा के अनेक ग्रंथों की सर्जना की, यथा–श्री जैन भानु, विशेष निर्णायक वल्लभ प्रवचन, नवपद साधना अने सिद्ध आदि उनके बहुश्रुत विवेचन ग्रंथ हैं। उनके विनम्र स्वभाव एवं पवित्र आचार का ही प्रभाव था कि वे अनेक विग्रहों का शमन करने में कामयाब हुए। जयपुर में खरतरगच्छ और तपागच्छ के बीच, स्थानकवासी और मूर्ति पूजकों के बीच, पालनपुर में संघ के ही दो पक्षों के बीच, मलेर कोटला में नवाब व हिन्दुओं के बीच संघर्ष टालने का श्रेय उन्हीं को है। इसी तरह जंडियाल, गुजरानवाला, नवसारी, पूना, बुरहानपुर, पालिताना, मुम्बई आदि अनेक स्थलों में विविध पक्षों में उभरी समस्याओं का समाधान करने में आपका योगदान महत्त्वपूर्ण था। आपकी सरलता एवं वात्सल्य भाव लोगों में प्रेम भाव जगाता था।

आप क्रांति द्रष्टा थे। आपने प्रवचन के लिए सर्वप्रथम लाउडस्पीकर का प्रयोग शुरु किया। वे वचनसिद्ध संत थे। ''सब कुछ अच्छा हो जायेगा''–कहकर आपके अन्तःकरण से निकले आशीर्वाद वासक्षेप से कम नहीं होते थे–उनके चमत्कार की अनेक कहानियाँ श्रद्धालुओं में प्रचलित हैं। वि.सं. 1981 में लाहौर में आपको जैनसंघ द्वारा आचार्य पद से विभूषित किया गया। भृगुसंहिता में दी हुई आपकी कुण्डली एवं फलाशय के अनुसार आपका दूसरे जन्म में मोक्ष सुनिश्चित है।

आप जैन समाज की फिरका परस्ती पर बराबर चोट करते रहे। आपने अपने को सदैव परमात्मा के सत्पथ का यात्री बताते हुए उद्घोषणा की– 'न मैं जैन हूँ, न बौद्ध, न वैष्णव, न शैव, न हिन्दू, न मुसलमान।' शान्ति की खोज सबसे पहले अपने मन में होनी चाहिए, आपने वर्ण व्यवस्था को कर्त्तव्यगत बताते हुए हरिजनोद्धार के लिए अनेक कार्य किये। आचार्य विजयानन्द जी सूरि के अन्तिम आदेशानुसार आपने शिक्षा प्रसार को अपना मिशन बना लिया। आपने भारत के विभिन्न भागों में 2 जैन गुरुकुल, 7 जैन विद्यालय/डिग्री कॉलेज, 7 पाठशालाएँ एवं अनेक पुस्तकालय एवं वाचनालय स्थापित करवाए। स्त्री शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे। राष्ट्रपिता गान्धी के अहिंसा प्रचार एवं स्वदेशी आन्दोलन को बराबर प्रोत्साहन देते रहे। राष्ट्रीय नेताओं में आपका बड़ा सम्मान था। पंजाब में राष्ट्रीय आन्दोलन एवं खादी को लाकेप्रिय बनाने में आपका प्रमुख हाथ था। आपके समुदाय के साधु-साध्वी खादी के वस्त्र पहनने लगे। एक बार अंबाला शहर में एक सभा में आपकी भेंट पं. मोतीलाल नेहरु से हो गई। वे विदेशी चुरुट पीने के आदी थे। आचार्य जी ने बड़े प्रेम से उन्हें टोका। पण्डित जी ने तत्काल विदेशी चुरुट को तिलांजलि दे दी। उन्होंने आचार्यजी के इस चमत्कार को सार्वजनिक सभा में स्वीकारा एवं प्रशंसा की। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पं. मदन मोहन मालवीय को प्रेरित कर जैन चेयर स्थापित करवा कर वहाँ प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलाल जी सिंघवी की नियुक्ति करवाने का श्रेय आपको ही है। पाकिस्तान बनने के समय आप गुजरानवाला में थे, जहाँ के मुसलमानों ने उपाश्रय पर बम फेंका, पर कहते हैं उसका विस्फोट नहीं हुआ। बम फेंकने वाला अपने ही साथी की गोली से मारा गया। मुस्लिम जनता ने इसे करिश्मा मानकर पूरी हिफाजत से आपको पूरे श्वेताम्बर एवं स्थानकवासी जैनसंघ के साथ हिन्दुस्तान पहुँचाया। आपके साथ इस काफिले में आने वालों में सुप्रसिद्ध आगमविद् स्थानकवासी संत अमोलक ऋषि भी थे।

आपने अनेक राजा-महाराजा एवं राष्ट्रीय नेताओं को प्रतिबोधित किया। अनेक तीर्थ यात्राएँ की। आपने अनेक प्राचीन जैन मन्दिरों का

जीर्णोद्धार करवाया। लाहौर, रायकोट, स्यालकोट, जंडियाला, सूरत, बड़ोदा, खम्भात, सादड़ी, मुम्बई, अकोला आदि शहरों के जिन मन्दिरों में बिम्ब एवं अंजन शलाका की प्रतिष्ठा करवाई।

वि.सं. 1990 में अहमदाबाद में आपने जैन श्वेताम्बर सर्व गच्छीय मुनि सम्मेलन करवाया। वि.सं. 1982 में गुजरानवाला में आत्मानन्द जैन महासभा के मंच से आपकी निश्रा में ओसवाल, खण्डेलवाल, पोरवाल आदि जैन जातियों में परस्पर बेटी-बेटों के रिश्ते करने का प्रस्ताव पास हुआ एवं पंजाब में नि:संकोच भाव से ऐसी शादियाँ होने लगीं। आपके अभिग्रह एवं प्रतिज्ञा बल से समाज को अनेक शिक्षण संस्थाएँ एवं कल्याणकारी अभियान प्राप्त हुए। उनके वासक्षेप से चमत्कार की अनेक जनश्रुतियाँ कही जाती हैं। वि.सं. 2010 में बम्बई में आपका स्वर्गवास हुआ।

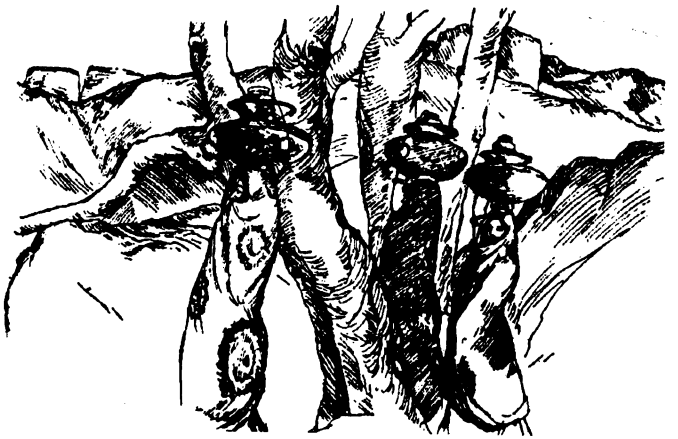

5. आचार्य बुद्धिसागर सूरि (1874-1924)

जन्म	:	बीजापुर, 1874
पिताश्री	:	शिवजी भाई पटेल
माताश्री	:	अम्बा बाई
आचार्य पद	:	1913, पोथापुर
दिवंगति	:	*बीजापुर, 1924*

भारत में अंग्रेजी राज्य ने 200 वर्षों तक भारतवासियों को राजनैतिक एवं मानसिक गुलामी से त्रस्त ही नहीं रखा, भारत के विभिन्न अंचलों को इसाई धर्म के प्रचार एवं धर्म परिवर्तन के जहर से भी ग्रसित रखा। उनके इस षड्यंत्र के शिकार हुए ग्रामांचलों के गरीब, भोलेभाले अनपढ़ ग्रामीण या दूरदराज पहाड़ी अंचलों में रहने वाले आदिवासी। ईसाई पादरियों ने उन्हें लुभाने एवं प्रभावित करने के लिए नाना हथकण्डों का इस्तेमाल किया। अबोध जनता को ईसा के ईश्वरीय चमत्कारों से मुग्ध करने के लिए पादरी बहुधा दो मूर्तियों का इस्तेमाल करते–एक भारी पत्थर की बनी भगवान विष्णु की प्रतिमा और दूसरी ईसा की रंगीन हल्की काष्ठ प्रतिमा। वे एक पानी भरा टब मंगवा कर कहते–तुम्हें इस भवसागर से पार करने में जो मददगार होगा वह स्वयं भी तो पानी में तैर सकेगा–यह कहकर बार-बारी वे दोनों मूर्त्तियाँ टब में छोड़ देते–विष्णु डूब जाते और ईसा तैरते रहते। ग्रामीण आश्चर्य विमुग्ध होकर ईशा की प्रतिमा के आगे नतमस्तक होकर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेते। इस ढ़कोसले की पोल खोली बेचरदास नामक एक युवक ने। उसने पादरी को भगवान की अग्नि परीक्षा के लिए चुनौती दी। जैसे ही ईसा की काष्ठ प्रतिमा आग पर रखी गई, वह धू-धू कर जल गई, विष्णु की प्रतिमा का कुछ न बिगड़ा। पादरी बड़ा शर्मिन्दा हुआ। ग्रामीणों को इस विषाक्त प्रचार से उबारने वाले युवक बेचरदास कालान्तर में बुद्धिसागर सूरि नाम से प्रख्यात हुए।

गुजरात के महसाणा जिले में बीजापुर ग्राम के पाटीदार श्री शिवजी भाई पटेल के घर श्रीमती अम्बा बाई की कुक्षि से वि.सं. 1930 (सन् 1874) के महाशिवरात्रि पर्व दिवस पर एक बालक का जन्म हुआ। शिवजी भाई खेतिहर थे। एक दिन खेत में वृक्ष की शाखा से लटकी झोली में बालक सो रहा था। अचानक एक काला नाग झोली पर फण फैलाए दिखाई दिया। माता-पिता यह देखकर काँप उठे। नाग बालक को कहीं काट न ले। मनौती माँगी। चन्द क्षणों बाद नाग सहज ही नदारद हो गया। माता-पिता ने सुख की सांस ली। इसीलिए बालक का नाम रख दिया—बेचरदास। बालक बड़ा होकर स्कूल जाने लगा। वहीं उसके जैन सहपाठी ने उसे सरस्वती-मंत्र का जाप सिखाया। बालक ने ग्राम के देरासर में पद्मावती देवी की प्रतिमा के समक्ष बैठकर मंत्रजाप शुरु कर दिया। शनैः-शनैः आश्चर्यजनक रूप से बालक की धारणा एवं अभिव्यंजना विकसित होकर प्रार्थना काव्य में फूट पड़ी। इस नैसर्गिक काव्य शक्ति ने उनसे अनेक भजन, स्तवन एवं श्लोक लिखवाए।

इसी समय बीजापुर में जैनाचार्य रवि सागर जी का पदार्पण हुआ। जिस राह से वे गुजर रहे थे अचानक दो भैंसे लड़ते हुए आ गए। ऐसा लगता था कि रविसागरजी उनके चपेट में आ जाएँगे। बालक बेचरदास ने जब यह देखा तो अपने हाथ का लट्ठ जोर से फटकार कर एक भैंसे के सर में दे मारा। रविसागरजी बच गए। उन्होंने बेचरदास को पास बुलाकर प्रेम से समझाया—''भाई जानवर को इतने जोर से नहीं मारते, उसे भी कष्ट होता है।'' बेचरदास के हृदय में जैसे करुणा की बाँसुरी बज उठी। इस एक घटना ने बालक के समग्र जीवन को परिवर्तन के कगार पर ला खड़ा किया। किसी पूर्व जन्म का ऋणानुबंध रहा होगा—रविसागरजी महाराज की प्रेरणा से बेचरदास पूर्णतः उन्हें समर्पित हो गया। उनके सहवास से अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू एवं अर्धमागधी भाषा एवं ग्रंथों का परायण उसका साध्य बन गया। विद्याभ्यास के बाद पास ही के आजोल ग्राम की पाठशाला में अध्यापन शुरु कर दिया। रविसागर जी के सम्पर्क से जैन संस्कार उनके जीवन के प्रेरणास्रोत बन गए। उन दिनों रविसागरजी वृद्धावस्था के कारण महसाणा में स्थिरवास कर रहे

थे। वे वहीं आकर रहने लगे। रविसागरजी दिवंगत हुए तो बेचरदास के सर से जैसे सुरक्षा कवच ही खो गया। तभी सं. 1956 का भयंकर दुष्काल शुरु हुआ। छपनिया काल की निर्मल चपेट से बेचरदास के माता पिता बच न सके। माता-पिता की उत्तर क्रिया सम्पन्न कर बेचरदास का वैरागी मन शाश्वत सत्य की खोज के लिए तड़प उठा। संवत् 1957 में पालनपुर जाकर उन्होंने रविसागर जी के शिष्य सुखसागरजी महाराज से जैन दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा उपरान्त उनका नामकरण हुआ मुनि बुद्धिसागर।

बुद्धिसागर जी अत्यंत तेजस्वी एवं विद्याव्यसनी तो थे ही, उन्होंने शास्त्राभ्यास किया। ग्रहण शक्ति तो थी ही, उनकी तर्कशक्ति भी खिल उठी। उनकी रचना शक्ति का प्रथम प्रसाद 'जैन धर्म अने खिस्ती धर्म नो मुकाबिलो' (गुजराती) ग्रंथ रूप में सूरत में सामने आया जिसका बहुत दूरगामी प्रभाव लोगों पर पड़ा। यहीं उनकी मंत्र शक्ति के चमत्कारक प्रभावों की अनेक घटनाएँ घटी। लेखन के साथ उनकी वाक् शक्ति भी खिलने लगी। उनके व्याख्यानों में जैन अजैन सभी श्रोता आने लगे। सं. 1968 में अहमदाबाद में सुखसागरजी महाराज का देहांत हुआ। सं. 1970 में पोथापुर में धर्मसंघ ने उन्हें 'आचार्य' पद से विभूषित किया। आचार्य बुद्धिसागर सूरि 51 वर्ष की अल्प वय में ही बीजापुर में सं. 1981 में दिवंगत हुए। अपने 24 वर्षीय दीक्षा पर्याय में उन्होंने विपुल साहित्य सर्जित किया। उनके जीवनकाल में ही 108 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे, जिनमें मुख्य थे—कर्मयोग, आनन्दघनजी ना पदो, परमात्म ज्योति, ध्यानविचार, शिष्योपनिषद्, श्रीमद् देवचन्द्र आदि। यह समग्र साहित्य बीस हजार पृष्ठों में समाहित है।

आचार्य बुद्धिसागर सूरि ने दृढ़ योग प्राणायाम, ध्यान, समाधि की गहन साधना की थी। उन्हें योग सिद्धि प्राप्त थी। कहते हैं समाधि में उनका शरीर जमीन से ऊपर उठ जाता था। बड़ोदा के सर मनुभाई दीवान एवं डॉ. सुमंत महेता उनके ऐसे कतिपय प्रयोगों के साक्षी थे। अनेक सन्यासी, जैनेतर विद्वान, फकीर, पादरी उनके दर्शन एवं परामर्श

से कृत्य-कृत्य होते। उनकी प्रेरणा से अनेक राज्यों में पशु-वध निषेध किया गया। वे भक्त शिरोमणि आनन्दघन, श्रीमद् देवचन्द्र एवं उपाध्याय यशोविजयजी के जीवन एवं साहित्य से बहुत प्रभावित थे। आचार्य बुद्धिसागर जी ने उनके जीवन चरित्र लिखकर उनके दर्शन एवं स्तवनों की मार्मिक मीमांसा की।

आचार्य जी ने पालीताना में जैन गुरुकुल की स्थापना करवाई एवं बड़ोदा में जैन बोर्डिंग की स्थापना करवाई। आपने अनेक जिनालयों में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई, बीजापुर में हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रहार्थ 'ज्ञान मन्दिर' की स्थापना करवाई। अनेक पाठशाला एवं धर्मशालाओं की स्थापना आपकी प्रेरणा से हुई। माणसा में स्थापित 'श्री अध्यात्म ज्ञान प्रसारण मंडल' आपके ग्रंथों का प्रकाशन बराबर करता रहा है।

उन्हें ज्योतिष स्वयं सिद्ध थी–अपना अंतिम समय जानकर सं. 1981, ज्येष्ठ बदी 2 के दिन वे महुड़ी से बीजापुर पधारे। नियत समय पर अपने प्रिय मंत्र 'ऊँ अर्हम महावीर' का जाप प्रारम्भ कर दिया– एकत्र हुई मानव मेदिनी ने जाप चालू रखा। आपने पद्मासन लगाकर समाधि ली। नियत समय पर उन्होंने अंतिम श्वांस छोड़ी एवं स्वर्गस्थ हुए। उनके निर्मल अंत:करण से सं. 1967 (सन् 1810) में निकली भविष्यवाणी ''राजाओं की राजशाही का लोप होगा, विज्ञान के माध्यम से एक खण्ड के समाचार तत्क्षण दूसरे खण्ड में सम्प्रेषित होंगे।'' अक्षरश: सत्य हो रही है।

6. संतश्री गणेशप्रसाद वर्णी (1874–1961)

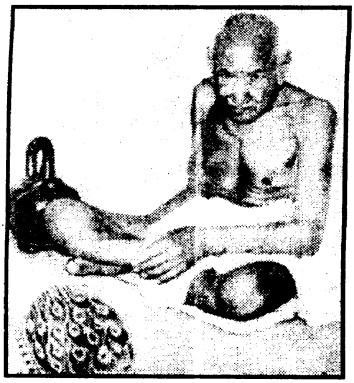

जन्म : 1874 (बुन्देलखण्ड) हंसेरा ग्राम
पिताश्री : हीरालाल असाटी वैश्य (वैष्णव)
माताश्री : उजियारी बहन
दीक्षा : कुण्डलपुर (दमोइ) 1914
दिवंगति : 1961, ईसरी आश्रम (पारसनाथ)

तप से कृश, तेज से दीप्त, रंग सांवला, हृदय स्वच्छ, बालक-सा सरल स्वभाव, उन्नत ललाट, अनारंग में लीन अधखुले नैत्र, पण्डितों के पण्डित, अपनी ही कीर्ति-प्रतिष्ठा से निर्लिप्त एक ऐसा व्यक्ति जो वर्षों तक नंगे पाँव, एक चादर ओढ़े बिना सर्दी-गर्मी की परवाह किए गाँव-गाँव, शहर-शहर, जन-जन में अहिंसा और सत्य की अलख जगाता घूमता रहा–धनकुबेर उसके पाँवों में लक्ष्मी बिखरते चलते–ऐसे ही निर्विकार संत थे श्री गणेशप्रसाद वर्णी।

स्वतंत्रता के पुजारियों के तीर्थ स्थान झांसी जिले के हंसेरा ग्राम से सन् 1874 में असाटी वैश्य श्री हीरालाल के घर माता उजियारी बहन की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। नामकरण हुआ–गणेशप्रसाद। पारिवारिक आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। सन् 1980 में यह परिवार मंडावरा जा बसा। परिवार वैष्णव धर्मी था। परन्तु जैनों के 'नवकार मंत्र' पर पिता की अपार श्रद्धा थी। बालक गणेश ने मंत्र कंठस्थ कर लिया।

यहीं उनकी मिडल तक की शिक्षा सम्पन्न हुई। मंडावरा में ग्यारह शिखर बंद जैन मन्दिर थे। कौतुहलवश गणेशप्रसाद घर के सामने के जैन मन्दिर में भक्ति पूजन निरखते एवं रुचिपूर्वक प्रवचन भी सुनते। ये पूर्वभव के संस्कारों का ही परिणाम होगा जो बालक गणेश को रात्रि भोजन त्याग और अणछाणे पानी का त्याग आकर्षित करने लगा। उनको

अपनी वैष्णव परम्परा की रूढ़ियाँ नीरस व निरर्थक लगने लगी। जैन दर्शन एवं धार्मिक आचार उन्हें अधिक तर्कपूर्ण एवं कल्याणकारी लगने लगे।

वे जब 18 वर्ष के थे तभी उनका विवाह हो गया। जल्द ही उनके पितामह, पिताश्री एवं अग्रज की मृत्यु हो गई। मृत्यु पूर्व पिता ने उन्हें सदैव 'नमोकार मंत्र' स्मरण रखने की शिक्षा देते हुए कहा था– ''आपत्ति-विपत्ति में यह तुम्हारी रक्षा करेगा, इस मंत्र की महिमा अपार है, इसमें श्रद्धा बनाए रखना।'' परिवार की जिम्मेदारी गणेश प्रसाद के किशोर कंधों पर आ पड़ी। इन मौतों से बालक का मन संसार की क्षणभंगुरता के प्रति सचेत हो गया।

गणेश प्रसाद ने आजीविकार्थ मदनपुर ग्राम में शिक्षक की नौकरी कर ली, कई मास आगरा में ट्रेनिंग ली। इस बीच उन पर माता एवं पत्नि का कुल धर्म न छोड़ने के लिए दबाव पड़ने लगा। परन्तु माता का स्नेह और पत्नि का अनुराग उन्हें विचलित नहीं कर पाया। जैन धर्म पर उनकी श्रद्धा डिगी नहीं। पण्डित भोजन में सम्मिलित न होने के कारण उन्हें 'जाति बहिष्कृत' करने की धमकी दी जाने लगी। वे स्वयं ही सबसे नाता तोड़ एकाकी आत्म-साधना की राह चल पड़े।

तभी किशोर का परिचय सिमरा निवासी जैन धर्मपरायणा चिरोंजी बाई से हुआ। प्रवचन के बाद चिरोंजी बाई के आमंत्रण पर भोजन करने के लिए किशोर गणेशप्रसाद उनके मेहमान बने। पूर्व जन्म का ही कहिए कुछ ऐसा संयोग बना कि चिरोंजी बाई को वे पुत्रवत् लगने लगे। उन्होंने गणेशप्रसाद की जीवनशैली बदल दी। गणेशप्रसाद व्रतों के पालन के लिए व्यग्र थे। चिरोंजी बाई ने उन्हें पहले ज्ञानार्जन करने के लिए प्रेरित किया। जयपुर में उनके शिक्षण की व्यवस्था कर दी गई। गणेश प्रसाद ने जयपुर प्रयाण किया पर रास्ते में ही सारा सामान चोरी हो गया। गणेश प्रसाद लौट आए पर संकोचवश चिरोंजी बाई को यह जताने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। वे जैन तीर्थों की यात्रा पर निकल पड़े। वे मुंबई आए। वहाँ उनका परिचय पं. गोपालप्रसाद बरैया प्रभृति जैन विद्वानों से हुआ।

गणेश प्रसाद उन्हीं के सान्निध्य में आगम ग्रंथों, व्याकरण आदि के अध्ययन में लग गए। मुंबई का पानी रास न आने से वे जयपुर आए। यहाँ वीरेश्वर शास्त्री के सान्निध्य में उन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थ सिद्धि आदि जैन ग्रंथों का अध्ययन किया। इस बीच उनकी पत्नि का देहांत हो गया। गणेश प्रसाद शास्त्रों के अध्ययन में लगे रहे।

सन् 1904 में वे संस्कृत विद्या के धाम बनारस पहुँचे। इस वक्त उनकी उम्र 30 वर्ष हो गई थी। धर्म-दर्शन की प्यास उन्हें हर घाट पर ले गई। बनारस में 'क्वीन्स कॉलेज' के न्यायशास्त्र के व्याख्याता पं. जीवनाथ मिश्रा से गणेशप्रसाद ने शिष्य बनाने की विनती की। मिश्राजी को जब मालूम हुआ कि गणेशप्रसाद जन्म से वैष्णव एवं आस्था से जैन हो गये हैं तो वे क्रोधित हो उठे, उन्होंने गणेशप्रसाद को घर से निकाल दिया। उन्होंने जैनियों को न्याय न सिखाने का प्रण ले रखा था। गणेशप्रसाद को बहुत बुरा लगा। सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ की जन्मभूमि में 'तत्त्वज्ञान' के अध्ययन की सुचारु व्यवस्था हेतु गणेशप्रसाद संकल्पित हो उठे। आत्मीय चमनलाल के एक रुपया अवदान से उन्होंने 64 पोस्टकार्ड खरीदे एवं 64 धर्मप्रेमियों को पत्र लिखकर अपनी योजना से अवगत कराया। सन् 1978 में दानवीर सेठ मानिकचन्द जे.पी. के हाथों भदौनी घाट पर स्थित मंदिर परिसर में ''स्याद्वाद विद्यालय'' की नींव पड़ी। बाबा भागीरथ की देखरेख में विद्यालय संचालित हुआ। कालांतर में यह जैन समाज का सर्वोपरि अध्ययन केन्द्र बन गया। थोड़े समय बाद पं. मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। तब वहाँ 'जैन दर्शन विभाग' खुलवाने का श्रेय गणेश प्रसादजी को ही है।

सन् 1911 में गणेशप्रसादजी के प्रयत्नों से सागर में ''सतर्क सुधातरंगिणी पाठशाला'' की स्थापना हुई जो अब ''गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय'' नाम से प्रसिद्ध है। गणेशप्रसाद एवं उनकी धर्ममाता चिरोंजी बाई वहीं रहने भी लगे। शरीर पर मात्र एक धोती और दुपट्टा उनका पहिरान रहा। यहाँ उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया एवं 'वर्णीजी' के नाम से विख्यात हो गए।

जैन समाज उस समय अनेक रूढ़ियों से ग्रस्त था। अनपढ़ जनता जातीय पंचायतों के शिकंजों में दबी थी। छोटी-छोटी बातों के लिए उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया जाता। बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं बहु पत्नित्व की प्रथाएँ समाज को खोखला कर रही थी। वर्णीजी ने प्रदेश में शिक्षा-संस्थाओं की नींव रखी। गाँव-गाँव भ्रमण कर उन्होंने रूढ़ियों के निवारणार्थ गरीब व अनपढ़ जनता को प्रेरित किया।

वर्णीजी की प्रेरणा से संस्थापित शिक्षण संस्थानों में मुख्य थे बरुआसागर, शाहपुर, द्रोणगिरि के विद्यालय एवं खुरई, जबलपुर के गुरुकुल एवं ललितपुर, इटावा व खतौली के विद्यालय।

वर्णीजी की उदारता अद्‌भुत थी। अपने पास जो भी वस्तु होती उसे किसी जरूरत मन्द को देते उन्हें कींचित समय न लगता। उनके ऐसे अवदानों की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। दु:खी एवं गरीब भाइयों को देखकर उनका अंत:करण–रोम रोम उसकी सहायता के लिए व्यग्र हो उठता। ऐसे भी प्रसंग आए जब राह में सब कुछ लुटाकर मात्र एक लंगोटी पहने घर में प्रवेश किया।

वर्णीजी प्रभावशाली वक्ता थे। उनके प्रवचन सुनने के लिए हजारों श्रोता उमड़ते एवं मंत्र मुग्ध हो उन्हें सुनते। वे बुन्देलखण्डी मिश्रित खड़ी बोली में विविध दृष्टांतों से सीधे श्रोता के हृदय में उतर जाते। वर्णीजी की लेखन शैली चित्ताकर्षक होती। उन्होंने अपनी देनन्दिन डायरी में मात्र घटनाओं के विवरण ही नहीं लिखे अपितु उनकी सार्थक मीमांसा कर उन्हें पाठकों के लिए उपयोगी एवं प्रेरणास्पद बना दिया है। ''वर्णी वाँणी'' नाम से उनकी डायरी के चार भाग प्रकाशित हुए हैं। ''मेरी जीवन गाथा'' नाम से प्रकाशित उनकी आत्मकथा धर्मप्रेमियों में बहुत लोकप्रिय हुई। आचार्य कुन्दकुन्द के 'समयसार' पर रचित उनकी प्रवचनात्मक टीका अत्यंत उपयोगी है।

सागर से परिभ्रमण कर वर्णीजी बरुआ सागर पधारे जहाँ जिन प्रतिमा के समक्ष उन्होंने क्षुल्लक (वीर सं. 2473) दीक्षा अंगीकार की। क्षुल्लक अवस्था में उन्होंने उत्तरप्रदेश और दिल्ली के विहार किए।

फिरोजाबाद में उनकी हीरक जयंती बड़े धूमधाम से मनाई गई। वर्णीजी ने अपनी उत्तरावस्था लक्ष कर पवित्र वातावरण में आत्म-साधना हेतु सम्मेद शिखर की ओर प्रयाण किया। वे गया चतुर्मास कर ईसरी (पारसनाथ) पधारे। अपने अंतिम समय तक वे वहीं रहे। उनके स्थिरवास में ईसरी का खूब विकास हुआ। वहाँ धर्मशाला, पार्श्वनाथ उदासीनाश्रम, महिलाश्रम, जिन मंदिर, विशाल प्रवचन मंडप का निर्माण हुआ। यह भी एक तीर्थ की तरह धर्मप्रेमियों का दर्शन स्थल बन गया। सन् 1961 में 87 वर्ष की उम्र में वर्णीजी ने संलेखना करने का संकल्प किया। शनैः-शनैः आहार त्याग दिया, फिर जल एवं वस्त्र का परित्याग किया। दैहिक विपरीतता के बावजूद वर्णीजी की आंतरिक जागृति खूब थी। अन्ततः नश्वरदेह का परित्याग करके स्वर्गवासी हुए।

वर्णीजी के देहावसान से एक आत्मज्योति भारतभूमि से विलुप्त हो गई।

7. आचार्य जवाहरलालजी (1875-1942)

जन्म	:	चांदला (मालवा), 1875
पिताश्री	:	जीवराज ओसवाल
माताश्री	:	नाथीबाई
दीक्षा	:	लिंबड़ी, 1891
आचार्य पद	:	1919, भीनासर
दिवंगति	:	भीनासर, 1942

बहुधा 'जैनाचार्य' से एक सम्प्रदाय की परम्पराओं से आबद्ध रूढ़िगत साधनाओं के आलम्बन से शास्त्रबद्ध सिद्धांतों के परम्परागत अर्थ करने वाले विद्वान मुनि का बोध होता है। इस मान्यता को धराशायी करने वाले ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' के सिद्धांत को हृदयंगम कर उदारवादी दृष्टि से अर्वाचीन संदर्भों में धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या करने वाले प्रबुद्ध संतों में आचार्य श्री जवाहरलालजी अग्रणी थे।

महाकवि कालिदास और भवभूति जैसे सरस्वती-उपासकों के मालवा प्रदेश के चांदला ग्राम में ओसवाल जाति के वणिक श्रेष्ठि जीवराज के घर उनकी सहधर्मिणी नाथी बाई की कुक्षि से सन् 1875 में एक बालक ने जन्म लिया। संस्कारी माता-पिता की इस तेजस्वी संतान का नामकरण 'जवाहर' हुआ। कहते हैं सुवर्ण को तपाने से उसमें ओर निखार आता है। महापुरुषों के जीवन में भी विपत्तियाँ और कष्ट परिमार्जन हेतु ही आते हैं। मात्र दो वर्ष की वय में बालक की माताजी चल बसी और पाँच वर्ष की वय में पिताजी काल-कवलित हो गए। अत: बालक के पालन-पोषण की जिम्मेवारी उनके मामा श्री मूलचन्द पर पड़ी। उनका ग्राम में ही कपड़े का व्यवसाय था। ग्राम के आजू-बाजू आदिवासी भीलों की बस्तियाँ थीं। ईसाई मिशनरियों का फैलाव था। उन्हीं की एक पाठशाला में जवाहर का प्रारम्भिक शिक्षण हुआ। परन्तु जल्द ही शाला छोड़ वे व्यवसाय में मामा का हाथ बटाने लगे। गुजराती, हिन्दी एवं

गणित के ज्ञान एवं अपने अध्यवसाय से वे थोड़े समय में ही कपड़े व्यवसाय में निष्णात हो गए। गाँव में उनके अनुभव की सौरभ फैलने लगी।

तभी अचानक जब वे मात्र 13 वर्ष के थे उनके अभिभावक मामा की अकाल मृत्यु हो गई। बालक के हृदय पर वज्राघात हुआ। जिनके लिए जीवन भर मार्गदर्शक-रक्षक रूप की आशा संजोए बैठे थे, उनके चले जाने से बालक का कोमल मन तड़प उठा। विधवा मामी एवं उसके पाँच वर्षीय बालक की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर आ पड़ी। ऐसे समय किसी पूर्व भव में वपन हुआ वैराग्य बीज अंकुरित होने लगा। मानस जगत की असारता से उद्वेलित हो उठा। आत्मीयजनों को खबर लगी तो जवाहर पर निगरानी रखी जाने लगी। ग्राम में आए संत-साध्वियों के समागम में वे न जा सकें, ऐसे प्रतिबंध लगा दिए गये, साधु जीवन के ढ़कोसलों एवं निन्दा से उनके कान भरने की कोशिशें होने लगीं। पर होनहार को कौन टाल सकता है। विरक्त जवाहर गृहस्थी के जाल में कमलवत् अनासक्त रहने लगे।

तभी पास ही के लींबड़ी ग्राम में स्थानकवासी मुनि घासीरामजी का पदार्पण हुआ। जवाहर वहाँ पहुँच गये। दीक्षा के लिए आग्रह करने लगे पर मुनिजी ने आत्मीयजनों की बिना अनुमति दीक्षा देना स्वीकार नहीं किया। जवाहर का वैरागी मन जब किसी तरह न माना तो आत्मीयजनों को अनुमति देनी पड़ी। सन् 1891 में मुनि घासलीलालजी के सान्निध्य में लींबड़ी ग्राम में जवाहरलाल जी की दीक्षा सम्पन्न हुई। जवाहरलालजी की जन्मजात प्रतिभा खिलने लगी। जैनागमों के अध्ययन में उनकी तीव्र स्मरण शक्ति, तीक्ष्ण बुद्धि, गुण ग्राहकता एवं एकनिष्ठा के योग से सिद्धि प्राप्त हुई। उनकी आत्यंतिक विनयशीलता से देवी सरस्वती प्रसन्न हुई। उनकी ख्याति फैलने लगी। सन् 1897 में युवाचार्य श्री चोथमलजी महाराज के विशाल संघ का समागम हुआ। सन् 1899 में चोथमलजी महाराज का स्वास्थ्य गड़बड़ाया तो उन्होंने संघ के निर्देश की जिम्मेवारी चार मुनियों के संकाय के सुपुर्द कर दी जिसमें एक 24

वर्षीय युवा संत जवहारलालजी महाराज थे। सन् 1905 का उदयपुर चातुर्मास बहुत प्रभावशाली रहा। यहीं गणेशीलालजी महाराज प्रवर्जित हुए। सन् 1907 का चातुर्मास रतलाम किया, वहाँ से आप चाँदला पधारे। इस चातुर्मास में हाथी द्वारा विवेक-विनय की, सर्प द्वारा शांतिभाव रखने की एवं पत्थर मारने वालों को महाराज द्वारा क्षमा करने की अनेक–चमत्कारी घटनाएँ हुई।

जाम गाँव के चातुर्मास में आपको 'गणि' पद से विभूषित किया गया। आचार्य लालजी महाराज ने सन् 1918 में सीलाम चातुर्मास में जवाहरलालजी को 'युवाचार्य' पद दिया। सन् 1919 में उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् भीनासर में जवाहरलालजी 'आचार्य' पदे से विभूषित हुए। आपके मार्गदर्शन से संघ एवं समाज में सुधारक वृत्तियों का चलन हुआ। निरक्षरता एवं अंधश्रद्धा मिटाने के लिए आपने शिक्षण को अपना मिशन ही बना लिया। आपकी प्रेरणा से अनेक शिक्षण संस्थाओं का संस्थापन हुआ। ''साधुमार्गी जैन हित कारिणी संस्था'' के संस्थापन से अनेक समाज हितकारी कार्यक्रमों का संचालन सम्भव हुआ। यह संस्था साधुओं के शिक्षण, आचार संहिता एवं विहार प्रबंध में समुचित योगदान करती है।

सन् 1923 के घाट्कोपर (मुंबई) चातुर्मास में सामूहिक प्रवचनों के आयोजन जैन व अजैन धर्मप्रेमियों के लिए अत्यंत प्रेरणास्पद साबित हुए। आगामी चतुर्मास सौराष्ट्र एवं गुजरात में हुए जहाँ धर्मप्रेमियों का सद्भाव एवं भक्ति प्रशंसनीय थी। आचार्यश्री के स्वास्थ्य पर इन लम्बे विहारों का असर होने लगा था। शारीरिक अशक्ति एवं दर्द के कारण विहार सीमित हो गये। सन् 1942 के भीनासर चातुर्मास में आचार्य जी का अर्धांग पक्षाघात से पीड़ित हो गया। दैहिक वेदना को समतापूर्वक सहते हुए आचार्यश्री ने भीनासर में देहत्याग दिया।

आचार्य जवाहरलालजी महाराज ने रूढ़िगत क्रियाओं को कभी महत्त्व नहीं दिया, वे ज्ञान की आराधना को ही समर्पित रहे। उनका प्रगतिशील एवं सुधारवादी दृष्टिकोण राष्ट्रीयता के रंग से रंगा था। राष्ट्र के प्रतिभा सम्पन्न नेता उनके दर्शन, सत्संग एवं परामर्श से लाभान्वित होते।

महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, बाल गंगाधर तिलक, मदन मोहन मालवीय, संत विनोबा भावे आदि इतिहास पुरुष आचार्य जवाहरलालजी के तेजस्वी व्यक्तित्व एवं विद्वता से आकर्षित थे। आचार्य जी ने समाज में फैली कुप्रथाओं, यथा–बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज, विधवाओं की दयनीय दशा, मांसाहार व दारू के बढ़ते प्रचलन, अस्पृश्यता, धार्मिक, असहिष्णुता आदि पर प्रहार किया एवं उनके उन्मूलन के लिए प्रयास किया।

8. ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद (1879-1942)

जन्म	:	लखनऊ, 1879
पिताश्री	:	लाला मक्खनलाल
माताश्री	:	नारायणी देवी
दीक्षा	:	सोलापुर, 1911
दिवंगति	:	लखनऊ, 1942

सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम यद्यपि निष्फल चला गया परन्तु राष्ट्रप्रेम एवं आजादी के लिए कशमकश जारी रही। सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष तीव्रतर होता गया। विदेशी हकूमत जोरों से देश की दौलत लूटने में मशगूल थी। देश की सामाजिक स्थिति बदतर थी। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, विधवा विवाह निषेध, दहेज-प्रथा, मृत्युभोज जैसी कुप्रथाओं से क्षुब्ध होते हुए भी जन-मानस उन्हें सहता चल रहा था। निरक्षरता एवं अंधविश्वास के मारे सारे विकास अवरुद्ध थे। आर्थिक व धार्मिक शोषण से देशवासी त्रस्त थे। ऐसे समय प्रकाश की एक किरण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद के रूप में देश के अंधकाराच्छन्न आकाश पर उभरी।

संयुक्त प्रांत की राजधानी लखनऊ में लाला मक्खनलालजी के घर उनकी धर्मपत्नि नारायणी देवी की कुक्षि से सन् 1879 में एक बालक ने जन्म लिया। बचपन में उन्हें पितामह मंगलसेन से स्वाध्याय, चिंतन, अभक्ष्य का त्याग आदि संस्कार मिले।

अठारह वर्ष की वय में बालक ने मेट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सरकारी नौकरी भी तत्काल लग गई। उनके शैक्षणिक स्तर एवं सुधार के लिए तड़प का पता तात्कालीन ''जैन गजट'' के मई, 1896 के अंक में छपे उनके एक लेख से लगता है, जिसमें उन्होंने लिखा–

''हे जैन पंडितों! अब देश धर्म का वास्तविक आधार तुम पर ही है, इसकी रक्षा करो, उद्यम करो, सोये हुए जन-मानस को जगाओ, तन-मन-धन से परोपकार एवं शुद्ध आचार अपनाओ। तभी आपके लोक-परलोक सुधरेंगे।''

शीतल प्रसाद जी का विवाह कलकत्ता निवासी श्री छेदीलालजी की सुपुत्री से हुआ। बहू बहुत संस्कारी, पति परायणा एवं सेवाभावी थी पर आयुष्य नहीं लाई थी। वे सन् 1904 की प्लेग की बिमारी की भेंट चढ़ गई। पत्नि वियोग के साथ माह भर में ही माँ और कनिष्ठ भ्राता का वियोग ब्रह्माचारी जी को सहना पड़ा। मात्र पच्चीस वर्ष के युवक के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उधर अनेक स्वरूपवान कन्याओं के माता-पिता की ओर से विवाह के प्रस्ताव आने लगे। परन्तु ब्रह्माचारी के मन को न धन डिगा पाया न काम। सन् 1905 में शीतलप्रसाद ने सरकारी नौकरी छोड़ दी एवं शास्त्र वाचन और समाज सेवा को समर्पित हो गए।

दिगम्बर जैन महासभा के सन् 1905 में मुंबई में हुए अधिवेशन में प्रसिद्ध दानवीर सेठ माणकचंद जे.पी. की नजर शीतलप्रसाद जी पर पड़ी। वे उनके आदर्शों, संकल्पों, उत्साह, सादगी एवं कार्यकुशलता से बहुत प्रभावित हुए। हीरे की परख जौहरी ही कर सकते हैं। उन्होंने इस युवक रत्न को अपने पास रख लिया। सतत चार वर्षों तक सेठजी के साथ रहकर उन्होंने विभिन्न संस्थाओं की रचनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन किया। वे जल्दी ही अपनी मिलनसारिता से समाज में लोकप्रिय हो गए। सन् 1911 में सोलापुर में एलक श्री पन्नालालजी के सान्निध्य में शीतलप्रसाद ने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया एवं शुद्ध खादी के गेरुऐं रंग की धोती एवं चद्दर धारण की। उनकी आहारचर्या में तदनुरूप परिवर्तन हुआ एवं जीवन संयम-आराधना में प्रवज्यित हो गया।

उन्होंने समस्त भारत के जैन तीर्थों की यात्रा की। बौद्ध दर्शन के अभ्यास हेतु श्रीलंका और बर्मा गये। उदारता, सहिष्णुता एवं विश्व कल्याण की भावना से विभूषित सन्यासी सभी के आदर का पात्र बन गया। उनके ये अनुभव प्रकाशित भी हुए। सन् 1909 से लगातार 20 वर्षों तक

उन्होंने ''जैन मित्र'' पत्रिका का सम्पादन किया। अपने पाठक वर्ग का विपुल धार्मिक साहित्य से परिचय कराया। इसके अलावा ''जैन गजट, वीर, सनातन जैन आदि पत्रिकाओं का समय-समय पर संचालन/सम्पादन किया। उनकी प्रेरणा पाकर अनेक लेखक उत्साहित हुए। उनके रचित एवं सम्पादित 77 ग्रंथों में 26 अध्यात्म विषयक, 18 जैनधर्म एवं दर्शन, 7 नीति विषयक, 6 इतिहास विषयक 5, जीवन चरित्र एवं अन्य तारण स्वामी के साहित्य विषयक है। इन ग्रंथों में उनकी विद्वत्ता, साधना, सिद्धांत निष्ठा व भाषा ज्ञान परिलक्षित होता है। प्रवचन सार, समय सार, नियमसार, परमात्म प्रकाश, समाधि शतक, तत्त्वभावना, तत्त्वसार, स्वयंभूस्तोत्र आदि अनेक महान ग्रंथों का प्रकाशन उन्होंने किया। श्रीमद् राजचन्द्र के महान भक्त श्री लघुराज स्वामी के सान्निध्य में रहकर उन्होंने 'सहज सुख साधन' ग्रंथ की रचना की जो भक्तों में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसका गुजराती अनुवाद भी प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने शिक्षा प्रसार एवं धर्म प्रचार में अपना समग्र जीवन लगा दिया। स्याद्वाद विद्यालय, बनारस, श्रीऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर; जैन श्राविकाश्रम, मुंबई; जैन बालाश्रम, आरा; जैन व्यापारिक विद्यालय, दिल्ली आदि संस्थान स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को है। ये संस्थान निरन्तर उनकी सेवाओं से उपकृत होते रहे। साथ ही उन्होंने अनेक जैन बोर्डिंग हाउस खोले। समाज ने उनकी महती सेवाओं का सम्मान कर, बनारस में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ. हर्मन जेकोबी की अध्यक्षता में हुई विशाल सभा में उन्हें 'जैन धर्मभूषण' के विरुद से विभूषित किया। उनके अनेक सुधारवादी विचारों से परम्परावादी लोगों का खफा होना उचित ही था पर अन्ततः ब्रह्मचारी जी की निस्पृहता से वे भी शांत हो गए।

अत्यधिक श्रम करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया। चिकित्सा भी हुई पर शरीर-कम्पन का रोग उनके अंगों को ग्रसता चला गया। वे लखनऊ अजिताश्रम में सेवाशुश्रुषा के लिए लाए गये। सन् 1942 में एक रोज वे गिर पड़े व हिपबोन का फ्रेक्चर हो गया। स्थिति बिगड़ती गई। 10 फरवरी, 1942 की प्रातः उन्होंने शांति पूर्वक देहत्याग

कर स्वर्गारोहण किया। अल्पायु में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर शीतल प्रसादजी समस्त जैन समाज में ''वर्तमान के सामंतभद्र'' कहलाने लगे थे। समाज के सर्वतोमुखी विकास के लिए किये गये उनके प्रयत्न सदा प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

9. मुनिश्री ज्ञान सुन्दर (1880-)

जन्म : सिवाणा, 1880

पिताश्री : नवलमलजी बैद मूंथा

माताश्री : रूपा देवी

दीक्षा : झामूणियाँ, 1906, पुनः दीक्षा ओसिया, 1915

दिवंगति :

प्रकृति में ऐसे भी कुसुम भरे पड़े हैं जिनके सौन्दर्य और सुवास का अनुभव कोई नहीं कर पाता। ऐसे ही इस रत्नगर्भा वसुन्धरा की कोख से भी ऐसी विरल विभूतियाँ जन्म लेती हैं जो अपने आलोक से अंधकार में छुपे विगत को आलोकित कर जाती हैं।

जैन आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा विरात 70 वर्षे प्रतिबोधित एवं संस्थापित महाजन कुल (कालांतर में ''ओसवाल'' जाति) के श्रेष्ठि गोत्र के जैनियों की विक्रम की 12वीं शताब्दी में मारवाड़ के सिवाणा नगर में घनी आबादी थी। श्रेष्ठि गोत्रीय श्री त्रिभुवनसिंह गढ़ सिवाणा के मंत्री पद पर नियुक्त थे। इनके सुपुत्र मूंथा लालसिंह का विवाह चित्तौड़ हुआ था। लालसिंहजी चित्तौड़ गये हुए थे। वहाँ के महारावल की रानी चक्षु पीड़ा से पीड़ित थी। लालसिंह जी ने अपने उपचार से उन्हें स्वस्थ कर दिया। महारावल ने उन्हें ''वैद्यराज'' की उपाधि से सम्मानित किया। तब से उनका कुल 'वैद्य-मेहता' कहलाने लगा। इस कुल के वंशज नवलमलजी वीसलपुर ग्राम में निवास करते थे। उनकी भार्या रूपादेवी की कुक्षि से सन् 1880 में विजयादशमी के दिन एक बालक ने जन्म लिया। बालक बड़ा हुआ। उसे सत्संग से बड़ा प्रेम था। स्वाध्याय में भी रुचि थी। 17 वर्ष की आयु में उनका विवाह भानीरामजी बाघरेचा की सुपुत्री राजकुमारी से हुआ। चन्द वर्षों बाद ही पिता नवलमलजी का

स्वर्गवास हो गया। सन् 1906 में वे धर्मपत्नि के साथ प्रवास पर थे। रतलाम में श्रीलालजी महाराज का व्याख्यान सुनने का मौका मिला। बालक ने तत्काल सांसारिक बंधनों से मुक्त होने का संकल्प कर लिया। घर भी नहीं लौटे। वहीं रहकर स्वाध्यायरत रहने लगे। अन्ततः झामूणियाँ ग्राम में आप स्थानक वासी सम्प्रदाय में दीक्षान्वित हुए। चन्द वर्षों में आप शास्त्र वाचन में निष्णात हो गये। उनके ओजस्वी एवं हृदयग्राही व्याख्यानों में समाज-सुधार, धर्मप्रेम एवं साहित्य अन्वेषण के प्रेरक तत्त्व समाहित रहते थे। गृहस्थ जैन विद्वान जोधपुर के श्री फूलचन्द्रजी के सान्निध्य में आपने सूक्ष्म एवं निष्पक्ष दृष्टि से शास्त्रों का परायण आरम्भ किया।

सन् 1914 में ओशिया ग्राम में आपकी भेंट तीर्थ उद्धारक योगिराज श्री रत्नविजय जी से हुई। मुनि रत्नविजयजी के प्रभाव से वे मूर्ति पूजा की ओर झुके। सन् 1915 में ओसिया में रत्नविजयजी से पुनः दीक्षा ली एवं मुनि ज्ञानसुन्दर नाम धारण कर जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रीसंघ का अंग बन गये। आपने गुरु महाराज की आज्ञा से ओसिया-समारम्भित पार्श्ववर्ती उपकेशगच्छ की क्रियाएँ धारण की। आपने ओसिया में जैन विद्यालय एवं जैन बोर्डिंग की स्थापना की। फलौदी में श्रावक वर्ग को प्रेरणा दे समाज की साहित्य रुचि के विकासार्थ आपने ''श्री रत्नाकर ज्ञान पुष्पमाला'' की स्थापना कर पुस्तकें प्रकाशन का शुभारम्भ किया। वहाँ जैन लाइब्रेरी की स्थापना हुई। सन् 1919 में ओसिया में ''श्री रत्नप्रभ सूरि ज्ञान भण्डार'' की स्थापना की—यहाँ हस्तलिखित एवं प्रकाशित पुस्तकों का संग्रह होने लगा। आपने मूल सूत्रों के हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित किये। हर वर्ष 4-5 पुस्तकों का सर्जन/प्रकाशन हजारों की संख्या में होने लगा। 'फलौदी' आपकी साहित्य उपासना का चर्चित धाम बन गया। आप प्रसिद्ध विद्वान्, इतिहासकार पं. गोरीशंकर ओझा से मिले। अनेक स्थानों पर ग्रंथागार स्थापित किये। सन् 1925 से ''जैन जाति महोदय'' नामक वृहद् ग्रंथ का संयोजन संकल्पित हुआ। सन् 1929 तक उसके 6 भाग प्रकाशित हुए। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य आपने इतना सुदृढ़ एवं विस्तीर्ण बना दिया कि ग्रंथ सभी जैन सम्प्रदायों में लोकप्रिय हुआ।

मारवाड़ आपके विहार का प्रमुख क्षेत्र रहा। ओशिया, फलोदी, लोहावट, नागौर, रूण, कुचेरा, खजवाणा, बीलाड़ा, पीपाड़ बीसलपुर, खारिया, सायरा, सादड़ी, लुणावा आदि स्थानों पर आपने जैन पाठशालाओं, जैन कन्याशालाओं, जैन लाइब्रेरी, जैन मित्रमंडल आदि संस्थाओं की एक लम्बी श्रृंखला निर्मित कर दी। ओसवाल जाति की उत्पत्ति एवं अभ्युदय को ''वीरात् 70 वर्षे'' का तर्कपूर्ण आधार देने का श्रेय मुनि ज्ञान सुन्दरजी को ही है। ओसवाल जाति के इतिहास को एक ठोस धरातल पर खड़ा करने का श्रेय भी उन्हीं को है। इससे पूर्व यति रामलालजी (महाराज वंश मुक्तावली, 1910) प्रभृति यतियों ने उपासरों में उपलब्ध विभिन्न गोत्रों की वंशावलियाँ संजोकर ओसवाल इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया था परन्तु गोत्रों की उत्पत्ति विषयक कथानकों में अतिशयोक्ति एवं कल्पनापूर्ण वैविध्य डालकर उन्हें बौद्धिक रूप से अग्राह्य बना दिया था। मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने विभिन्न गोत्रों की उत्पत्ति का वैज्ञानिक आधार ढूँढ़ा। उन्होंने पुरातत्त्व और इतिहास के समन्वय से अपने लेखन को प्रामाणिकता दी। कुल मिलाकर उन्होंने 171 पुस्तकें लिखी व सम्पादित की।

10. महात्मा भगवानदीन (1884-1962)

जन्म	:	अतरौली (अलीगढ़) 1882
पिताश्री	:	गंगारामजी मित्तल
ब्रह्मचर्य व्रत	:	1908
प्रमुख लेखन	:	सत्य की खोज, प्यारा प्रेम सलोना सच
दिवंगति	:	नागपुर, 1962

हजारों वर्षों से सत्य की खोज हो रही है। मेधावी दार्शनिक ऋषि मुनि एवं साधक सत्य की खोज में संलग्न रहे। किसी ने ईश्वर को ही सत्य कहा, किसी ने सत्य में ही ईश्वर देखा। प्रत्येक मनुष्य की अपनी अनुभूति है। एक के लिए जो सत्य है, वह दूसरे के लिए सत्य नहीं भी हो सक़ता है। मुश्किल तभी होती है, जब सत्य के लिए हमारा आग्रह प्रबल हो उठता है। इस द्वन्द्वात्मक भौतिक जगत में सत्य सापेक्ष ही है। पर अपने सत्य की प्रतिष्ठा के लिए हम दूसरे के सत्य को अपदस्थ करने के लिए लालायित हो उठते हैं। महात्मा भगवान निरन्तर सत्य की खोज में लगे रहे। उनकी निर्मल पारदर्शी दृष्टि ने असत्य के आग्रह से दूर रह जीवन सत्य के नाना रूपों में उद्‌भाषित किया।

महात्मा भगवान दीन का जन्म अलीगढ़ के समीप अंतरौली ग्राम में श्री गंगारामजी मित्तल की धर्मपत्नि की रत्नकुक्षि से सन् 1882 में हुआ।

महात्माजी जन्म से जैनी थे। उन्होंने 26 वर्ष की भरी जवानी में घर बार तजकर सन् 1911 में एक जैनगुरुकुल (ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम) हस्तिनापुर (मेरठ) में स्थापित किया था। लेकिन उस गुरुकुल को वे 6 वर्ष से अधिक नहीं चला सके, क्योंकि समाज जिस प्रकार के वातावरण, संस्कार तथा रीति-रिवाजों का हामी था, वह महात्माजी के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था। उन्होंने जैनधर्म और दूसरे धर्मों का जो अध्ययन

और जो अनुभव खुले दिल-दिमाग से किया था वह केवल शास्त्रीय या शाब्दिक नहीं था। मानवीय जीवन तथा प्राकृतिक वातावरण के आधार पर उन्होंने धर्म की छोटी-छोटी बातों को, मान्यताओं और सिद्धान्तों को जाँचा, परखा और तौला था। यही कारण है कि उन्हें त्यागों का भी त्याग करने में एक मिनट नहीं लगा। वे सातवीं प्रतिमाधारी और रस परित्यागी ब्रह्मचर्यव्रती थे। लेकिन जब उन्होंने ग्यारह प्रतिमाओं का यथार्थ विश्लेषण किया तो प्रतिमा त्याग दी। गुरुकुल के कार्यकाल में छात्रों के साथ जो अनुभव उन्हें हुआ उस पर उनकी दो पुस्तकें ''माता-पिताओं से'' तथा ''बालक सीखता कैसे है'' – महत्त्वपूर्ण हैं। अध्यापकों के लिए उन्होंने 'बालक अपनी प्रयोगशाला में' बहुत ही सुन्दर वैज्ञानिक विश्लेषण युक्त पुस्तक लिखी।

महात्माजी तप और त्याग की साक्षात मूर्ति थे। जैन समाज की सेवा के लिए उन्होंने स्टेशन मास्टर की नौकरी छोड़ दी। उनकी मूल वृत्ति साथक की थी। धर्म की प्यास इतनी उत्कट थी कि घर बार छोड़कर तीर्थों की यात्रा की, जंगल पहाड़ घूमे। साथ ही राष्ट्रीय प्रेम इतना प्रबल था कि आन्दोलन प्रारम्भ यानि सन् 1918 में ही ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया। सन् 1934 तक वे राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। जेल में उन्होंने बहुविध साहित्य की रचना की। राष्ट्रीय अध्याय के बाद जीवन का समन्वय युग प्रारम्भ हुआ जिसमें उन्होंने बालकोपयोगी साहित्य की रचना की। उनके लेख 'विश्ववाणी' एवं ''जैन संस्कृति'' में बराबर छपते रहे। उनकी रचनाएँ ''आत्म धर्मपरायणता'' से वेष्ठित रहती थी अत: उनमें क्रांति-स्पन्दन एवं स्थायित्व होता था। वे किसी भी काल खण्ड में निस्तेज नहीं होंगी। ''तत्त्वार्थ सूत्र' को वे आत्म दर्शन का मूलाधार कहते थे। ऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रम उसका मूर्त्तीमंत भाष्य कहा जा सकता है।

वे उस धर्म और दर्शन के विरोधी थे जो विज्ञान के साथ मेल नहीं खाता। विज्ञान निरन्तर प्रगतिशील है, उसका निरन्तर विकास होता रहता है और बीते दिन की खोज आज पिछड़ी, पुरानी और गलत हो

जाती है। वे कहते थे कि धर्म को भी विकासशील और निरंतर खोजमय होना चाहिए। आज का तथाकथित धर्म दुनिया में प्रगति नहीं कर रहा है, वह जीवन और जगत की समस्याओं को सुलझाने में विज्ञान के साथ कदम नहीं बढ़ा रहा है, स्थिर हो गया है। इसी कारण वह धर्म नहीं रह गया है—रूढ़ियाँ एवं थोथी परम्परा बन गया है। वहाँ बुद्धि कुंठित हो गई है।

रीति-रिवाजों के प्रति उनका दृष्टिकोण यह था कि लोग प्रत्येक रीति या परम्परा की असलियत को समझ लें, फिर उसे अपनाये रहें या त्याग दें। उनका निश्चित मत था कि हर रीति या परम्परा के पीछे कोई-न-कोई आवश्यकता या घटना होती है और वह या तो व्यक्तिगत होती है या सामाजिक होती है। बिना समझे-बूझे, मूल तक पहुँचे बिना किसी परम्परा को अपनाये रखना विकास में बाधक है। जैसे उन्होंने मंदिरों में, मूर्ति के आगे आरती करने की प्रथा को रूढ़िगत माना। एक समय ऐसा था जब मूर्तियाँ तलघर में या अंधेरे में रखी रहती थीं, उनकी रक्षा जरूरी थी। अत: दीपक जलाये रखा जाता था। पर एक जगह रखे रहने से मूर्ति का सर्वांगदर्शन नहीं हो पाता था। अत: दीपक हाथ में लेकर घुमाया जाने लगा। यह बन गया आरती का रूप। वह अखंड जलता रहे, अत: उसे धर्म-पुण्य का रूप मिल गया। फिर उसमें नृत्य आदि की कला जुड़ गयी। पर आज तो बिजली और प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था है। तब पुण्य के नाम पर अखंड दीपक में घी जलाने का क्या अर्थ है?

धर्म के साथ जैन, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख आदि के विशेषण उनकी दृष्टि में व्यर्थ हैं। बालकों को धर्म कैसे समझाया जाए? इस पर उनका मानना था कि धर्म तो पाँच व्रत ही हैं। इन पाँच व्रतों की ठीक-ठीक शिक्षा देना ही सच्चे धर्म की शिक्षा है। अहिंसा का सीधा-सरल अर्थ है—प्रेम, प्यार, स्नेह। प्रेम या प्यार के जितने पहलू हो सकते हैं—बच्चों को कथाओं के द्वारा सिखा दीजिये। उन्होंने अहिंसा और सत्य पर—''प्यारा प्रेम'' और सलोना सच'' नाम से 20-20 कहानियों की चार पुस्तकें लिख दीं, जो भारत जैन महामंडल वर्धा से प्रकाशित हुई। विशेषण या चिप्पी वाले धर्म को वे दूकानदारी समझते थे।

उनका संपूर्ण जीवन एक साधु की तरह ही बीता। लेकिन कभी उन्होंने अपने को त्यागी या साधु नहीं बताया। वे कहते थे कि असल में साधु तो वह है जिसे अपने साधु होने का पता तक नहीं चलता। उनकी इस परिभाषा के अनुसार विभिन्न धर्मों का लेबल लगाकर या लक्षण अपनाकर भ्रमण करने वाले साधु अपने-अपने ढंग की दूकानदारी चलाते हैं। उस दृष्टि से उनकी समाजसेवा परक 'ग्यारह प्रतिभाएँ' और 'सत्य की खोज' पुस्तकें अद्‌भुत हैं।

महात्माजी स्वतंत्र चिंतक और विचारक थे। कल्पना और शास्त्रीय ज्ञान के प्रवाह में न बहकर अनुभव के आधार पर अपनी बात कहते थे। उन्होंने न किसी का लिहाज किया, न ठाकुर सुहाती कही। उनके जैसे स्पष्टवादी, निर्भीक, प्रखर चिंतक, प्रभावशाली विचारक हमारे देश में मुश्किल से मिलेंगे।

सन् 1756 या 57 में वे नागपुर में स्व. पूनमचंदजी रांका के यहाँ अपनी विधवा पुत्रवधू तथा दो पौत्रों के साथ रहते थे और कहीं से कोई आर्थिक सहायता नहीं थी। तब श्री जमनालाल जैन एवं यशपालजी के प्रयास से उनको राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी के हाथों 25 हजार रुपयों की थैली अर्पित की गई तथा सर्वसेवा संघ प्रकाशन की ओर से उन्हें एक सौ पचास रुपये मासिक की सहायता देना शुरु किया गया। सर्वसेवा संघ, भारत जैन महामंडल, पूर्वोदय प्रकाशन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, भारतीय ज्ञानपीठ आदि से उनकी लगभग 30 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

वे प्रतिदिन सवेरे नागपुर में पूनमचंदजी रांका को एक विचार लिखते थे। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे ज्ञान को पैसे से नहीं तौलते थे। उन्होंने कभी नहीं पूछा कि उनकी कितनी किताबें छपीं, कहाँ छपी। लिखाइ और भूल गये। इस सन्दर्भ में वे गाँधीजी से भी आगे थे– निःसंग निर्मोही। गाँधीजी ने तो अपने लेखन के अधिकार नवजीवन ट्रस्ट को दे दिये, पर इन्होंने तो यही कहा कि 'जो चाहे छापे, मेरा कोई अधिकार नहीं'–यह बहुत बड़ी बात है। 80 वर्ष की आयु में नागपुर में उनका देहावसान हुआ।

11. आगमोद्धारक आचार्य घासीलाल (1884-1973)

जन्म : बनोल (मेवाड़), 1884
पिताश्री : कनीरामजी
माताश्री : विमला बाई
दीक्षा : 1901, जसवंतगढ़
पद/उपाधि : आचार्य, जैन दिवाकर (करांची)
दिवंगति : अहमदाबाद, 1973

समस्त जैनागमों एवं प्राचीनतम शास्त्रों का संस्कृत टीका सहित हिन्दी व गुजराती भाषाओं में रूपान्तरण कर प्रकाशित करने वाले साहित्य महारथी स्थानकवासी जैन समाज के अत्यंत उच्च कोटि के विद्वान् थे साहित्य मनीषी श्री घासीलालजी महाराज। इतने विशाल एवं उपयोगी साहित्य का निर्माण कर आपने ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया।

आपका जन्म राजपूतों की वीरभूमि मेवाड़ के ग्राम बनोल में सन् 1884 में खेतिहर कनीरामजी के घर माता विमला बाई की कुक्षि से हुआ। दादा परसरामजी की मिल्कीयत में अच्छी खासी जमीन थी। अत: सुखी परिवार था। हृदय के सरल थे। पवित्र आचार-विचार एवं धर्म परायणता के संस्कार बालक को विरासत में मिले। बालक का रंग उजला एवं मुख तेजस्वी था। ज्योतिषियों ने कुंडली देखकर बालक के उज्वल भविष्य की भविष्यवाणियाँ की। माता-पिता ने नामकरण किया घासीराम।

वे कभी पाठशाला नहीं गए। उनका शिक्षण प्रकृति की प्रयोगशाला में ही हुआ। प्रतिभाशाली तो वे थे ही। सहिष्णुता, उत्साह, संतोष, अनासक्ति, निर्भयता, निष्कपटता, स्वावलम्बन आदि नैसर्गिक गुणों की बदौलत बालक का विकास द्रुत गति से हुआ। पूर्व संस्कारों से बालक

एकांतप्रिय भी था। इस पर नियति ने उनके साहस की कठिन परीक्षा भी ली। दस वर्ष की उम्र में ही पिताजी का देहांत हो गया। दो वर्ष बाद माताजी का वियोग भी सहना पड़ा। विपत्तियों से महापुरुषों की प्रगति का मार्ग खुलता है। घासीलालजी के साथ भी ऐसा ही हुआ। तभी आचार्य जवाहरलालजी का संघ सहित निकट ग्राम में पदार्पण हुआ। बालक पर आचार्यजी के प्रवचन का अद्‌भुत प्रभाव हुआ। किसी जैन मुनि के प्रवचन-श्रवण का यह प्रथम अवसर था। तत्काल वे दीक्षा अंगीकार करने के लिए उतावले हो उठे। उनकी दृढ़ता देख आचार्यजी आश्वस्त हो गये। सन् 1901 में घासीलालजी जसवंतगढ़ में दीक्षित हुए।

गुरु के संग विहार करते हुए घासीलालजी ने शास्त्र अध्ययन के साथ कठोर तपश्चर्या जारी रखी। प्रथम चातुर्मास में ही उन्होने दशवैकालिक सूत्र कंठस्थ कर लिया। ज्ञानाभ्यास का यह क्रम निरंतर जारी रहा। वे आगम सिद्धांत, दर्शन, ज्योतिष में निष्णात हो गये। उनमें काव्यशक्ति भी मनोमुग्धकारी थे। जल्दी ही उनकी रचनाएँ श्रावकों में लोकप्रिय होने लगी। तदनन्तर उनके चातुर्मास दक्षिण प्रदेशों में हुए। सन् 1943 का चातुर्मास सौराष्ट्र में हुआ। सन् 1957 से लगातार सोलह चातुर्मासों का समय उन्होंने अहमदाबाद में स्थिर रहकर आगम शोध सम्पादन एवं अनुवाद करने में लगाया। इस भागीरथ प्रयत्न को आचार्य जवाहरलालजी का आशीर्वाद प्राप्त था। कुल 32 आगम ग्रंथों का व्यवस्थित प्रकाशन उनके जीवन की चरम उपलब्धि थी। ऐसा प्रयास जैन साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम हुआ। उनके इस उपकार से समाज धन्य हुआ। कोल्हापुर के महाराजा ने उन्हें ''राजपुरुष'' एवं ''शासनाचार्य'' के विरुद से विभूषित किया। करांची के जैन संघ ने मुनिश्री साहित्य-साधना एवं जीवन में त्याग की उत्कृष्टता के लिए उन्हें ''जैन दिवाकर'' एवं ''जैन आचार्य'' पदों से विभूषित किया। स्थानकवासी समाज इस महान् ज्योतिर्धर आचार्य के आलोक से गौरवान्वित हुआ। उनके विशाल रचित/सम्पादित साहित्य का संक्षिप्त विवरण निम्नत: है–

11 अंग –

1. आचार चिंतामणि (आचारांग सूत्र)
2. समयार्थ बोधिनी (सूत्रकृतांग)
3. सुव्याख्या (स्थानांग)
4. भाव बोधिनी (समवायांग)
5. प्रमेय चन्द्रिका (व्याख्या प्रज्ञप्ति)
6. अणगार धर्मामृत वर्षिणी (ज्ञाता धर्मकथा)
7. सागर धर्म संजीविनी (उपासक दशांग)
8. मुनि कुमुदचन्द्रिका (अन्तकृत दशांग)
9. अर्थबोधिनी टीका (अनुत्तरोप पातिक दशांग)
10. सुदर्शिनी टीका (प्रश्न व्याकरण)
11. विपाक चन्द्रिका (विपाक सूत्र)

12 उपांग –

12. पीयूष वर्षिणी (औपपातिक)
13. सुबोधिनी (राज प्रश्नीय)
14. प्रमेय द्योतिका (जीवानिगम)
15. प्रमेय बोधिनी (प्रज्ञापना)
16. सूर्यज्ञप्ति प्रकाशिका (सूर्य प्रज्ञप्ति)
17. चन्द्र प्रज्ञप्तिका (चन्द्र प्रज्ञप्ति)
18. प्रकाशिका व्याख्या (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति)
19. सुन्दर बोधिनी (निरयावलिका)
20. सुन्दर बोधिनी (पुष्पिका)
21. सुन्दर बोधिनी (पुष्प चूलिका)
22. सुन्दर बोधिनी (वृषिण दृशांग)
23. सुन्दर बोधिनी (कल्यावतंसिका)
24. प्रियदर्शिनी (उत्तराध्ययन)

मूल सूत्र –

25. आचारमणि मंजूषा (दशवैकालिक)

26. ज्ञानचन्द्रिका (नन्दीसूत्र)
27. अनुयोगचन्द्रिका (अनुयोगद्वार)

छंदसूत्र–

28. चूर्णिभाग्य अवचूरि (निशीथ)
29. चूर्णिभाग्य अवचूरि (वृहद् काव्य)
30. चूर्णिभाग्य अवचूरि (व्यवहार)
31. मुनिहर्षिणी टीका भाष्य (दशाश्रुत स्कंध)
32. मुनितोषिणी (आवश्यक सूत्र)

आगम साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने न्याय एवं व्याकरण के अनेक ग्रंथों की रचना की। शब्दकोष एवं काव्य ग्रंथ रचे। यह विपुल सर्जन उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का द्योतक है। उनकी नम्रता, सरलता एवं आत्मा की दिव्यता हर किसी को लुभा लेती थी।

इतने परिश्रम एवं अध्यवसाय का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ा। सन् 1972 में वे अस्वस्थ रहने लगे। सन् 1973 में जीवन के 88 वर्ष पूर्ण कर अहमदाबाद में उन्होंने महाप्रयाण किया।

12. पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय (1888-1976)

जन्म : रुपाहेली ग्राम (भीलवाड़ा) 1888
पिताश्री : बिरधीसिंह परमार
माताश्री : राजकुंवर
उपाधि : पद्मश्री
सृजन : सिंघी जैन ग्रंथमाला
दिवंगति : अहमदाबाद, 1976

पुरातत्त्वविद् एवं प्राच्य विद्या प्रेमियों में एक विश्व विश्रुत विराट विभूति थे-मुनि जिनविजय जी। भारतीय प्राचीन वांगमय के शोध सम्पादन एवं प्रकाशन में उनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। विलुप्त ग्रंथ भंडारों को खोज़ना, उनमें धूल चाट रहे ताड़पत्रीय/हस्तलिखित ग्रंथों को सूचिबद्ध करना, अपने निर्देशन में उन्हें व्याख्यायित करना एवं प्रामाणिकता से सम्पादित कर प्रकाशित करना उन्होंने अपना ध्येय बना लिया। सरस्वती के इस वरद् पुत्र ने भारतीय दर्शन एवं साहित्य को विदेशी विद्वानों तक पहुँचाकर उनकी अपरिमित्त श्रद्धा अर्जित की। समूचा जैन समाज ऐसे महान् मनीषी को पाकर धन्य हुआ।

राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के रूपाहेली ग्राम में सन् 1888 में परमार वंशीय क्षत्रिय कुल के श्री बिरधीसिंह की सहधर्मिणी श्रीमती राजकुँवर की कुक्षि से एक बालक ने जन्म लिया। नामकरण हुआ-किशनसिंह। इनके पूर्वजों ने सन् 1857 में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में खुलकर भाग लिया था, सरकार ने इनकी जायदादें जब्त कर ली थी एवं कई एक परिवारजनों को मार डाला गया। मुनिजी के पितामह कई वर्षों के अज्ञातवास के बाद रूपाहेली ग्राम लौटे। ग्राम के ठाकुर के ढ़ाढ़स बँधाने पर उन्होंने अपनी नई जिन्दगी शुरु की। मुनिजी के पिता ने जंगल विभाग में नौकरी कर ली। वृद्धावस्था

में उन्हें संग्रहणी रोग ने जकड़ लिया। जैन यति देवीहंस से उपचार करवाया। यतिजी ने बालक किशनसिंह की प्रतिभा को पहचाना। उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए बिरधीसिंह से कहा–''बालक को पढ़ाओ, यह तुम्हारे कुल का नाम उज्ज्वल करेगा।''

सन् 1898 में बिरधीसिंह काल कवलित हो गये। परिवार निराधार हो गया। बालक के पढ़ने की व्यवस्था खटाई में पड़ गई। यह देखकर यति देवीहंसजी ने बालक को अपने पास रख लिया। परन्तु थोड़े ही समय बाद यतिजी का भी देहांत हो गया। बालक की जीवन नैय्या फिर डावांडोल होने लगी। किशनसिंह के मन में ज्ञानार्जन की तीव्र लालसा थी। उसने यतिजी की खूब सेवा सुश्रुषा की थी। उससे यति समुदाय खूब परिचित था। एक अन्य यति गंभीरमलजी ने उनके अध्ययन की व्यवस्था करवा दी। दो-ढ़ाई वर्ष अध्ययन करने के बाद वे चित्तौड़ गये। वहाँ उनका सम्पर्क एक जैन स्थानकवासी साधु से हुआ। उनके साथ रहकर किशनसिंह भी साधु की तरह रहने लगे। उन्होंने जैन शास्त्रों का अध्ययन शुरु किया। पर उनकी जिज्ञासाओं का समाधान न हो पाया। मनोमंथन के बाद उन्होंने सम्प्रदाय छोड़ने की ठानी। एक रात उपाश्रय छोड़कर पैदल ही महाभिनिष्क्रमण पर निकल पड़े। उज्जयिनी के खंडहरों में शिप्रा नदी के तट पर उन्होंने साधु वेश का त्याग कर दिया। रतलाम व अन्य शहरों में विचरण करते अहमदाबार आ पहुँचे। यहाँ भी मन नहीं लगा तो पाली जा पहुँचे। वहाँ सुन्दर विजयजी नामक संवेगी साधु से भेंट हुई। किशनसिंह ने उनसे दीक्षा अंगीकार की एवं 'जिनविजय' नाम धारण किया। थोड़े समय बाद ब्यावर में उनकी भेंट प्रसिद्ध जैनाचार्य विजयवल्लभसूरि से हुई। उन्हें समाधान मिला। वे उनके संघ के अंग बन गए। शास्त्राध्ययन द्रुत गति से होने लगा। जैसे-जैसे जैन शास्त्रों में निष्णात हुए, उनकी रुचि इतिहास शोध की ओर झुकने लगी। राजस्थान के विहारों में उनका आकर्षण इस वीर प्रस्विनी भूमि में बढ़ता गया। पाटण के हस्तलिखित ग्रंथों एवं ताड़पत्रीय हस्तलिखित पांडुलिपियों की प्राचीनता और ऐतिहासिकता के अध्ययन में जिनविजयजी का मन रमता

गया। महेसाणा चातुर्मास में उनका परिचय प्रसिद्ध जैनाचार्य कांतिविजयजी एवं उनके प्रशिष्य पुण्यविजय जी से हुआ। सबों की प्रेरणा एवं सक्रिय सहयोग से ''श्री कांति विजय जैन इतिहास ग्रंथमाला'' का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके अंतर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन सम्भव हो सका। जिनविजय जी के शोध-प्रबंध गुजराती पत्रिकाओं, यथा–जैन हितैशी एवं मुंबई समाचार में प्रकाशित होने लगे। पाटण ग्रंथ भंडार से प्राप्त ''प्रसिद्ध वैयाकरण शाकटायन'' संबंधी विस्तृत आलेख और भंडार में प्राप्त ग्रंथों की विवरणिका प्रकाशित होने से जिनविजयजी ने हिन्दी जगत में ख्याति अर्जित की। बड़ोदरा प्रवास में उन्होंने 'कुमारपालप्रतिबोध' नामक वृहद् ग्रंथ का सम्पादन/प्रकाशन किया।

मुंबई प्रवास में मुनिश्री की प्रेरणा से पूना में भंडारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर की स्थापना हुई। मुनि जिनविजयजी पूना रहने लगे। यहाँ उन्होंने 'जैन साहित्य संशोधक समिति' की स्थापना की एवं ''जैन साहित्य संशोधक'' नामक शोध-पत्रिका एवं ग्रंथमाला का प्रकाशन शुरु किया। यहाँ उनका परिचय राष्ट्रीय नेता लोकमान्य तिलक एवं प्रसिद्ध क्रांतिकारी अर्जुनलाल सेठी से हुआ। उनके प्रभाव में मुनिजी के विचारों ने मोड़ लिया एवं मूर्तिपूजक साधुचर्या खटकने लगी। उन्होंने साधु जीवन की बंधन-कारा तोड़ने का संकल्प जाहिर किया। तभी महात्मा गाँधी ने उन्हें अहमदाबाद बुला लिया एवं विद्यापीठ में पुरातत्त्व मंदिर की स्थापना कर उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया। यह मुनि जिनविजयजी के जीवन का नया मोड़ था। लगभग आठ वर्ष के आचार्यकाल के दौरान उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण गंथों का प्रकाशन किया। गाँधीजी के प्रोत्साहन एवं प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हरमन जेकोबी के प्रेम भरे आग्रह से जिनविजयजी सन् 1928 में जर्मनी पधारे। वहाँ अपने डेढ़ वर्ष के प्रवास काल में उन्होंने बान, हैम्वर्ग एवं लिप जिंग विश्वविद्यालयों के प्राच्य विद्या विशारदों से महत्त्वपूर्ण विचारों का आदान-प्रदान किया। बर्लिन में भारत-जर्मन मित्रता के विकासार्थ 'हिन्दुस्तान हाउस' की स्थापना की जो कालांतर में आपसी सम्पर्क का उत्तम केन्द्र साबित हुआ।

मुनिजी सन् 1929 में स्वदेश लौटे। तभी गाँधीजी द्वारा विश्वविख्यात दांडी कूच एवं नमक सत्याग्रह का आह्वान हुआ। मुनिजी सक्रिय आन्दोलन में सहभागी रहे, जेल गये। जेल में उनका परिचय प्रसिद्ध गुजराती राजनेता एवं विद्या-उपासक श्री कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी से हुआ। मुनिजी जेल से छूटकर राविन्द्रनाथ ठाकुर के निमंत्रण पर शांति निकेतन गए। वहाँ उनकी भेंट कलकत्ता के प्रमुख जैन साहित्य अनुरागी श्री बहादुरसिंहजी सिंधी से हुई। परिणामत: शांति निकेतन के सान्निध्य में ही ''सिंधी जैन ग्रंथमाला'' का शुभारम्भ हुआ। मुनिजी का प्रथम सम्पादित ग्रथ ''प्रबंध चिंतामणि'' बहुत लोकप्रिय हुआ। शांति निकेतन में मुनिजी के सद्प्रयास से जैन छात्रावास की स्थापना हुई। श्री बहादुरसिंहजी सिंघी ने मुक्त हस्त इन प्रवृत्तियों की आर्थिक जिम्मेदारी ली। परन्तु बंगाल की जलवायु मुनिजी को रास न आने से तीन साल बाद मुनिजी मुंबई चले आए। यहाँ क.मा. मुन्शी के तीव्र अनुरोध पर उन्होंने 'भारतीय विद्याभवन' में शोध-कार्य निर्देशन का भार संभाला एवं सिंधी जैन ग्रंथामला का कार्य भी इससे संयुक्त कर लिया। इस बीच उन्होंने जैसलमेर ज्ञान भंडार के व्यवस्थापकों के निमंत्रण पर पांच महीने वहाँ रहकर लगभग 200 ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवाई एवं भारतीय विद्याभवन की तरफ से उनका सम्पादन/प्रकाशन करवाया। यहाँ मुनिजी ने अनेकों शोधार्थियों का पी.एच-डी. अध्ययनार्थ मार्ग निर्देशन किया।

आयु वार्धक्य के साथ मुनिजी की जीवन शैली में बड़े सार्थक परिवर्तन आए। उनका ध्यान कृषि, शरीरश्रम एवं स्वावलम्बन पर रहने लगा। सन् 1950 में उन्होंने चित्तौड़ के पास चंदेरिया ग्राम में ''सर्वोदय साधना आश्रम'' की स्थापना की। इस बीच 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' की योजना बनी एवं मुनिजी उसे समर्पित हो गए। सन् 1952 में उन्हें जर्मनी की विश्वविख्यात 'ओरियंटल सोसाईटी' की मानद सदस्यता अर्पित की गई। यह सम्मान विश्व के प्रमुख विद्वानों को ही प्राप्त हुआ है। सन् 1961 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' की उपाधि से सम्मानित किया। राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर के अंतर्गत मुनि जी ने इतिहास एवं

पुरातत्त्व विषयक अनेक हस्तलिखित व मुद्रित ग्रंथों का विशाल संग्रह किया एवं सन् 1959 में जोधपुर में एक नवीन भवन निर्माण करवाया। देश भर में यह संस्थान भारत विद्या एवं पुरातत्त्व का विशिष्ट केन्द्र बन गया। मुनिजी सन् 1967 तक इस केन्द्र के संचालक रहे।

तत्पश्चात् मुनिजी पुनः आचार्य हरिभद्रसूरि की साधना-स्थली चित्तौड़ चले आए। उन्होंने यहाँ दानवीर भामाशाह की स्मृति में 'भामाशा भारतीय भवन' के निर्माण करवाया। इधर मुनिजी 80 वर्षों के हो चले थे। शारीरिक श्रम से कमजोरी रहने लगी थी एवं आँखों की रोशनी भी मंद पड़ गई थी। फिर भी अंत तक उन्होंने भारतीय पुरातत्त्व जैन दर्शन एवं चित्तौड़ के प्राचीन गौरव के अध्ययन को अपनी उपासना का अंग बनाए रखा। सन् 1976 में चित्तौड़ में ही उनका देहावसान हुआ।

13. पूज्य कानजी स्वामी (1889-1980)

जन्म : उमराला (सौराष्ट्र), 1889

पितश्री : मोतीचन्द श्रीमाल

दीक्षा : 1913, उमराला

दिवंगति : 1980, सोनगढ़

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का जन्म सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में सन् 1889 में ओसवाल जातीय श्रीमाल (दसा) गोत्रीय श्री मोतीचन्द भाई के घर हुआ। उनका परिवार श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी सम्प्रदाय का अनुयायी था। कानजी को 12 वर्ष की अल्प वय में मातुश्री का वियोग हुआ एवं 16 वर्ष की वय में पिताश्री चल बसे। तब से वे पैतृक दुकान संभालने लगे। उन्हें नाटक देखने का बहुत शौक था। आध्यात्मिक नाटकों के वैराग्यपरक दृश्यों की गहरी छाप इस महान् आत्मा के वैराग्य का निमित्त बनी। उनका उदासीन जीवन एवं सरल अन्त:करण देखकर उनके सगे-सम्बन्धी उन्हें भगत कहते थे।

संवत् 1970 में बोटाद सम्प्रदाय के श्री हीराचन्दजी महाराज से कानजी स्वामी ने उमराला में दीक्षा ग्रहण की। चन्द वर्षों में ही अगम आगम अभ्यास कर डाला एवं स्थानकवासी सम्प्रदाय में सर्वत्र उनकी चारित्रिक सुवास फैल गई। वे साधु रूप में 'काठियावाड़के कोहिनूर' कहलाने लगे। संवत् 1978 में श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत 'समयसार' के दोहन से कानजी स्वामी के अन्तर्जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। वे वस्तु स्वभाव एवं निर्ग्रन्थ मार्ग के हामी हो गये, क्रियाकाण्ड एवं बाह्य व्रत नियम उनके लिए साधना की अपरिपक्वता के द्योतक बन गये। वेश एवं आचरण की इस विषम स्थिति से पार पाने हेतु उन्होंने संवत् 1992 में सोनगढ़ में स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्याग कर दिया। फलत: निन्दा की झड़ी लग गई। स्थानकवासी समाज में खलबली मच गई। किन्तु वे

काठियावाड़ी जैन समाज के हृदय में बसे हुए थे। साम्प्रदायिक व्यामोह एवं लौकिक भय छोड़कर सत्संगार्थी जनों का प्रवाह सोनगढ़ की ओर बढ़ता गया।

उनका कहना था कि जैन धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह तो वस्तु स्वभाव आत्मधर्म है। मूलत: आंतरिक एवं बाह्य दिगम्बरत्व के बिना कोई जीव मुनिपना और मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

कहते हैं संवत् 1994 में साधिका चम्पा बेन को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। संवत् 1995 में गुरुदेव के प्रवचन एवं निवास हेतु भक्तों ने सोनगढ़ में एक नवीन 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण करवाया एवं गुरुदेव ने 'समयसार' परमागम की मंगल प्रतिष्ठा करवाई। संवत् 1995 में 200 मुमुक्षुओं के संघ सहित गुरुदेव ने सिद्ध क्षेत्र शत्रुंजय तीर्थ की पावन यात्रा की। राजकोट चातुर्मास के पश्चात् गिरिराज गिरनार तीर्थ की यात्रा सम्पन्न कर गुरुदेव संवत् 1997 में सोनगढ़ लौटे। आपकी ही प्रेरणा से वहाँ सीमंधर भगवान के मन्दिर एवं समवशरण मन्दिर की स्थापना हुई। प्रतिष्ठा महोत्सव संवत् 1999 में सम्पन्न हुआ। सौराष्ट्र में दिगम्बर धर्म का नवसर्जन उन्हीं ने किया। इसी बीच विद्यार्थियों एवं गृहस्थों के लिए शिक्षण शिविर आयोजित हुए। इसी वर्ष सोनगढ़ में जैन युवकों के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम स्थापित किया गया। संवत् 2000 में 'आत्मधर्म' नामक गुजराती मासिक पत्र का प्रकाशन शुरु हुआ। सोनगढ़ आध्यात्म तीर्थ धाम बन गया। संवत् 2002 में इन्दौर के सर सेठ हुकुमचन्द आपकी आध्यात्मिक ख्याति सुनकर गुरुदेव के दर्शन हेतु सोनगढ़ आये एवं यहाँ आध्यात्म रसयुक्त वातावरण देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। संवत् 2003 में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद का वार्षिक अधिवेशन सोनगढ़ में बनारस के पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री की अध्यक्षता में हुआ। इसी वर्ष बांछिया ग्राम में दिगम्बर जैन मन्दिर का सर सेठ हुकमचन्द के शुभ हस्त से शिलारोपण हुआ। सं. 2005 में छह कुमारिका बहनों ने गुरुदेव के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। वे स्वात्मज्ञ चम्पा बहिन के सान्निध्य में जीवन को वैराग्य में ढ़ालने के लिए तत्पर हुई।

गुरुदेव ने विशाल मुमुक्षु संघ सहित संवत् 2013 से सं. 2020 के बीच पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण भारत के सकल जैन तीर्थों की यात्रा की। सं. 2013 में गुरुदेव ने लगभग 2000 भक्तों सहित श्री सम्मेद शिखर की तीर्थ यात्रा सम्पन्न की। सं. 2015 में सात सौ भक्तों सहित दक्षिण के कुन्दाद्रि मूडबिद्री, श्रवण बेल गोला, पोन्नूर आदि तीर्थों की मंगल यात्रा की। सं. 2020 में दूसरी बार दक्षिणी भारत एवं सं. 2023 में दूसरी बार सम्मेद शिखर की तर्थयात्राएँ सम्पन्न की। अनेक स्थानों पर मुमुक्षु मण्डलों की स्थापना हुई। नैरोबी में गुरुदेव के प्रयास से सनातन सत्य जैनधर्म का प्रचार हुआ। आत्म साक्षात्कार की झलक सम्प्रेषित करते हुए कानजी स्वामी ने उद्घोषणा की– 'बिना स्वानुभूति के सम्यग्दर्शन का प्रारम्भ ही नहीं होता।' रूढ़िग्रस्त सम्प्रदायवाद स्वामी जी की इस चुनौती का उत्तर न दे सका। अन्तिम क्षणों तक स्वानुभव-समृद्ध ज्ञान पीयूष जन-जन में वितरित करते हुए 91 वर्ष की उम्र में सं. 2037 (सन् 1980) में इस क्रान्तिद्रष्टा संत ने महाप्रयाण किया।

14. मरुधर केसरी मुनिश्री मिश्रीमल मधुकर (1891-1984)

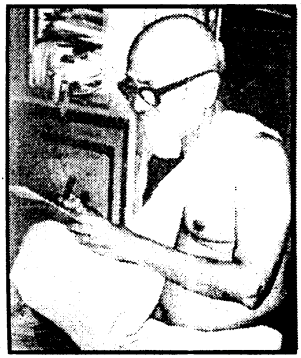

जन्म : पाली-मारवाड़, 1891
पिताश्री : शेषमल मेहता (सोलंकी)
माताश्री : केसरकुंवर बाई
दीक्षा : सोजत, 1918
दिवंगति : जैतारण, 1984

'मरुधर केसरी' के विरुद से विभूषित महाश्रमण मिश्रीमलजी मधुकर का जन्म सन् 1891 (श्रावण शुक्ला चतुर्दशी विक्रम संवत् 1948) में राजस्थान के पाली शहर में ओसवाल श्रेष्ठि शेषमलजी सोलंकी मेहता के घर धर्मपरायणा माता श्रीमती केसर कंवर की रत्न कुक्षि से हुआ। बड़े होकर बालक की रूचियाँ शास्त्राध्ययन से परिष्कृत हुई। इक्कीस वर्ष की वय में वैराग्य का अंकुर फूटा। सन् 1918 में परम श्रद्धेय स्वामी जी श्री बुधमलजी महाराज सा के करकमलों से सोजत सिटी में अक्षय तृतीया के पावन दिन मिश्रीमलजी ने जैन स्थानकवासी सम्प्रदाय में भगवती दीक्षा अंगीकार की। वे तत्काल जिनागम के अध्ययन में जुट गए। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं एवं गणित, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार आदि विषयों में महारत हासिल की। सन् 1918 में ही गुरु वियोगोपरांत मुनि मिश्रीलाल अपने धार्मिक एवं सामाजिक दायित्वों को निभाने के लिए सक्रिय हो गए।

आपकी प्रवचनशैली प्रभावकारी थी। जनमेदिनी आपके प्रवचन सुनने के लिए उमड़ पड़ती थी। वे भारतीय संस्कृति के दैदिप्यमान प्रकाश स्तम्भ थे। उन्होंने पाद विहार कर धर्म की प्रभावना तो की ही, साथ ही सामाजिक विकास एवं आत्मोन्नति के लिए विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों की आधारशिला रखी। उनकी सत्प्रेरणा एवं उपदेश से अनेक

सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना हुई, जिनमें शिक्षण संस्थाएँ, छात्रावास, पुस्तकालय, वाचनालय, साहित्य शोध संस्थान एवं गौशालाएँ प्रमुख थी। जो व्यवस्थित ढ़ंग से आज भी गतिशील हैं एवं समाज के उत्थान एवं विकास में संलग्न हैं। आपकी प्रेरणा से संचालित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्थान हैं–

1. श्री मरुधर केसरी उ.मा. विद्यालय, राणावास
2. श्री मरुधर केसरी जैन श्रमण विद्यापीठ, सोजत
3. श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल, सादड़ी
4. श्री एस.एस. मरुधर केसरी छात्रावास, जैतारण
5. श्री महावीर गौशाला, चंडावल
6. श्री आचार्य रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत
7. श्री आचार्य रघुनाथ पर्यूषण पर्व पारमार्थिक समिति, आरकोनम
8. श्री आचार्य रघुनाथ जैन चिकित्सालय, सोजत
9. श्री अखिल भारतीय मरुधर केसरी जैन पारमार्थिक संस्था, पुष्कर
10. श्री वर्द्धमान जैन छात्रावास, राणावास
11. श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर–जोधपुर

आपने विपुल साहित्य की रचना की। माँ सरस्वती का ग्रंथ-भंडार उनकी लगभग 180 रचनाओं (पाँच हजार पृष्ठों से भी अधिक) की प्रेरणादायक विचार सामग्री से लाभान्वित हुआ। गद्य-पद्य दोनों में साधिकार साहित्य रचना करने वाले वे तपोनिष्ठ मनस्वी थे। साहित्य की प्रत्येक विधा–महाकाव्य, मुक्त, निबंध, शोध-ग्रंथ, उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि का उपयोग कर उन्होंने अपने विचार जन-मानस के लिए सुग्राह्य बना दिये। उनकी रचनाओं में मुख्य हैं–

1. पांडव यशो रसायन (जैन महाभारत)
2. राम यशो रसायन (जैन रामायण)
3. कर्म ग्रंथ, भाग 6
4. पंच संग्रह भाग, 10
5. जैन धर्म में तप

6. श्री मरुधर केसरी ग्रंथावली, भाग 2
7. मिश्री काव्य कलोल, भाग 3

आपके प्रयत्नों से स्थानकवासी सम्प्रदाय ने बहुत विकास किया। आपकी प्रेरणा से साधना एवं आध्यात्मिक क्रियाओं की संचालना हेतु जैन स्थानकों का निर्माण हुआ, जिनमें मुख्य हैं–

1. आचार्य रुघनाथ स्मृति भवन, पाली
2. महावीर भवन (निम्बाज हवेली), जोधपुर
3. आचार्य रघुनाथ चतुर्दश चातुर्मास स्मृति भवन, मेड़ता सिटी
4. महावीर भवन, सादड़ी
5. जैन स्थानक, जैतारण
6. जैन स्थानक, आनंदपुर कालू
7. महावीर मंडप, सोजत रोड़

आप आचार-विचार में शुद्धता को बड़ा महत्त्व देते थे। साधुओं में शिथिलाचार न पनपे इस हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। श्रमण संघीय एकता हेतु संयोजित ऐसे साधु-सम्मेलनों में मुनि श्री की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही। आपके कुशल नेतृत्व और मार्गदर्शन में सफल हुए सम्मेलन हैं–

1. प्रांतीय साधु सम्मेलन, पाली, वि.सं. 1989
2. वृहत साधु सम्मेलन, अजमेर–वि.सं. 1990
3. सादड़ी साधु सम्मेलन–वि.सं. 2009
4. अधिकारी साधु सम्मेलन, सोजत–वि.सं. 2009
5. भीनासर साधु सम्मेलन–वि.सं. 2013
6. शिखर साधु सम्मेलन, अजमेर–वि.सं. 2020
7. प्रांतीय साधु सम्मेलन, सांडेराव, वि.सं. 2029

मुनि मिश्रीमलजी की धर्म एवं समाज सेवा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए सन् 1936 में उन्हें 'मरुधर-केसरी' के विरुद से विभूषित किया गया। वे सन् 1968 में संघ के प्रवर्तक पद पर आसीन हुए। सन् 1976 में उनकी महती सेवाओं का संघ ने सही आकलन करते हुए

उन्हें 'श्रमण-सूर्य' विरुद से विभूषित किया। मुनिश्री की शिष्य-प्रशिष्य श्रृंखला-सूचि बहुत लम्बी है। उसी की मणियाँ हैं—श्रमण संघीय सलाहकार उप-प्रवर्तक मुनि सुकनमलजी, कवि अमरमुनिजी, प्रवर्त्तक मुनि रूपचन्दजी आदि।

सन् 1984 में जैतारण प्रवास में आपने स्वेच्छापूर्वक चतुर्विध संघ की साक्षी से संथारा ग्रहण किया एवं मात्र दो घंटे बाद स्वर्गारोहण किया। 'जैतारण' जैन समाज का पावन तीर्थ-स्थल बन गया है। सन् 1987 में मुनिश्री की स्मृति को चिर स्मरणीय बनाने हेतु समाज ने ''श्री मरुधर केसरी स्थानकवासी जैन यादगार समिति ट्रस्ट'' की स्थापना की। वर्तमान में यह ट्रस्ट धर्म एवं समाज के विकासार्थ अनेक योजनाएँ क्रियान्वित कर रहा है।

15. आगम प्रभाकर मुनि पुण्य विजय (1895-1971)

जन्म : कापड़गंज (गुजरात) 1895
पिताश्री : डाह्या भाई दोशी
माताश्री : माणेक बहन
दीक्षा : 1908, पालीताना
दिवंगति : मुंबई, 1971

सत्योन्मुखी साधना से अपने जीवन को सच्चिदानन्दमय बनाने वाले मुनि पुण्य विजयजी धर्म एवं संस्कृति के ज्ञानोद्धारक रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। जैन साहित्य एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में उनका शोधपरक योगदान आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्पद है।

मुनि पुण्यविजयजी का जन्म वि.सं. 1952 कार्तिक शुक्ला पंचमी को कापड़गंज (गुजरात) में डाहया भाई दोशी के घर माता माणेक बहिन की कुक्षी से हुआ। आपका जन्म नाम मणिलाल था। परिवार की स्थिति सामान्य थी।

पिताजी बम्बई में थे। बालक मणिलाल छह मास का पालने में झूल रहा था–माँ नदी पर कपड़ा धोने के लिए गई हुई थी–कापड़गंज के मोहल्ला चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन मन्दिर में अचानक आग लग गई–डाह्याभाई का मकान भी जल कर भस्मीभूत हो गया–एक अदम्य साहसी व्यक्ति प्रज्वलित लपटों में, घर में घुसकर बालक मणिलाल को उठा लाया–बालक को अभयदान मिला और यही बालक आगे जाकर मुनि पुण्यविजय बना। ज्ञानपचंमी के दिन जन्म होने से 'ज्ञान' का सागर बना। इस घटना के बाद यह परिवार मुम्बई चला गया। पिता की मृत्यु हो गई। माँ ने मात्र 13 वर्ष वय के इस बालक को भगवान् महावीर के शासन को समर्पित कर दिया। छाणी (बड़ोदरा) में प्रवर्त्तक मुनि

कान्तिविजयजी ने वि.सं. 1965 माघ बदी 5 (गुजराती) के दिन बालक को दीक्षा देकर गुरु चतुरविजयजी का शिष्य बना दिया। इनका नाम मुनि पुण्यविजय रखा गया। माँ माणेक बहन मात्र दो दिनों के बाद स्वयं भी महावीर-शासन में दीक्षित होकर साध्वी रतनश्री बन गईं।

प्रगुरु मुनिश्री कांतिविजयजी और गुरु मुनिश्री चतुरविजयजी ने बाल मुनि पुण्यविजय को शास्त्रज्ञान पं. सुखलालजी जैसे विद्वानों से दिलाया। शास्त्रों के सम्पादन-संशोधन में रुचि होने के कारण बाल मुनि पुण्यविजय की दिशा बदल गई। पाटण में प्रगुरु ने वृद्धावस्था के कारण 10 चातुर्मास किये। मुनि पुण्य विजयजी ने पाटण के समस्त ज्ञान-भण्डारों का एकीकरण कर 'हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर' की स्थापना की और वहां सम्पादन-संशोधन का कार्य हो सके उसकी समुचित व्यवस्था कराई। डॉ. भोगीलाल सांडेसरा, श्री जगदीशचन्द्र जैन, विक्टोरिया म्यूजियम के डाइरेक्टर श्री शांतिलाल छगनलाल उपाध्याय जैसे विद्वान आपश्री के ही शिष्य थे। अनेक विदेशी विद्वानों, यथा—डॉ. बेंडर, डॉ. आल्सडोर्फ आदि को सम्पादन व संशोधन कार्यों में मार्ग निर्देशन दिया। वि.सं. 2017 में श्री महावीर जैन विद्यालय में आगम-साहित्य के संशोधन एवं सम्पादन का काम आपश्री की प्रेरणा से शुरु हुआ और कई आगम ग्रन्थ प्रकाशित कराये।

मुनिश्री ने अनवरत प्रयत्न से लींबड़ी, पाटण, खंभात, बड़ोदरा, भावनगर, पालीताणा, अहमदाबाद एवं सौराष्ट्र व राजस्थान के अनेक ग्रंथ भंडारों की खोज कर उन्हें व्यवस्थित किया एवं उपलब्ध पांडुलिपियों के केटेलॉग तैयार किए।

मुनि पुण्यविजयजी का मुख्य कार्य जैसलमेर के ज्ञान भण्डारों का जीर्णोद्धार, संशोधन, सम्पादन और व्यवस्था करना था। राजस्थान की भयंकर गर्मी में वि.सं. 2006-07 में डेढ़ वर्ष जैसलमेर प्रवास कर आपने यह अद्वितीय कार्य सम्पन्न किया, जिसे युगों-युगों तक याद किया जायेगा। मृत प्राय: ताड़पत्रीय एवं अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों को सन्जीवनी मिली। वे आगामी सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित रह सकेंगे। समस्त ज्ञान-

भण्डारों में उपलब्ध ग्रंथों की सूची बनाई। इस महान ज्ञान-यज्ञ की आहूति में सेठ कस्तूर भाई लाल भाई एवं श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरेंस, बम्बई का अपूर्व सहयोग था। पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व वल्लभी में हुई देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के मार्गदर्शन में आगम-सूत्रों की वाचना के बाद नई वाचना एवं टीका के साथ आगम सम्पादन का श्रेय मुनिजी को ही है। उनके द्वारा सम्पादित ''नंदी सूत्र'' की चूर्णि और टीका विद्वानों द्वारा बहुत प्रशंसित हुए।

मुनिजी समुदाय/गच्छ भेद से ऊपर थे। वि.सं. 2007 में बीकानेर चातुर्मास में खतरगच्छीय साधु मुनि विनयसागरजी को अपने पास रखकर उनको विद्वान-आगमज्ञाता बनाया। आपको पद का किंचित मात्र भी लोभ नहीं था। वि.सं. 2010 में बम्बई संघ और जैनाचार्य श्री विजयसमुद्रसूरि जी ने आपसे आचार्य पद स्वीकार करने का बहुत आग्रह किया, किंतु आपने स्वीकार नहीं किया। फिर भी बड़ौदा संघ ने आपको 'आगम प्रभाकर' पद से सम्मानित किया। वि.सं. 2029 में आचार्यश्री विजय़ समुद्रसूरिजी ने 'श्रुतशील वारिधि' पद से अलंकृत किया। अमेरिकन औरियंटल सोसाइटी ने अपनी मानद सदस्यता प्रदान कर मुनिजी का सम्मान किया।

आचार्यश्री विजयवल्लभसूरिजी की जन्म शताब्दी महोत्सव की सार्थक योजना बनाने के लिए बम्बई संघ की विनती पर आपको वि.सं. 2024 व 2026 के चातुर्मास बम्बई में ही करने पड़े। शताब्दी महोत्सव सम्पन्न होने के बाद आपकी अहमदाबाद की तरफ विहार करने की इच्छा थी—किंतु भवितव्यता कुछ और थी। यकायक तबीयत बिगड़ गई, बम्बई में ही वि.सं. 2027 जेठबदी 6 (गुजराती) ता. 14 जून, 1971 में सोमवार को रात्रि के 8.11 बजे आप स्वर्ग सिधार गये।

आपने अपनी दीक्षा-पर्याय के 62 चातुर्मास विभिन्न नगरों में विशेषकर गुजरात क्षेत्र में बिताए। राजस्थान में जैसलमेर और बीकानेर में दो ही चातुर्मास किये। आपने कुल 7 आगम ग्रन्थों एवं 37 विभिन्न ग्रन्थों का संपादन-प्रकाशन किया जिनकी सूची इस प्रकार है—

संपादित-प्रकाशिय ग्रन्थ

1. मुनि रामचन्द्रकृत–कौमुदी मित्रानन्द नाटक, सन् 1917
2. मुनि रामभद्रकृत–प्रबुद्ध रोहिणेय नाटक, सन् 1918
3. श्री मन्मेघप्रभाचार्य विरचित धर्माभ्युदय (छाया नाटक), वि.सं. 2018
4. गुरु तत्त्वविनिश्रय, वि.सं. 2024
5. उपाध्याय श्री यशोविजयकृत ऐन्द्रस्तुति चतुर्विंशतिका, 1928
6. वाचक संघदासगणि विरचित वसुदेव-हिंडि–1930-1931
7. कर्मग्रन्थ (भाग 1-2), सन् 1934-40
8. बृहत्कल्प सूत्र–निर्युक्ति भाष्य वृत्ति युक्त (भाग 1-6), सन् 1933-38 तथा 1942
9. भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला, सन् 1934
10. पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित जीत कल्पसूत्र स्वोप्रज्ञ भाष्य सहित सन् 1938
11. कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य प्रणीत सकलार्हत्स्तोत्र श्री कनककुशल गणि विरचित वृत्ति युक्त सन् 1942
12. श्री देवभद्रसूरि कृत कथा रत्नकोश सन् 1944
13. श्री उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदय महाकाव्य सन् 1949
14. कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य प्रणीत त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र महाकाव्य (पर्व 2, 3, 4), सन् 1410
15. जैसलमेर नी चित्र समृद्धि सन् 1941
16. कल्प सूत्र-निर्युक्ति, चूर्णि, टिप्पण, गुर्जर अनुवाद सहित, सन् 1942
17. अंग विजय सन् 1946
18. सोमेश्वर कृत कीर्ति कौमुदी तथा अरिसिंह कृत सुकृत संकीर्तन सन् 1961
19. सुकृत कीर्ति कल्लोलिन्यादि वस्तुपाल प्रशस्ति संग्रह, सन् 1961
20. सोमेश्वरकृत उल्लाघ राघव नाटक, सन् 1961
21. Discriptive catalogue of palm leaf MSS in the Shantinath Bhandar, Combay vol. I, II, 1961-1966.

22. Catalogue of Sanskrit and Prakrit MSS of L.D. Institute of Indology, Parts I-IV, 1963-1972.
23. श्री नेमीचन्द्राचार्यकृत आख्यानक मणिकोश आम्रदेवसूरिकृत वृत्ति सहित, सन् 1962
24. श्री हरिभद्रसूरिकृत योग शतक स्वोपज्ञ वृत्ति युक्तः तथा ब्रह्म सिद्धान्त समुच्चय 1964
25. सोमेश्वरकृत रामशतक, 1966
26. नन्दी सूत्र–चूर्णि सहित 1966
27. नन्दी सूत्र–विविध वृत्ति युक्त, 1966
28. आचार्य हेमचन्द्र कृत निघण्टु शेष, श्री वल्लभ गणिकृत टीका सहित, 1968
29. नन्दी सुतं अणुयोगदाराई, 1968
30. ज्ञानांजलि (दीक्षा षष्टि पूर्ति समारोह पर मुनि पुण्यविजयजी के लेखों का संग्रह), 1969
31. पन्नवणा सुत्त (प्रथम भाग), 1969
32. पन्नवणा सुत्त (द्वितीय भाग), 1971
33. जैसलमेर ज्ञान भण्डार सूचि पत्र, 1972
34. पत्तन ज्ञान भण्डार सूचि पत्र, भाग-1, 1973
35. दसकालीय सुत्त अगरत्तयसिंह चूर्णि सहित, 1973
36. सूत्र कृतांग चूर्णि, भाग-1, 1973
37. कवि रामचन्द्र नाटक संग्रह

मुनिजी द्वारा सम्पादित एवं श्री महावीर जैन विद्यालय द्वारा प्रकाशित आगम ग्रन्थ निम्न हैं–

1. नन्दि सुत्तं अणुओगद्वाराइ च
2. पण्णवण्णा सुत्तं, भाग-1
3 पण्णवण्णा सुत्तं, भाग-2
4. दसवैयलिंय सुतं उत्तरज्झयन्णाइ आवरस्स सुतं चः
5. पइण्णाय सुताइं, भाग-1
6. पइण्णाय सुताइं, भाग-2
7. पइण्णाय सुताइं, भाग-3

16. उपाध्याय श्री अमर मुनि (1902-1992)

जन्म : गोधाग्राम (हरियाणा), 1902
पिताश्री : लालसिंह
माताश्री : चमेली देवी
दीक्षा : 1917
उपाध्याय पद : 1972
दिवंगति : वैभार गिरि (राजगृह), 1992

उपाध्याय अमरमुनि जी जैसे व्यक्तित्व इतने विराट् और व्यापक होते हैं कि उनको व्याख्यायित करने के लिए शब्द भी कम पड़ते हैं, उपमाएँ भी ओछी लगती हैं, बुद्धि और कल्पना की उड़ान भी उनकी विराट् चैतन्य सत्ता को पकड़ नहीं पाती और वाणी उनकी अर्थवत्ता को यथार्थ व्यंजित नहीं कर सकती। मुनिजी की क्रान्तदर्शी शान्त दृष्टि, सत्यानुलक्षी वैज्ञानिक मेधा, कष्ट, विरोध और प्रतिरोधों के समक्ष अचंचल-अविचल हिमालयीय दृढ़ता, शाश्वत श्रेयोन्मुखी ध्येय के प्रति सर्वात्मना समर्पण भाव, धार्मिक उदारता, सहिष्णुता, सतत प्रसन्नता प्रफुल्लता प्रकट करने वाली सहज मुखमुद्रा और जीव-मात्र की कल्याण कामना लिए हृदय की निर्मलता मुमुक्षुओं का सदैव पथ प्रदर्शन करेगी।

हरियाणा राज्य के 'नारनौल' शहर के निकटवर्ती गोधा गाँव में एक सामान्य किसान-परिवार में 1 नवम्बर सन् 1902 के दिन एक बालक का जन्म हुआ। पिता लालसिंह जी एवं माता चमेली देवी ने अलक्षित भविष्य का अनुमान कर पुत्र का नामकरण किया—अमरसिंह। बड़ा होकर बालक अमरसिंह एक दिन नारनौल आया। वहाँ उसका स्थानकवासी जैन परम्परा के प्रभावशाली आचार्यश्री मोतीराम जी महाराज से सम्पर्क हुआ। आचार्यश्री ने तत्काल बालक के भीतर छिपी तेजस्विता को परख लिया। तभी लालसिंह जी ने कहा—''गुरु महाराज! यह आपके ही भक्त का कुल-दीपक है।''

आचार्यश्री जरा तल्खी से बोले—''मूर्ख! यह दीपक नहीं, सूर्य है। एक दिन यह समूचे संसार में सूर्य की तरह धर्म का प्रकाश करेगा। ला, इसे मुझे दे दे।'' पिता ने गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य किया। पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही बालक अमरसिंह, अमर मुनि के नाम से, पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्र जी महाराज के शिष्य-रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

अमरमुनि में ज्ञान की उत्कट पिपासा थी। उनकी मेधा उर्वर थी और तर्क-शक्ति प्रखर। जिज्ञासा के जीवित रूप थे वे। अध्यापक उनकी ग्रहण-शक्ति पर चकित थे और गुरुजन मुग्ध। ज्ञान-साधना के साथ ही उनकी काव्य-प्रतिभा में सहज चमत्कार था। आवाज बुलन्द और भाषण-शक्ति ओजस्वी। युवावस्था आते-आते अमरमुनि ने समूचे जैन-समाज की दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। आजादी की लहर ने उन्हें भी तरंगित किया और देश-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति, स्वतन्त्रता जैसे विषयों पर उनकी कविताओं ने धूम मचा दी। अंग्रेजी सरकार के दबाव में आकर पटियाला-नरेश ने उनके ओजस्वी एवं क्रान्तिकारी भाषणों व काव्यों पर प्रतिबन्ध लगाने का भी प्रयास किया परन्तु कविश्री अमरमुनि के अत्यन्त निर्भीक, सत्यनिष्ठ और तर्कशील विचारों के सामने उन्हें भी झुकना पड़ा। धीरे-धीरे आपकी भक्ति, प्रेम, उद्‌बोधन और जीवन-स्पर्शी कविताओं ने समूचे समाज को आकर्षित किया और लोग आपको 'कविजी' के आत्मीय सम्बोधन से पुकारने लगे।

मुनि जी का जीवन, प्राचीन ऋषि मुनियों एवं ओलिया फकीरों जैसा निरपेक्ष, निस्संग, मस्त और बेपरवाह था। पाषाण-प्राचीर की भाँति उनका सुदृढ़ स्वाधीन व्यक्तित्व जहाँ प्रतिकूल परिस्थिति व प्रतिरोधियों के लिए दुर्भेद्य रहा, वहीं साधारण जन के लिए कवि जी करुणा के मसीहा और सहृदयता के देवता बनकर उपस्थित रहते थे। ज्ञान, चरित्र, तर्क-साधना, अनुभव आदि के बल पर उनका व्यक्तित्व पूर्णतः स्वनिर्मित था।

वे जड़ता के विरोधी और चैतन्यता के पक्षधर थे। व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर वे सदा ही समाज, संघ और मानवता के हितों के

लिए संघर्ष करते और अन्त में उसे सार्थक परिणति देते। समाज का प्रबुद्ध वर्ग, युवा-मानस और कार्यकर्त्ता सदा अमरमुनि के आदर्शों का पुजारी रहा।

स्थानकवासी साधु-साध्वियों के जर्जर विशृंखलित समाज को 'श्रमणसंघ' के नाम से संगठित करने, आचार-विचार की दृष्टि से सुदृढ़ और सुव्यवस्थित करने, शिक्षा, साधना आदि की दृष्टि से गतिशीलता देने में उन्होंने अपनी युवावस्था के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्षों का योग दिया। सब कुछ करके भी वे उपाधियों व पदवियों से सदा निर्लिप्त रहे।

वे एक कुशल रचनाधर्मी थे। उनके प्रवचन, लेखन, काव्य, निबन्ध, विवेचन आदि विविध विषयानुसारी कृतियाँ लगभग सौ से भी अधिक हैं। विषय की दृष्टि से वे बहु-आयामी, उदात्त रसास्वादन की दृष्टि से रोचक, मार्गदर्शन की दृष्टि से प्रेरक, साधना की दृष्टि से अनुभूति-प्रधान, जीवन दृष्टि से सम्पन्न और समाज-निर्माण की दृष्टि से क्रान्तिकारी एवं युगनिर्माणकारी थे। मुनिजी की ज्ञान-गरिमा से अभिभूत होकर समाज ने उनको 'उपाध्याय' पद से अलंकृत किया। विश्वविद्यालयों ने उन्हें 'डी-लिट्' की सम्मानित उपाधि से मण्डित किया और भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने उनके राष्ट्रीय अवदानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए उन्हें 'राष्ट्रसन्त' के सम्मान की चादर ओढ़ायी।

ईसवी सन् 1962 में राजगृह-स्थित वैभारगिरि के शिखर पर सप्तवर्णी गुफा में उन्होंने चातुर्मास किया था। वहाँ मौन एवं ध्यान के साथ निरन्तर तप-आराधना का क्रम चलता रहा। सूर्य की अतापना भी लेते थे। दर्शक यह देखकर चकित थे कि एक महान् ज्ञानयोगी सन्त, इतना गहन ध्यान-तप-योग भी साधता है। आत्म-दर्शन की गम्भीर चर्चा करने वाला अध्यात्म-पुरुष, कठोर काय-क्लेश तप की आराधना में भी किसी से पीछे नहीं है। गुफा के आस-पास शेर, चीता आदि जंगली जानवरों के गर्जन तथा आवागमन के बीच भी वे निर्भय भाव से अपनी ध्यान-साधना करते रहे। मैत्रीभाव की दिव्य किरणों ने जैसे समग्र वातावरण को भयमुक्त और प्रेम-पूरित कर दिया था। उस साधना-काल में आपने ज्योतिःपुरुष तीर्थंकर महावीर के लोक-मंगलकारी सन्देश का अनुभव किया जो कभी इन पर्वत शृंखलाओं के आर-पार गूँजा था और जिसने जन-जन के भीतर अध्यात्म चेतना प्रस्फुरित की थी। अमर मुनि ने उन्हीं दिव्य पलों में उस दिव्य सन्देश को पुनः जन-जन तक पहुँचाने का एक वज्र संकल्प लिया। सच्ची आत्मनिष्ठा के साथ किया गया संकल्प कभी निष्फल नहीं होता। 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' – तपोनिरत ध्यानयोगी सन्त का वह शिव संकल्प मूर्तिमन्त हुआ, 'वीरायतन' के रूप में जहाँ सेवा, शिक्षा, साधना, संस्कार की चतुर्दिक् धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। मुनिजी की अन्तःस्फुरणा से निकला वह उद्बोधन-सन्देश आज निष्प्राण व्यक्ति में भी प्राणों का संचार कर रहा है।

निरन्तर साधना से उपाध्याय श्री का पार्थिव शरीर अस्वस्थ रहने लगा था। राजगृह की वैभारगिरि पर्वतश्रेणी एवं सप्तपर्णी गुफा से तादात्म्य उन्हें स्वास्थ्य लाभ हेतु कलकत्ता/बम्बई जाने के लिए भी विवश न कर सका। 1 जून, 1992 के दिन राष्ट्रसंत अमर मुनि भौतिक सीमाएँ लांघ महाप्रयाण कर गए।

राजगृह स्थित 'वीरायतन' उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों का प्रतीक है। प्रथम महिला जैन आचार्य चन्दनाजी ने गुरुदेव की ज्ञान सम्पदा को अक्षुण्ण ही नहीं रखा, उसे नई ऊँचाइयाँ दी हैं। पूना के पास स्थित 'नवल वीरायतन' इसका प्रमाण है।

17. आचार्य हस्तीमल (1910-1991)

जन्म	:	पींपाड़, 1910
पिताश्री	:	केवलचन्द बोहरा
माताश्री	:	रूपादेवी
दीक्षा	:	1920
आचार्य पद	:	1929
दिवंगति	:	1991

आध्यात्मिक जगत् को अपनी प्रभा से आलोकित करने वाले आत्म साधक आचार्य हस्तीमलजी का जन्म सं. 1967 में निम्बाज ठिकाने के पीपाड़ गाँव में बोहरा कुल श्रेष्ठि केवलचन्द जी के घर हुआ। आपने आधुनिकता एवं सुविधाओं की प्रचण्ड आँधी में भी उत्कृष्ट साध्वाचार का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। गर्भ से ही आपका जीवन विपदाओं एवं परिषहों के तूफान झेलने का आदी हो गया। जब वे गर्भ में ही थे पिता काल कवलित हो गये। सं. 1974 की महामारी प्लेग ने नाना गिरधारीलालजी मुणोत के समस्त परिवार को ही समाप्त कर दिया। इस वज्राघात से उबरे ही न थे कि तीव्र ज्वर से पीड़ित हो दादी चल बसीं। इस तरह आश्रयहीन बालक का माँ रूपा देवी की वात्सल्यमयी गोद ही सहारा बनी। पिता के अवसान से व्यवसाय चौपट हो गया, कर्ज डूब गया। पर इन विषम परिस्थितियों में भी माँ ने हिम्मत न हारी। वैराग्य के अंकुर माँ और बालक दोनों के ही हृदय में पनप चुके थे। आचार्य शोभाचन्द्र का पधारना हुआ। वे बालक की कुशाग्र बुद्धि वाक्पटुता एवं विनयशीलता देखकर अभिभूत हो गये। तत्काल अजमेर के रत्नवंशीय श्रावकों ने माता-पुत्र के शिक्षण-दीक्षण का प्रबंध किया। संस्कृत के विद्वान् पं. रामचन्द्र ने सं. 1976 के अजमेर चातुर्मास तक बालक हस्ती को प्रवज्या एवं श्रमणशील जीवन के लिए आवश्यक जैन शास्त्रों का

समुचित अध्ययन करवा दिया। सं. 1977 में मात्र 10 वर्ष की वय में आचार्य शोभाचन्द्र ने उन्हें भगवती दीक्षा अंगीकार करवाई।

आचार्यश्री अस्वस्थ थे। अतः उन्हें सं. 1979 से 1983 तक पाँच चातुर्मास जोधपुर में स्थिर वास करना पड़ा। इसी दरम्यान आचार्यश्री ने मुनि हस्तीमल को मात्र 15 वर्ष की वय में अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। संघनायक के प्रतिष्ठित पद पर इतनी छोटी वय में मनोनयन का जैन इतिहास में यह प्रथम उदाहरण था। सं. 1983 में आचार्य शोभाचन्द्र जी के महाप्रयाण के बाद चतुर्विध संघ के निवेदन पर मुनि हस्तीमल जी ने अपने पूर्ण वयस्क होने तक वयोवृद्ध मुनि सुजानमल जी को संघ व्यवस्थापक एवं मुनि भोजराज जी को परामर्श दाता नियुक्त करना उचित समझा। पाँच वर्ष की इस अवधि के दौरान मुनि हस्तीमल जी ने पं. दुखमोचन झा से संस्कृत, प्राकृत, न्याय, दर्शन आदि का संगोपांग अध्ययन सम्पन्न किया। सं. 1987 में जोधपुर में आप मात्र 19 वर्ष की किशोर वय में रत्नवँशीय श्रमण संघ के आचार्य पद पर सुशोभित हुए।

आपका पहला चातुर्मास जयपुर में हुआ। यहीं से आपने अनेक लोककल्याण मूलक प्रवृत्तियों की प्रेरणा दी। इनके संचालनार्थ विभिन्न संस्थाएँ संस्थापित हुईं, जिसके फलस्वरूप शिक्षण एवं धर्म क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। उन्होंने अपने शासनकाल में 70 चातुर्मास किये एवं भारत के सुदूर प्रदेशों, यथा–राजस्थान, मध्यप्रदेश, मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा की यात्राएँ कीं।

उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था, वे एक सम्पूर्ण युग थे। उनकी प्रेरणा से संस्थापित जैन विद्वत् परिषद में अन्य सम्प्रदायों के विद्वानों को भी सदस्य मनोनीत किया गया। वे सरलता, करुणा एवं माधुर्य की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने विपुल साहित्य सर्जन किया। आगमिक व्याख्या साहित्य एवं जैन इतिहास के क्षेत्र में आपका अवदान सदा स्मरणीय रहेगा। नन्दी सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, प्रश्न व्याकरण सूत्र, अन्तगउदसा पर टीकाएँ एवं उत्तराध्ययन दशवैकालिक सूत्रों के पद्यानुवाद एवं व्याख्याएँ

प्रकाशित कर आपने आगामिक रहस्यों को सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर दिया। जैन धर्म के मौलिक इतिहास के प्रथम दो खण्ड आपने स्वयं लिखे एवं अन्य दो खण्ड आपकी प्रेरणा से लिखे गये। पट्टावली प्रबन्ध संग्रह एवं आचार्य चरितावली आपकी अन्वेषी वृति के ही सुफल हैं। आपके आध्यात्मिक प्रवचन 'गजेन्द्रव्याख्यानमाला' के रूप में प्रकाशित हुए है। आपकी प्रवचन शैली कथात्मक थी, तत्त्वज्ञान भी बड़े सहज व सरल भाषा में उद्घाटित कर समझा देते थे। आचार्यश्री प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं हिन्दी के उद्भट कवि एवं विद्वान् थे। आप सूक्तियाँ, चरित्र एवं उपदेश छन्दबद्ध पद्यों में सहज ही अभिव्यक्त कर देते थे।

आपके शासनकाल में संतो की 31 एवं साध्वियों की 54 कुल 85 दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। सं. 2009 में सादड़ी श्रमण संघ सम्मेलन में आप प्रायश्चित्त एवं साहित्य शिक्षण निर्णायक एवं सहमन्त्री मनोनीत हुए। सं. 2013 से 2024 तक आप श्रमण संघ के उपाध्यक्ष रहे। पाली के अन्तिम चातुर्मास में आपका स्वास्थ्य गिरता गया। सं. 2048 के निमाज प्रवास में आपने तेले की तपस्या के बाद संथारा ग्रहण किया एवं 21 अप्रैल को 81 वर्ष की वय में समाधि मरण को उपलब्ध हुए। आपने रत्नवंश श्रमण परम्परा के अष्टम पट्ट पर आचार्यश्री हीराचन्द जी को मनोनीत किया।

18. प्रवर्तिनी साध्वी विचक्षणश्री (1912-1980)

जन्म : अमरावती, 1912
पिताश्री : मिश्रीमलजी मूथा
माताश्री : रूपा देवी
दीक्षा : 1924
पद : प्रवर्तिनी, 1967
दिवंगति : 1980

''जैन कोकिला'' के विरुद से सम्मानित विदुषी साध्वी विचक्षणश्री जी का जन्म ओसवाल श्रेष्ठि श्री मिश्रीमलजी मूथा की धर्मपत्नि रूपादेवी की कुक्षि से संवत् 1969 में हुआ। एक वर्ष पश्चात् ही पिता का देहांत हो गया। शोकाकुल परिवार में बड़ी होते-होते वैराग्य का बीज वपन हुआ। माता और पुत्री दोनों दीक्षित होने के लिए आतुर रहने लगी। दादाजी ने श्री पन्नालालजी मुणोत से सगाई तय कर दी। यही समय परीक्षा का था। आपने ससुराल से आए गहने पहनने से इन्कार कर दिया। निम्बाज के ठाकर ने आपकी खूब कड़ी परीक्षा ली एवं खरी उतरने पर दादाजी को मनाया। संवत् 1981 में आपकी दीक्षा बड़े आनन्द उत्साह से सम्पन्न हुई। आप महासती स्वर्ण श्री जी की शिष्या बनी। बड़ी दीक्षा के उपरांत महासती जतनश्री जी की शिष्या बनी।

आप बड़ी निर्भीक प्रकृति की थी। साध्वी जी की साधना का मूल मन्त्र स्वाध्याय था। वे अपने दैनंदिन क्रियाकलाप में बड़ी सावधानी से और निरंतर खोजती थी शरीर में उस अशरीरी को जो साधना की अंतिम मंजिल है। श्रीमद् देवचन्दजी, योगीराज आनन्दघनजी एवं चिदानन्दजी का उनकी आराधना पर बड़ा प्रभाव था। भगवती एवं उत्तराध्ययन सूत्रों के कथन उनके जीवन में रूपायित होते थे। वे क्रान्तदृष्टा थी। साध्वीश्री को न कोई सम्पदा, न पन्थ, न गच्छ, न कोई पूर्वाग्रह धूमिल या आच्छादित कर सका। वे एक निर्धूम दीप-शिखा सी आठों याम प्रज्वलित रही और समाज के रूढ, जीर्ण, जर्जर पंजर को रूपान्तरित करने में लगी रही।

शास्त्रों का वृहद् अध्ययन होने से आपकी वाणी श्रोताओं को मुग्ध कर लेती थी। तपा गच्छ के आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी ने आपको ''जैन कोकिला'' सम्बोधन दिया। आपने निरंतर भ्रमण कर धर्म की प्रभावना में अभूतपूर्व योग दिया। लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए आपका सान्निध्य सदा उपलब्ध रहता था। अमरावती एवं जयपुर में आपके सद्प्रयासों से सुवर्ण सेवा फण्ड स्थापित हुए जिनसे गरीब महिलाओं को अवदान दिया जाता है। इसी हेतु दिल्ली में श्री कल्याण केन्द्र की स्थापना करवाई। रतलाम में सुख सागर जैन गुरूकुल स्थापित करवानें का श्रेय भी आपको है। आपके हाथों पचासों दीक्षाऐं सम्पन्न हुई। आपने विपुल भजन साहित्य की रचना की। अंतिम समय में आपने साध्वी सज्जन श्री जी को प्रवर्तिनी पद देकर सन् 1980 के 18 अप्रैल की दोपहर महाप्रयाण किया।

19. योगीराज श्री सहजानन्द घन (1913-1970)

जन्म : डुमरा ग्राम (कच्छ), 1913
पिताश्री : नागजी परमार
माताश्री : नयना देवी
दीक्षा : 1934
दिवंगति : हम्पी (कर्नाटक), 1970

कुछ साधु एवं साधक आत्माभिमुख होकर परम्परा एवं साम्प्रदायिक बंधनों की केंचुली उतारकर अवधूत योगी बन जाते हैं। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे एकल बिहारी स्वच्छंद प्रक्रिया से गुजरकर उन्मुक्त पंछी की तरह साधनाकाश की अनन्त गहराई नापते हुए परम पद के लिए सचेष्ट रहते हैं। ऐसे ही आध्यात्म योगी सहजानंदघन थे।

कच्छ प्रांत के डुमरा ग्राम में ओसवाल बीसा परमार गोत्रीय श्रावक नागजी भाई निवास करते थे। उनकी धर्मपत्नि नयना देवी की कुक्षि से सन् 1913 में मूल नक्षत्रीय एक पुत्र का जन्म हुआ। नामकरण हुआ- मूलजी। बालक के धार्मिक संस्कार बचपन से उजागर होने लगे। उसने यति रविसागरजी से धर्म शिक्षा ग्रहण की। मात्र 12 वर्ष की अल्प वय में उनकी सगाई बहन मेघ बाई की नणद से कर दी गई। मूलजी के मन में वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे थे। इसलिए उन्होंने विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। वे माता-पिता को आर्थिक कठिनाइयों से छुड़ाने के लिए जीविकोपार्जन हेतु पढ़ाई को तिलांजलि देकर बम्बई चले गए। वहाँ भरत बाजार में पुनसी मोनसी की पेढ़ी में गोदाम का कार्यभार सम्भालने लगे।

इसी दरम्यान एक नारी के क्रोधानल को देखकर मूलजी भाई के मन में एकांत ध्यान एवं कायोत्सर्ग करने की प्रेरणा हुई। इस आत्यंतिक कदम से सभी सहम उठे। घर वालों के अनुनय-विनय से वे खरतरगच्छीय गणिवर्य श्री रत्न मुनिजी के हाथों सन् 1934 में दीक्षित

हुए। नया नामकरण हुआ भद्रमुनि। बड़े परिश्रम से उन्होंने स्वाध्याय प्रारम्भ किया। अध्ययन ओर विहार में बारह वर्ष बीत गए। बम्बई चतुर्मास में उनकी भेंट एक ज्योतिषी से हुई। ज्योतिषी ने उनकी जन्म-पत्रिका देखकर उनके ''समाधि प्राप्ति'' की भविष्यवाणी कर दी। आगामी सूरत चातुर्मास में वेदनीय कर्मों के उदय से उनका शरीर काष्ठ की तरह जकड़ गया।

बारह वर्ष के स्वाध्याय तप के अन्तर्गत अन्यान्य भारतीय दर्शनों के अलावा भद्रमुनि ने श्रीमद् राजचन्द्र के तमाम साहित्य का अध्ययन किया। वे उनके साथ अपने पूर्व जन्म के सम्बंधों का अवगाहन करने लगे। तभी उनके अन्तर्मन में फिर एकान्तिक ध्यान साधना की प्रेरणा हुई। वे मौन रहने लगे एवं भगवान महावीर की तरह ही जंगल और गुफा में रहकर ध्यान साधना के अवकाश खोजने लगे। उन्होंने अपने दीक्षा गुरु की आज्ञा ली और आत्मदोहन के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चल पड़े। उन्होंने महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं उत्तरप्रदेश के अंचलों में विहार किया। वे माउंट कैलाश (अष्टापद) भी पधारे। किन्तु साम्प्रदायिक घेराबन्दी से वे कोसों दूर रहे। वे श्रमण संघ में व्याप्त शिथिलाचार एवं बाड़ाबन्दी से दुःखी थे। उन्होंने स्वयं अनेक परिषह सहकर अपना जीवन-पथ प्रशस्त किया। वे हिमालय की कन्दराओं में योग-साधना रत रहने लगे। उनकी करुणा का कोई पार नहीं था। एक अन्य योगी को ठिठुरता देखकर उन्होंने अपना नया कम्बल उन्हें ही समर्पित कर दिया।

समस्त तीर्थों के भ्रमणोपरांत उन्होंने स्वयं ही ''सहजानन्दघन'' नाम धारण किया। उनके लिए समस्त दिगम्बर/श्वेताम्बर भेदों का लोप हो गया। गुफा एवं कन्दराओं में साधना का यह क्रम निरन्तर चला। उन्होंने ''सरला बहन'' नामक स्नातकोत्तर डाक्टरेट डिग्री धारी मुमुक्षु साधिका की सहायता की, जो अपने प्रेरक ईष्ट श्रीमद् राजचन्द्र की निर्वाण प्राप्त आत्मा के दर्शनोपरान्त सम्पूर्ण जागृति में समाधि मृत्यु को उपलब्ध हुई। कहते हैं सरला बहन की आत्मा सहजानन्दजी की चाची

''माता धनदेवी'' की आत्म समाधि में प्रेरक बनी। ''माताजी धन देवी'' तदनन्तर हम्पी जो कभी रामायणकालीन बाली-सुग्रीव की राजधानी किष्किंधा नगरी रही थी एवं जहाँ सहजानन्दजी ने अपने आराध्य श्रीमद् राजचन्द्र की स्मृति में आश्रम की स्थापना की, उस आश्रम की अधिकारिणी बनी। कहते हैं सन् 1961 में बोरड़ी नगर में सीमंधर स्वामी के आदेश से दादा जिनदत्त सूरि ने ''सहजानन्दजी'' को ''युग प्रधान'' पद से अलंकृत किया।

सन् 1970 में सहजानन्दजी ने दक्षिणी भारत की यात्रा की। इस बीच उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया। उन्हें भगन्दर ने परेशान कर दिया। हम्पी में समाधि मे ही 57 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ। उनके रचित ग्रंथों मैं उल्लेखनीय है–''अनुभूति की आवाज, आनन्दधन चौबीसी, समयसार, आत्मसिद्धि शास्त्र, सहजानन्द सुधा, तत्त्व विज्ञान आदि। उनके पत्र-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं–''सहजानन्द विलास'' एवं ''पत्र सुधा''।

20. आचार्य तुलसी गणि (1914-1997)

जन्म	:	लाडनूँ, 1914
पिताश्री	:	झूमरमल खटेड़
माताश्री	:	बदनाजी (साध्वी)
दीक्षा	:	1925
आचार्य पद	:	1936
दिवंगति	:	1997, गंगाशहर

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम आचार्य तुलसीगणि ने अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात कर भारत व्यापी ख्याति अर्जित की। आपका जन्म वि.सं. 1971 में लाडनूँ के ओसवाल वंशीय खटेड़ गोत्रीय सेठ श्री झूमरमलजी के घर में हुआ। पिता का साया अल्प वय में ही उठ गया। आपकी माता बदना जी बड़ी सरल हृदया थीं। वि.सं. 1982 में आप भगिनी लाडां जी के साथ आचार्य कालूगणि के हाथों दीक्षित हुए। इनके ज्येष्ठ भ्राता चम्पालाल जी पहले ही दीक्षित हो चुके थे। माता बदनाजी बाद में दीक्षित हुईं। ग्यारह वर्षीय संत तुलसी की कालूगणि के निजी संरक्षण में शिक्षा प्रारम्भ हुई। ग्यारहवें वर्ष में आपने बीस हजार पद्य प्रमाण श्लोक कंठस्थ कर अपनी मेधा से सबको चमत्कृत कर दिया। शुरु से ही कालूगणि ने संघ का दायित्व संभालने के लिए उन्हें तैयार करना प्रारम्भ कर दिया था।

तुलसी गणि ने 22 वर्ष की आयु में (वि.सं. 1993) आचार्य पदारूढ़ हो तेरापंथ धर्मसंघ का शासन भार संभाला। साध्वियों की शिक्षा का नया कीर्तिमान आपके शासनकाल की उपलब्धि है। इस दौरान पं. रघुनन्दनजी की उल्लेखनीय सेवाएँ संघ को उपलब्ध रहीं। आचार्यश्री कवि, साहित्यकार एवं चतुर शासन संचालक थे। आपने स्वयं न्याय एवं योग विषयक मौलिक रचनाएँ की हैं तथा आपके नेतृत्व में श्रमण संघ ने विपुल साहित्य सृजन किया है। आपके सान्निध्य में महाप्रज्ञ

मुनि नथमल जी ने आगम ग्रन्थों का सम्पादन कर जैन धर्म की महती सेवा की है।

वि.सं. 2005 में आपने अणुव्रत अभियान प्रारम्भ किया, जिसकी भारत के राजनेताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। आपके शासनकाल में श्रमण संघ का विहार क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। आपने श्रमण-श्रमणियों की ***लगभग 780*** दीक्षाएँ सम्पन्न की। किसी भी जैनाचार्य ने सम्भवत: इतनी दीक्षाएँ नहीं दीं। यह एक कीर्तिमान है। आपने ''समय-समणी'' दीक्षा प्रारम्भ कर सन्यास की नई श्रेणी का सूत्रपात किया।

आचार्य तुलसी ने भारतव्यापी पदयात्रा की। सुदूर दक्षिण के कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल प्रदेशों में आचार्य के पाद विहार एवं एक लाख किलोमीटर की यात्रा का संघ में प्रथम अवसर था। साधु, साध्वियों के असम, सिक्किम, गोवा, कश्मीर, पांडिचेरी एवं विदेशों—नेपाल, भूटान विचरण का भी यह प्रथम अवसर था। सं. 2017 में 'नई मोड़' का आह्वान कर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पर्दा प्रथा, मृत्युभोज, रूढ़िरूप में मृतक के पीछे रोना, विधवाओं का काले वस्त्र पहनना आदि कुरीतियों के उन्मूलन में आप प्रेरणास्रोत बने। सं. 2028 में बीदासर में आपको संघ द्वारा 'युगप्रधान' आचार्य के रूप में सम्मानित किया गया। सं. 2035 में आपने मुनि नथमलजी को युवाचार्य घोषित किया एवं 'महाप्रज्ञ' की पदवी से अलंकृत किया। आप द्वारा संस्थापित लाडनूँ में जैन विश्वभारती एवं तुलसी आध्यात्म नीड़म समाज को युगों तक अध्यात्म पोषण देती रहेगी। आपके सान्निध्य में प्रेक्षाध्यान की अभिनव शुरुआत से साधना क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई है। लाडनूँ में सं. 2037 में समण-समणी दीक्षा' की क्रान्तिकारी शुरुआत से धर्म के विकास को नई दिशा और विदेशों में धर्म-प्रचार को नये आयाम मिले हैं। आपके शासन के 50 वर्ष पूरे होने पर लाडनूँ में अमृत महोत्सव का अपूर्व कार्यक्रम हुआ।

यौगिक क्रियाओं में आपकी रुचि शुरु सै थी। 'आदमी की तलाश' ग्रंथ के लेखक श्री कन्हैयालाल फूलफगर के अनुसर ''आचार्य तुलसी ने

दिगम्बर साधना भी की।'' एक श्वेताम्बर जैन आचार्य का नग्न तांत्रिक साधना करने का साहस उनके क्रांतिद्रष्टा होने का पर्याप्त सबूत है।

आपके शासनकाल में तपस्या के भी अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए। साध्वी राजकुमारी जी (नोहर) ने 14 वर्षों का मौन व्रत, मुनि वृद्धिचन्द जी ने गुणरत्न संवत्सर, मुनि सुखलाल जी ने भद्रोत्तर तप एवं साध्वी भूरा जी ने महा भद्रोत्तर तप किये। मुनि सुखलालजी ने 6 महीने का रोमांचकारी जल परिहार तप किया। श्राविका कलादेवी ने 121 दिन की तपस्या की एवं मनोहरी देवी आंचलिया ने 30 बार महीने-महीने की तपस्या की। संतों में चित्रकला, शिल्पकला, रंग-रोगन, सिलाई आदि का विकास हुआ। संघ में सूक्ष्म लिपि लेखन के कीर्तिमान स्थापित हुए। साहित्य सुरक्षा हेतु पेटियों एवं चश्मों, लेंस, जलघड़ी आदि आवश्यक वस्तुओं का निर्माण हुआ। आपके संरक्षण में साुध-साध्वी शतावधानी एवं सहस्त्रावधनी हुए। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी, तमिल, कन्नड़, बंगला आदि भाषाओं के प्रवक्ता, अध्येता एवं कवि हुए। आगमों का सम्पादन एवं समीक्षाएँ हुईं। आचार्य भिक्षु एवं जयाचार्य के साहित्य का सम्पादन प्रकाशन हुआ। मुमुक्षु बहनों के स्वाध्यायार्थ सं. 2005 में पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्थापना हुई। सं. 2052 की समग्र जैन श्रमण सूचि के अनुसार आपके अनुशासन में 146 संत एवं 545 सती साधनरत हैं।

आपके शासन काल में अंतरंग एवं बाह्य विरोध भी कम नहीं हुए। सं. 2012 में मुनि रंगलालजी प्रभृति 15 संत, 2030-32 में मुनि नगराज जी, मुनि महेन्द्र कुमार जी प्रभृति संत, सं. 2038 में मुनि धनराज जी, मुनि चन्दनमल जी, मुनि रूपचन्द जी प्रभृति संत संघ से अलग हुए। सं. 2006 में जयपुर में बाल दीक्षा विरोध, 2016 में कलकत्ता में मलमूत्र प्रकरण एवं सं. 2027 में रायपुर एवं सं. 2029 में चूरू में आप द्वारा रचित ''अग्निपरीक्षा'' को लेकर विरोध हुआ।

इनके बावजूद आपका शासनकाल सफलताओं की एक लम्बी सूचि सँजोए है। धर्म संघ ने आपको युगप्रधान पद से विभूषित तो किया

ही, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ने आपको भारत ज्योति अलंकरण से सम्मानित किया। संवत् 2052 में आपको 'हकीम खाँ सूर' सम्मान से अलंकृत किया गया। राष्ट्रीय एकता के लिए आपके प्रयासों के आभार स्वरूप सं. 2053 में उन्हें ''इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया। पंजाब के राजीव-लोगोंवाल ऐतिहासिक समझौते के मूल में आचार्यश्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आपकी प्रेरणा से संस्थापित ''जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय'' Deemed University घोषित हो चुका है। अपने जीवनकाल में ही सं. 2051 में आपने मुनि नथमलजी को तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। सं. 2054 (सन् 1997, 23 जून) में गंगाशहर में आपने ''नश्वर'' देह त्याग कर महाप्रयाण किया।

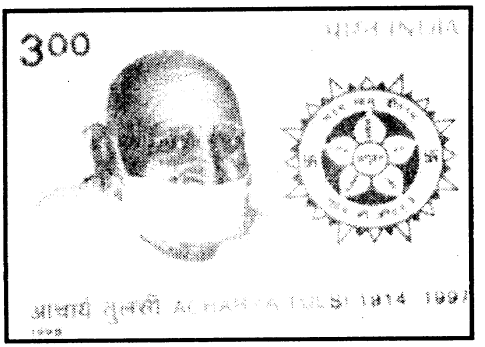

21. आचार्य आनन्द ऋषि (1900-1992)

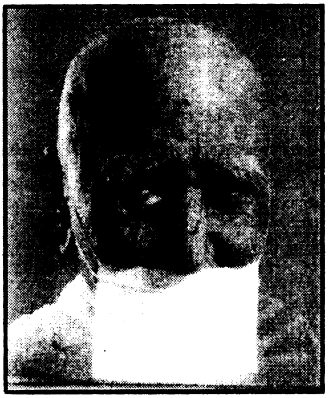

जन्म	:	चिंचोड़ी ग्राम (अहमदनगर), 1990
पिताश्री	:	देवीचन्द गुगलिया
माताश्री	:	हुलासा बाई
दीक्षा	:	ग्राम भिरी, 1913
आचार्य पद	:	अजमेर, 1963
दिवंगति	:	अहमदाबाद, 1992

युग पुरुष का जीवन नदी की तरह होता है। नदी का उद्‌गम स्रोत पतली धार के समान होता है, धार जैसे-जैसे गति करती है, अन्य स्रोत उसमें आ मिलते हैं और आगे चलकर विशाल रूप धारण कर लेता है। युग पुरुष भी प्रारम्भ में लघु, फिर विराट से विराटतर होता चलता है। उसका चिंतन युग का चिंतन हो जाता है। इसीलिए युग का प्रतिनिधित्व करने से ही वे युग पुरुष कहलाते हैं। आचार्य आनन्द ऋषि मूर्तिमंत युग पुरुष थे। वे जैन जगत की विमल विभूति थे, जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र थे। उनका जीवन कमल की तरह निर्लेप, शंख की तरह शुभ्र एवं कुन्दन की तरह निर्मल था। उन्होंने समाज में नया विचार, नई वाणी एवं नया कर्म संचरित किया।

महाराष्ट्र योद्धाओं एवं संतों की वीर भूमि रही है। संत ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास ने इसी कोख से जन्म लिया। इसी संत परम्परा की देन थे आचार्य आनन्द ऋषि। अहमद नगर के चिंचोड़ी ग्राम में धर्मनिष्ठ श्रावक श्री देवीचन्द जी गुगलिया की सहधर्मणी हुलासाबाई की कुक्षि से सन् 1900 में एक बालक ने जन्म लिया। गौर वर्ण एवं फूल की तरह खिला हुआ चेहरा। नामकरण हुआ—नेमीचन्द। बड़े होकर बालक के बाल सुलभ गुणों के साथ उसकी विलक्षण बुद्धि, वाणी-मिठास और अच्छी स्मरण शक्ति से सभी आत्मीय स्वजन प्रसन्न थे। उसकी

मधुर सुरीली आवाज से भक्ति गीत सुनने के लिए ग्रामीण जनता आतुर रहती। बचपन में ही पिता की मृत्यु से बालक पर वज्राघात हुआ। तभी स्थानकवासी जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के रत्नऋषि जी महाराज का आगमन हुआ। जैन व जैनेतर लोग प्रवचन सुनने के लिए उमड़ पड़े। नेमीचन्द भी पहुँच गया। प्रवचन सुनकर वह भाव-विभोर हो गया। माँ की आज्ञा से उसने प्रतिक्रमण सीखना प्रारम्भ किया। रत्नऋषिजी बालक की नम्रता एवं प्रतिभा देख चकित थे। हीरे की परख जौहरी ही कर सकते हैं। उन्होंने पूरी शक्ति लगा दी। नेमीचन्द भी गुरुदेव के प्रति पूर्णत: समर्पित था। वैराग्य के बीज अंकुरित हुए। गुरुदेव ने माता को 'नेमीचन्द' को जिन शासन को समर्पित कर देने की प्रेरणा दी। सन् 1913 में मिरी ग्राम में रत्न ऋषि जी के सान्निध्य में नेमीचन्द दीक्षा अंगीकार कर 'आनन्द ऋषि' बन गए।

तदुपरान्त आनन्द ऋषि जी संयम-आराधना में तन्मय हो गये। थोड़े ही दिनों में वे आगम हृदयंगम कर व्याकरण, न्याय, साहित्य एवं संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में निष्णात हो गए। महाराष्ट्र के ग्रामीण अंचलों में अबाध गति से ज्ञान प्रसार होने लगा। वे व्यसन, अंध-विश्वास, रूढ़ियाँ छोड़ देने के लिए जनता को प्रेरणा देते।

सन् 1906 में सौराष्ट्र के मोरवी नगर में सम्पूर्ण जैन समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस की स्थापना की गई।

आपके अमृत महोत्सव के अवसर पर महाराष्ट्र शासन द्वारा आपको राष्ट्रसंत के विरुद से सम्मानित किया गया। दिल्ली जैन महासंघ ने आचार्य श्री को 'जैन धर्म दिवाकर' की उपाधि से अलंकृत कयिा। पंजाब जैन महासंघ की ओर से उन्हें 'आचार्य सम्राट' पद से विभूषित किया गया।

आपने देखा कि स्थानकवासी समाज में अलग-अलग अनेक सम्प्रदाय थे, सभी एक-दूसरे की काट करते, अपने को ऊँचा व श्रेष्ठ मानते थे। श्रावक भी बंट गए थे। कोई रचनात्मक कार्य नहीं हो रहा था। अत: विचार पूर्व सर्व सम्मति से स्थानकवासी सम्प्रदाय के पाँच

उप-सम्प्रदायों का विलिनीकरण कर 'वर्धमान श्रमण संघ' का गठन हुआ। उसमें सर्व-सम्मति से आपको आचार्य का पद दिया गया।

सन् 1952 में सादड़ी में साधु सम्मेलन हुआ। उसमें स्थानकवासी सम्प्रदाय के बाईस से अधिक उपसम्प्रदायों का विलिनीकरण होकर श्रमण-संघ बना। उसमें आपको प्रधान मंत्री बनाया गया। आपके कार्यकाल में श्रमण संघ विकसित हुआ। आपने बड़ी सजगता से कार्य किया। हर दृष्टि से कहीं भी कोई त्रुटि नहीं रखी। भीनासर सम्मेलन के बाद आपने उपाध्यक्ष का दायित्व निभाते हुए ज्ञान-ध्यान की वृद्धि से श्रमण संघ की श्रीवृद्धि की।

आचार्यश्री आत्मारामजी ने अपनी वृद्धावस्था के दिनों में श्रमण संघ को चलाने के लिए कार्यवाहक समिति बनाई। उसमें आपको प्रमुख बनाया और अपना दायित्व/अधिकार आपको सौंप दिया। आपने अनेक उलझनपूर्ण प्रश्न सुन्दर ढ़ंग से सुलझाए। जो प्रश्न काफी समय से उलझे हुए थे उनका भी समाधान किया। सभी ने उस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आचार्यश्री आत्मारामजी के देहावसान के पश्चात् अजमेर में सन् 1963 में सर्वसम्मति से आप आचार्य चुने गए। इतने पद मिलने पर भी आपको अभिमान लेश मात्र भी न था। आप अहंकार से दूर थे। प्रतिष्ठा की कोई भूख नहीं थी, न कोई चमत्कार की बात।

ध्यान और स्वास्थ्य आपके प्रिय विषय थे। आपको मराठी, हिन्दी, गुजराती व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में हजारों गाथाएँ, श्लोक, प्रसंग, सूक्ति और अभंग कंठस्थ थे। भाषा की दृष्टि से आचार्यश्री का परिज्ञान बहुविध और बहुव्यापी था। संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। मराठी आपकी मातृभाषा थी। सन्त तुकाराम के अभंगों को और अन्य मराठी सन्तों के भजनों को आप बड़ी तन्मयता के साथ गाते थे।

आपने विपुल साहित्य सृजन किया है। हिन्दी, संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में आपने 50 से अधिक ग्रंथ रचे हैं। जीवन का शिक्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आपने प्रबल प्रेरणा देकर शताधिक स्थानों पर धार्मिक

पाठशालाएँ, स्कूल व छात्रावास खुलवाये। श्री त्रिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड आपकी ही कल्पना का मूर्त्त रूप है।

आचार्य श्री जीवन के अरुणोदय से ही संगठन के प्रबल समर्थक थे। आपके स्पष्ट विचार रहे कि 'संगठन जीवन है, विघटन मृत्यु'। समस्त जैन सम्प्रदायों की एकता के संदर्भ में आप के हृदय में अपार पीड़ा थी। आप सदैव जैन एकता के लिए प्रयत्नशील रहे।

आप में हृदय की उदारता, आदर्श चिन्तन, पुरुषार्थी जीवन, उदार वृत्ति और सत्य में दृढ़ता, विनम्रता, सबके प्रति आदर भाव, जैसे गुण थे जिन्होंने उन्हें महामानव बना दिया।

सन् 1987 में पूना के श्रमण संघ सम्मेलन में आपने अपने उत्तराधिकारी के रूप में देवेन्द्र मुनि जी को उपाचार्य एवं शिव मुनिजी को युवाचार्य घोषित किया। सन् 1992 में अहमदनगर में आप दिवंगत हुए।

22. आचार्य नानालाल 'नानेश' (1920-1999)

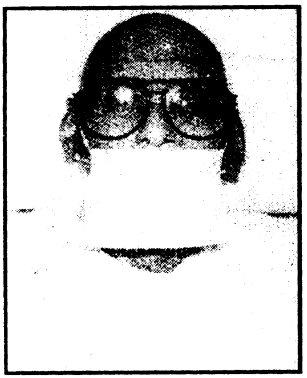

जन्म	:	दाँता (1920)
पिताश्री	:	मोडीलालजी पोखरणा
माताश्री	:	श्रृंगार बाई
दीक्षा	:	1939
पद/उपाधि	:	आचार्य (1962)
दिवंगति	:	उदयपुर (1999)

आगम पुरुष के विशेषण से विभूषित दाँता (राजस्थान) की पवित्र माटी से उभरा यह बहुआयामी नक्षत्र जैनधर्माकाश को अपनी आभा से अनवरत रोशन करता रहा। ओसवाल श्रेष्ठि मोडीलालजी पोखरणा के घर माता श्रृंगार बाई की रत्नकुक्षि से सन् 1920 में एक बालक का जन्म हुआ। इस रूपस् शिशु का बड़े लाड़ से नामकरण हुआ–नानालाल। आठ वर्ष की वय में पितृ-वियोग ने बालक के कोमल हृदय में वैराग्य अंकुर का जन्म हुआ। भादसौड़ा में मुनिश्री चौथमलजी के उपदेश सुनकर तो सत्य-शोध की प्यास गहराने लगी। संसार में व्याप्त अज्ञान-अंधकार, अंधविश्वास-रूढ़ि, शोषण-दमन देखकर उनका हृदय संतप्त हो उठा। सन् 1939 में कंपासन में स्थानकवासी जैन युवाचार्यश्री गणेशीलालजी महाराज से उन्होंने जैन भगवती दीक्षा अंगीकार की। आगम-शास्त्राभ्यास के साथ नानालालजी ने विनय, विवेक और तीर्थयात्रा को अपना जीवन साथी बनाया। संस्कृत, प्राकृत, मागधी, अर्ध-मागधी, पाली आदि भाषाओं एवं बौद्ध-वैदिक दर्शनों का गहन अध्ययन उनके व्यक्तित्व को निखार गया। सन् 1962 में आचार्य गणेशीलालजी के महाप्रयाण उपरांत वे आचार्य पद से विभूषित हुए।

व्यक्तित्व की दृढ़ता, जनधर्मिता एवं सत्यानुसंधान की वृत्ति ने उनकी अन्तर्मुखता को समृद्ध किया। आध्यात्म के इस मोड़ पर उन्होंने सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया। सन् 1963 में गुजरात के गुरांड़िया

ग्राम में बलाई समाज को प्रतिबोध देकर उन्होंने हृदय-परिवर्तन की जीवन्त मिसाल कायम की। बलाई जैन बने। वे आज सुसमृद्ध एवं प्रसन्न हैं। इस हेतु स्कूलों, छात्रावासों की स्थापना और शिविर-सम्मेलनों का समय-समय पर आयोजन कर 300 वर्गमील क्षेत्र में फैले 600 ग्रामों के हजारों लोगों को व्यसन-मुक्त कर उन्हें संयमपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित किया। यह अभूतपूर्व क्रांति आचार्यश्री का मानवता को उल्लेखनीय अवदान गिना जाता है।

सन् 1970 में बड़ी-सादड़ी में आपने सामाजिक क्रांति का बिगुल फूँका। सतरह ग्रामों के प्रतिनिधयों को उद्‌बोधन देकर उन्हें उन्नीस आत्मोन्मुखी प्रतिज्ञाएँ अंगीकार करवाई। आपने ध्वनि विस्तार यंत्र का प्रयोगारम्भ नहीं किया। प्रख्यात भौतिकी-विद्वान डॉ. दौलतसिंह कोठारी ने आचार्यश्री के चिन्तन का पूर्णत: अनुमोदन किया। आपने निरन्तर खादी वस्त्रों का उपयोग किया। वे पूर्णत: भारतीय सन्तत्व के प्रतीक थे।

सन् 1971 में सरदारशहर में आपने साम्प्रदायिक एकता की दृष्टि से नया कदम उठाया। ''संवत्सरी'' मनाने में सम्पूर्ण जैन समाज एकमत हो सके और हमें अपनी परम्परा भी छोड़नी पड़े तो मैं किसी पूर्वाग्रह को आड़े नहीं आने दूँगा''—आपके ये उद्‌गार एक संत की निश्छल विचारणा के द्योतक हैं।

सन् 1981 में दांता में आचार्यश्री ने एक त्रिमुखी अभियान का श्रीगणेश किया जो आदिवासी जागरण, ब्रह्मचर्य और दहेज उन्मूलन द्वारा संस्कार क्रांति का कल्पवृक्ष बना। ''मैं कौन हूँ'' के चैतन्य-सूत्र से प्रारम्भ कर आत्मोन्नति के मूल नौ सूत्रों का प्रवर्तन कर आपने जन-मानस को उद्वेलित किया। सम्यक् जीवन की ये विधियाँ धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक उत्क्रांति की धारक थी। उदयपुर चातुर्मास की सफल परिणति स्वरूप वहाँ आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत शोध-संस्थान की स्थापना हुई।

सन् 1991 में आचार्यश्री ने समीक्षण ध्यान के प्रयोग से समाज में समूहगत चेतना-जागृति की दिशा में सफल प्रयास किया। आपके

द्वारा संचरित जैन तत्त्व-ज्ञान, व्यसन-मुक्ति अभियान एवं बुद्धिजीवियों को संस्कार-क्रांति की प्रेरणा ने आपको 'आगम-पुरुष' का संवाहक बना दिया। डॉ. नेमीचन्द जैन ने इस विरुद की परिकल्पना का साकार रूप 'आगम-पुरुष' ग्रंथ संकलित कर सन् 1992 में उदयरामसर में आपको समर्पित एवं लोकार्पित किया।

आपके आचार्य-काल में कुल 59 संत एवं 310 सतियाँ दीक्षित हुई। आपके विचार एवं प्रवचन पुस्तकाकार प्रकाशित हुए, जिनमें समता दर्शन और व्यवहार, समीक्षण ध्यान और प्रयोग विधि, साधना के सूत्र, आचार्य नानेश : एक परिचय, समता क्रांति, अनुभूति नो आलोक, गुजरात प्रवास की एक झलक आदि उल्लेखनीय हैं।

सन् 1999 में 'समता इंटरनेशनल' की घोषणा से जैन साधना के बहुमुखी सूत्रों का देश-विदेश में प्रसार अभियान शुरु हुआ। आप द्वारा अविष्कृत समीक्षण-ध्यान की आध्यात्मिक प्रक्रिया भारतीय चिंतन को बहुमूल्य योगदान है। सम्यक्त्व के लिए पराक्रम और संघर्ष नानालालजी की विशिष्टता थी। भ्रम और त्रुटि के अभाष होने पर वे आत्मस्वीकृति एवं आत्मशोधन के लिए तत्पर रहते थे।

आपकी जन्मभूमि 'दांता' नगर आज एक तीर्थस्थल बन गया है। आचार्यश्री की प्रेरणा से प्रेरित ''समता विकास ट्रस्ट'' ने वहाँ कला एवं विज्ञान की शिक्षा, सामान्य एवं चल चिकित्सा, सुसंस्कार एवं व्यसन-मुक्ति एवं साधना-समीक्षण ध्यान हेतु अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया है।

सन् 1998 के उदयपुर चतुर्मास से ही आचार्यश्री के स्वास्थ्य में गिरावट आई। उदयपुर में की कार्तिक कृष्ण तृतीया संवत् 2056 (सन् 1999) के दिन आप संथारा प्रत्याख्यान कर महाप्रयाण कर गये।

23. महत्तरा साध्वी मृगावती जी (1925-)

जन्म	:	सरधरा (राजकोट), 1925
पिताश्री	:	डूँगरसी भाइ संघवी
माताश्री	:	शिव कुंवर
दीक्षा	:	1938
पद/उपाधि	:	महत्तरा
दिवंगति	:	

राजकोट के निकट सरधरा नगर में श्री डूँगरसी भाई संघवी की धर्मपरायण पत्नि श्रीमती शिवकुंवर की कोख से वि.सं. 1982 में एक बालिका ने जन्म लिया—नाम रखा गया भानुमति। बालिका अभी दो वर्ष की भी न हुई थी कि सर से पिता का साया उठ गया। शीघ्र ही दो भाई एवं बड़ी बहन का भी देहान्त हो गया। माँ-पुत्री इस आघात से क्रान्त हो गए। संसार की असारता देखकर दोनों तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। वि.सं. 1995 में दोनों ने भगवती दीक्षा ग्रहण की। भानुमति की आयु उस समय 13 वर्ष की थी। उनका नया नाम रखा गया—साध्वी मृगावती जी।

आपकी लगन और बुद्धि कौशल विलक्षण था। पं. छोटेलाल शास्त्री, पं. बेचरदास दोशी, पं. सुखलाल संघवी, पं. दलसुख भाई मालवणिया एंव मुनि पुण्यविजय जी के सान्निध्य में आपने भरतीय षड् दर्शनों एवं पाश्चात्य दर्शनों का गहरा अध्ययन किया। युगद्रष्टा आचार्य विजयवल्लभ सूरि ने आपको शासन प्रभाविका जानकर आशीर्वाद दिया। वि.सं. 2010 में कौलकाता में हुई सर्वधर्म परिषद् में आपने जैनधर्म का प्रतिनिधित्व किया एवं अपनी वक्तृता से चारों ओर धाक जमा दी। पावापुरी में आपका व्याख्यान 80000 की जनमेदिनी द्वारा तीन मील की दूरी तक ध्वनि विस्तारक से सुना गया। श्री मोरारजी देसाई, गुलजारीलाल नन्दा

आदि चोटी के राष्ट्रीय नेताओं ने आपके ज्ञान गाम्भीर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

स्थानवासी सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य आत्माराम जी महाराज आपसे बहुत प्रभावित थे। दिल्ली में वल्लभ स्मारक के निर्माणार्थ आपने अभिग्रह धारण किया एवं उसे सफलता पूर्वक अंजाम दिया। आपके प्रयत्नों से वि.सं. 2035 में प्रसिद्ध कांगड़ा तीर्थ का पुनरुद्धार हुआ। जहाँ पिछले 500 वर्षों में किसी साधु-साध्वी का कोई चातुर्मास नहीं हुआ, आपने साहस कर वह क्षेत्र पवित्र किया एवं जो मन्दिर सरकारी कब्जे में बिना सेवापूजा खण्डहर बन रहे थे, उन्हें मुक्त करवा कर सदा के लिए पूजा सेवा आरम्भ करवाई। एतदर्थ धर्म संघ ने आपको महत्तरा एवं कांगड़ा तीर्थोद्धारिका की पदवियों से विभूषित किया।

24. आचार्य सुशील कुमार (सन् 1926-1994)

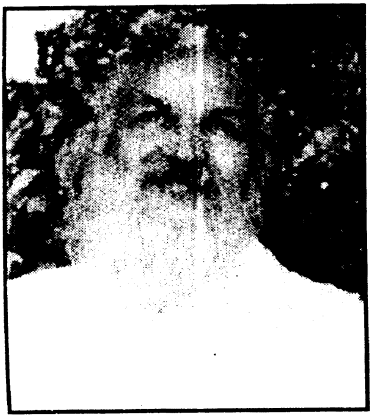

जन्म	:	शिकोहपुर (हरियाणा), 15 जून, 1926
पिताश्री	:	पं. सुनहरा सिंह (ब्राह्मण)
माताश्री	:	भारती देवी
दीक्षा	:	जुगरांव (पंजाब), 20 अप्रेल, 1942
आचार्य पद	:	दिल्ली, 1980
दिवंगति	:	22 अप्रेल, 1994

श्रमण भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित अक्षुण्ण श्रमण परम्परा में मुनिश्री सुशील कुमार जी 20वीं शताब्दी के प्रकाश स्तम्भ थे। वे एक विनम्र, निःस्पृह, संयमशील मनस्वी संत थे। सम्प्रदाय, जाति, देश, भाषा, समाज एवं वर्ग की बेड़ियाँ तोड़ इस सत्योन्मुखी संत ने धर्म को नया आयाम दिया। अंध परम्पराओं, रूढ़ आस्थाओं और आधार हीन मूल्यों के जीर्ण-शीर्ण खण्डहर को ध्वस्त कर नए आध्यात्मिक सृजन के द्वार खोले। यह अकिंचन व्रतधारी अणगार विश्वशांति एवं मानवता के कल्याणार्थ जीवन पर्यन्त समर्पित रहा।

हरियाणा प्रांत के गुड़गाँव जनपद का शिकोहपुर ग्राम प्राकृतिक शुषमा वेष्ठित पहाड़ियों, हरे-भेत खेत एवं झीलों के लिए ही नहीं, मातृभूमि की रक्षार्थ प्राण न्यौछावर करने वाले रण बांकुरों के लिए भी जाना जाता है। पण्डित सुनहरा सिंह जन्मना ब्राह्मण होकर भी कर्मणा योद्धा थे। विश्व के कई युद्धों में उन्होंने एक सैनिक के रूप में भाग लिया। उनकी भार्या श्रीमती भारती देवी भारतीय नारी के आदर्श चरित्र का समुज्ज्वल उदाहरण थी। वे साहस और शौर्य की साक्षात् प्रतिमा थी। उसी माँ भारती की कुक्षि से 15 जून, 1926 को एक सुकान्त बालक ने जन्म लिया। नामकरण हुआ सरदार सिंह।

बालक सरदार जब 6-7 वर्ष का था पण्डितरत्न मुनि श्री छोटेलाल जी महाराज के सत्संग का संयोग बना। जीवन की सारभूत जिज्ञासाएँ मन को उद्वेलित करने लगी। महाराज सा के संग पंजाब के रावी तट के एक गाँव में विचरण करते बालक सरदार ने एक रात एक अद्‌भुत स्वप्न देखा–एक दिव्य पुरुष उन्हें साधु जीवन अंगीकार करने के लिए प्रेरित कर अन्तर्ध्यान हो गया। तभी से बालक सरदार के मन में वैराग्य का बीज अंकुरित हुआ।

सन् 1942 भारत के दुर्धर्ष स्वतंत्रता संघर्ष का नियामक वर्ष था। महात्मा गाँधी जैसे अहिंसक संत के नेतृत्व में चारों ओर ब्रिटिश राज के खिलाफ ''भारत छोड़ो'' का नारा बुलन्दी पर था। वही वर्ष बालक सरदार के जीवन में क्रांति का द्वार बना। 20 अप्रेल, 1942 के दिन जुगरांव में तत्कालीन श्रमण संघ के आचार्यश्री आत्मारामजी के हाथों श्री छोटेलालजी महाराज के निश्राय में बालक सरदार की भगवती दीक्षा सम्पन्न हुई। परिव्राजक सरदार मुनि सुशील कुमार बन गए।

तरूण सन्यासी विद्या अर्जन में लगे। शनैः-शनैः नेतृत्व व वाक् शक्ति विकसित हुई। अहिंसा और सत्य को समर्पित साधु जीवन गांधीजी की अहिंसक राज्य क्रांति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। स्वदेशी, स्वावलम्बन और श्रमदान के आदर्श को जन-जन तक पहुँचाने यह परिव्राजक निकल पड़ा। उन्होंने शिक्षा और नारी स्वातन्त्रय के क्षेत्र में नए आयाम उद्‌घाटित किए। मंडी अहमदगढ़ चातुर्मास में उन्हें संत सुभाग मुनि के रूप में एक त्यागी और तपस्वी गुरू भाई का सम्बल प्राप्त हुआ। सन् 1945 में रूढ़ जैन परम्पराओं के विरूद्ध सुधार का बिगुल बजाने का श्रेय उन्हें ही मिला। लुधियाना में आचार्य आत्मारामजी महाराज के पदवीदान समारोह में पहली बार ध्वनि प्रसारक विद्युत यंत्रों (माइक्रो फोन/लाउड स्पीकर) का प्रयोग कर इस तरूण संत ने धर्म में रूढ़िवादिता और पुरातन पंथी ढ़ोंग को चुनौती दी। उज्जैन में बाल-दीक्षा विरोधी अभियान की अगुआई की। उनके इस अप्रत्यासित कदम से परम्परावादी सहम उठे। दानवीर सेठ सोहनलाल दूगड़ ने उन्हें हिम्मत दी ''बाल-

दीक्षा समाज का कलंक है।'' अपने ही सम्प्रदाय से उनका विरोध कम नहीं हुआ पर संत अडिग रहा। धार्मिक क्रांति के कंटकाकीर्ण मार्ग को प्रशस्त बनाया संत की सतत कला साहित्य और संस्कृति की उपासना ने। आपने 'प्रभाकर' एवं 'साहित्य-रत्न' की परीक्षाएँ सफलता पूर्वक उत्तीर्ण की। 'हिन्दी साहित्य' नामक एक पत्रिका का सफल संपादन/संचालन किया।

सन् 1952 में विश्व-विश्रुत सादड़ी साधु-सम्मेलन हुआ। ''भिन्न-भिन्न 22 सम्प्रदायों में बँटी जैन स्थानकवासी साधु संस्था एक आचार्य के नियंत्रण में संगठित हो''—का उद्घोष उठा। तरुण सुशीलकुमार इस उद्घोष के जनक थे। विरोध के स्वर उठे। वातावरण क्षुब्ध भी हुआ पर अन्ततः सर्वानुमति ''एक आचार्य'' की योजना स्वीकृत हुई। बाल-दीक्षा जैसे अनेक विवादास्पद प्रश्न फिर उठे, हालाँकि अनुत्तरित रहे। आचार्यश्री आत्मारामजी महाराज समस्त संघ के प्रथम संघपति मनोनीत हुए।

सन् 1953 के बम्बई प्रवास के दौरान मुनिश्री ने प्राणी रक्षा और मांसाहार निषेध को आन्दोलन का रूप दिया। मुनिश्री के प्रयास व प्रेरणा से बम्बई की नब्बे म्यूनिसिपल कमेटियों ने वर्ष के कुछ दिन समस्त कसाई खाने बन्द रखने के प्रस्ताव पारित किए। इससे विश्व में शाकाहार आन्दोलन को नया दिशा-दर्शन मिला। आप ही की प्रेरणा से बम्बई में गोरक्षा-समिति का निर्माण हुआ एवं गौ-संवर्धन के कार्य को बल मिला। लोनावाला के पशु बलि विरोधी आन्दोलन में मुनिश्री ने सक्रिय भाग लिया। वहीं एक चमत्कारिक घटना हुई। सुप्रसिद्ध सेसन जज एवं मुख्य न्यायाधीश जी. दिनकर भाई शिकार के लिए लोनावाला आए हुए थे। इत्तफाक से जैसे ही जज साहब एक शिकार पर निशाना साध रहे थे मुनिश्री उधर से निकले। उन्होंने बन्दूक पर हाथ रख दिया और बोले—''यह हिंसा है पक्षी पर बन्दूक नहीं चलेगी।'' जज साहब उस वक्त मुनि जी को टालने के लिए बन्दूक न चलाने पर राजी हो गये। मुनिश्री के प्रस्थान करते ही उन्होंने बन्दूक चलानी चाही पर आश्चर्य बन्दूक वाकई नहीं चली। जज साहब हैरान हो गए। पहुँचे मुनिजी के आवास एवं

आग्रह कर बन्दूक को मुनिश्री का हस्त-स्पर्श करवाया और आश्चर्य, बन्दूक काम करने लगी। मुनिश्री स्वयं असमंजस में पड़ गये। यह प्रभु की अनुकम्पा का ही प्रसाद था।

सन् 1954 में मुनि श्री ने बम्बई में सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें 98 धर्म गुरुओं ने परस्पर चर्चा कर विश्वशांति एवं उन्नति के लिए पाँच आधारभूत सिद्धांत तय किए, यथा– 1. आध्यात्मिक वृत्ति, 2. सह-अस्तिव, 3. सत्य, 4. अहिंसा एवं 5. प्रेम।

विभिन्न धर्मों एवं जैन सम्प्रदायों का आपसी मन-मुटाव भी प्रबल होने लगा था। संकीर्ण मनोवृत्ति एवं अंध परम्पराओं से ग्रसित साधु थोथे अभिमान, आचारिक-शिथिलता, असत्य भाषण एवं छींटाकसी से वातावरण को दूषित कर रहे थे। 17 नवम्बर, 1957 को दिल्ली में मुनिश्री ने विराट प्रथम विश्व धर्म-सम्मेलन का संयोजन किया। धार्मिक क्रिया-कलापों के प्रबल विरोधी भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी इस सम्मेलन को उद्‌बोधन दिया। विश्व में कुल 2200 से अधिक धर्म के नाम व रूप बताए जाते हैं। जन-मानस किं कर्त्तव्यविमूढ़ हुआ उनके आपसी मतभेदों एवं धर्मांध कट्टर पंथियों के पाशविक अत्याचारों को सहता रहा है। धर्म के नाम पर विकृति एवं छल की पराकाष्ठा असहनीय होती जा रही है। ऐसे समय में विज्ञान के यथार्थ एवं धर्म के परमार्थ का सामन्जस्य अभिप्रेय था। बुद्धि और श्रद्धा का समन्वय करने वाली अनेकान्त दृष्टि ही जीवन को पूर्ण बना सकती है। दुराग्रह ही मिथ्यात्व और निराग्रही वृत्ति ही सम्यक्त्व का मूल है। साम्प्रदायिक सहिष्णुता और पारस्परिक सदभावना सत्योन्मुखी की जीवन कुंजी है। इस सम्मेलन में 27 देशों के 260 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ऐतिहासिक लाल किले में सम्पन्न अधिवेशन में विश्व बन्धुत्व की भावना के उद्रेक, विकास एवं प्रचार हेतु ''विश्व धर्म संगम'' की स्थापना एवं अहिंसा, सत्य एवं प्रेम की शक्तियों एवं क्षमताओं के अनुसंधान और सूक्ष्म अध्ययनार्थ ''अहिंसा शोधपीठ'' की स्थापना सम्बंधी निर्णय लिए गए।

सन् 1960 फरवरी में मुनिजी ने कलकत्ता प्रवास के दौरान द्वितीय विश्व धर्म सम्मेलन का संयोजन किया जिसमें अहिंसा के प्रचार के लिए द्विसूत्री योजना बनाई गई एवं एक ''अहिंसा विज्ञान कोष'' की स्थापना की गई। इस सम्मेलन में ईरान, अरब राज्य, वर्मा, जापान, मलाया आदि देशों से पधारे प्रतिनिधियों ने योगदान दिया।

इसी क्रम में मुनिजी ने सन् 1965 में तृतीय विश्व धर्म सम्मेलन एवं सन् 1970 में चतुर्थ विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में किया जिसमें संत तुकड़ोजी महाराज, भंते कुशक बकुला, महामान्य आर्मेनियन पोप एवं अमेरिका, जापान, युगोस्वालिया, स्काटलैंड, फिनलैंड, हालैंड, पोलैंड, इटली, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों से पधारे प्रतिनिधियों का विशेष योगदान रहा। दिल्ली के रामलीला मैदान में फरवरी सन् 1970 में आयोजित चतुर्थ विश्व धर्म सम्मेलन में ''मनुष्य के सर्वांगीण विकास में धर्म की भूमिका'' को मुख्य मुद्दा बनाया गया। सम्मेलन में पधारे थाईलैंड, जापान, लाओस, हालैंड, पेनेमा, ईरान, एथेन्स एवं जर्मनी के प्रतिनिधियों ने ''वासुधैव कुटुम्बकम्'' के विचार प्रसार को बल दिया एवं धर्मों के समन्वयात्मक अध्ययन के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना को समीचीन बताया।

सन् 1975 में मुनिजी ने भगवान महावीर के सन्देश को विश्वव्यापी बनाने का बीड़ा उठाया। वे विदेश-यात्रा की तैयारी में जुट गए। उनका यह निर्णय भी शास्त्रीय मर्यादाओं के विपरीत था। श्रावक संघ में गहरा असन्तोष पैदा हो गया। प्रतिरोधों की तलवारों के बीच से गुजस्ते हुए वे विदेश पधारे। श्रमण संघ ने संघ-बहिष्कृति का फतवा दिया। परन्तु भगवान बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण की भाँति मुनि सुशीलकुमार सर्वजन-स्वीकृत होकर चरित्र नायक बन गए। भारत लौटने पर सन् 1980 में प्रायः सभी जैन सम्प्रदायों एवं विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधियों के साक्ष्य से उन्हें ''आचार्य'' पद से विभूषित किया गया। हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, सिक्ख, पारसी, इस्लाम आदि सभी धर्म संघों के प्रतिनिधियों ने शाल भेंट कर उनकी अभ्यर्थना की। अपने ही सम्प्रदाय से बहिष्कृत वे सर्वधर्म समभाव के प्रतीक अद्‌भुत जैन आचार्य थे।

सन् 1986 में अकाली नेता संत हरचरणसिंह लोंगोवाल एवं तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के बीच समझौता वार्ता सम्पन्न कराकर पंजाब को आतंकवाद से मुक्त कराने में आचार्य सुशील कुमार ने अहम् भूमिका निभाई। पंजाब की सरकार ने आचार्यश्री को 'लोगोंवाल एवार्ड' से सम्मानित करने की घोषणा की परन्तु उन्होंने एवार्ड लेने से इन्कार कर दिया। सन् 1982 में न्यूयार्क में विश्व के शांतिवादियों द्वारा आयोजित विशाल रैली का नेतृत्व आचार्यश्री ने किया। उसी वर्ष संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा विश्वशांति की स्थापना के लिए पाँच धर्म नेताओं एवं छः राजनेताओं की एक कार्यकारी समिति का गठन हुआ। इस ग्लोबल समिति का नाम ''Temple of Understanding'' रखा गया। इस समिति के निर्देशक आचार्यश्री सुशीलकुमार चुने गए। विश्व के 300 सर्वोच्च नेता इस समिति की स्वागत सभा में उपस्थित थे।

सन् 1989 में लन्दन में आयोजित विश्व हिन्दू कॉन्फ्रेंस का उद्घाटन एवं अध्यक्षता आचार्य सुशीलकुमार जी ने की। आस्ट्रेलिया के मोलबोर्न शहर में आयोजित विश्व सम्मेलन को पशु-पक्षी एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु उन्होंने सम्बोधित किया। सन् 1990 में मास्को में आयोजित **Human survival global conferance** में आप विशिष्ट अतिथि रहे। इस सभा को रूस के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बोचोव ने भी सम्बोधित

मास्को में ग्लोबल-कॉन्फ्रेंस को सम्बोधित करते हुए आ. सुशील कुमार

किया था। आपने अमरीका में 120 एकड़ भूमि पर जैन तीर्थ 'सिद्धाचलम्' की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्रसंघ में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व कराने और कोलम्बिया एवं टोरंटो विश्वविद्यालययों में 'जैन विभाग' की स्थापना कराने का श्रेय आपको ही है।

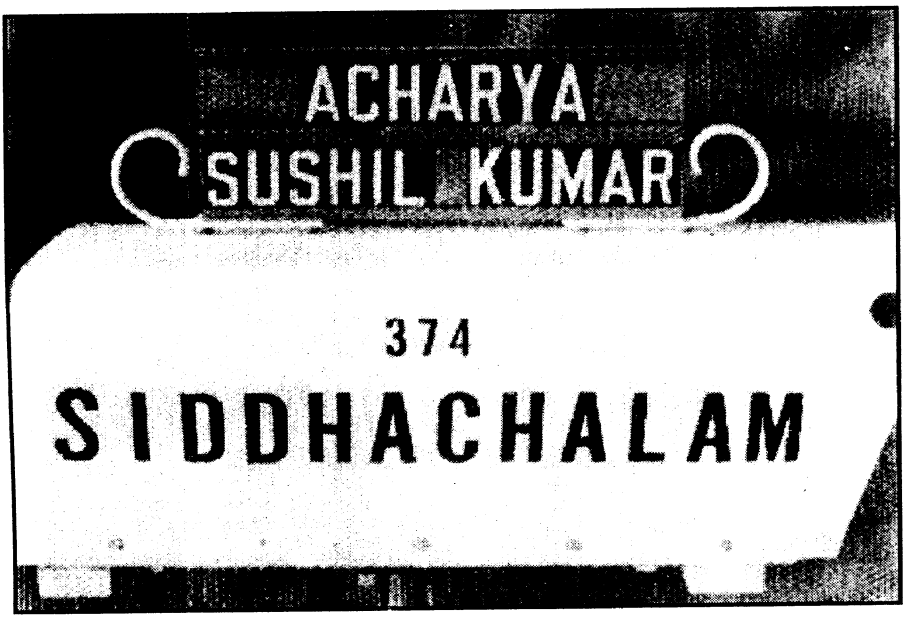

आत्म साधना में लीन संत दिव्य सिद्धियों के धारक होते हैं– आचार्य सुशील कुमार इसके प्रमाण थे। ध्यानस्थ हो अपने छाया शरीर का अवलोकन उन्होंने अपने अनेक श्रद्धालु भक्तों को कृपा कर करवाया। डॉ. बुधवमल शामसुखा एवं डॉ. विमल प्रकाश जैन ने यह स्वयं अनुभूत किया। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उनकी ख्याति फैल रही थी। शांति और अहिंसा के संदेश वाहक के रूप में अनेक बार उन्होंने विदेश यात्राएँ की। अमरीका में संस्थापित उनका ध्यान एवं शोध संस्थान जैन-विद्या का प्रमुख केन्द्र माना जाता है।

जैन जगत का यह प्रगतिशील चरित्रनायक 22 अप्रेल, 1994 की संध्या दिल्ली में दिवंगत हुआ। सूर्य अपनी ज्योति बिखेर कर छिप गया। एक उज्वल नक्षत्र टूटकर अनन्त में विलीन हो गया। भगवान महावीर की पीयूष वाणी देश-विदेश में गूंजायमान करने वाला मसीहा सदा-सदा के लिए चला गया।

24. प्रज्ञा पुरुष रजनीश (1931-1990)

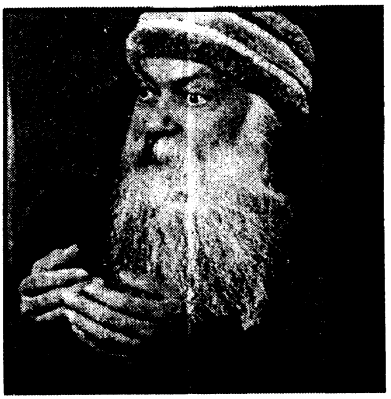

जन्म : कुचवाड़ा (मध्यप्रदेश), 1931

पिताश्री : बाबूलाल जैन

माताश्री : सरस्वती बाई

सम्बोधि : भंवरताल उद्यान, 21 मार्च, 1953

दिवंगति : 1990, पूना

2500 वर्षों के कालचक्र में घूम कर अस्तित्व की भगवत्ता का ध्रुवीकरण हो, फिर एक तीर्थंकर का अवतरण इस पृथ्वी पर हो—इसे ही इतिहास की पुनरावृत्ति कहते हैं। आज से करीब 2500 वर्ष पूर्व महावीर और बुद्ध के अवतरण से भारत भूमि धन्य हुई थी। अब काल जयी मसीहा की कोटि के एक और महापुरुष का भारत में अवतरण हुआ।

11 दिसम्बर 1931 को मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा ग्राम में माता श्रीमती सरस्वती बाई की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। पिता का नाम था—श्री बाबूलालजी जैन। बालक का नामकरण हुआ—राजेन्द्र कुमार। परिवार जैन धर्म के कबीर तारण स्वामी प्रणीत दिगम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मध्यभारत में इनका बाहुल्य था। किशोर वय में बालक राजेन्द्र डॉ. शरणदास शर्मा की पुत्री शशि का हम जौली था। शशि की सन् 1948 में अकाल मृत्यु हो गई। इससे बालक के कोमल हृदय को गहरा आघात लगा। उसने अपना नाम ही बदल कर 'रजनीश' (शशि का पर्याय) रख लिया।

बचपन ननिहाल में गुजरा। तभी नाना की मृत्यु के प्रत्यक्षदर्शी होकर बालक ने मृत्यु की पीड़ा को फिर भोगा, तभी से वे शांतिप्रिय हो गये। वे गड़रवाड़ा में अपने माता-पिता के पास रहने लगे। घर के समीप

ही नदी के तीर स्थित जैन मंदिर था–यही उनका ध्यान केन्द्र बना। उन्हें तैराकी का शौक था व मकान के पिछवाड़े नंगे होकर कुऐं की मेड़ पर नहाते थे। सड़क पर चलते बच्चे ''नंगा आदमी'' कहकर आवाजें कसते। चर्चित हो गए तो पड़ोसियों के दबाव में यह मकान ही बदलना पड़ा। जल्द ही अपनी अद्‌भुत स्वनिर्भरता के कारण सबको आकर्षित भी करने लगे। आपने कभी किसी को अपना गुरू स्वीकार नहीं किया, हर चीज पर शंका की। बचपन से पुस्तकालय से प्रेम था। गाँधी, मार्क्स एवं राहुलजी के बौद्ध साहित्य का अध्ययन हाई स्कूल में आये तब आप कर चुके थे। अनुशासन के खिलाफ विद्रोह कर जल्द ही छात्र नेता भी बन गए।

परन्तु उन्हें सर्वाधिक शौक नौका विहार एवं एकांत निर्जन स्थानों के भ्रमण का था। उनके व्यक्तित्व का अंग था–प्रकृति प्रेम। किशोर वय से ही उनके आत्मिक ध्यान साधना के प्रयोग शुरू हुए। मौल श्री (भंवरताल उद्यान, जबलपुर) के पेड़ पर चढ़कर ध्यान करते थे। एक रोज नीचे आ गिरे एवं परम चैतन्य के उन क्षणों में समाधि को उपलब्ध हुए–तब वे 21 वर्ष के थे। 21 मार्च, 1953 का वह दिवस 'सम्बोधि दिवस' माना जाता है। 1957 में दर्शन शास्त्र में एम.ए. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम रहे। तदुपरान्त संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर में आचार्य पद पर नियुक्त हुए। एक वर्ष बाद महाकौशल कला महाविद्यालय में आचार्य पद पर जबलपुर आ गए। 1966 तक रजनीश वहीं सेवारत रहे। उनके व्याख्यानों में अन्य कक्षाओं के विद्यार्थी अपनी कक्षाएँ छोड़कर शामिल होते। यहीं रहते भारत भ्रमण प्रारम्भ हुआ। स्थानीय जैन समाज ने उन्हें सम्मानित किया। हर रोज प्रवचन होने लगे। साधनापथ, सिंहनाद, क्रांतिबीज आदि उनके व्याख्यानों के आदि प्रकाशन हैं।

जल्द ही सारा भारत देश ही आचार्य रजनीश का कार्य क्षेत्र बन गया। एक अग्निवीणा छिड़ गई जिसने पूरे देश को हिला दिया। 1960 से 1968 तक रजनीश अलख जगाते रहे–सत्य की खोज पर मनुष्य के निकल पड़ने का आह्वान उनकी वाणी से गुंजरित होता रहा। 1964

की ग्रीष्म में राजस्थान में पहला ध्यान शिविर आबू में आयोजित हुआ। 1970 में रजनीश ने सन्यास दीक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। फिर तो हर

शिविर से 300 करीब मुमुक्षु सन्यास लेते रहे। अब उन्हें 'आचार्य' कहना छोड़कर 'भगवान' नाम से पुकारा जाने लगा था, जिसके लिए उनकी स्वीकृति इन शब्दों में थी–''भगवान यानि वह जिसने स्वयं को जान लिया।'' जबलपुर छोड़ने के बाद 4-5 वर्ष का पहला स्थिरवास बम्बई में हुआ। तब सक्रिय ध्यान चौपाटी के समुद्रतट पर खुली हवा में भगवान के सान्निध्य में होता था।

1974 के बसंत में भगवान पूना आ गए, भ्रमण बन्द हो गया। कोरे गाँव का भगवान का आश्रम एक बुद्ध क्षेत्र में परिवर्तित हो गया। पश्चिमी देशों से आने वाले भगवान प्रेमियों का तांता लग गया। पूना शहर गेरूआ रंग से लहलहा उठा। पन्द्रह सौ सन्यासी हर वक्त भगवान के सान्निध्य में साधना करने लगे, एक नए धर्मचक्र का प्रवर्तन हुआ। इस दौरान हर धर्म, हर मसीहा, हर आध्यात्मिक दर्शन-ग्रन्थ को माध्यम बनाकर भगवान के प्रवचन हुए। आश्रम धीरे-धीरे 2000 सन्यासियों के एक कम्यून के रूप में विकसित होने लगा।

आश्रम में रहने वाले अभारतीय सन्यासियों का अनुपात कई गुना अधिक हो गया था। भगवान एवं सन्यासियों पर शारीरिक आक्रमण, धर्मान्ध मठाधीशों की ईर्ष्या, सरकारी-विकास की दिनोंदिन बढ़ती दिक्कतों, पुलिस एवं कोर्ट केसों के शिकंजे—इन सबके कारण साधक बड़े मायूस हो रहे थे। इधर दमे के प्रकोप के कारण भगवान की अपने शिष्यों के बीच उपस्थिति का समय भी कम होता जा रहा था। 24 मार्च, 1981 से भगवान ने प्रवचन देना बन्द कर मौन धारण कर लिया।

जून, 1981 में भगवान को दमा की चिकित्सा के लिए उनके भक्त अमरीका ले गए। यह एकदम अचानक हुआ। वहाँ वे न्यूजर्सी स्थित चिद्विलास आश्रम में मेहमान हुए। जल्द ही नए आश्रम के लिए औरेगन स्थित 125 वर्ग मील वाला शुष्क जलवायु का निर्जन क्षेत्र 'मडी रेंच' खरीद लिया गया। यहां की शुद्ध शुष्क जलवायु एवं नवीनतम उपचारों एवं नियमित स्विमिंग पूल में तैरने से भगवान का स्वास्थ्य सुधरने लगा।

औरेगन स्थित ''रजनीशपुरम'' आश्रम की हजारों एकड़ कृषि भूमि पर फसलें लहलहाने लगी। लाखों फलों के वृक्ष रोपे जा चुके थे, एक बड़ी डेयरी, नदी पर पुल, एक सुन्दर झील व कृष्णमूर्ति बाँध बनाया गया। पहले ही साल 35 करोड़ रुपए खर्च हुए। इस धरती पर उतरते स्वर्ग से आस-पास के अमरीका वासियों को ईर्ष्या होनी स्वाभाविक थी। कई मामले मुकदमें चलें, भगवान को अमरीका छोड़ने के लिए विवश करने की कोशिशें शुरु हुई।

रजनीशपुरम का प्रथम विश्व महोत्सव जुलाई, 1982 में हुआ, जिसमें विश्व के कोने-कोने से दस हजार सन्यासी शामिल हुए। द्वितीय एवं तृतीय महोत्सवोपरांत चतुर्थ महोत्सव जुलाई, 1985 में हुआ जिसमें बीस हजार सन्यासियों एवं प्रेमियों ने भाग लिया। मई, 1981 से अक्टूबर 1984 तक निरन्तर मौन रहने के बाद भगवान ने फिर से अपने सन्यासियों के बीच बोलना शुरु किया। उनके प्रवचन संस्थापित धर्मों के विरुद्ध एक क्रांति के आह्वान से वेष्ठित थे। विशेषत: ईसाई समाज ऐसे

तीखे प्रहारों से तिलमिला उठा। भगवान की अतिशय करुणा का लाभ लेकर कुछ अवांछित तत्त्व कम्यून के भीतर भी सक्रिय हो गए। तभी रजनीश जी को औरेगन स्टेट पुलिस (अमरीकी राज्य) द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें जेल के सीखचों में बन्द रखा गया। जिससे शनैः-शनैः उनका स्नायु तंत्र खोखला हो जाए। उन पर बिना आधिकारिक अनुमति के अमरीका में रहने का आरोप लगाया गया। उनको यह आरोप स्वीकार कर लेने पर इस शर्त पर रिहा किया गया कि वे अमरीका छोड़कर अन्यत्र चले जाएँ। कहते हैं जेल में उनके खाने में हल्का जहर मिलाकर दिया जाता था। रजनीश जी अपने चन्द अनुयायियों के साथ अमरीका छोड़कर अन्य देशों के द्वार खटखटाने पर मजबूर हो गये। परन्तु अमरीका का साम्राज्यवादी शिकंजा इस कदर असरदार साबित हुआ कि उन्हें किसी देश ने पनाह न दी। अन्ततः रजनीशजी भारत चले आए।

उनके शिष्यों की संख्या करीब पाँच लाख बताई जाती है जो विश्व के प्रायः हर देश में फैले हैं और प्रेमियों की संख्या तो अनगिनत है। हिन्दी में उनके प्रवचनों के करीब 450 ग्रंथ निकल चुके हैं एवं निरन्तर निकल रहे हैं। अंग्रेजी में भी करीब 350 ग्रंथ निकल चुके हैं एवं विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में उनके प्रवचन अनुदित हुए हैं। बम्बई-स्थिरावास के बाद के प्रवचनों के ऑडियो एवं वीडियो कैसेट भी उपलब्ध हैं। भारत में करीब 300 आश्रम हैं। मुख्यालय पूना में है। विदेशों में करीब 250 आश्रम या कम्यून हैं। धर्म चक्र प्रवर्तन का यह चरमोत्कर्ष है।

बुद्ध पुरुषों की अमुत धारा में रजनीश के आगमन से एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इस धारा को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंने ''ओशो'' नाम धारण किया। ओशो सद्यस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं। वे अतीत की किसी धार्मिक परम्परा की कड़ी नहीं हैं। वे सबसे अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं। अपने प्रवचनों में उन्होंने मानव चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, मुहम्मद, जरथुस्त्र, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस, लाओत्से आदि अलौकिक महापुरुषों के

साथ ही भारतीय आध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों–आदि शंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूक, रैदास, दरिया, मीरा आदि संतों के माध्यम से विभिन्न साधना परम्पराओं–योग, तंत्र, ताओ, झेन, सूफी पद्धतियों के गूढ़ रहस्यों को उन्होंने प्रकाशित किया। ध्यान और साधना की ऐसी अनूठी विधियाँ उन्होंने ज्ञापित की जो मनुष्य की चेतना के ऊर्ध्वगमन में सहायक हो सकती हैं। उन्होंने समाज, राजनीति, काम, विज्ञान, दर्शन, शिक्षा, पर्यावरण, सेक्स, एड्स आदि विषयों को अपनी क्रांतिकारी जीवन दृष्टि से प्रतिभाषित किया। उनके प्रवचन एवं आश्रम दुनिया भर के मनुष्यों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं।

उनके अस्तित्व में ही एक सुगंध थी। उनके विचार निर्विचार में ले जाने के द्वार हैं। उनकी वाणी निरन्तर उस ओर इंगित करती रही जो वाणी से परे है। उनके दृष्टिकोण में तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं और वे तीनों ही जैन-दर्शन के अनुरूप हैं। प्रथम तो उनका दृष्टिकोण नैतिक नहीं, अति नैतिक है। मूलत: यह जैन शास्त्रों की दृष्टि है, जहाँ पाप और पुण्य को क्रमश: लोहे एवं स्वर्ण की बेड़ियाँ माना गया है। दूसरे रजनीश ने दर्शन पर अधिक बल दिया है, चरित्र को दर्शन का सहज प्रतिफल बताया है। जैन शास्त्रों मं भी सम्यक् दृष्टि के अभाव में अच्छे से अच्छे कर्म को भी निरर्थक माना है। आचरण ऊपर से ओढ़ा हुआ पाखण्ड भी हो सकता है। वास्तव में सम्यक् दृष्टि जो करती है, वहीं सम्यक् चरित्र है। तीसरे रजनीश ने जीवन के सत्य को तर्क की पकड़ से बाहर बताया है। जीवन विरोधी तत्त्वों से बना है परन्तु सत्य पाने के लिए तर्क से परे जाना होता है। यही जैन दृष्टि है–सत्य को शब्दों में बाँधना या तर्क से सिद्ध करना सम्भव नहीं। वह अनिर्वचनीय है। प्रतिक्रमण एवं सामायिक रजनीश जी के अनुसार ध्यान के ही दो चरण हैं। प्रतिक्रमण प्रकिया है चेतना को भीतर लौटाने की, सामायिक प्रक्रिया है बाहर से लौटी चेतना को आत्मसात् करने की। समय में स्थिर होना ही आत्मा में प्रवेश करना है।

रजनीश जी ने जैनों के स्त्री-मोक्ष एवं स्त्री तीर्थंकर के प्रश्न पर श्वेताम्बर/दिगम्बर सम्प्रदायों में छिड़े विवाद को अनर्थक बताते हुए कहा

है कि किसी भी तीर्थंकर में पुरुष वृत्ति यानि संघर्ष, संकल्प एवं आक्रमण का होना अनिवार्य है अत: तथ्यत: सन्यास लेते वक्त स्त्री शरीर होना सम्भव है पर तीर्थंकरत्व तक पहुँचते उसका भीतरी तल पर पुरुषत्व में रूपान्तरण हो ही जायेगा।

पूना में 19 जनवरी, 1990 के दिन रजनीशजी का पार्थिक शरीर शांत हो गया।

26. आचार्यश्री देवेन्द्र मुनि (1931-1999)

जन्म	:	उदयपुर, 1931
पिताश्री	:	जीवनसिंह बरड़िया
माताश्री	:	तीजा देवी (महासती प्रभावती जी)
दीक्षा	:	बाड़मेर, 1940
आचार्य पद	:	उदयपुर, 1993
दिवंगति	:	घाटकोपर, 1999

श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्यश्री देवेन्द्र मुनि इस शदी के विशिष्ट श्रुत साधक एवं मनीषी थे। एक हजार से अधिक साधु-साध्वी और लगभग 20 लाख श्रद्धालु भक्त उनके अनुयायी थे। आपने जैन धर्म और दर्शन के संदर्भ में विपुल साहित्य सर्जन किया। आप हजारों मील की पद यात्राएँ, धर्म चर्चाएँ एवं आत्म-कल्याणकारी विविध प्रवृत्तियों का 60 वर्ष तक निरन्तर संचालन कर धर्म प्रभावना करते रहे।

देवेन्द्र मुनि का जन्म भक्ति, वीरता, त्याग बलिदान और पराक्रम की धरती मेवाड़ की राजधानी, झीलों की नगरी उदयपुर में वि.सं. 1988, कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धरतेरस), दिनांक 8 नवम्बर, सन् 1931 के दिन हुआ। ऐसे भाग्यशाली बालक को जन्म देने वाले भाग्यशाली माता-पिता थे-महिमामयी माता तीज कुमारी तथा सद्गृहस्थ श्री जीवनसिंह जी बरड़िया। धनतेरस को जन्म लेने के कारण तथा जन्म से ही परिवार में धन-धान्य की वृद्धि होने से बालक का नाम धन्नालाल रखा गया। बालक धन्नालाल की बड़ी बहन थी सुन्दरी कुमारी। बालक धन्नालाल दिखने में एक देवकुमार जैसा लगता था। गौरवर्ण, अत्यन्त सुकुमार शरीर, सुन्दर आकर्षक नाक नक्श, मधुर हास्य और निश्छल प्रेम से भरा कोमल चेहरा, बड़ी-बड़ी झील-सी आँखें और सुदृढ़ पुष्ट देह देखने वाले का मन मोह लेते थे।

वि.सं. 1991 में आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज जो युगप्रभावक महान आचार्य थे, उस समय उदयपुर के पंचायती नोहरे में विराजमान थे। बालक धन्नालाल भी पारिवारिक संस्कारों व पूर्वजन्म की धर्म सुलभबोधिता के कारण आचार्यश्री के दर्शन हेतु जाता रहता था। एक दिन प्रातःकाल प्रार्थना के समय जब आचार्यश्री ध्यान पूर्ण कर श्रावकों को मंगल पाठ फरमा रहे थे—व्याख्यान स्थान पर रखे पाट पर बालक धन्नालाल जाकर लेट गया। लोगों ने आश्चर्य के साथ उसे झकझोरा, उठाया। लोग उठकर ज्यों ही मुड़े कि बालक फिर पाट पर लेट गया। पुनः लोग उठाने लगे तब तक आचार्यश्री दिव्य दृष्टि ने बालक की बाल-क्रीड़ा को निहारकर भावी के संकेतों को ग्रहण कर लिया और तुरन्त कहा—''बालक को मत उठाओ।'' फिर सामने बैठे श्रावकों से प्रश्न किया—यह बालक किसका है? तभी सेठ कन्हैयालाल जी बरड़िया खड़े हुए—''गुरुदेव! यह मेरा ही पौत्र है।''

आचार्यश्री मुस्कराये और फरमाया—''आपके खानदान में भविष्य में कोई दीक्षा लेवे तब आप इन्कार मत करना। आचार्यश्री श्रीलालजी महाराज ने जो शुभ लक्षण बताये हैं, इस बालक में वे मिल रहे हैं, यह एक दिन परम प्रतापी आचार्य बनेगा।''

शिशु, सती और संत का वचन कभी असत्य नहीं होता। वही बालक एक दिन श्रमणसंघ का आचार्यसम्राट् बना। आचार्यश्री की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। बालक धन्नालाल बचपन से ही अत्यन्त प्रतिभाशाली, चतुर, बुद्धिमान किन्तु सरल हृदय, पापभीरू, साहसी और दृढ़संकल्पी था। उसके व्यवहार से अन्तर में रमी साधुता के लक्षण प्रगट हो रहे थे। बालक धन्नालाल जब 6 वर्ष का हुआ तब महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज तथा श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के कमोल ग्राम में दर्शन किये और प्रथम दर्शन में ही वह उनके चरणों में समर्पित हो गया। उनके पास दीक्षा लेकर उनका शिष्य बनने का संकल्प जग उठा। यह संकल्प साकार हुआ 9 वर्ष की अवस्था में। वि.सं. 1997, फाल्गुन शुक्ला 3 के दिन बालक धन्नालाल ने खण्डप

ग्राम जिला बाड़मेर में दीक्षा ग्रहण कर ली और धन्नालाल ''देवेन्द्रमुनि'' बन गया।

आपकी पूज्य माताश्री धर्म परायणा और विवेकशील थी। उनमें पाप-भीरूता, संयमनिष्ठा और जीवन के प्रति जागरूकता थी। ये ही संस्कार बहन सुन्दर और बालक धन्नालाल के जीवन में कल्पवृक्ष की भाँति फलित हुए। बहन सुन्दर ने पारिवारिक अवरोधों के बावजूद 12 फरवरी, 1938 को गुरुणी श्री मदन कुँवर जी एवं पूज्य महासती सोहन कुँवर जी के पास दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम साध्वी रत्नश्री पुष्पवती रखा गया। आप परम विदुषी साध्वी रत्न हैं।

अपने पुत्र धन्नालाल को दीक्षा दिलाने के पश्चात् पूज्य माताजी तीजकुमारीजी ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। आपका नाम महासती प्रभावती जी रखा गया। आपका जीवन अत्यन्त निर्मल, ज्ञान, ध्यान, वैराग्यमय आदर्श जीवन था।

देवेन्द्र मुनि ने अप्रमत्त भाव से विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। गुरु चरणों में सर्वात्मना समर्पित देवेन्द्र मुनि संस्कृत-प्राकृत, जैनागम व न्याय-दर्शन आदि विविध विद्याओं में निपुणता प्राप्त करते गये। गुरु भक्ति से श्रुत की प्राप्ति होती है, समर्पण से विद्या का विस्तार होता है, यह बात देवेन्द्र मुनि के जीवन में शत-प्रतिशत सत्य सिद्ध हुई। उनकी विद्या निरन्तर बट वृक्ष की तरह विकसित और वृद्धिंगत होती गई। बीस वर्ष की अवस्था में तो देवेन्द्र मुनि ने हिन्दी साहित्य की भी अनेक परीक्षाएँ पास कर ली और वे हिन्दी में कविता व गद्य लिखने भी लगे। अनवरत विद्याध्ययन के साथ ही देवेन्द्र मुनि ने उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि के साथ राजस्थान, गुजरात-महाराष्ट्र आदि में विहार किया। अनेक विद्वान् व प्रभावशाली सन्तों से मिलन हुआ। उनके साथ तत्त्व चर्चाएँ हुईं। धीरे-धीरे वे संघीय संगठन, समाज सुधार, शिक्षा-सेवा आदि से सम्बन्धित प्रवृत्तियों में अग्रणी रूप में भाग लेने लगे। उनकी बौद्धिक योग्यता व संगठन कुशलता के कारण श्रमण संघ में नवयुवक देवेन्द्र मुनि एक उदीयमान लेखक, विचारक और प्रवक्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

बाईस वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि के प्रवचनों की पाँच पुस्तकों का सुन्दर सम्पादन किया। 30 वर्ष के होते-होते संघ की साहित्य-शिक्षा-समाचारी आदि प्रवृत्तियों का मार्गदर्शन व निरीक्षण करने लगे। 45 वर्ष की अवस्था में आपने एक विशालकाय शोध-ग्रन्थ का निर्माण किया—''भगवान महावीर : एक अनुशीलन।'' इस ग्रन्थ की अनेक विद्वानों व मुनिवरों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की। अपनी शैली, अपने विषय और अपनी स्वतन्त्र अध्ययन विधि की उत्कृष्टता का प्रमाण देते हुए आपने इसे शोधग्रन्थ का स्वरूप प्रदान किया।

इसके बाद तो आपने विविध विषयों पर अनेक शोधग्रन्थ, प्रवचन व निबन्धों की लगभग 400 उत्कृष्ट पुस्तकें रची, जिनमें 36 प्रकाशित हो चुकी हैं एवं जिनका सम्पूर्ण जैन समाज में स्वागत हुआ।

भगवान महावीर के अतिरिक्त देवेन्द्र मुनि ने ''भगवान् ऋषभदेव'', ''भगवान अरिष्टनेमि'', ''कर्मयोगी श्री कृष्ण'' एवं ''भगवान पार्श्वनाथ'' के जीवन-प्रसंगों पर प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की। ''जैन दर्शन : स्वरूप और विश्लेषण'' ग्रंथ में उन्होंने समग्र जैन दर्शन का प्रामाणिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। ''जैन आचार'' के दो वृहद् खण्डों में श्रमण एवं श्रावकाचार पर विस्तृत एवं सर्वांगपूर्ण सामग्री दी है। ''जैन आगम साहित्य, मनन और मीमांसा'' नामक वृहद् ग्रंथ के माध्यम से आगमों की विषय-वस्तु एवं इतिहास का विशद् विवरण है। ''कर्म विज्ञान'' नामक ग्रंथ के नौ भागों एवं लगभग 3500 पृष्ठों में ''कर्म साहित्य'' पर लिखे गये सैकड़ों ग्रंथों का मंथन, विवेचन एवं नवनीत प्रस्तुत किया है। ''साहित्य और संस्कृति'' एवं ''धर्म, दर्शन, मनन और मूल्यांकन'' ग्रंथों में देवेन्द्र मुनि का बहुआयामी चिंतन उजागर हुआ है। इन शास्त्रीय-विवेचन ग्रंथों के अलावा उन्होंने ''जैन जगत के ज्योतिर्धर'' एवं ''पर्वों की परिक्रमा'' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ प्रस्तुत किए। यही नहीं उन्होंने जैन ग्रंथों के आधार पर युवा पीढ़ी के लिए लगभग 17 उपन्यास, पचासों कहानी संग्रह, निबंध संग्रह एवं सूक्तियाँ लिखी। उनके प्रवचनों के संग्रह भी श्रावक समाज में बहुत लोकप्रिय हुए।

देवेन्द्र मुनि की विद्वता कीर्ति, उनकी व्यावहारिक कुशलता, संगठन दक्षता तथा लोक नायकत्व की योग्यता को देखकर सन् 1987 में पूना के साधु सम्मेलन में आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषि ने आपको श्रमण संघ के उपाचार्य के रूप में अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। सन् 1992 की 28 मार्च के दिन आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी का स्वर्गवास हो जाने पर समस्त श्रमण संघ के पदाधिकारियों ने आचार्यश्री की घोषणा अनुसार आपको श्रमण संघ का आचार्य घोषित किया तथा सन् 1993 की 28 मार्च के दिन उदयपुर में आपको विधिवत् आचार्य पद की चादर ओढ़ाकर जैन स्थानकवासी श्रमण संघ के तृतीय पट्टधर आचार्यश्री के रूप में अभिषिक्त किया गया।

3 अप्रैल को साधना के शिखर पुरुष उपाध्याय पुष्कर मुनि का स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् आपने उत्तर भारत, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली के संघों की अत्यधिक आग्रह भरी प्रार्थना स्वीकार कर उत्तरभारत की धर्म यात्रा प्रारम्भ की। राजस्थान से हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर होकर आपने भारत की राजधानी दिल्ली में तीसरा चातुर्मास किया।

तीन वर्षीय उत्तर भारत की सफल यात्रा कर आचार्यश्री पुनः अपनी जन्मभूमि उदयपुर पधारे। उदयपुर का यशस्वी वर्षावास सम्पन्न कर इन्दौर वर्षावास बिताया। उसके पश्चात् आपने महाराष्ट्र की आग्रह भरी विनती को ध्यान में रखकर महाराष्ट्र की तरफ विहार किया। परन्तु बीच में ही अचानक स्वास्थ्य की गड़बड़ी हो जाने से आप चिकित्सीय परीक्षण व उपचार हेतु मुम्बई पधारे। मुम्बई में स्वास्थ्य परीक्षण कराकर आप औरंगाबाद चातुर्मास के लिए प्रस्थान कर घाटकोपर पधारे। वहाँ पर अचानक ही शारीरिक स्थिति बिगड़ जाने से 26 अप्रैल को संथारे के साथ अकस्मात् आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी का जीवन सम्पूर्ण मानवता के कल्याण हेतु समर्पित जीवन था। आपने अपने जीवन काल में लगभग 70 हजार किलोमीटर की पदयात्रा की, लगभग 50 हजार से अधिक

लोगों को व्यसनमुक्त जीवन के लिए संकल्पबद्ध किया और सैकड़ों गाँवों व संघों में परस्पर प्रेम, संगठन व सद्भावना के सूत्र जोड़े।

सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु तथा श्रमण संघ के अभ्युदय के लिए समर्पित आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनि साधना की तेजस्विता, जीवन की पवित्रता, बौद्धिक प्रखरता, चिन्तन की उत्कृष्टता, विचारों की उदारता और व्यवहार की विशुद्धता के लिए सर्वदा अविस्मरणीय रहेंगे।

जैन विभूतियाँ

न्यायविद्/वैज्ञानिक/पण्डित/लेखक/ राजनेता/कलाकार/प्रशासक

27. श्री पूरणचन्द्र नाहर (1875-1936)

जन्म : अजीमगंज, 1875
पिताश्री : रा.ब. सिताबचन्द नाहर
माताश्री : गुलाबकुमारी देवी
शिक्षा : एम.ए.; वकील
दिवंगति : कोलकाता, 1936

श्री पूरणचन्द्रजी नाहर का जन्म सन् 1875 की वैशाख शुक्ला दशमी को अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) में हुआ था। आपके पिता रायबहादुर सिताबचन्दजी नाहर ओसवाल समाज के सुप्रतिष्ठित धर्म एवं विद्या प्रेमी जमींदार थे। नाहरजी ने एन्ट्रेन्स तक की शिक्षा अपने पितामही के नाम पर पिताजी द्वारा स्थापित ''बीबी प्राण कुमारी जुबिली हाईस्कूल''. में पाई थी। 1895 में आपने प्रेसिडेन्सी कौलेज, कोलकाता से बी.ए. पास किया। आप बंगाल के जैनियों में सर्वप्रथम ग्रेजुएट हुए थे। तत्पश्चात् आपने कानून का अध्ययन किया एवं पाली भाषा में कलकत्ता यूनिवर्सिटी से एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। आपने कुछ दिन बरहमपुर (मुर्शिदाबाद) की जिला अदालत में वकालत भी की। तत्पश्चात् सन् 1914 में कलकत्ता हाईकोर्ट में एडवोकेट हुए।

आप कुछ दिन तक औनरेवल मिस्टर भूपेन्द्रनाथ बसु सौलीसीटर के पास आर्टिकल क्लर्क रहे। इस समय आपको साहित्य एवं पुरातत्त्व से प्रेम हुआ एवं आइनजीवी का कार्य छोड़कर आपने अध्ययन एवं प्राचीन वस्तुओं की खोज तथा संग्रह में ही समय लगाना शुरु किया। आप सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेते थे। बहुत दिनों तक आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कोर्ट में श्वेताम्बर जैनियों की ओर से प्रतिनिधि रहे। सर आशुतोष मुखर्जी की प्रेरणा से कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैट्रिक, इन्टरमीजियट और बी.ए. कक्षाओं की हिन्दी परीक्षाओं के आप परीक्षक नियुक्त हुए। यह सब अनायास हुआ। नाहरजी की हिन्दी में पेठ नहीं

थी। अत: दूसरे ही दिन ''भारत मित्र'' पत्रिका के कार्यालय पहुँचे और लिखना शुरु किया। जब तक परीक्षा की कॉपियाँ जाँच के लिए पहुँची, नाहर जी ने अपने आपको अधिकारी परीक्षक बना लिया। पी.आर.एस. के बोर्ड में भी आपने परीक्षक का कार्य किया।

बाल्यावस्था से ही आपको भ्रमण का बहुत शौक था और आपने प्राय: समस्त प्रसिद्ध जैन तीर्थों की यात्रा भी की। यात्रा के साथ-साथ आप पुरानी वस्तुओं तथा तीर्थों में मूर्तियों पर खुदे लेखों का संग्रह करते रहते थे। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही आप दक्षिण भारत के प्रसिद्ध स्थानों तथा शत्रुंजय आदि गुजरात और राजपूताना के तीर्थों की यात्रा कर लौटे थे।

आप एक उच्च कोटि के विद्वान् थे। आपका इतिहास एवं पुरातत्त्व सम्बन्धी शौक बहुत बढ़ा चढ़ा था। प्राचीन ज़ैन इतिहास की खोज में आपने बहुत कष्ट सहा और धन भी बहुत खर्च किया। आपने 'जैन-लेख-संग्रह' (तीन भाग), 'पावापुरी तीर्थ का प्राचीन-इतिहास', 'एपिटोम ऑफ जैनिज्म' तथा 'प्राकृत सूत्र रत्नमाला' आदि ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। ये ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण और नवीन अनुसन्धानों से पूर्ण हैं। जैन लेख संग्रह में जैनों के 3000 प्राचीन शिलालेखों का सन्निवेश है। यह ग्रंथ जैन इतिहास का प्रमाणिक दस्तावेज माना जाता है। ''एपीटोम ऑफ जैनिज्म'' ग्रंथ में आपने प्राच्य व पाश्चात्य दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। सहलेखक कृष्णचन्द्र घोष के अनुसार भारतीय दर्शन के इतिहास लेखन में यह ग्रंथ मील का पत्थर साबित हुआ है।

आपकी विद्वता एवं तीर्थ सेवाओं पर समस्त ओसवाल जाति एवं सम्पूर्ण जैन समाज को नाज था। आपने श्री महावीर स्वामी की निर्वाण भूमि 'पावापुरी' तीर्थ तथा 'राजगृह' तीर्थ के विषय में समय, शक्ति और अर्थ से अमूल्य सेवा की है। पावापुरी तीर्थ के वर्तमान मन्दिर, जो बादशाह शाहजहाँ के राजत्वकाल में सं. 1998 में बना था, उस समय की मन्दिर-प्रशस्ति, जिसके अस्तित्व का पता न था, आपने ही मूलदेवी

के नीचे से उद्धार की और उसी मन्दिर में लगवा दी है। इस तीर्थ के इलाके में कुछ गाँव थे जिनकी आमदनी भंडार में नहीं आती थी, सो आपके अथक परिश्रम और प्रयत्न से आने लगी। आपने पावापुरी में दीन-हीनों के लिए एक 'दीन शाला' बनवा दी, जो विशेष उपयोगी है। तीर्थ राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर जो श्री पार्श्वनाथजी का प्राचीन मन्दिर है, उसके सं. 1912 की गद्य-पद्य बन्ध प्रशस्ति युक्त विशाल शिलालेख का आपने बड़ी मेहनत से पता लगाया था। वह शिलालेख राजगृह में आपके मकान 'शान्तिभवन' में मौजूद है। इस तीर्थ के लिए श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज के बीच मामला छिड़ा था। उसमें विशेषज्ञ की हैसियत से आपने गवाही दी थी और आपसे महीनों तक जिरह की गयी थी। इसमें आपके जैन इतिहास और शास्त्र ज्ञान, आपकी गम्भीर गवेषणा और स्मरण-शक्ति का जो परिचय मिला, वह वास्तव में अद्‌भुत था। अन्ततः दोनों सम्प्रदायों में समझौता हो गया। उसमें भी आप ही का हाथ था। आपने पटना (पाटलि पुत्र) के मन्दिर के जीर्णोद्धार में अच्छी रकम प्रदान की थी। ओसियां (मारवाड़) के मन्दिर में जो ओसवालों के लिए तीर्थ रूप हैं, डूंगरी पर जो चरण थे, उन पर आपने पत्थर की सुन्दर छतरी बनवाई थी।

तीर्थ-सेवा के साथ-साथ आप बराबर समाज-सेवा के लिए तत्पर रहते थे। सेवा का मात्र दिखावा करने की आपने कभी चेष्टा नहीं की। आप प्रबल समाज-सुधारक थे। आपने अपने पारिवारिक विवाह प्रभृति सामाजिक कार्यों में बहुत सुधार किये, जिसके कारण आपसे आपके गाँव के लोग विरोधी हो गये थे परन्तु आपने किसी की कुछ परवाह न की और दिन-ब-दिन सुधार के लिए अग्रसर होते गये। आप किसी पर दबाव देकर सुधार कराने के विरोधी थे।'

'कलकत्ता के ओसवाल समाज में जब देशी-विलायती विवाद बड़ी बुरी तरह से छिड़ा था तब उसे भी आपने बड़ी दूरदर्शिता और प्रेम के साथ निपटा कर समाज का बहुत हित किया। अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के प्रथम अधिवेशन पर जब आपको अध्यक्ष चुना

(सन् 1932 में प्रथम अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के अवसर पर लिया गया चित्र)

गया तब आपने 104 डिग्री बुखार होते हुए कलकत्ता से अजमेर तक रेल में सफर किया और समाज-सेवा से मुख न मोड़ा। इस अवसर पर आपका भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण तथा समयोपयोगी हुआ था।

आपको पुरानी वस्तुओं की खोज के साथ-साथ उनका संग्रह करने का बहुत शौक था। आपने बहुत अर्थ व्यय कर पुराने सुन्दर भारतीय चित्रों, भारत के विभिन्न स्थानों की प्राचीन मूर्तियों, सिक्कों, दियासलाई के लेबलों, हस्तलिखित पुस्तकों आदि का अभूतपूर्व संग्रह किया और उसे कलकत्ते में अपने कनिष्ठ भ्राता की स्मृति में बने हुए कुमारसिंह हाल में प्रदर्शित कर रखा है। अपनी माताजी के नाम पर आपने ई. सन् 1912 में श्री गुलाब कुमारी पुस्तकालय की स्थापना की। आज वह पुस्तकालय जैन ग्रंथों एवं पुरातत्त्व सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के लिए कलकत्ते के ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्षीय शोधार्थियों के लिए एक प्रसिद्ध संस्था बन गया है। आपमें संग्रह की प्रवृत्ति एक जन्मजात संस्कार ही था। छोटी-छोटी चीजों का भी वे ऐसा संग्रह करते थे कि वह कला की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण और दर्शनीय हो जाता था। आपके यहाँ मासिक पत्रों के मुखपृष्ठ का जो संग्रह है वह इस बात का प्रमाण है। इन मुखपृष्ठों को एकत्रित करने में आपने जो परिश्रम अर्थ और समय

व्यय किया उसकी सार्थकता एक साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता, फिर भी इतिहास और कलापारखी विद्वानों के लिए वह संग्रह कम कीमत नहीं रखता। इसी प्रकार विवाह की कुंकुम पत्रिकाओं का संग्रह भी आपने किया था और इससे यह बतला दिया था कि छोटी-छोटी वस्तुएँ भी अपना महत्त्व रखती हैं। आप प्रत्येक वस्तु को बड़े सुन्दर ढ़ंग से सजाकर रखते थे। आपका छपे चित्रों की चित्रावलियों, पुराने टिकटों, कला वस्तुओं, अखबारों की कतरनों, जैन-धर्म सम्बन्धी लेखों तथा समाचारों, सम्राट् की रजत-जयन्ती, राज्याभिषेक तथा शव-जुलूस सम्बंधी प्रकाशनों का संग्रह बड़ा ही अनुपम हुआ है जो अन्य कहीं नहीं मिल सकता।'

आप इंग्लैण्ड की रॉयल एसिएटिक सोसाइटी, इंडिया सोसाइटी, बंगाल एसियेटिक सोसाइटी, बिहार उड़िसा रिसर्च सोसाइटी, बंगीय साहित्य परिषद्, भंडारकर ओरियेन्टल एन्स्टीट्यूट, नागरी प्रचारणी सभा आदि संस्थाओं के माननीय सदस्य थे। बहुत दिनों तक आप मुर्शिदाबाद तथा लालबाग कोर्ट के औनरी मजिस्ट्रेट, अजीमगंज म्युनिस्पैलिटी के कमिश्नर, मुर्शिदाबाद डिस्ट्रिक बोर्ड के सदस्य एवं एडवर्ड कोरोनेशन स्कूल के सेक्रेटरी भी थे। आप आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्ट के औनरी कोरेस्पौन्डेन्ट, जैन श्वेताम्बर एज्यूकेशन बोर्ड, बम्बई, राममोहन लाइब्रेरी, कलकत्ता तथा जैन साहित्य संशोधक समाज, पूना के आजीवन सदस्य थे।

आपने 31 मई, 1936 की संध्या समय कोलकाता में अपनी पार्थिव देह छोड़ महाप्रयाण किया। श्री पूर्णचन्द्र नाहर के विशाल पांडित्य, कठोरतम परिश्रम एवं अपूर्व शास्त्र ज्ञान की प्रशंसा में साहित्याचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी का एक श्लोक उल्लेखनीय है–

विज्ञान विद्या विभव प्रसारमधीत जैनागम शास्त्रसारम्,
चन्द्रं पुराकृत तमोत्कारं, त्वां पूर्णचन्द्रं शिरसा नमामि।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नाहरजी के आदर्श व्यक्तित्व को इन पंक्तियों में अमर कर दिया है–

बहुरत्ना वसुधा विदित और धनी भी भूरि,
दुर्लभ है ग्राहक तदपि पूर्णचन्द्र सम सूरि।

28. सर सिरेमल बाफना (1882–1964)

जन्म : इन्दौर, 1882
पिताश्री : छोगमलजी बाफना
पद : मंत्री (पटियाला स्टेट)
प्रधानमंत्री (होल्कर, बीकानेर, रतलाम, अलवर)
उपाधि : राय बहादुर (1914), वजीरु द्यौला (1930), C.I.E. (1931), Sir (1936)
दिवंगति : 1964, इन्दौर

जिन ओसवालों ने भारत के इतिहास को गौरवान्वित किया उनमें अपनी दूरदर्शिता पूर्ण राजनैतिक प्रतिभा के कारण सिरेमलजी बाफना का नाम अग्रणी है। वे अनेक वर्षों तक इन्दौर (होल्कर) राज्य के प्राईम मिनिस्टर रहे। नाबालिग राजा की शासकी बड़ी नाजुक होती है। षड़यंत्रों से भरपूर स्थितियों में शासन चलाना और राजा का विश्वास जमाये रखना कोई हंसी खेल नहीं होता। सिरेमलजी ने ऐसी शासन एवं जन-सेवा का कीर्तिमान स्थापित किया।

देशी राज्यों के खजानों के व्यवस्थापक सेठ जोरावरमलजी बाफना की मृत्योपरान्त उनके पुत्र चन्दनमलजी उदयपुर रहकर राज्य की सेवा करते रहे। सं. 1924 में उनकी मृत्यु हुई। उनके कनिष्ठ पुत्र छोगमल जी हुए, जिनके द्वितीय पुत्र सिरेमल जी थे। आपके दादा चन्दनमलजी के विवाह में उस समय दस लाख रुपए खर्च हुए थे। इनके परिवार ने जैन तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया तब तेरह लाख रुपए खर्च हुए

श्री छोगमलजी बाफना

थे। सिरेमलजी को उदार वृत्ति विरासत में मिली। बचपन में नौकर-चाकरों की माँग पर वे रुपए मुट्ठियाँ भर-भर कर उछाल दिया करते थे। आपका जन्म सं. 1939 में हुआ। पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आपके गुरु थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा अजमेर में हुई। आपका विवाह बाल-अवस्था में ही मेहता भोपालसिंह जी कटारिया की पुत्री आनन्द कुंवर से सं. 1953 में ही कर दिया गया। आपकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद के म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में सम्पन्न हुई।

संवत् 1961 में आपने एल.एल.बी. प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान पर पास कर इलाहाबाद में वकालत शुरु की। संवत् 1964 में आप होल्कर राज्य के डिस्ट्रिक्ट जज नियुक्त किये गये। सं. 1967 में जब होल्कर दरबार विलायत गये तो बाफना साहब को अपने साथ ले गये। सं. 1972 में आप राज्य के होम मिनिस्टर नियुक्त हुए। छः वर्ष तक बड़ी योग्यता से आपने राज्य का शासन भार संभाला। तदुपरान्त कुछ अरसे तक आप पटियाला राज्य के मंत्री नियुक्त हुए। संवत् 1980 में होल्कर दरबार ने पुनः आपको इन्दौर बुला लिया और राज्य का डिप्टी प्राइम-मिनिस्टर नियुक्त किया। संवत् 1983 में आप प्राइम मिनिस्टर बने। इस तरह अनेक वर्षों तक राज्य का शासन भार आपके ही कन्धों पर रहा।

संवत् 1971 में दिल्ली दरबार के समायोजन पर ब्रिटिश सरकार ने आपको 'राय बहादुर' की पदवी से सम्मानित किया। लन्दन में हुई गोलमेज कान्फ्रेंस में आपने इन्दौर के महाराजा का प्रतिनिधित्व किया। बोलने के बीच टोक दिए जाने पर बाफनाजी बैठ तो गए पर बाद में ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर मेकडोनाल्ड ने लिखित रूप में उनसे क्षमा-याचना की। संवत् 1987 में महाराजा ने आपको 'वजीर-उद्दौला' की पदवी से विभूषित किया। अगली साल ब्रिटिश सरकार ने आपको सी.आई.ई. का सम्मान इनायत किया। संवत् 1992 में 'लीग ऑफ नेशन्स' संस्थान के जेनेवा अधिवेशन में आप भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शरीक हुए।

(लीग ऑफ नेशन्स, जेनेवा के 1935 अधिवेशन का विहंगम चित्र)

संवत् 1993 में ब्रिटिश सरकार ने आपको सर्वोच्च सम्मान 'नाईट' (सर) की उपाधि से सम्मानित किया।

सरकारों में ही नहीं, समस्त प्रजा में आप लोकप्रिय थे। प्रजा का कल्याण आपके लिए सर्वोपरि था। आपकी सूझ-बूझ एवं साहस की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। एक बार खड़ेला गाँव का नत्थूसिंह आपसी झगड़ों में पुलिस के बार-बार सताए जाने से तंग आकर सबसे बड़े हाकिम बाफनाजी की हत्या करने उनके घर पहुँच गया। आपके बख्शी बाग स्थित रहवास पर मिलने वालों के लिए कोई बंदिश नहीं थी। नत्थूसिंह ने मारने के लिए पिस्तौल तान दी। बाफना जी धैर्य से बोले– ''यह काम तो तुम कभी भी कर सकते हो। पहले मुझसे कोई काम हो तो करवा लो, सम्भव हुआ तो कर दूँगा'' नत्थूसिंह झुक गया, पिस्तौल फेंक दी। बाफना जी ने वहीं मामले की फाईल मंगवाकर स्वयं फैसला लिख दिया। आपके सद्प्रयत्नों से इन्दौर का छावनी क्षेत्र, जो ब्रिटिश सरकार के कब्जे में था, पुन: राज्य में शामिल कर दिया गया एवं भारत के वाइसराय के पास इन्दौर राज्य का प्रतिनिधि हर समय रहने लगा। इससे राज्य के विकास में बहुत सहायता मिली। यह अधिकार किसी

अन्य राज्य को प्राप्त नहीं था। इन्दौर में विशाल 'वाटर वर्क्स' के निर्माण कराने का श्रेय आपको ही है। सम्पूर्ण संसार में ऐसी एक-दो योजनाएँ ही क्रियान्वित हुई हैं। इसने आपको चिर स्मरणीय बना दिया। शिक्षा जगत् में आपने राज्य की अभूतपूर्व सेवा कर क्रान्ति ही ला दी। नगर विकास न्यास, इन्दौर की स्थापना कर आपने आधुनिक ढ़ंग से स्नेहलता गंज, तुकोगंज, मनोरमा गंज आदि बस्तियाँ बसाई। देशी रियासतो में बाफना जी ही पहले प्रशासक थे, जिन्होंने सहकारी कानून बनाकर इन्दौर प्रीमियर को-ऑपरेटिव बैंक की स्थापना की।

संवत् 1996 में बाफना जी सेवानिवृत्त हुए। तत्कालीन बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी उन्हें अपनी रियासत का प्रधानमंत्री बनाकर ले गये, जहाँ वे दो वर्ष रहे और बहुत लोकप्रिय हुए। आपने रतलाम और अलवर रियासतों के मुख्यमंत्री पदों पर भी कार्य किया। परन्तु स्वास्थ्य खराब रहने की वजह से संवत् 2004 में पूर्णत: सेवानिवृत्त हो गये।

बाफना जी सौजन्यता और उदारता की प्रतिमूर्ति थे। अनेक विधवाओं, विद्यार्थियों और दीन-दु:खियों की सहायता वे निरन्तर करते रहते थे। अनेक वर्षों तक महाराज की नाबालिगी में राज्य के सर्वेसर्वा और निरन्तर चौदह वर्षों तक प्रधानमंत्री रहते हुए भी जब वे कार्यभर से मुक्त हुए तो आकंठ कर्ज में डूबे थे। कोई और होता तो करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर ली होती। अपनी मृत्यु से एक-दो वर्ष पूर्व बाफना जी ने जैसलमेर स्थित अपनी पैतृक संपत्ति का भी एक ट्रस्ट बना दिया जो अब भी गरीबों, बीमारों एवं असहायों की सहायता करता है। ओसवाल वंश का यह सितारा संवत् 2021 में इन्दौर में अस्त हुआ।

29. जस्टिस फूलचन्द मोघा (1888-1949)

जन्म : सहारनपुर, 1888
पिताश्री : बसंत राय मोघा (श्रीमाल)
पद/उपाधि : राय बहादुर (1936), कश्मीर राज्य कानून व रेवन्यू मंत्री (1938), चीफ जस्टिस, रेवा राज्य
दिवंगति : 1949

न्याय और विधि के क्षेत्र में अखिल भारतीय स्तर पर ख्याति एवं सम्मान अर्जित करने वाले श्रीमाल गोत्रीय श्री फूलचन्द मोघा का जन्म सन् 1888 में सहारनपुर में हुआ। कोलकाता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् 1911 में आपने अलीगढ़ में वकालत शुरु की। अगले वर्ष ही सरकार ने उन्हें मुन्सिफ नियुक्त कया। कानूनी विषयों में उनकी पैठ का उचित सम्मान करते हुए सन् 1924 में वे जज बना दिए गए। सन् 1927 में सरकार ने उन्हें अपना कानूनी सलाहकार नियुक्त किया। सन् 1936 में वे राय बहादुर की पदवी से विभूषित किए गए। सन् 1938 में मोघाजी तात्कालीन महाराज हरिसिंह द्वारा कश्मीर राज्य के कानून एवं रेवेन्यू विभाग के मंत्री बनाए गये, जिस पद पर वे सन् 1942 तक सेवारत रहे। वे सर्वप्रथम भारतीय थे जिन्हें किसी प्रांतीय सरकार का यह अहम विभाग सौंपा गया हो। तदुपरान्त वे रेवा राज्य के हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस नियुक्त हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति पर रेवा राज्य विंध्य प्रदेश का अंग बन गया अत: मोधाजी प्रदेश-हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस बने, जहाँ वे 1949 में मृत्युपर्यंत सेवारत रहे।

आपका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवदान था न्याय और विधि संबंधी एक अनुपम ग्रंथ ''प्लीडिंग्स इन ब्रिटिश इंडिया'' की रचना जिसमें न्यायालयों में व्यवहृत विभिन्न विषयों के दावों एवं जवाबदावों के नमूने संग्रहित हैं। इस ग्रंथ

ने सभी विधिवेत्ताओं की प्रशंसा अर्जित की। इससे पहले किसी भारतीय ने इस विषय पर कलम नहीं चलाई थी। देश के तमाम न्यायालयों में आज भी यह ग्रंथ आदर की दृष्टि से देखा जाता है एवं संदर्भ ग्रंथ की भांति इस्तेमाल किया जाता है। यह अब भी इस विषय की सर्वमान्य उच्चतम पुस्तक मानी जाती है।

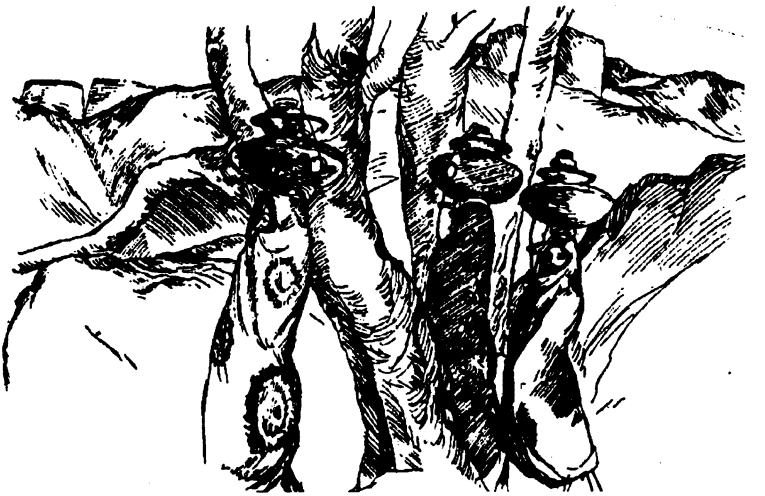

30. श्री वीरचन्द राघवजी गाँधी (1863-1901)

जन्म	:	1863 महुआ ग्राम (भावनगर)
पिताश्री	:	राघवजी गाँधी
शिक्षा	:	बी.ए.
दिवंगति	:	1901, मुंबई

काल की रैती पर जमे कुछ चरण ऐसे होते हैं जो आँधी और तूफान आने पर भी मिटते नहीं, ज्यों के त्यों अमिट रहते हैं। सभ्यताएँ ऐसी विभूतियों के सम्बल पर ही जीवित रहती हैं। सदियों से विश्रुत जैन धर्म को विश्व के पटल पर जीवंत संप्रेषित करने वाले प्रथम पुरुष के रूप में धर्मवीर श्री वीरचन्द राघवजी गाँधी सदैव स्मरणीय रहेंगे।

भावनगर के निकट महुआग्राम के श्रेष्ठि राघवजी गाँधी के घर सन् 1863 में वीरचन्द्र भाई का जन्म हुआ। राघवजी का परिवार व्यावसायिक प्रामाणिकता एवं धर्मपरायणता के लिए प्रसिद्ध था पर लक्ष्मी की कृपा न थी।

वीरचन्द भाई ने सन् 1884 में एलफिंस्टन कॉलेज से बी.ए. की स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण की। वे धनारा जैन समाज के प्रथम स्नातक थे। सन् 1890 में पिता के देहावसान पर इस क्रांतिद्रष्टा ने रूढ़िवादी परम्पराओं को तिलांजलि देकर समाज का मार्गदर्शन किया।

उस समय तक जागीरदारी प्रथा कायम थी। पालीताणा तीर्थ दर्शन के लिए आने वाले जैन यात्रियों को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता था। उन्हीं दिनों विभिन्न जैन समाजों के संगठन तीर्थों की सुरक्षा एवं पशुवध रुकवाने के निमित्त स्थापित ''जैन एशोसियशन ऑफ इंडिया'' के वीरचन्द भाई मंत्री चुने गए। आपके नेतृत्व में संस्था ने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। जैनों की प्रतिनिधि सभा ''आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी'' ने पालीताणा के ठाकुर सूरसिंह से इन कुप्रथाओं को समाप्त करने की

अर्ज की एवं अन्ततः उनके खिलाफ केस करना पड़ा। वीरचन्द भाई की पैरवी से इन कुप्रथाओं का अंत हुआ।

जैनों के प्रमुख तीर्थ सम्मेद शिखर पर अंग्रेज साहबों ने अपने बंगले बनाने की योजना बनाई। यह जानकर वीरचन्द भाई कलकत्ता गए। उन्होंने तीर्थ स्थल सम्बंधी समस्त दस्तावेजों की खोज की एवं उन पर जैन समाज का आधिपत्य सिद्ध किया।

वीरचन्द्र भाई ने अखिल भारतवर्षीय जैन कॉन्फ्रेंस के प्रतिनिधि रूप में सन् 1893 में अमरीका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म परिषद् में भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की तेजस्विता एवं जैन धर्म के वैज्ञानिक तत्त्व चिंतन की सटीक व्याख्या कर विभिन्न धर्मों के विद्वानों को प्रभावित किया था। इस सभा में विभिन्न देशों एवं विभिन्न धर्मों के 3000 से अधिक प्रतिनिधि एकत्र हुए थे, 10000 श्रोताओं की उपस्थिति में 1000 से भी अधिक आध्यात्म एवं दर्शन सम्बंधी गम्भीर शोध-पत्रों का वाचन हुआ था। इस ऐतिहासिक धर्म-परिषद् को स्वामी विवेकानन्द ने भी संबोधित किया था। उनत्तीस वर्ष के युवा विद्वान् वीरचन्द भाई की वाग्धारा ने श्रोताओं को सम्मोहित कर दिया था। इनके ठेट काठियावाड़ी परिवेश पर भारतीयता की छाप थी। अमरीकी अखबारों में उनके व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। इनकी वाणी में मात्र पंडिताई नहीं थी—बोध और साधना सिद्ध हृदय स्पर्शी आकर्षण था। उन्होंने अपने व्याख्यानों में भारत में प्रचाररत ईसाई मिशनरियों की बेबाक आलोचना भी की। वीरचन्द भाई महान राष्ट्रप्रेमी थे। उस समय भारत की आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रता की वकालत करने वाले वे प्रथम मनीषी थे।

उस प्रवास में वीरचन्द भाई ने अमरीका के अनेक नगरों में घूम-घूम कर प्रवचन दिए। वीरचन्द भाई द्वारा संस्थापित "**The school of oriental philosophy**" नामक संस्थान ने भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों का प्रसार करने में अभूतपूर्व योगदान दिया। अनेक अमरीकी नागरिकों ने उनकी प्रेरणा से शाकाहार एवं अहिंसा व्रत अंगीकार किए। शिकागो में उन्होंने "**Society for the Education of women**

in India'' की नींव रखी। इसी यात्रा में उन्होंने इंग्लैंड व अन्य देशों का भी दौरा किया।

इंग्लैंड में जैन धर्म के जिज्ञासु लोगों के लिए उन्होंने ''जैन लिटरेसी सोसाईटी'' की स्थापना की। इस प्रवास के दौरान उन्होंने कुल 535 व्याख्यान दिए। लन्दन के हर्वर्ड वोरन ने वीरचन्द भाई की प्रेरणा से जैन धर्म अंगीकार किया। वीरचन्द भाई के हृदय में करुणा अपार थी। सन् 1896-97 के विदेशी दौरे में एकत्रित हुए रुपये से खरीद कर अनाज का एक पूरा जहाज भारत भेजा था जो यहाँ गरीबों में वितरित हुआ।

सन् 1895 में पूना में आयोजित इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में वीरचन्द भाई ने मुंबई का प्रतिनिधित्व किया। वे ''अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य परिषद्'' में समग्र एशिया के प्रतिनिधि रूप में सम्मिलित हुए।

वीरचन्द भाई के मौलिक एवं प्रवचन साहित्य के 8 प्रकाशित खण्ड हैं–जैन दर्शन, कर्मदर्शन, योग दर्शन, ईसा मसीह, भारतीय दर्शन चयनित व्याख्यान (सभी अंग्रेजी में) एवं राघवाकृत वाणी एवं संवीध ध्यान (गुजराती)। उनके सभी अप्रकाशित कागजात अब श्री महावीर जैन विद्यालय की थाती हैं। उनका वाङ्मय जैनजगत को अत्युत्तम अवदान है।

सन् 1896 में वीरचन्द भाई ने पुन: विदेशों के निमंत्रण पर अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी व फ्रांस का दौरा किया। अनेक जगहों पर उनके भाषण आयोजित किए गए। उन्हीं दिनों लंदन रहकर आपने बैरिस्टरी पास की। दुर्भाग्यवश वहाँ आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। भारत लौटने के कुछ ही दिन बाद सन् 1901 में मात्र 36 वर्ष की अल्पवय में वीरचन्द भाई मुंबई में प्रभु को प्यारे हो गए। उनके देहावसान से जैनसमाज की अपूरणीय क्षति हुई। उल्लेखनीय है कि शिकागो धर्म परिषद् को उनके साथ ही संबोधित करने वाले भारत के महान मनीषी स्वामी विवेकानन्द का भी 40 वर्ष की अल्पायु में सन् 1902 में देहांत हुआ था। जैन समाज का यह दुर्भाग्य है कि वीरचन्द भाई की अपरिमित सेवाओं के स्मरणार्थ हम कोई उपयुक्त संस्थान निर्मित नहीं कर सके।

31. श्री चम्पतराय बैरिस्टर (1872-1942)

जन्म	:	दिल्ली, 1872
पिताश्री	:	लाला चन्द्रभान
दत्तक	:	लाला सोहनलाल
माताश्री	:	पार्वती देवी
दिवंगति	:	करांची, 1942

जैन धर्म की बीसवीं शदी की प्रभावक विभूतियों में विद्या वारिधि श्री चम्पतराय का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने तन-मन-धन से विदेशों में धर्मप्रचार का स्तुत्य कार्य अंजाम दिया। अर्वाचीन युग के दृढ़ संकल्पी एवं श्रद्धाशील जैनों की श्रृंखला की वे स्वर्णिम कड़ी थे।

उन्नीसवीं शदी के उत्तरार्ध में लाला चन्द्रभान दिल्ली आकर बसे। सन् 1872 में लालाजी की सहधर्मिणी पार्वतीदेवी की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। नाम रखा गया–चम्पतराय। माता पिता के परम्परागत जैन संस्कारों में बालक का पालन पोषण हुआ। देव दर्शन, पूजन, शास्त्र वाचन, शाकाहार, रात्रि भोजन निषेध आदि संस्कार सहज ही उन्हें विरासत में मिले। उनके जन्म से पूर्व पार्वती देवी ने तीन बालकों को जन्म दिया था पर वे सभी अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए। अतः एकमात्र संतान चम्पतराय को माता-पिता का अगाध प्यार मिला। मात्र छः वर्ष की वय में माताजी चल बसी। ऐसी हालत में चन्द्रभानजी के अग्रज लाला सोहनलाल ने उन्हें गोद ले लिया। चन्द्रभानजी दिल्ली के श्रीमंतों में अग्रगण्य थे। चम्पतराय की शिक्षा दिल्ली में ही हुई। पूर्व जन्म के पुण्य फल से बालक का देह-सौन्दर्य अपूर्व था। वे बुद्धिशील भी कम न थे। प्रथम श्रेणी में मेट्रिक उत्तीर्ण होने के बाद दिल्ली के प्रसिद्ध महाविद्यालय 'सेंट स्टीफन कॉलेज' में प्रवेश मिल गया। स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण होने पर सन् 1892 में 'बेरिस्टर' शिक्षण हेतु उन्हें इंग्लैंड भेजा गया। सन् 1897 में शिक्षा सम्पूर्ण कर वे भारत लौटे।

सामाजिक रिवाजानुसार मात्र 13 वर्ष की उम्र में ही उनका विवाह दिल्ली बार एसोसिऐशन के अध्यक्ष एवं जैन समाज के सरपंच लाला प्यारेलालजी की सुपुत्री के साथ हो गया था। विधि का विधान कुछ और ही था। वह बालिका मंद बुद्धि एवं पागलपन के दौरों से ग्रस्त थी। कभी ससुराल आई ही नहीं। चम्पतरायजी दृढ़ निश्चयी तो थे ही। उन्होंने विधि के इस विधान को सहर्ष स्वीकार किया एवं आजीवन ब्रह्मचारी रहे। इंग्लैंड में पाँच वर्ष गुजारने से उनकी सोच प्रगतिशील एवं दृष्टि विशाल हो गई थी। वकालत जमने में समय नहीं लगा। जल्दी ही वे नामी वकीलों में गिने जाने लगे। वे अवध उच्च न्यायालय के मुख्य फौजदारी वकील नियुक्त हुए। अपने अध्यवसाय एवं सच्चाई से उन्होंने इस पेशे को गरिमा प्रदान की। वे Uncle Jain नाम से पहचाने जाने लगे।

सन् 1913 में उनके प्रिय चाचा लाला रंगीलाल का देहांत हो गया। इस आकस्मिक अल्प वय की मृत्यु से चम्पतराय को गहरा आघात हुआ। मन की शांति के लिए उन्होंने आध्यात्मिक साहित्य का सहारा लिया। तभी सन् 1913 में आरा निवासी बाबू देवेन्द्र कुमार जी के जैन धर्म विषयक आलेख उनके हाथ आए। उनके अध्ययन से उन्हें समाधान और शांति मिली। यहीं से उनके जीवन ने एक बार फिर करवट ली। सूट-बूट-टाई धारी बैरिस्टर एकाध वर्ष में ही सादे जीवन एवं उच्च विचारों का हामी बन गया। इस आमूलचूल परिवर्तन ने उन्हें संत व धर्म प्रचारकों की श्रेणी में ला खड़ा किया। एक दिन में पचीसों सिगरेट फूँकने वाले युवक ने एकाएक उसका सर्वथा त्याग कर दिया। एकांत मनन, सत्य शोध एवं शांतिमय जीवन उनका ध्येय बन गया। इस समय उनकी उम्र लगभग 40 वर्ष थी। तभीसे जीवन पर्यंत वे जिनवाणी के प्रसार एवं समाज सेवा को समर्पित रहे। श्रावक के व्रतों की धारणा इतनी निष्ठापरक थी कि किंचित मात्र हेर-फेर उन्हें सहन न होता था। अचौर्य, सत्य एवं परिग्रह-परिमाण में वे इतने सतर्क रहते थे कि लोग आश्चर्यचकित रह जाते। लोग उन्हें सन्तान के लिए फिर विवाह करने व पुत्र गोद लेने की सलाह देते। चम्पतराजजी का जवाब होता—''मनुष्य सन्तति से नहीं, अपने कर्म से महान् बनता है।'' उन्होंने अपनी सम्पत्ति धर्म प्रसार में

नियोजित करने एवं सत्साहित्य प्रकाशित करने के लिए एक ट्रस्ट बना दिया। समाज ने उन्हें ''जैन दर्शन दिवाकर'' उपाधि से विभूषित किया। सन् 1926 में उन्होंने अर्थोपार्जन की प्रवृत्तियाँ सर्वथा त्याग दी। सन् 1923 में जब परम्परावादी ''दिगम्बर जैन महासभा'' ने उनकी उदार नीतियों के अनुरूप सुधार करना अस्वीकार कर दिया तो आपने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् की स्थापना की एवं सदैव उससे जुड़े रहे।

सम्मेद शिखर तीर्थ की रक्षार्थ उनका योगदान, दिगम्बर मुनियों के सार्वजनिक विहार की संवैधानिक स्वीकृति, पुरातत्त्व विषयक आवश्यक कानूनी सहमति वगैरह अनेक धर्म प्रभावक कार्यों में सदैव उनका सक्रिय सहयोग रहा। उन्होंने स्वयं विपुल साहित्य सर्जन किया। उनके Cosmology : Old & New; Fundamentals of Jainsim; Key to knowledge; Householders Dharma आदि ग्रंथ बहुत लोकप्रिय हुए। काशी के धर्म महामंडल ने उन्हें 'विद्या वारिधि' की उपाधि से सम्मानित किया। लंदन में सर्वप्रथम 'जैन पुरस्तकालय' संस्थापित करने का श्रेय उन्हें ही है। विदेशों के अनेक ग्रंथागारों को उन्होंने महत्त्वपूर्ण जैन साहित्य भेंट स्वरूप भिजवाया।

सन् 1960 में कार्याधिक्य से उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। उस समय वे लंदन में थे। उनकी उत्कट इच्छा भारत में ही देह त्याग करने की थी। अत: वहाँ ईलाज कराने से भी मना कर दिया। भारत आने पर मुंबई व दिल्ली में उपचार हुआ, अंत में करांची पधारे। वहीं सन् 1942 में उन्होंने देह त्याग दिया। जैन धर्म एवं समाज के लिए उनका स्वार्थ त्याग व आत्म बलिदान अनुकरणीय है।

32. बाबू तखतमल जैन (1894-1976)

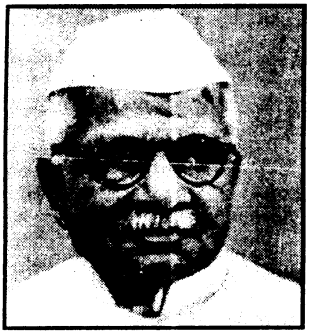

जन्म : गंज बासौदा, 1894

पिताश्री : लूणकरणजी जैन

पद/उपाधि : मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

दिवंगति : 1976

आधुनिक भारत के निर्माण में जिस ओसवाल श्रेष्ठि ने प्रमुख भूमिका निभाई वे थे बाबू तख्तमल जैन। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के महामंत्री पद को सुशोभित करने के साथ ही आप नवीन मध्यप्रदेश के गठन एवं उत्तरोत्तर विकास के प्रेरणास्रोत रहे।

आपका जन्म सं. 1951 में गंजबासौदा (भेलसा) के प्रतिष्ठित जालोरी खानदान में हुआ। मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने जालोरी गोत्र को ओसवालों के 18 मूलगोत्रों में से एक कुलहट गोत्र की शाखा माना है। इसमें कोई शक नहीं कि इनके पूर्वज जालौर से प्रत्यावर्तन के कारण ही जालौरी कहलाए। सेठ खुशालचन्द अरारिया से रीवाँ आकर बसे। उनके पौत्र ताराचन्द रींवा से भेलसा आये। उनके पौत्र लूनकरण जी ने अपने अध्यवसाय से भेलसा में व्यापार एवं जमींदारी स्थापित की। वे बड़े उदार एवं लोकप्रिय थे। कहते हैं एक मृत्युभोज में उन्होंने अछूतों (मेहतरों) को सोने की एक-एक सींक लगे पत्तलों में लड्डू जलेबी का भोजन कराया था।

सेठ लूनकरण जी की एकमात्र संतान थे-बाबू तख्तमल। भेलसा में ननिहाल में ही आपकी शिक्षा सम्पन्न हुई। सं. 1979 में कानून के स्नातक बनकर आपने बासौदा में निजी प्रैक्टिस शुरु की। एक यशस्वी नेता एवं विधिवेत्ता के रूप में आपकी शोहरत बढ़ती गई। पैतृक व्यवसाय भी विस्तृत होता गया। अत: पूरा परिवार भेलसा आ बसा। आपके विधिक ज्ञानके कारण ग्वालियर राज्य की सिंधिया सरकार के मजलिस-ए-आम और मजलिस-

ए-खास (राज्य की कानून बनाने वाली सार्वभौम सभा) के आप वर्षों तक सदस्य रहे। सं. 1996 में आप भेलसा नगरपालिका के प्रथम अशासकीय अध्यक्ष चुने गये। सिंधिया सरकार ने स्वतंत्रता के पूर्व ही सं. 1997 में आपको ग्वालियर रियासत में ग्राम सुधार एवं स्थानीय स्वशासन विभाग का मंत्री नियुक्त किया।

सन् 42 के स्वतंत्रता आन्दोलन के समय आप त्यागपत्र दे शासन से अलग हो गये। संवत् 2005 में स्वतंत्रतोपरान्त प्रदेश में जब प्रथम काँग्रेस मंत्रिमण्डल बना तो बाबूजी अर्थ मंत्री नियुक्त हुए। आपने मध्य भारत शासन के अर्थ विभाग का पुनर्गठन किया। सं. 2007 में आपने मध्य भारत के मुख्यमंत्री पद पर शपथ ग्रहण की एवं एक ऐसे युग का सूत्रपात किया जिसे मध्यभारत का स्वर्णयुग कहा जाता है। पं. जवाहरलाल नेहरू आपकी शासन क्षमता से विशेष प्रभावित थे। राज्य में पंचवर्षीय योजनाओं के सुनियोजित क्रियान्वयन का श्रेय बाबूजी को ही है। सं. 2009 के आम चुनाव में बासौदा विधानसभा क्षेत्र से चुनाव हार जाने पर भी समस्त काँग्रेस विधायक दल ने आपको नेता चुनकर अपनी आस्था प्रकट की। सं. 2012 में आप चुनाव जीते और फिर से मुख्यमंत्री पद ग्रहण किया। यह काँग्रेस हाईकमान की बाबूजी की योग्यता एवं नेतृत्व क्षमता में आस्था का सूचक था। सं. 2013 में पुनर्गठित हो मध्य प्रदेश राज्य बना तो पं. रविशंकर शुक्ल मुख्यमंत्री बने। बाबूजी इस मंत्रिमण्डल में वाणिज्य उद्योग एवं कृषि मंत्री बने। शुक्लजी के निधन के बाद डॉ. कैलाशनाथ काटजू के मंत्रिमण्डल में भी आप पुन: उन्हीं विभागों के मंत्री रहे एवं राज्य विकास के लिए सदा क्रियाशील रहे। सं. 2015 में केन्द्रीय नेतृत्व ने आपकी बहुमुखी प्रतिभा का सम्मान करते हुए आपको अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का महामंत्री नियुक्त किया। सं. 2017 में वे मध्यभारत खादी संघ के अध्यक्ष चुने गये। सं. 2019 में राज्य के मंडलोई मंत्रिमण्डल में बाबूजी को पुन: योजना, विकास, विद्युत् एवं सिंचाई विभाग का मंत्रित्व सौंपा गया। किन्तु राजनैतिक संघर्ष एवं सत्ता की राजनीति आपको रास नहीं आई। सं. 2020 में आपने सत्ता की राजनीति से विदा ले ली। सं. 2024 के आम चुनाव के पूर्व आपने काँग्रेस पार्टी ही छोड़ दी।

बाबूजी विदिशा की राजनैतिक एवं सांस्कृति चेतना के प्रकाश स्तम्भ थे। उनका बहुआयामी व्यक्तित्व राज्य विकास के हर क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ गया। दलितों, आदिवासियों एवं किसानों के तो वे मसीहा ही थे। खादी, ग्रामोद्योग, गोसेवा एवं हरिजनोद्धार के कार्यों में वे सदा सेवारत रहे। राज्य की अनेक शिक्षण संस्थाओं के वे अध्यक्ष/उपाध्यक्ष एवं संस्थापक थे। सबसे बढ़कर था उनका सबके प्रति सौहार्द्र, सौजन्य और स्नेह। सं. 2033 में यह निरन्तर गतिशील व्यक्तित्व सदा के लिए सो गया।

आपके सुपुत्र श्री राजमल जी विधि अधिवक्ता हैं। आपने भी विदिशा नगरपालिका का अध्यक्ष पद सुशोभित किया है। प्रदेश की विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों में आपका सदा सराहनीय योगदान रहा है। आप राष्ट्रीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य एवं विदिशा जिला काँग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं।

33. डॉ. मोहनसिंह मेहता (1895-1985)

जन्म	: 1895
पिताश्री	: जीवनसिंह मेहता
पद/उपाधि	: मुख्यमंत्री (मेवाड़ राज्य)
भारत के राजदूत	: हॉलैण्ड, पाकिस्तान, स्वीट्जरलैण्ड
भारतीय प्रतिनिधि	: संयुक्त राष्ट्र संघ
पद्मविभूषण	: 1969
दिवंगति	: 1985

शिक्षा जगत में नये कीर्तिमान संस्थापित करने वाले एवं विदेशों में भारतीय मनीषा की गरिमा का बोध कराने वाले डॉ. मोहनसिंह मेहता का जन्म संवत् 1953 (सन् 1895) में हुआ। आपके पूर्वज मेवाड़ शासन में उच्च पदासीन रहे। आपके पिता श्री जीवनसिंह उच्च शिक्षा के हामी थे। चाचा श्री जसवंतसिंहजी स्टेट के हाकिम एवं उच्चतम न्यायालय के सदस्य रहे। उनके क्रांतिकारी विचारों का मोहनसिंहजी पर बहुत प्रभाव पड़ा। बचपन से ही आदर्शवादिता उनके चरित्र की विशेषता रही। अजमेर एवं आगरा में स्नातकीय शिक्षा समाप्त कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. एवं एल.एल.बी. की उपाधियाँ हासिल की और प्राध्यापक बन गये। किन्तु प्राध्यापिकी से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वे युवकों के चरित्र एवं संस्कार निर्माण को प्राथमिकता देते थे। सन् 1920 में वे स्काउट-कमिश्नर नियुक्त हुए। पारिवारिक कारणों से मेवाड़ आने के बाद वे कुम्भलगढ़ में जिलाधिकारी एवं उदयपुर में राजस्व अधिकारी रहे। सन् 1925 में पत्नि का देहांत हो गया। आपने जीवन पर्यंत दूसरा विवाह न करने का निश्चय किया और उच्च शिक्षार्थ लंदन चले गए।

सन् 1927 में श्री मेहता पी.एच-डी. की उपाधि एवं बैरिस्ट्री का प्रशिक्षण पूर्ण कर भारत लौटे। इंग्लैंड में रहते हुए उन्हांने वहाँ के कुछ श्रेष्ठ स्कूलों का निरीक्षण किया। भारत लौट कर सन् 1931 में उन्होंने उदयपुर में 'विद्याभवन' की नींव रखी। कालांतर में वहाँ बुनियादी शाला, शिक्षक महाविद्यालय, कला संस्थान तथा ग्राम विद्यापीठ खुले। विद्या भवन को शांति निकेतन के समकक्ष वृहद् शिक्षा संस्थान बना देने का श्रेय श्री मेहता को ही है।

राज्य सेवा में राजस्व अधिकारी की हैसियत से वे गाँव-गाँव का दौरा करते थे और किसानों के साथ गहरी सहानुभूति के कारण अत्यंत लोकप्रिय हो गये थे। बाद में मेवाड़ राज्य के मुख्यमंत्री बनने पर भी उन्होंने सर्वदा जनहित को अपना लक्ष्य रखा। सन् 1937 से 1940 एवं 1944 से 1946 तक वे बांसवाड़ा राज्य के प्रधानमंत्री रहे।

(मेवाड़ के महाराणा श्री मेहता एवं अन्य)

देश स्वतंत्र होने के बाद श्री मेहता देशी राज्यों की ओर से संविधान सभा के सदस्य मनोनीत हुए। भारत सरकार ने उनकी प्रशासनिक क्षमता का सम्मान करते हुए उन्हें विदेशों में राजदूत नियुक्त किया। सर्वप्रथम सन् 1949 में उन्हें नीदरलैण्ड का राजदूत नियुक्त किया गया। लगातार चौदह वर्ष तक हालैंड, पाकिस्तान तथा स्विट्जरलैंड में भारतीय राजदूत रहकर उन्होंने देश का गौरव बढ़ाया। सन् 1958 से

(पाकिस्तान में सुश्री फातिमा जिन्ना, राजदूत श्री मेहता एवं अन्य)

1960 तक उन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का सदस्य बनाकर भेजा गया। यह उनकी राज्य सेवा का शीर्ष बिन्दु था।

(संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि श्री मेहता एवं अन्य)

अपनी उत्कट इच्छा के अनुरूप सन् 1960 से 1966 तक वे राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति रहकर उसे भारत का प्रसिद्ध शिक्षण

संस्थान बनाने में सफल हुए। वहाँ से सेवानिवृत्त होकर वे उदयपुर आ गए। बहत्तर वर्ष की आयु में भी अपने यशस्वी कृतित्व से संतुष्ट होकर विश्राम करना उन्हें रुचा नहीं। जिस विद्याभवन की स्थापना उन्होंने सन् 1931 में की थी, उसका सर्वांगीण विकास उनके जीवन का ध्येय बन गया। आपने सेवा मन्दिर ट्रस्ट की स्थापना कर अपने जीवन की लगभग समस्त बचत ट्रस्ट को प्रदान कर दी। आज सेवा मन्दिर ग्राम सेवा के क्षेत्र में देश की एक प्रमुख संस्था है जिसका कार्यक्षेत्र लगभग 350 गाँवों तक फैल गया है। इसमें 104 पूर्णकालीन एवं 370 अंशकालीन कार्यकर्त्ता सेवा भाव से कार्यरत हैं। सन् 1961 से ही श्री मेहता अखिल भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के अध्यक्ष रहे। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से अपढ़ ग्रामीणों में जागृति लाने का देशव्यापी अभियान चलाया। सेवा मन्दिर को इस हेतु फोर्ड फाउन्डेशन से पचास हजार डालर की सहायता मिली। कृषि सुधार, ग्रामोद्योग, आदिवासियों के विकास के लिए ग्राम संगठन एवं महिला मंडल का संस्थापन इस योजना के अंग थे। लोकनायक जयप्रकाश नारायण द्वारा स्थापित लोक समिति संगठन के भी वे अध्यक्ष रहे।

सन् 1969 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्म विभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। साराक्यूज विश्वविद्यालय ने उन्हें विलियम टोली एवार्ड दिया। उदयपुर विश्वविद्यालय ने सन् 1976 में उन्हें 'साहित्य वारिधि' पुरस्कार से नवाजा। सन् 1979 में वे नेशनल फेडनेशन एवं युनेस्को एसोसियेशन के सदस्य मनोनीत हुए। सन् 1982 में राजस्थान विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की उपाधि देकर सम्मानित किया।

देश विदेश में नागरिकों पर होने वाले अत्याचारों एवं दमन के विरुद्ध कार्य करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ''एमनेस्टी इंटरनेशनल'' ने श्री मेहता को भारतीय संभाग का उपाध्यक्ष मनोनीत किया। सत्यनिष्ठा, निर्भीकता एवं अदम्य आशावाद के धनी, दलित व गरीब जनता की सेवा में समर्पित श्री मेहता सन् 1985 में उदयपुर में स्वर्गस्थ हुए।

34. डॉ. पं. सुखलाल संघवी (1880-1978)

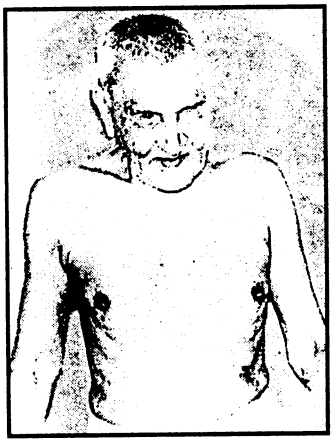

जन्म : लिमली (सौराष्ट्र) 1880
पिताश्री : संघजी तलणी धाकड़ (धर्कट, श्रीमाली)
माताश्री : माणेक बहन
पद/उपाधि : न्यायाचार्य, D. Lit., पद्मभूषण (1974), विद्या वारिधि (1975)
सर्जन/सम्पादन : 'सन्मति तर्क', 1920
दिवंगति : अहमदाबाद, 1978

बीसवीं शदी के दृष्टिविहीन द्रष्टा (प्रज्ञाचक्षु), सरस्वती के उपासक एवं आधुनिक भारत के ज्ञानाकाश के उज्वल नक्षत्र थे–पं. सुखलालजी संघवी। सम्पूर्णत: भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की सेवा-साधना को समर्पित बहुमुखी प्रतिभा के धारक पंडितजी देश के सर्वोत्तम संस्कृत विद्वानों में गिने जाते थे। 'सन्मति तर्क' जैसे प्राचीन जैन ग्रंथ का वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादन कर उन्होंने भारतीय मनीषा का गौरव बढ़ाया। इस ग्रंथ की प्रत्येक पाद टिप्पणी में उनके अगाध पांडित्य के दर्शन होते हैं।

आपका जन्म श्रीमाली बीसा वंश के धाकड़ (धर्कट) गौत्रीय संघवी कुल में सौराष्ट्र के एक छोटे से ग्राम लिमली में 8 दिसम्बर, सन् 1880 में हुआ। पिताश्री संघजी धाकड़ छोटे मोटे व्यवसायी थे। माता माणेक बहन धर्मपरायण महिला थी। बालक जब मात्र 4 वर्ष का हुआ कि माता गुजर गई। माँ की अनुपस्थिति में उसका लालन-पालन दूर के सम्बंधी सायला निवासी मूलजी काका ने किया। मात्र 7 वर्ष की वय में ही बालक ने दूकान पर बैठना शुरु कर दिया। वे साहसप्रिय थे एवं जिज्ञासु वृत्ति से भरपूर थे। बचपन से ही श्रमप्रिय थे। कौटुम्बिक कार्यों में हाथ बंटाना उनके स्वभाव में था। बाजार जाना, अनाज तहखानों में भरना

आदि सभी कार्यों में वे पारंगत थे। इसके साथ बचपन की रमत व खेलों में उन्हें सहज रस मिलता था। गेंद-दड़ो, भ्रमरदड़ो, नव कांकरी, कबड्डी एवं दौड़-कूद आदि ग्रामीण खेलों में रुचि लेते थे। घुड़सवारी एवं तैराकी का भी शौक था। बचपन से वे दैनन्दिन धार्मिक क्रियाओं का पालन करते। मात्र 15 वर्ष की अवस्था में बालक का विवाह सम्बंध तय हो गया। परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। सन् 1896 में उन्हें भयंकर चेचक निकली, जिसमें दुर्भाग्य से दोनों आँखें जाती रही। अब तो विवाह का प्रश्न ही नहीं रहा, न दूकान पर बैठ सकते थे। यही स्थिति उनके लिए वरदान बन गई। सन् 1898 में दीपचन्दजी महाराज से सम्पर्क हुआ। जैन शास्त्रों के अध्ययन एवं स्तवनों के परायण में उनका मन रमने लगा। संस्कृत भाषा के माधुर्य से वे आकर्षित हुए। संस्कृत का विशाल साहित्य भंडार और जैन आगम की संस्कृत टीकाएँ उनकी साहित्य साधना का सोपान बनी।

सन् 1902 में आचार्य विजय धर्म सूरिजी ने काशी मे ''यशो विजय जैन पाठशाला'' की स्थापना की। पंडितजी काशी चले गये एवं पाठशाला में दाखिला ले लिया। वहाँ उन्हें जैन विद्वानों एवं साधुओं का साहचर्य मिला। पाँच वर्षों के सतत अध्यवसाय से आप न्याय, व्याकरण, काव्य अलंकार आदि विविध विद्याओं में निष्णात हो गये। सन् 1906 में पंडितजी ने सम्मेद शिखर तीर्थ की यात्रा की। सन् 1916 में महात्मा गाँधी के साथ साबरमती आश्रम में रहे। इस बीच निरंतर साहित्य साधना चलती रही। शुरु में आपका ध्यान अवधान विद्या एवं मंत्र-तंत्र सिद्धि की ओर गया परन्तु जल्दी ही उससे विमुख हो गए एवं अन्तर्प्रज्ञा की ओर झुके। दृढ़ संकल्प शक्ति ने गहन अंधकार को ज्योतिर्मय कर दिया।

आपने ज्ञान की खोज में मिथिला और आगरा जाकर संस्कृत और प्राकृत का गहन अध्ययन किया एवं 'न्यायाचार्य' की उपाधि अर्जित की। तभी पं. बालकृष्ण मिश्र बनारस ओरिएंटल कॉलेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए एवं पंडितजी वहाँ भारतीय वांगमय एवं जैनदर्शन के आचार्य बने। तदुपरांत गाँधीजी के आह्वान पर आपने गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में

सेवारत रहकर पं. बेचरदास दोशी के सहयोग से सन् 1920 में जैनदर्शन के अभूतपूर्व ग्रंथ 'सन्मति तर्क' का सम्पादन किया। डॉ. हरमन जेकोबी ने इसे अद्वितीय ग्रंथ बताया है। सन् 1933 से पं. मदनमोहन मालवीय के अनुरोध पर आप बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के दर्शन विभाग के प्राचार्य बने जहाँ 1944 तक आपने दर्शन साहित्य के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए। आपने करीब 26 महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का सम्पादन किया जिनमें सिद्धसेन दिवाकर का 'नयायावतार' उमास्वाति का 'तत्त्वार्थ सूत्र' और हेमचन्द्राचार्य का 'प्रमाण मीमांसा' मुख्य हैं। अनेकानेक शोध-प्रबंध आपके निर्देशन में लिखे गए।

''प्रमाण मीमांसा'' ग्रंथ में दी टिप्पणियों एवं प्रस्तावना का अंग्रेजी भाषांतर भी हुआ जो सन् 1961 में ''**Advanced Studies in Indian Logic and Metaphysics**'' नाम से प्रकाशित हुआ। यशोविजय जी कृत ''जैन तर्कभाषा'' ग्रंथ टिप्पणियों एवं प्रस्तावना सहित सम्पादित किया। चार्वाक दर्शन के एकमात्र ग्रंथ ''तत्त्वोपप्लवसिंह'' का टिप्पणियों सहित सम्पादन कर सन् 1940 में प्रकाशित किया। बौद्ध दर्शन के धर्मकीर्ति कृत 'हेतु बिन्दु' ग्रंथ का भी आपने सम्पादन किया जो सन् 1949 में गायकवाड़ सिरीज में प्रकाशित हुआ।

लेखन, सम्पादन के साथ ही अध्यापन भी पंडितजी की उपासना का अंग रहा। वे विभिन्न दर्शन एवं आध्यात्म विषयों पर व्याख्यान देते रहे। 'भारतीय तत्त्व विद्या' पर सन् 1958 से 1960 के बीच गुजराती एवं हिन्दी में दिए उनके व्याख्यानों का अंग्रेजी रूपान्तरण ''**Indian Philosophy**'' ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है। 'आत्मा-परमात्मा' विषयक उनके व्याख्यान सन् 1956 में ''आध्यात्म विचारणा'' नाम से प्रकाशित हुए। 'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' विषयक उनके व्याख्यान सन् 1966 में इसी नाम से प्रकाशित हुए। आपके अन्यान्य शोधपरक निबन्धों का संग्रह ''दर्शन एवं चिंतन'' नाम से तीन खंडों में प्रकाशित हुआ।

वे क्रांति द्रष्टा एवं सत्य शोधक थे इसीलिए पाश्चात्य मनीषियों ने उन्हें ऋषि तुल्य माना। 1957 में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता

में आपका अभिनन्दन किया गया। सन् 1956 में गुजरात युनिवर्सिटी ने आपका D. Lit. की मानद उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1967 में सरदार पटेल यूनिवर्सिटी वल्लभविद्या नगर, गुजरात ने भी D. Lit. की उपाधि से आपका सम्मान किया। सन् 1974 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1975 में वे 'विद्यावारिधि' के विरुद से विभूषित हुए। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में वे महाप्रज्ञ थे। 2 मार्च, 1978 के दिन अहमदाबाद में पंडितजी ने इस संसार से विदा ली। भारतीय दर्शन-संसार एवं समग्र जैन समाज इस प्रज्ञाचक्षु मनीषी को इनकी अप्रतिम सेवाओं के लिए हमेशा याद रखेगा।

35. श्री सुखसम्पतराज भंडारी (1893-1961)

जन्म : भानपुरा, 1893
पिताश्री : जसराज जी भंडारी
सर्जन : ओसवाल जाति का इतिहास, भारत के देशी राज्य, भारत दर्शन, तिलक दर्शन, राजनीति विज्ञान, अंग्रेजी-हिन्दी कोष
दिवंगति : 1961, इन्दौर

शब्द-ब्रह्म की उपासना में लीन रहने वाले भंडारी गोत्रीय श्री सुख सम्पतराज का जन्म भानपुरा (मध्यप्रदेश) में सन् 1893 में हुआ। आपके पिता का नाम जसराज जी था। जसराज जी मात्र दस वर्ष की अवस्था में कच्ची सड़क से ऊँट की सवारी कर जैतारण (मारवाड़) से भानपुरा (इन्दौर) आए एवं अपने नाना जीतमलजी कोठारी के निरीक्षण में दूकान का काम देखने लगे। सन् 1900 में आपने ''जसराज सुखसम्पतराज'' नाम से स्वतंत्र फर्म स्थापित की। भानपुरा में इस फर्म की अच्छी प्रतिष्ठा थी। जसराज जी का देहांत सन् 1924 में हो गया।

सुखसम्पतराज जी आपके सबसे बड़े पुत्र थे। मेधावी तो थे ही, हिन्दी में कुल 22 ग्रंथ लिखे। ''भारत के देशी राज्य'' ग्रंथ पर इन्दौर दरबार ने आपको 15 हजार रुपए का वृहद् पुरस्कार दिया। बीस बरस की वय में आपने 'वेंकटेश्वर समाचार' का सम्पादन भार सम्भाला। फिर सद्धर्म प्रचारक (1914), 'पाटलीपुत्र' (1915), मल्हारि मर्ताण्ड (1916), नवीन भारत (1923) एवं किसान (1926) आदि विभिन्न पत्रिकाओं का सम्पादन-प्रकाशन संभाला। आपने विभिन्न विषयों पर लगभग 25 ग्रंथ लिखे जिनकी विद्वानों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। लाला लाजपतराय ने आपके 'भारत दर्शन' ग्रंथ की एवं महामना मदन मोहन मालवीय ने आपके 'तिलक दर्शन' ग्रंथ की भूमिका लिखी थी। आपकी

'राजनीति विज्ञान' पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा समादृत हुई एवं 'भारत के देशी राज्य' पुस्तक राजस्थान में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत एवं इन्दौर से पुरस्कृत हुई। आपने जिस 'अंग्रेजी हिन्दी कोष' (20000 शब्द) की दस खण्डों में रचना की थी उसे डॉ. वुलनर, डॉ. गंगानाथ झा, सर पी.सी. राय एवं डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी ने भारतीय साहित्य का 'अटल स्मारक' कहकर सराहा था। इसके अतिरिक्त बाम्बे क्रानिकल, पायोनियर, ट्रिब्यून आदि प्रतिष्ठित पत्रों ने इसे भारतीय साहित्य का सबसे बड़ा प्रयत्न माना। प्रताप, भारत, स्वतंत्र, भारतमित्र, अभ्युदय आदि बीसों राष्ट्रीय पत्रों में इस ग्रंथ के महत्त्व एवं उपयोगिता पर सम्पादकीय लिखे।

आप तात्कालीन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। सन् 1920-29 के स्वतंत्रता आन्दोलन में आपने सक्रिय भाग लिया था। इन्दौर में देशी राज्यों की पहली कांग्रेस की स्थापना का श्रेय भी आपको है। आप उसके संयुक्त मंत्री चुने गए।

आपने सन् 1934 में 'ओसवाल जाति का इतिहास' लिखकर अजमेर से प्रकाशित करवाया। सालों अध्यवसाय व शोध संलग्न रहकर यह भागीरथ कार्य सम्पन्न करने के लिए समाज आपका चिर ऋणी रहेगा। भारत के दूरंदाज प्रदेशों में प्रवासित ओसवाल परिवारों के विवरण संकलन करना आसान काम न था। अत्यधिक लेखन श्रम से स्वास्थ्य पर असर पड़ा। सन् 1961 में इलाज हेतु आप इन्दौर गए। वहीं नवम्बर 1961 में आपका निधन हुआ।

भंडारी जी की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने वाली उनकी सुपुत्री मन्नू भंडारी हिन्दी की यशस्वी कथाकार हैं। उनके पति राजेन्द्र यादव ने हिन्दी कथा को नये आयाम दिए हैं।

36. श्री अर्जुनलाल सेठी (1880-1941)

जन्म : 1880, जयपुर

पिताश्री : जवाहरलालजी सेठी

माताश्री : पांचो देवी

दिवंगति : 1941, अजमेर

राजस्थान में स्वतंत्रता आन्दोलन के पितामह और जैन जागरण के अग्रदूत थे श्री अर्जुनलालजी सेठी।

सेठीजी के पितामह भवानीदासजी दिल्ली रहते थे। मुगल सल्तनत के अंतिम बादशाह बहादुरशाह 'जफर' का शासनकाल था। भवानीदासजी के शहजादों के साथ मैत्री सम्बंध थे। सन् 1845 में उन्होंने एक स्वप्न देखा—स्वप्न में कोई उनसे दिल्ली छोड़ने का आग्रह करने लगा। तब तक प्रथम पत्नि और बच्चे का निधन हो गया था। वे दिल्ली छोड़कर जयपुर आ बसे। उनकी द्वितीय पत्नि से जवाहरलालजी का जन्म हुआ। वे जयपुर राज्य के चोमू ठिकाने के कामदार और कौंसिल के सेक्रेटरी नियुक्त हुए।

जवाहरलालजी की धर्मपत्नि की रत्नकुक्षि से सन् 1881 में अजुर्नलालजी का जन्म हुआ। सन् 1902 में उन्होंने लखनऊ से स्नातकीय परीक्षा पास की। वहीं उनमें समाज सेवा के अंकुर उत्पन्न हुए। ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद घर पर भोजन कराने की भावना से बाहर से आए जैन परीक्षार्थियों को खोजते फिर रहे थे। सेठीजी के हृदय पर इस वात्सल्य भाव का बहुत असर हुआ। उसी वर्ष पिताजी की मृत्यु से उन्हें चोमू ठिकाने का कामदार पद संभालना पड़ा। वहाँ आए एक अंग्रेज अफसर के 'गँवार' कह देने से सेठीजी के हृदय पर अंग्रेजी राज्य-द्रोह का प्रथम इंजेक्शन लगा। ठिकाने की बेगार प्रथा और किसान-मजदूरों

का शोषण देखकर दो ही वर्ष में सेठीजी ने कामदारी से त्याग-पत्र देकर खुले आकाश में स्वच्छंद साँस ली।

सेठीजी अंग्रेजी फारसी, संस्कृत, उर्दू अरबी. हिन्दी एवं पाली भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। जैन दर्शन एवं गीता के अधिकारी विद्वान एवं व्याख्याता थे। कुरान के ऐसे जानकर थे कि मुसलमान भी आयतों का अर्थ पूछने आते। बाल्यावस्था से ही वे सभाओं में व्याख्यान देने एवं नाटकों में अभिनय करने में पारंगत हो गए थे। मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में एक पाठशाला खोली, 'जैन प्रदीप' पत्र (हस्तलिखित) निकाला और 'विद्या प्रचारिणी' सभा स्थापित की। तभी से आपके लेख 'जैन गजट' में छपने लगे थे। कामदार होते हुए भी सेठीजी ने सात आदमियों की एक गुप्त समिति बनाई। समिति के सदस्यों को भारत माँ और जैन समाज की सेवा में प्राण तक न्यौछावर करने का व्रत लेना पड़ता था। सन् 1904 में वे रावलपिण्डी के जैन समाज के निमंत्रण पर वहाँ गए और पहले पहल अंग्रेजी में व्याख्यान दिया। सन् 1905 में वे एक डेपूटेशन लेकर समूचे मध्य प्रांत में घूमे और महासभा के लिए फण्ड इकट्ठा किया। सामाजिक सुधारों के लिए अलख जगाई। वे भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी रास बिहारी बोस की विप्लवी संस्था की राजपूताना शाखा के सूत्रधार थे।

सेठीजी के व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण था। छः फीट लम्बा कद, चौड़ा सीना, गेहुँआ रंग, सूतवाँ नाक, चमकीली आँखें। उस पर खादी का कुरता, सर पर गाँधी टोपी।

सन् 1907 में उन्होंने जैन वर्द्धमान विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय ने धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रेत निस्पृही देशभक्त स्नातक पैदा किए। सन् 1914 में ही अंग्रेजी सरकार को इससे अमंगल की आशंका होने लगी इसलिए उन्हें जेल में डाल दिया। लोकमान्य तिलक, ऐनीबीसेंट आदि प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं ने भरसक प्रयत्न किए पर सरकार टस से मस न हुई। जेल में जिन-आराधना की छूट न होने से उन्होंने भोजन त्याग दिया एवं सात रोज तक निराहार रहे। अंत में सरकार को

झुकना पड़ा। जेल में ही जिन-बिम्ब की प्रतिष्ठा हुई, तब उनका उपवास समाप्त हुआ। समग्र भारत में उन्हें ''भारत का जिन्दा मेक्स्वनी' कहकर उनका अभिनन्दन किया गया। भारत के प्रमुख समाचार पत्रों ने उनकी जेल से रिहाई के लिए प्रबल आन्दोलन किया। सन् 1917 के काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया गया। छः वर्षों के बंदी जीवनके बाद सन् 1920 में वे रिहा किये गये। पूना स्टेशन पर लोकमान्य तिलक ने उनके लिए आयोजित अभूतपूर्व स्वागत-समारोह में उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—''ऐसे महान् त्यागी, देशभक्त एवं कठोर तपस्वी का स्वागत करते हुए महाराष्ट्र अपने को धन्य समझता है।''

सन् 1920 में गाँधीजी जब नागपुर गए तो महाराष्ट्रियन नेता नहीं चाहते थे कि उनका जुलूस निकाला जाए। घोर विरोध के बावजूद सेठीजी के समझाने-बुझाने पर जुलूस निकल सका। वे गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन की धुरी बन गए। उन्हें फिर कैद कर लिया गया। सन् 1922 में मुक्त हुए। सन् 1923 में हुए साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए आप गली कूंचों में घूमते रहे, तभी किसी मुस्लिम गुण्डे ने उन्हें घायल कर दिया। इसी वर्ष उनके इकलौते पुत्र प्रकाश की मृत्यु हो गई। सेठीजी उस समय बम्बई की एक सभा में भाषण कर रहे थे। बेटे की मृत्यु का तार उन्हें दिया गया तो पढ़कर जेब में रख लिया और भाषण जारी रखा। लोगों ने सुना तो सर धुन लिया।

इस बीच राष्ट्रीय आन्दोलन की सूत्रधार बनी काँग्रेस में फिरका परस्ती का आलम गहराने लगा था। सेठीजी को इसकी कीमत चुकानी पड़ी। बड़े-बड़े नेताओं की तरह न तो उन्हें जोड़-तोड़ करना आता था, न वे चमचागिरी जानते थे। वे सर्वथा अलग-थलग पड़ गए। नेताओं के राजनैतिक दाँव-पेच एवं घात-प्रतिघात से वे क्षत-विक्षत हो चुके थे। थे तो वे राजस्थान प्रांतीय काँग्रेस के अध्यक्ष पर काँग्रेस हाईकमांड के अंधभक्त नहीं थे। अतः हाईकमांड भी यही चाहता था कि काँग्रेस की बागडोर उनके हाथों में न रहे। सन् 1925 के कानपुर अधिवेशन के

समय हुए काँग्रेस के चुनाव में काँग्रेस हाईकमांड ने उनके खिलाफ प्रतिद्वन्द्वी खड़ा किया। फिर भी जीत सेठीजी की हुई। अन्ततः हाईकमांड ने चुनाव ही रद्द कर दिया। कार्यकर्त्ताओ ने सेठीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह कर दिया। प्रतिद्वन्द्वीयों ने लाठी का सहारा लिया। इस आक्रमण से सेठीजी घायल हो गये। महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय आदि नेता उनके निवास पर गए। गाँधीजी प्रायश्चित स्वरूप उपवास करना चाहते थे। एक युवक तो इतना उद्यत हो गया कि वह गाँधीजी की हत्या ही कर देता। बड़ी मुशिकल से उसे रोका गया। इस तरह इस दुर्धर्ष योद्धा की राजनैतिक हत्या कर दी गई। इसी गुटबन्दी का शिकार नेताजी सुभाशचन्द्र बोस, खरे एवं नरी मैन को होना पड़ा। सेठीजी ने इस भ्रष्टाचार और अन्याय का साथ न देकर राजनीति से सन्यास लेना ही उचित समझा। सन् 1934 में कुछ नेताओं के समझाने पर फिर से राजनीति में भाग लेने को तत्पर हुए। वे राजपूताना एवं मध्यभारत प्रान्तीय काँग्रेस के प्रांतपति चुने गए किन्तु प्रतिपक्षीदल ने यह चुनाव भी रद्द करा दिया। सन् 1935 में राजनीति का विषाक्त वायुमण्डल छोड़कर वे पूर्णतः समाज सेवा को समर्पित हो गए।

वे जैन धर्म में अपार श्रद्धा रखते थे। प्रवचन करने लगे। अन्यान्य धर्मों का गहरा ज्ञान था उन्हें। परन्तु धर्मान्धता एवं सम्प्रदायवाद से कोसों दूर रहते थे। उनका धार्मिक सुधारों एवं साधुओं के समाजीकरण के लिए अवदान उल्लेखनीय था। सन् 1930 में दो जैन साधुओं के सेठीजी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मुखपत्ती उतार देने से जैन समाज बौखला गया। जैन गुरुकुलों ने सदा के लिए उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

देश सेवा में सेठीजी का सब कुछ स्वाहा हो गया। उनका परिवार दरिद्रता के कगार पर आ खड़ा हुआ। सेठीजी ने किसी के आगे हाथ पसारा नहीं। पुत्र प्रकाश की मृत्यु के मर्मान्तक आघात से वे टूट गए। वे तीस रुपए मासिक पर मुस्लिम बच्चों को पढ़ाने पर मजबूर हो गए। नेताओं एवं साथियों की बेवफाई का उनके हृदय पर ऐसा आघात लगा

कि अन्ततः 22 दिसम्बर, 1941 के दिन वे इस स्वार्थी संसार से प्रयाण कर गए। इस तपस्वी की अर्थी पर कबीर की मैयत की तरह ही गाड़ने-फूँकने के प्रश्न को लेकर हिन्दू-मुसलमानों के बीच संघर्ष की नौबत आ गई। परिवार वालों को तो तीन-दिन बाद मृत्यु की खबर लगी।

बंगाल के मनीषी देशबंधु सी.आर. दास ने कभी सच ही कहा था– ''सेठीजी के जन्म का उपयुक्त स्थान राजस्थान नहीं था, वे बंगाल में जन्म लेते तो बंगाली उन्हें सर आँखों पर बिठाते। सेठीजी जैसे व्यक्ति जिस धरती, समाज, देश व कुल में पैदा होते हैं वह धन्य हो जाती है।''

37. पं. बेचरदास दोशी (1889-1982)

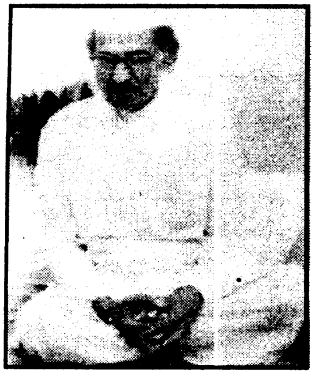

जन्म : वल्लभीपुर, 1889
पिताश्री : जीवराज लाधाभाई दोशी
माताश्री : ओतम बाई
सर्जन/संपादन : सन्मति तर्क
दिवंगति : अहमदाबाद, 1982

सत्य की साधना, तलवार की धार पर चलने जैसी होती है। पांडित्य और पुरुषार्थ उसे गति प्रदान करता है। अभिव्यंजना शक्ति मौलिक सृजन करती है। पंडित बेचरदास दोशी सरस्वती के ऐसे ही समन्वयी उपासक थे। उन्होंने जैन समाज को अंधश्रद्धा की घोर निद्रा से जगाया। बीसवीं सदी के जैन दर्शन की क्रांतिद्रष्टा त्रयी में एक पंडित बेचरदासजी दोसी थे। (अन्य मुनि जिन विजयजी एवं पं. सुखलालजी संघवी गिने जाते हैं।)

आपका जन्म बीसा दोशी गोत्रीय अत्यंत गरीब घर में सन् 1889 में सौराष्ट्र के वल्लभीपुर में हुआ। इस नगरी को विक्रम की पांचवीं शदी में जैनागमों को देवार्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा सर्वप्रथम पुस्तकारूढ़ करने का गौरव प्राप्त है। बेचरदासजी के पिता का नाम जीवराज दोशी था। माता का नाम था ओतम बाई। यह परिवार श्रीमाली कुल का था।

दस वर्ष की उम्र में ही पिता का देहांत हो गया। माँ मेहनत मजदूरी करके घर खर्च चलाती। आप भी माँ का हाथ बँटाने उसके साथ जाते। तभी भाग्य ने पलटा खाया। सन् 1901 में जब वे मात्र 12 वर्ष के थे गुजरात के प्रसिद्ध जैन मुनि विजय धर्म सूरि की नजर आप पर पड़ी। वे जैन दर्शन के शिक्षण के लिए चुन लिए गए। मंडल एवं पालीताना में कुछ महीने पढ़ने के बाद आप काशी चले गए। वहाँ जैन दर्शन का विशद अध्ययन किया एवं कलकत्ता संस्कृत कॉलेज की स्नातक

परीक्षा पास की। काशी में अध्ययनरत रहते हुए 'श्री यशो विजय जैन सीरीज' का सम्पादन किया। उनका यह अध्यवसाय पुरस्कृत भी हुआ, अनेक स्कॉलरशिप मिले। प्राकृत एवं अर्धमागधी भाषाओं के अध्ययन में आपकी विशेष रुचि थी। श्रीलंका जाकर आपने पाली भाषा में भी महारत हासिल की एवं बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया।

इन्हीं दिनों महात्मा गाँधी के क्रांतिकारी विचारों का प्रभाव आप पर पड़ा। सन् 1915 में गाँधीजी के आह्वान पर उन्होंने स्वदेशी कपड़ा पहनने का संकल्प किया। प्राचीन जैन साहित्य का अध्ययन, मनन कर उन्हें लगा कि इन संस्कृत/प्राकृत ग्रंथों को सर्वजन हिताय सुगम बना देने की आवश्यकता है। सन् 1914 में वे अहमदाबाद के सेठ पूंजा भाई हीराचन्द द्वारा स्थापित ''जिनागम प्रकाशन सभा'' से जुड़े। परन्तु धर्मांध परम्परावादी जैन आचार्यों ने उनके इन प्रकाशनों का विरोध किया। सन् 1919 में बम्बई नगर में ''जैन शास्त्रों के भ्रष्ट रूपान्तरों का समाज पर नुक्शान कारक प्रभाव'' विषय पर हुए आपके व्याख्यानों ने जैन समाज में हलचल मचा दी। धर्म के नाम पर चल रहे पाखण्ड के भंडाफोड़ से महन्त व आचार्य बौखला गए एवं आपको समाज बहिष्कृत कर दिया गया। पंडितजी थे कि डटे रहे, हार न मानी। उन्हें खतरनाक परम्पराघाती एवं नास्तिक के नाम से गालियाँ दी गईं। परन्तु वे जैन युवकों एवं विचारकों के चहेते बन गए। बहुतों ने उन व्याख्यानों से प्रेरणा ग्रहण की।

सन् 1921 में आपने गुजरात विद्यापीठ में अध्यापन शुरु किया। वहाँ काका कालेकर, जे.बी. कृपलानी, किशोरीलाल मशरूवाला एवं मुनि जिन विजयजी के सान्निध्य ने आपको क्रांति द्रष्टा बना दिया। उन्हीं दिनों प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी के साथ मिलाकर आचार्य सिद्ध सेन दिवाकर के अभूतपूर्व प्राकृत ग्रंथ 'सन्मति तर्क' का सम्पादन किया। तभी गाँधीजी का प्रसिद्ध 'डांडी सत्याग्रह' शुरु हुआ। गाँधी जी के आग्रह पर 'नव जीवन' पत्र के सम्पादन का भार आपने सम्भाला, गिरफ्तार हुए एवं नौ महीने तक जेल में बंद रहे। वहाँ से छूटकर करीब 4-5 वर्ष आपने बड़े आर्थिक संकट में गुजारे। सन् 1938 में वे अहमदाबाद के एस.एल.डी.

आर्ट्स कॉलेज में अर्धमागधी भाषा के लेक्चरर नियुक्त हुए। सन् 1940 में बम्बई यूनिवर्सिटी के तत्त्वावधान में गुजराती भाषा के विकास पर हुई भाषण-श्रृंखला से आपने विद्वत् मंडली में बहुत नाम कमाया। आप पचास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का सर्जन-सम्पादन कर चुके हैं। सन् 1964 में राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने संस्कृत भाषा की सेवा के लिए आपको सम्मानित किया। आप सन् 1982 में स्वर्ग सिधारे।

38. डॉ. हीरालाल जैन (1899-1973)

जन्म	:	गांगई ग्राम, गोंडल प्रदेश, 1899
पिताश्री	:	बालचन्द मोदी
माताश्री	:	झुतरो बाई
शिक्षा	:	एम.ए., पी.एच-डी., डी. लिट.
सृजन/सम्पादन	:	षट्खंडागम-धवला
दिवंगति	:	1973

जैन दर्शन एवं साहित्य को समृद्ध करने वाली जैन आचार्यों एवं मुनियों की अजस्र धारा तो सदा से बहती रही है किन्तु उसमें जैन श्रावकों का योगदान विरल ही रहा है। 20वीं शदी इस दृष्टि से जैन परम्परा का स्वर्णकाल कहा जायेगा जिसमें जैन श्रावकों का प्राचीन आगम ग्रंथों की शोध एवं मौलिक साहित्य के सृजन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। डॉ. हीरालाल जैन इसी श्रृंखला की स्वर्णिम कड़ी थे। उन्होंने अपनी आभा से अपभ्रंश भाषा-साहित्य एवं अलभ्य प्राकृत जैन ग्रंथ 'षट्खंडागम एवं उसकी धवला टीका' का सुसम्पादन कर विस्तीर्ण टिप्पणियों सहित सोलह भागों में प्रकाशित किया।

गोंडल क्षेत्र के गढ़मंडला प्रदेश पर कभी रानी दुर्गावती ने राज्य किया था। चौगान दुर्ग के शासकों ने 'मोदी' गोत्र के महाजन वंशजों को अपना अर्थतंत्र सम्हालने का अधिकार दिया था। बुंदेला राणा के आक्रमण से दुर्ग ध्वस्त हो गया तो चौहान नरेश ने चीचंली नामक स्थान पर अपना राज्य स्थापित किया। तब भी मोदी कुलोत्पन्न 'मचल मोदी' उनकी अर्थ व्यवस्था सम्हाल रहे थे। उन्हीं के पौत्र बालचन्द हुए। वे अपने ज्येष्ठ भ्राता लटोरेलाल के साथ गांगई ग्राम आ बसे। उनकी तीसरी संतान हीरालाल थे। हीरालाल का प्रारम्भिक अध्ययन ग्राम के प्राईमरी

स्कूल में हुआ। प्राईमरी शिक्षा पूरी कर लेने पर पिता ने उन्हें पैतृक व्यवसाय में लगाना चाहा। हीरालाल के मन में आगे पढ़ने की तीव्र लालसा थी। उन्हें पाँच मील दूर गाड़रवाड़ा के मिडिल स्कूल में भरती कर दिया गया। वहाँ से हाई स्कूल की शिक्षा के लिए उन्हें नरसिंहपुर आना पड़ा। हाई स्कूल पास करने के बाद उन्होंने जबलपुर के राबर्टसन कॉलेज में दाखिला लिया। मात्र 14-15 वर्ष की आयु में ही उनका विवाह सोना बाई के साथ हुआ। सन् 1920 में उन्होंने बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत में सर्वश्रेष्ठ अंक पाने पर उन्हें राजकीय छात्रवृत्ति मिली। तदुपरांत सन् 1912 में एम.ए. एवं एल.एल.बी. परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। एम.ए. परीक्षा में संस्कृत में सर्वश्रेष्ठ रहे। सरकार की तरफ से उन्हें अनुसंधान छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। आगामी तीन वर्ष उन्होंने जैन साहित्य एवं इतिहास का विशेष अध्ययन करने में बिताए।

इस बीच 'करंजा' जैन तीर्थ के शास्त्र भंडार का अवलोकन कर वहाँ उपलब्ध ग्रंथों को क्रम से अंकित कर सूचि बना डाली। सूचि बनाते समय उनका ध्यान प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के अश्रुत ग्रंथों की ओर गया। इन ग्रंथों को प्रकाशन में लाने की उत्कट लालसा जागृत हुई। तभी इन्दौर के न्यायाधिपति श्री जुगमंदरदास जैनी ने बुला भेजा। वे 'गोम्मटसार' का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे थे। इस हेतु उन्हें एक 'प्राकृत' भाषा के अधिकारी विद्वान् की आवश्यकता थी। इन्दौर में सर सेठ हुकमचन्द से भी उनका परिचय हुआ। सर सेठ उनकी विद्वता एवं शिष्टाचार से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपने पुत्र राजकुमार का निजी शिक्षक बनाना चाहा एवं यावज्जीवन पाँच रुपए महावार देने का प्रस्ताव रखा। हीरालालजी को प्रस्ताव रुचा नहीं। तभी उन्हें अमरावती में स्थित 'किंग एडवर्ड कॉलेज' (विदर्भ महाविद्यालय) में एसिस्टेंट प्रोफेसर के पद का नियुक्ति-पत्र मिला। हीरालालजी ने सन् 1924 में यह पद भार ग्रहण किया।

हीरालालजी आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। लम्बे कद, गौर वर्ण, पानीदार आँखें और चेहरे पर सदाबहार मुस्कराहट। विलक्षण प्रतिभा एवं शालीन मृदु व्यवहार के कारण वे प्राध्यापकों एवं छात्रों में प्रिय हो गए।

अमरावती शहर में जैनियों की संख्या कम नहीं थी। पाँच जैन मंदिर थे। प्रो. हीरालाल दर्शनार्थ मंदिरों में जाते, जैन समारोहों में जाते, वहाँ व्याख्यान देते। जल्द ही वे लोकप्रिय भी हो गये। सभी श्रोता उनकी ज्ञान महिमा से अभिभूत हो उनका स्वागत समादर करते। जैन समाज के मुखिया सिंधई पन्नालालजी की जैन शास्त्रों में रुचि थी। उन्होंने 'षट्खंडागम' की एक अलभ्य हस्तलिखित प्रति दस हजार रुपए न्यौछावर कर प्राप्त की थी। हीरालालजी युनिवर्सिटी कार्यकलापों के बीच अनुसंधानात्मक लेखन के लिए समय निकाल ही लेते थे। वे ओरियन्टल कॉन्फ्रेंस के आजीवन सदस्य थे। उनके खोजपूर्ण लेख, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। उन्हें युनिवर्सिटी द्वारा डी.-लिट. की उपाधि से अलंकृत किया गया। सन् 1944 में वे कॉन्फ्रेंस की प्राकृत जैनधर्म संकाय के अध्यक्ष चुने गए। सन् 1966 में वे फिर संकाय के अध्यक्ष चुने गए।

हीरालालजी गर्मी की छुट्टियों में बराबर ''कारंजा'' तीर्थ दर्शनार्थ जाते रहते थे। वहाँ के शास्त्र भंडारों के ग्रंथों की सूचियाँ तैयार की थी। सन् 1923 में मध्यप्रदेश सरकार ने ''संस्कृत एंड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन सी.पी.ए. बरार'' नामक वृहद् ग्रंथ सूचि का प्रकाशन किया। इस खोज से भारत ही नहीं यूरोप और अमरीका के विद्वानों का ध्यान अपभ्रंश व प्राकृत भाषा के प्राचीन साहित्य की ओर आकर्षित हुआ। हीरालालजी ने ब्रह्माचारी शीतलप्रसाद द्वारा संग्रहित विभिन्न प्रांतों के ''प्राचीन जैन स्मारक'' ग्रंथ का सम्पादन किया। पं. नाथूराम प्रेमी की प्रेरणा से जैन धर्म से संबंधित अन्यान्य प्रस्तर एवं मूर्ति लेखों के ''जैन शिलालेख संग्रह'' का संलेखन एवं सम्पादन किया। इसी वर्ष ''सावयधम्म दोहा'' नामक हस्तलिखित ग्रंथ का सम्पादन, प्रकाशन किया, जिसमें डॉ. ए.एन. उपाध्ये का सहयोग रहा। यह जैन श्रावकों के धर्म एवं आचार से सम्बन्धित देवसेन द्वारा संवत् 990 में रचित प्राचीन ग्रंथ है। सन् 1933 में प्रो. हीरालाल ने ब्राह्मण कुलोत्पन्न प्रसिद्ध जैन विद्वान् पुष्पदंत (राष्ट्रकूट राजा कृष्णलाल तृतीय के आश्रय में) द्वारा रचित ''णयकुमार चरिउ'' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का सम्पादन किया।

डॉ. हीरालाल तब तक 1 पुत्र व 5 पुत्रियों के पिता बन चुके थे। उनकी सहधर्मिणी सोना बाई का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वे हृदय रोग से ग्रस्त होती जा रही थी। उनकी चिंता एवं अन्य पारिवारिक कठिनाइयों ने उनका शोध एवं लेखन कार्य कुछ समय के लिए अवरुद्ध रखा। इस बीच वे अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के खंडवा अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। उनके शोधकार्य की ख्याति चारों ओर फैल रही थी। इसी अधिवेशन में विदिशा के सेठ लक्ष्मीचन्दजी के दस हजार रुपए के अवदान से 'षटखंडागम' एवं धवला टीका के सम्पादन, प्रकाशन की योजना बनी। सन् 1938 में सहधर्मिणी सोना बाई की इहलीला समाप्त हो गई। लोकाचार निमित्त मूडविद्री के भट्टारकजी का सन्देश एक श्राप बनकर आया। उन्होंने लिखा था–''हीरालाल, यह तेरी पत्नि का मरण तेरे इस पवित्र ग्रंथ के प्रकाशन कार्य प्रारम्भ का दुष्फल है।'' अवश्य ही तब तक परम्परावादी महंत और आचार्य प्राचीन आगमों एवं शास्त्रों का लोकार्थ प्रकाशन बुरा मानते थे। डॉ. हीरालाल इस श्राप से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने भट्टारक जी को पत्र लिखकर जैन संहिता के कर्म सिद्धांत का स्मरण दिलाया। उनके कर्मों का फल पत्नि को भोगना पड़े, यह असंभव है।

प्रो. हीरालाल के अनवरत अध्यवसाय से 'धवला' की पहली पुस्तक सन् 1938 में प्रकाशित हुई। प्रो. हीरालाल ने इसकी पहली प्रति भट्टारकजी को समर्पित की। भट्टारक जी का मन पिघल गया। फिर तो उन्होंने मूडबीद्रि ग्रंथ भंडार से अनेक ताड़पत्रीय हस्तलिखित ग्रंथ प्रोफेसर साहब को उपलब्ध कराए। षटखंडागम का विषय भगवान की द्वादशांगी *वाणी का अंतिम अंग 'दृष्टिवाद' है। बारह अंगों के ज्ञाता श्रुत केवली थे।* जब श्रुतज्ञान का लोप होने लगा तो धरसेनाचार्य ने पुष्पदंत एवं भूतबलि नामक दो मुनियों को उनका अध्ययन कराया। षट्खण्डागम के प्रथम 20 अधिकारों की रचना पुष्पदंत ने की और शेष समस्त ग्रंथ के कर्त्ता भूतबलि हैं। यह पूरा ग्रंथ सूत्र पद्धति से लिखा गया है। इसके अंतिम टीकाकार वीर सेनाचार्य ने इसे ''खंड सिद्धांत'' नाम दिया। इससे पूर्व कुंदकुंद, श्यामकुंड, तम्बूलर, समन्तभद्र और वप्पदेव ने भी ग्रंथ की

टीकाएँ लिखी परन्तु वे सभी अप्राप्त हैं। वीरसेन की टीका का नाम ''धवला'' है जिसे बाट ग्राम में रहकर शक सं. 738 (ई. 816) में पूर्ण किया। यह बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण हैं। इसे मध्यकाल में मात्र गृहत्यागी मुनियों के पढ़ने की वस्तु माना जाता था। इसीलिए परगामी विद्वान् नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती ने 'गोम्मटसार' लिखा। धीरे-धीरे षट्खण्डागम की प्रतियाँ तालों में बन्द हो गई। इसे फिर से प्रकाशित कर लोकप्रिय आगम ग्रंथ बनाने का श्रेय प्रो. हीरालाल को ही है।

'धवला' का द्वितीय भाग सन् 1940 में प्रकाशित हुआ। तीसरा सन् 1941 और चौथा 1942 में। इस बीच बाधा कारक भी प्रकट होते रहे। पं. मक्खनलाल ने ''सिद्धांत शास्त्र और अध्ययन का अधिकार'' पुस्तक लिखकर 'धवला' के प्रकाशन को रोकने का भी प्रयत्न किया। परन्तु हीरालालजी तनिक न डिगे। ग्रंथ का सम्पादन इतना शोधपूर्ण एवं उच्च स्तरीय था कि सारा विरोध स्वयं समाप्त हो गया। पांचवे से अंतिम सोलहवें भाग का प्रकाशन क्रमशः 1942 से 1958 के बीच हुआ। इस तरह कुल 20 वर्षों के सत्प्रयास से प्रो. हीरालाल यह अमृत-ग्रंथ जैन समाज को समर्पित कर धन्य हुए और धन्य हुआ जैन समाज।

इस बीच उन्हें अप्रभंश भाषा और साहित्य पर मौलिक लेखन के लिए डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किया गया। तब से वे डॉ. हीरालाल जैन के नाम से प्रसिद्ध हुए। सन् 1944 में उनका स्थानान्तरण अमरावती से नागपुर के ''मारिस महाविद्यालय'' में हो गया। सरकारी सेवा से निवृत्ति तक पूरे दस वर्ष उन्होंने यहीं गुजारे। नागपुर विश्वविद्यालय की तरफ से उन्हें अनेक उत्तरदायित्व सौंपे गये जिन्हें डॉ. जैन ने दक्षता से निष्पन्न किया।

सन् 1948 का वर्ष डॉ. जैन के लिए शुभ नहीं रहा। उनकी माताजी स्वर्गस्थ हो गई। दुर्भाग्य वश पौत्र बीमार पड़ा, उसका भी शरीरांत हो गया। डॉ. जैन अत्यंत दुःखी हो गये। तभी एक पुत्र भाग्य को दोष देते हुए सेना में भरती हो गए। डॉ. जैन को हार्दिक विषाद् ने घेर लिया। सरस्वती उपासना को समर्पित जीवन सदैव ही कष्ट साध्य होता

रहा है। फिर भी उन्होंने अपने गार्हस्थिक उत्तरदायित्व निभाने में कसर न छोड़ी। सन्तानों की सुख-समृद्धि के लिए वे सदैव सचेष्ट रहे।

सन् 1955 में तेरहवीं पुस्तक के प्रकाशन समय पर डॉ. जैन एक अन्य कारण से उद्विग्न हो उठे। ग्रंथमाला का कोष समाप्त हो गया था, ग्रंथों की बिक्री उत्तरोत्तर क्षीण होती गई। प्रकाशक संस्था ऋण से दबी जा रही थी। फिर भी उन्होंने हार न मानी। सम्पादन कार्य अबाध गति से चलता रहा एवं धवला के सम्पूर्ण भाग प्रकाशित हुए। सन् 1958 में बिहार सरकार ने डॉ. जैन को आमंत्रित कर वैशाली में जैनधर्म और प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओं के अध्ययन एवं शोधार्थ केन्द्र संचालन का भार उन्हें सौंपा। डॉ. जैन उसे मूर्त्त रूप देने में व्यस्त हो गये। अल्प काल में ही यह संस्थान जैन विद्या के विद्वानों का निर्माण स्थल बन गया। डॉ. सिकदार, डॉ. विमलप्रकाश जैन, डॉ. राजाराम जैन, डॉ. पठान, डॉ. आर.के. चन्द्रा आदि इसी संस्थान की उपज हैं।

सन् 1960 में मध्यप्रदेश शासनान्तर्गत साहित्य परिषद्, भोपाल के आमंत्रण पर उन्होंने जैन इतिहास, साहित्य दर्शन और कला पर चार व्याख्यान दिए, जिसे परिषद् ने सन् 1962 में 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' नाम से प्रकाशित किया। इस ग्रंथ का मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है।

सन् 1961 में डॉ. जैन जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के आग्रह पर जबलपुर आ गये एवं यहाँ संस्कृत विभाग का आचार्य पद सम्भाला। सन् 1969 तक वे इसी से सम्बद्ध रहे। उनकी प्रेरणा से विश्व विद्यालय में पाली एवं प्राकृत भाषाओं का अध्यापन चालू हुआ। डॉ. जैन ने अनेक शोध छात्रों का मार्ग निर्देशन किया। सन् 1964 में भारतीय ज्ञानपीठ के आग्रह पर 'मरण परज, करकण्डु चरिउ, सुगन्ध दशमी कथा' आदि ग्रंथों का सम्पादन सम्हाला जो क्रमशः 1964 व 1966 में प्रकाशित हुए। सुगंध दशमी कथा पांच भाषाओं में प्राप्त होती हैं—संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी और गुजराती। डॉ. जैन ने कथा के अनुरूप मराठी प्रति के साथ उपलब्ध 67 रंगीन चित्रों को भी ग्रंथ में

समाहित कर उनका परिचय दिया है। डॉ. ए.एन. उपाध्ये ने ग्रंथ का सम्पादकीय लिखा है। सन् 1969 में 'श्रीचन्द्र कृत कथा कोश' का सम्पादन कर प्रकाशित कराया।

इधर अतिशय कार्यबद्धता के कारण डॉ. जैन रुग्ण रहने लगे थे। सन् 1965 से वक्षस्थल में पीड़ा रहने लगी। हार्ट अटैक भी आया। सन् 1968 में रुग्णता दोहरी हो गई। सन् 1969 में वे सेवानिवृत्त हुए। उनके सुपुत्र श्री प्रफुल्लकुमार मोदी महाराजा भोज की धारानगरी के स्नातकोत्तर महाविद्यालय में प्राचार्य पद पर नियुक्त थे। वे उन्हीं के पास रहने लगे। सन् 1970 में डॉ. जैन द्वारा सम्पादित 'सुदर्शण चरिउ' का प्रकाशन हुआ। नयनन्दी प्रणीत इस काव्य ग्रंथ में सेठ सुदर्शन की कथा है। इसी वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ ने डॉ. जैन द्वारा सम्पादित संस्कृत ग्रंथ 'सुदर्शनचरितम्' का भी प्रकाशन किया। डॉ. जैन ने इस बीच अपने पारिवारिक ''मोदी वंश'' का छन्दबद्ध इतिहास लिखा।

सन् 1973 में भारतीय जैन महामण्डल के अध्यक्ष के आग्रह पर भगवान् महावीर के 2500वीं निर्वाण शताब्दि के उपलक्ष में एक विशाल ग्रंथ के प्रणयन का कार्य डॉ. जैन को सौंपा गया। डॉ. जैन ने इस उत्तरदायित्व को गम्भीरता से लिया और ''जैन धर्म साहित्य और सिद्धांत'' नामक ग्रंथ की रचना की। वे अस्वस्थता के बावजूद रात-दिन 15 घंटे चिंतन लेखन में व्यस्त रहते। एक दिन वे बेहोश हो गए। हृदयाघात सामान्य न था। सभी परिवारजन इकट्ठे होने लगे। अन्ततः 13 मार्च 1973 को वे महाप्रयाण कर गए। प्राचीन जैन साहित्य को आलोकित करने वाला सूर्य अस्त हो गया। उनके दो ग्रंथों–''वीर जिणिंद चरिउ'' और ''जिनवाणी'' का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ ने सन् 1975 में किया। इसी तरह भारत जैन महामंडल द्वारा उनके ''प्रागैतिहासिक जैन परम्परा'' ग्रंथ का प्रकाशन मरणोपरांत हुआ। डॉ. जैन जैसे महामनीषी को पाकर जैन समाज कृत्यकृत्य हो गया।

39. श्री कुन्दनमल फिरोदिया (1885-1968)

जन्म : अहमदनगर, 1884

पिताश्री : शोभाचन्द फिरोदिया

पद : स्पीकर, महाराष्ट्र विधानसभा

दिवंगति : पूना, 1968

ओसवाल श्रेष्ठि श्री कुन्दनमल फिरोदिया ने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में अभूतपूर्व सहयोग देकर महाराष्ट्र ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के राजनैतिक पटल पर अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कराया। उनके पूर्वज श्री उम्मेदमल राजस्थान में नागौर जिले के 'फिरोद' गांव से सन् 1825-30 के लोक विमर्षक अकाल के दरम्यान महाराष्ट्र के अहमदमगर कस्बे में आकर बसे। इसी से वे फिरोदिया कहलाने लगे। वस्तुत: उनका गोत्र 'सालेचा' था।

ओसवाल जाति का उद्‌भव मूलत: क्षत्रियों के जैन धर्म अंगीकार कर लेने से हुआ। सन् 1155 में उम्मेदमलजी के पूर्वजों ने हिंसा कर्म को तिलांजलि देकर खेती एवं व्यवसाय अपना लिया। सालेचा श्रेष्ठि राजा जी की सातवीं पीढ़ी में उम्मेदमल हुए। उनके अहमदनगर स्थानान्तरित होने के बाद शुरु के वर्षों में एक 'गुन्देचा' गोत्रीय श्रेष्ठि ओसवाल कपड़े के व्यापारी ने उनकी यहाँ पैर जमाने में बहुत मदद की। उम्मेदमलजी के पौत्र शोभाचन्दजी की इकलौती सन्तान कुन्दनमलजी थे।

कुन्दनमलजी का जन्म सन् 1885 में अहमदनगर में हुआ। उनकी शिक्षा अहमदनगर, पुणे एवं मुंबई में हुई। वे मेधावी थे। सन् 1907 में उन्हें मुम्बई विश्व विद्यालय का स्नातक होने एवं स्वर्ण पदक प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त हुआ। पेशवाओं द्वारा स्थापित दक्षिण स्कॉलरशिप से भी उन्हें नवाजा गया। विधि परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वकालत को पेशा बनाने

वाले वे पहले मारवाड़ी थे। वे एक सफल वकील सिद्ध हुए। प्रसिद्ध समाजवादी नेता अच्युत पटवर्धन के पिता श्री हरि भाऊ की प्रेरणा से वे देश के स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े। डॉ. एनी. बेसेंट द्वारा संस्थापित 'होम रूल लीग' के वे सदस्य बने। शुरु-शुरु में वे लोकमान्य तिलक के पक्षधर थे पर अन्ततः महात्मा गान्धी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन में भाग लिया एवं जल्दी ही जिले में काँग्रेस की राजनैतिक गतिविधियों के सूत्रधार बन गये। अहमदनगर म्यूनिसिपलिटी के वे वर्षों तक प्रमुख रहे। सन् 1927 एवं 1937 में वे महाराष्ट्र की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सदस्य चुने गये। द्वितीय महायुद्ध के दौरान सन् 1940 में महात्मा गान्धी ने उन्हें सविनय अवज्ञा आन्दोलन के एक सौ सत्याग्रहियों में चुना। तभी युद्ध विरोधी भाषण देने के जुर्म में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 6 मास के लिए जेल भेज दिया। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने पर सरकार ने एक बार फिर उन्हें जेल भेज दिया। इस बार जेल से छूटने पर उन्होंने वकालत छोड़ दी और पूर्णतः देश सेवा को समर्पित हो गये।

वे जैन कॉन्फ्रेंस के मद्रास में सम्पन्न हुए ग्यारहवें अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। आपने अपनी 63वें जन्म दिन पर 63 हजार रुपये का ट्रस्ट कायम किया था।

सन् 1946 में चुनाव जीतने के बाद वे सर्वसम्मति से महाराष्ट्र विधि मंडल (धारा सभा) के स्पीकर चुने गये। उन्होंने अपने कार्य को बखूबी अंजाम दिया। सन् 1952 में स्पीकर पद से मुक्त होने के बाद वे सामाजिक कार्य क्षेत्र की ओर मुड़े। वे आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन से भी जुड़े। जिले की अनेक संस्थाओं, यथा–कुष्ट धाम, वृद्धाश्रम, पिन्जरापोल, जिला बोर्ड, ओसवाल पंचायत, जैन कान्फ्रेंस आदि उनके सक्रिय सहयोग से लाभान्वित हुई। आपको स्थानकवासी जैन समाज के अमृत महोत्सव पर ''समाज रत्न'' एवं अन्यान्य सभाओं द्वारा समाज भूषण, समाज-गौरव विरुदों से सम्मानित किया गया। वे सन् 1968 में दिवंगत हुए।

40. श्री बिशनदास दूगड़ (1864-)

जन्म : जम्मू, 1864

पिताश्री : लाला किशनचन्द दूगड़

पद/उपाधि : चीफ मिनिस्टर (कश्मीर राज्य), रायबहादुर (1911), C.I.E. (1915), C.S.I. (1920)

दिवंगति :

19वीं शताब्दी में सुदूर कश्मीर में ओसवाल वंश की कीर्ति पताका फहराने वाले मेजर जनरल विशनदास दूगड़ का नाम इतिहास के पन्नों में अमर रहेगा। आपके पूर्वज सैकड़ों वर्ष पूर्व बीकानेर से सरसा जा बसे। वहाँ से कसूर बसे और महाराज रणजीतसिंह के समय लाहौर चले गए। सन् 1857 की क्रांति के समय ये परिवार जम्मू आकर बस गए। विशनदास जी के पितामह लाला दानामल महाराजा रणजीतसिंह की सेवा में थे। उनके पुत्र किशनचन्द जी हुए। किशनचन्दजी के दो पुत्र हुए – विशनदास और अनन्तराम। विशनदास जी का जन्म जम्मू में सन् 1864 में हुआ। अपनी प्रतिभा एवं अध्यवसाय से सन् 1886 में वे राजकीय सेवा में नियुक्त हुए। महाराज के निजी सचिव पद से तरक्की कर राज्य के गृहमंत्री एवं राजस्व मंत्री बने एवं अन्ततः कश्मीर के चीफ मिनिस्टर बनाए गए।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार की भरपूर सहायता करने के उपलक्ष में आपको रायबहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1915 में सरकार ने आपको C.I.E. (केसरे हिन्द) के खिताब से सम्मानित किया एवं सन् 1920 में C.S.I. का खिताब दिया। कश्मीर के महाराज प्रतापसिंह ने राजपूत जाति एवं राज्यों की एकता के लिए आपके द्वारा किए गए प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

आपने सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय सेवाएँ दी। पंजाब स्थानकवासी कॉन्फ्रेंस के स्यालकोट व लाहौर अधिवेशनों के आप सभापति मनोनीत हुए। बनारस के धर्म महामण्डल ने आपको सम्मानित कया।

आपके छोटे भ्राता लाला अनन्तराम जी प्रारम्भ में कश्मीर नरेश के निजी सचिव रहे। तदनन्तर वकालत करने लगे। पुन: वे राजा अमरसिंह के निजी सचिव बने। तदनन्तर उनकी जागीर के चीफ जज बने।

41. श्री पूरणचन्द श्यामसुखा (1882-1967)

जन्म : अजमीगंज, 1882

पिताश्री : महताबचन्द शयामसुखा

दिवंगति : कलकत्ता, 16 अप्रेल, 1967

बंगाल के साथ जैन समाज का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। तथापि जैन धर्म एवं इतिहास सम्बन्धी साहित्य बंगला भाषा में बहुत कम उपलब्ध है। जिन विद्वानों ने जैन शास्त्रों को आत्म-सात कर मौलिक रचनाएँ की या अनुवाद द्वारा बंगला भाषा के इस अभाव को दूर करने में सहायता की उनमें श्री पूरणचन्द जी श्यामसुखा का स्थान सर्वोपरि है। आपने अठारह वर्ष की अल्पायु से ही लिखना प्रारम्भ किया एवं जीवन पर्यन्त साहित्य साधना के शुभ कार्य में व्यस्त रहे। इस अवधि में उन्होंने जो पुस्तकें, लेख और कथाएँ लिखीं वह उनके सतत् अनुशीलन एवं मौलिक सोच की परिचायक हैं।

आपका जन्म सन् 1882 के अगस्त महीने में मुर्शिदाबाद के अजीमगंज शहर में हुआ था। आपके पिता का नाम महताबचन्द जी था। वे बहुत सम्पन्न नहीं थे अत: जियागंज निवासी राय धनपतसिंह जी बहादुर के यहाँ नौकरी करते थे। यही कारण था कि एण्ट्रेंस परीक्षा के पश्चात् ही पूरणचन्द को भी नौकरी में प्रवेश करना पड़ा। आप को मातृ वियोग तो पहले ही हो चुका था। अब पितृवियोग होने से परिवार का पूरा दायित्व आप के कंधों पर आ पड़ा। उस समय की परम्परानुसार आपका विवाह मात्र 16 वर्ष की आयु में ही हो चुका था।

रायधनपत सिंह जी बहादुर के पुत्र श्री महाराज बहादुर सिंह जी के यहाँ आपने प्रथमत: मैनेजर के निर्देशानुसार चिट्ठी-पत्रियों का मशविदा तैयार करना प्रारम्भ किया। आपकी योग्यता अनुभव कर महाराज बहादुर

सिंह जी ने यह काम आपको ही सौंप दिया। जब उन्होंने 'जेसोर' में सूगर मील की प्रतिष्ठापना की तो वहाँ के प्रमुख प्रबन्धक गोपीचन्द जी के सहायक रूप में भी आपको ही भेज दिया। वह जमाना स्वदेशी आन्दोलन का था। अत: यही आशा थी कि सूगर मील सफलता अर्जित करेगी पर वह हो न सका। मिल उठ जाने पर आपको पुन: अजीमगंज लौट आना पड़ा।

कुछ दिनों पश्चात् आप इस काम को छोड़कर पाट की दलाली करने लगे। किन्तु आपकी रुचि इस ओर नहीं थी। इसी समय नाहटा परिवार के पूरणचन्दजी एवं ज्ञानचन्द जी ने विलायत जाकर रहने का निश्चय किया। अत: उनको फर्म की देखभाल के लिए एक योग्य विश्वासी कर्मचारी की आवश्यकता पड़ी। श्यामसुखाजी की ख्याति इस परिवार को ज्ञात थी। इन्होंने आपसे इन कार्यभार को ग्रहण करने का अनुरोध किया। आपने इस कार्यभार को ग्रहण ही नहीं किया बल्कि 27 वर्षों तक इसी में संलग्न रहते हुए ही अवकाश प्राप्त किया था।

नाहटा परिवार का कार्यभार लेने के पश्चात् अपना परिवार अजीमगंज रहने पर भी आपको अधिक समय कलकत्ता एवं अन्य मुकामों में ही बिताना पड़ा। परन्तु ऐसी परिस्थितियों में भी आपने लिखना-पढ़ना नहीं छोड़ा। आपके सहपाठी थे बंगाल के भावी प्रख्यात शिशु साहित्य सम्राट श्री दक्षिणा रंजन मित्र मजुमदार। इन्हीं की प्रेरणा से श्यामसुखा जी ने बंगला में लिखना प्रारम्भ किया था। जब दक्षिणा रंजन बाबू ने 'सुधा' मासिक पत्रिका प्रकाशित की तो श्यामसुखा जी को भी इसमें लिखने के लिए उत्साहित किया। आपने 'दीपावली', 'पर्यूषण', 'श्री पूज्य जी का आगमन' आदि शीर्षकों से लेख लिखकर 'सुधा' में प्रकाशित कराए।

नाहटा परिवार के ग्रंथागार में धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था, पूरणचन्द जी वहाँ से ग्रन्थ लाकर पढ़ते थे। 18 वर्ष की उम्र में ही आपने श्री आत्मारामजी विरचित 'जैन तत्त्वादर्श' एवं 'अज्ञान तिमिर भास्कर' पढ़ लिया था। इन्हीं ग्रंथों से आपको आगे चलकर जैन शास्त्रों को पढ़ने के लिए उद्‌बुद्ध किया। आत्मारामजी के प्रति आपकी जो गहरी

श्रद्धा थी वह आपके 'श्रीमद् विजयानन्द सूरी' प्रबन्ध में स्पष्टत: झलकती है। छात्रावस्था में आपका अनुराग संस्कृत की ओर था, किन्तु जब देखा जैन मूलशास्त्र सभी मुख्यतया प्राकृत में हैं तो आपने प्राकृत पढ़ना प्रारम्भ कर इस पर भी अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया। इसी भाँति जब उन्हें ज्ञात हुआ अधिकांश जैन साहित्य गुजराती में है तो भाषा के ज्ञानार्जन के लिए गुजराती सम्वाद पत्रों के ग्राहक बनकर उन्हें नियमित रूप से पढ़ना प्रारम्भ किया एवं शीघ्र ही इसमें भी दक्षता अर्जित कर ली।

आपके तीन पुत्र एवं चार कन्याएँ थीं। आपके प्रथम पुत्र श्री ऋषभचन्द जी का अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार था। साथ ही धर्मानुराग भी गम्भीर था विशेषकर प्रणीत अरविन्द योग के प्रति। श्री ऋषभचन्दजी ने 'इण्डियन सिल्क हाउस' की स्थापना की थी जो कि आज भी कलकत्ता के प्रमुख सिल्क प्रतिष्ठानों में एक है। महायोगी अरविन्द के प्रति उनका आकर्षण इतना घना था कि जमी हुई दूकान एवं घर-बार सभी का परित्याग कर आप पांडिचेरी में आश्रमवासी हो गये। वे प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी दर्शनों के अच्छे विद्वान थे। वहाँ जाकर इन्होंने फ्रेंच भाषा पर भी अधिकार कर लिया। आपने अरविन्द व मदर के साहित्य और दर्शन पर कई ग्रन्थ लिखे।

श्यामसुखा जी ने अपनी ज्येष्ठ कन्या का विवाह एक समाज बहिष्कृत परिवार में कर अपनी जिस उदारता एवं मनोबल का परिचय दिया वह भी उल्लेखनीय है। श्री रणजीत सिंह जी दुघोड़िया धन, विद्या, चरित्र सभी दृष्टियों से योग्य व्यक्ति थे। किन्तु विलायत जाने के कारण उनके पिता समाज बहिष्कृत थे। श्यामसुखा जी जानते थे कि इस कार्य के परिणाम स्वरूप समाज इन्हें भी दण्डित करेगा फिर भी वे पीछे नहीं हटे। अपने संकल्प पर अटूट रहे। आज वह सामाजिक निषेध नहीं है किन्तु एक व्यर्थ की परम्परा को तोड़ने का गौरव तो कई अन्य लोगों की भाँति पूरणचन्द जी को भी प्राप्त है।

नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आप कुछ दिन बनारस जाकर रहे, किन्तु बाद में पुन: कलकत्ता लौट आए। जीवन के शेष भाग

में आप अस्वस्थ रहने लग गये थे। सन् 1967 की 16 अप्रेल को 85 वर्ष की उम्र में आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री श्यामसुखा जी मूलत: बंगला भाषा के लेखक थे। वे निरन्तर बंगाल में ही रहे अत: उन्होंने बंगला में अधिक लिखा। हिन्दी और अंग्रेजी में उनके जो लेख मिलते हैं, वे प्राय: बंगला से ही अनुदित हैं। ग्रन्थाकार रूप में प्रकाशित उनकी कृतियों के अतिरिक्त जो फुटकर लेख इधर-उधर बिखरे पड़े थे उन्हें एकत्रित कर उनकी 80वीं वर्षगांठ पर प्रकाशित अभिनन्दन-ग्रंथ में सन्निविष्ट किया गया था। इन रचनाओं से पता चलता है कि आपका रचना क्षेत्र कितना विस्तृत था और प्रकाशन का माध्यम कितना व्यापक।

इन लेखों में कुछ उपदेशात्मक एवं कुछ साधक साधिका एवं तीर्थकरों के जीवन पर आधारित हैं। 'जैन शास्त्र में जड़ और जीव' लेख में दार्शनिक तत्त्व का विशलेषण है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में प्राचीन जैन इतिहास का। इनके 'प्राचीन भारत' लेख में इस युग की राजनीति का परिचय है। 'भगवान पार्श्वनाथ' और 'भगवान महावीर' जीवनवृत्त हैं। 'जैन उपासना में ध्यान' और 'श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति' सम्बन्धी लेख बहुत ही विचारोत्तेजक हैं। 'जैन साहित्य में प्रेत तत्त्व' भी आपकी एक सुन्दर रचना है।

'उत्तराध्ययन सूत्र' नामक बंगला ग्रंथ कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित किया गया है। इसका सम्पादन श्यामसुखाजी और अजित रंजन भट्टाचार्य ने किया है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' जैन आगमों में प्राचीनतम ग्रंथ है। इसका बंगला अनुवाद और सम्पादन कर श्यामसुखा जी ने अपने विलक्षण भाषा ज्ञान और अध्यवसाय का परिचय दिया है। अनुवाद जितना ही प्रांजल है, उतना ही मूलगत। पाद टिप्पणियों में ऐसे तत्त्वों का समावेश है, जिनसे उनकी दीर्घकालीन साहित्य साधना, गम्भीर अन्तर्दृष्टि और चिन्तन मनन का परिचय मिलता है।

आपकी द्वितीय कृति 'जैन दर्शनेर रूप रेखा' ग्रन्थ में द्रव्य, न्याय, स्याद्वाद, अनेकान्त, कर्म एवं गुणस्थान के विषय में समस्त गूढ़ तत्त्वों

की श्यामसुखाजी ने अपनी सहज लेखन शैली द्वारा बंगला पाठकों को एक स्पष्ट धारणा प्रदान की है। परिभाषा संकुल विषय को भी बोधगम्य बना देने की अपूर्व कला आपके लेखन का वैशिष्ट्य है।

आपका तीसरा ग्रन्थ 'जैन धर्मेर परिचय' साधु, साध्वी, श्रावक के आचार, नव तत्त्व, आदि की विस्तृत पर्यालोचना है।

'जैन तीर्थंकर महावीर' चौथा ग्रन्थ है, जिसमें महावीर के जन्म, प्रव्रज्या एवं तीर्थंकर जीवन का संक्षिप्त विवरण, महावीर वाणी और अनेक प्रमुख गणधरों का परिचय सन्निविष्ट हैं। इससे पूर्व महावीर का प्रामाणिक जीवन चरित्र बंगला भाषा में था ही नहीं, अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध नहीं था। इस दृष्टि से श्यमामसुखा जी का यह ग्रन्थ एक उल्लेखनीय अवदान है।

आप का अंग्रेजी ग्रन्थ Lord Mahavira—His life and Doctrine उक्त बंगला ग्रन्थ का ही अनुवाद है। इसमें धर्मतत्त्व की भी चर्चा है।

जैन धर्म और दर्शन का अवलम्बन लेकर समस्त कथा, प्रबन्ध आगम-सम्पाद करते हुए भी आप साम्प्रदायिकता से विमुक्त रहे हैं। भिन्न मतावलम्बी के प्रति आप कभी असहिष्णु नहीं हुए। जहाँ कहीं भी इन्होंने तत्त्व की तुलनात्मक आलोचना की वहाँ विश्लेषण युक्ति संगत ही है।

श्यामसुखाजी ने प्रधानत: धर्म तत्त्व की ही चर्चा की है किन्तु कहीं भी वे निरस नहीं हुए हैं। यही कारण है कि आपकी रचनाएँ गूढ़ तत्त्वगर्भित होते हुए भी इतनी रोचक है कि पढ़ना प्रारम्भ करने के पश्चात् अन्त कर ही उठने की इच्छा होती है। इनका शब्द-विन्यास भी जितना सुचिन्तित है, उतना ही सुललित भी।

श्यामसुखाजी ने बंगला में लिखा अत: जैनियों के साथ बंगला भाषा भाषी भी उनके चिरऋणी रहेंगे। एक ओर वे बंगला में लिखकर उस भाषा को समृद्ध करते हैं, दूसरी ओर बंगदेशीय विद्वानों में फैली जैन धर्म सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं को दूर करने में भी मददगार होते हैं। डॉ.

सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है–''उनकी रचित जैन धर्म सम्बंधी तथ्यपूर्ण पुस्तक पढ़कर, जैन धर्म के विषय में कॉलेज में पढ़ते समय जो धारणा बनी थी उसका निरसन करना पड़ा और जैन धर्म की गम्भीरता, महत्त्व एवं ऐतिहासिक गौरव के बारे में भी कुछ जान सका।''

साहित्य साधना में निरत रहते हुए आप जैन संस्थाओं के कार्यक्रमों में भाग लेते थे। 'अजीमगंज श्वेताम्बर सभा' के आप प्रथम सभापति थे। इन्हीं के सभापतित्व में स्थानीय विद्यालय में इस सभा की बैठक होती, जहाँ कि धर्म एवं विविध सामाजिक विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता। मुर्शिदाबाद जैन एसोशियेसन से भी वे संयुक्त थे। प्रख्यात पुरातत्त्वविद् श्री पूरणचन्द जी नाहर के साथ आपका मैत्री सम्बन्ध था। अजमेर में अनुष्ठित 'ओसवाल महासम्मेलन' में भाग लेने के लिए आप नाहर जी के साथ गये थे। वहाँ नाहर जी की अस्वस्थता के कारण विषय निर्वाचन समिति का कार्य संचालन भी आपको ही करना पड़ा था। पं. सुखलालजी, वासुदेव शरण अग्रवाल, दलसुखभाई मालवणिया आदि विद्वानों के साथ भी आपका सम्पर्क था।

42. श्री पूनमचन्द रांका (1899-)

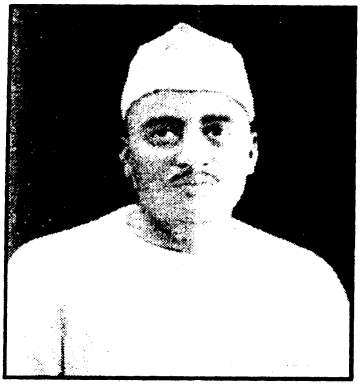

जन्म : तोंडापुर ग्राम (अजमेर), 1899

पिताश्री : छोगमल रांका

(दत्तक : शम्भूराम रांका)

दिवंगति :

नागपुर के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता ओसवाल श्रेष्ठि श्री पूनमचन्दजी रांका महात्मा गांधी के अत्यंत प्रिय कार्यकर्त्ताओं में से एक थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के 30 वर्ष भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। वह बलिदान और सेवा का युग था एवं रांकाजी उसके मूर्त्तिमान प्रतीक। आप अजमेर तालुका के तोंडापुर ग्राम निवासी श्री छोगमलजी रांका के पुत्र थे। आपका जन्म संवत् 1956 में हुआ। संवत् 1962 में आप नागपुर के रांका शंभूरामजी के दत्तक आए। आपका जीवन त्याग और तपस्या से ओतप्रोत था। हाथ की कती-बुनी काली कमली कंधे पर डाले संवत् 1977 से गांधीजी के सभी आन्दोलनों में वे अग्रणी रहे। इस हेतु छः सात बार उन्हें जेल यातनाऐं भी सहनी पड़ी। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष तो वे थे ही, संवत् 1996 में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी के भी सदस्य चुने गए।

उन्होंने अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग देशहित के लिए अर्पित कर दिया था। सामाजिक सुधारों के वे सूत्रधार थे। ओसवाल महेश्वरी एवं पोरवाल समाज में मोसर की कुप्रथा के उन्मूलन हेतु उन्होंने अथक प्रयास किया। वे अपनी धार्मिक सहिष्णुता के लिए सर्वत्र लोकप्रिय थे। अखिल भारतवर्षीय सनातन जैन महासभा के सातवें अधिवेशन के वे सभापति चुने गए। आपकी धर्मपत्नि धनवती बाई रांका राष्ट्रीय आन्दोलन की महिला नेत्री थी। वे भी अनेक बार जेल गई। खादी एवं चरखा को अपने जीवन का अंग बनाकर उन्होंने तात्कालीन समाज को नई दिशा दी।

43. श्री बलवंतसिंह मेहता (1900–2003)

जन्म : उदयपुर, 1900

पिताश्री : जालिमसिंह मेहता

माताश्री : अनेकुँवर

पद : सदस्य–भारत की प्रथम संविधान निर्मात्री सभा, 1948

दिवंगति : उदयपुर, 2003

भारतीय संस्कृति के उदात्त मानवीय मूल्यों के संवाहक एवं राजनीति में शुचिता एवं पारदर्शिता के हामी मास्टर बलवंतसिंह मेहता अखिल जैन समाज के ज्वलंत दीप स्तम्भ थे।

24 फरवरी, 2000 का दिन लोकसभा के इतिहास में एक उल्लेखनीय स्वर्णिम दिवस था, जिस दिन सम्पूर्ण सदन ने मेजें थपथपा कर श्री मेहता के शतायु होने पर बधाई दी थी। यह अविस्मरणीय बधाई मात्र उस शख्सियत के सौ वर्ष पूर्ण करने तक सीमित नहीं थी किन्तु देश के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय योगदान देते हुए भारतीय संविधान के निर्माताओं में से एक देशभक्त के जाज्वल्यमान हस्ताक्षर के प्रति भी थी। भारत के संसदीय इतिहास में यह एक अनूठी और गौरवपूर्ण बात हुई।

यह प्रथम अवसर नहीं था, जबकि श्री मेहता को देश की सर्वोच्च विधायिका ने सम्मान व स्नेह प्रदान किया हो। दिनांक 9 दिसम्बर, 1996 को संविधान सभा की प्रथम बैठक की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर भी संसद के संयुक्त अधिवेशन में बड़े हर्षनाद व मेजें थपथपाकर श्री मेहता के प्रति सम्मान प्रकट किया गया था। इस बार और गत बार भी वे राजस्थान के एकमात्र वरिष्ठ सदस्य थे। इसी गौरवपूर्ण श्रृंखला की कड़ी में 4 अप्रेल, 2000 को राजस्थान विधानसभा ने भी श्री मेहता को शतायु होने पर बधाई दी।

श्री बलवंतसिंह मेहता का जन्म उदयपुर में 8 फरवरी, 1900 में हुआ। आपके पिता श्री जालिमसिंह मेहता एवं माता अनेकुँवर का परिवार प्रतिष्ठित व कुलीन ऐतिहासिक परिवार माना जाता है। मेवाड़ को मुगलों से सामना करने तथा राजपरिवार की सुरक्षा करने में इस परिवार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यही कारण था कि श्री मेहता की बनौली (विवाह पूर्व शोभायात्रा) महाराणा के राजमहलों से प्रारम्भ हुई थी। यह सौभाग्य राजपरिवार के अतिरिक्त किसी अन्य परिवार को प्राप्त नहीं हुआ। यह एक विडम्बना ही है कि एकीकरण तथा नवलपुरा जागीरदार बने रहने के बावजूद श्री मेहता को मेवाड़ के महाराणा की राजशाही और जागीरदारी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करना पड़ा। लेकिन आपकी ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा और देशप्रेम से परिचित होने के कारण आपको मेवाड़ के राजपरिवार ने सदैव सम्मान ही दिया। उन्हीं के परामर्श पर मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा भूपालसिंहजी ने अपनी रियासत भारत सरकार को सौंप दी और वे राजस्थान के महाराज प्रमुख बने। उन्होंने जनहित में अपनी समस्त राज-सम्पत्ति भी सरकार को दे दी।

श्री मेहता ने अपनी शिक्षा उदयपुर व भीलवाड़ा तथा उच्च शिक्षा फर्गुसन कॉलेज, पूना से प्राप्त की। 13 वर्ष की अल्पायु में आपका विवाह

दूल्हा वेश में सजे-धजे मास्टर बलवंतसिंह (बैठे हुए में दाएँ से दूसरे)

श्रीमती (स्वर्गीया) सुगन्ध कुमारी से हुआ जो उदयपुर के प्रतिष्ठित सर्राफ श्री मगनलालजी दलाल की ज्येष्ठ पुत्री थी। आपने अपना जीवन कलकत्ता में ''यात्री मित्र'' पत्रिका के सम्पादक के रूप में प्रारम्भ किया। इस पत्रिका में रेल्वे टाइम टेबल, पर्यटन सम्बन्धी जानकारी तथा रोचक पठनीय सामग्री का समावेश किया जाता था। वहाँ से लौटकर आप उदयपुर में जैन पाठशाला के प्रधानाध्यापक बने और इसी कारण श्री मेहता 'मास्टर साहब' के नाम से विख्यात हैं। आपकी 'मेवाड़ी दिग्दर्शन', 'राजपूताने का भूगोल' तथा 'बालोपयोगी व्याकरण' पाठ्य-पुस्तकें वर्षों तक मेवाड़ की शिक्षण संस्थाओं में सरकार द्वारा मान्य होकर पढ़ाई जाती रही। आपने 'भक्तिमत्ती मीरां बाई', 'फोर्ट ऑफ चित्तौड़गढ़' आदि पुस्तकें भी लिखी।

आपने मात्र 16 वर्ष की आयु में ही प्रताप सभा की स्थापना की एवं महाराणा प्रताप के उच्च आदर्शों का प्रचार-प्रसार किया। आपने युवावस्था में लाहौर एवं करॉंची में आयोजित कॉंग्रेस अधिवेशनों में सहभागी बनकर भाग लिया। श्री मेहता ने सरदार भगतसिंह के साथियों को शरण देकर उन्हें हथियार चलाने और सुलभ कराने की सुविधाएँ प्रदान की। इससे देश के जांबाज क्रान्तिकारी देशभक्तों को प्रेरणा मिली। यहाँ वे ब्रिटिश प्रान्तों के गुप्तचरों और पुलिस के जाल से मुक्त होकर अपना पूरा समय हथियार परीक्षण व प्रशिक्षण में लगाने लगे। 24 अप्रैल, 1938 को श्री मेहता ने पूर्व पुश्तैनी निवास साहित्य कुटीर, सोना सेहरी में मेवाड़ प्रजा-मण्डल की स्थापना की और प्रथम अध्यक्ष बने। उत्तरदायी शासन की माँग कर आन्दोलन करने के कारण आपने अनेक बार लाठियों की मार खाई एवं आपको नौ मास तक सराड़ा जेल के कारावास में रहना पड़ा। महात्मा गाँधी के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान भी श्री

मास्टर बलवंतसिंह मेहता को सन् 1938 में आजादी के आन्दोलन के दौरान जेल से रिहाई के बाद प्रशंसकों ने फूलमालाओं से लाद दिया।

मेहता को उदयपुर व इहवाल की जेलों में रहना पड़ा। राज्य एवं केन्द्रिय सरकार के गुप्तचर बराबर उनके पीछे लगे रहते थे। लोग राजनैतिक संस्था को चन्दा देने से कतराते थे। ऐसे विकट समय में आपने अपनी धर्मपत्नि के गहने गिरवी रखकर प्रजामण्डल की गतिविधियाँ संचालित की।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। सन् 1948 में भारतीय संविधान में निर्माणार्थ 12 प्रांतों एवं 70 देशी रियासतों के 299 प्रतिनिधियों की संविधान निर्मात्री सभा गठित हुई, जिसमें राजस्थान का प्रतिनिधित्व करने के लिए मास्टर बलवंतसिंह मेहता एवं लोकनायक माणिक्यलाल वर्मा का मनोनयन हुआ।

श्री बलवंतसिंह मेहता ने भारतीय संविधान सभा में राजस्थान के हितों को प्रमुखता दी एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाते हुए भारतीय संविधान की रचना में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कट्टर सर्वोदयी व गाँधी अनुयायी होने के कारण आपने सदैव दलितों, पतितों व पिछड़ों के विकास एवं उन्नयन के लिए संविधान में समुचित प्रावधानों का समावेश कराया। ग्राम पंचायतों को सबल व सुदृढ़ बनाते हुए आपने गाँधीजी के ग्राम स्वराज को साकार रूप देने के लिए भी अथक प्रयास किये। खादी ग्रामोद्योगों के विकास तथा कुटीर उद्योगों के विस्तार के बिना देश के करोड़ों लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना, उन्हें स्वावलम्बी बनाना और उनके सम्मानपूर्ण जीने की कल्पना करना ही व्यर्थ है। ये उद्‌गार उनके भारतीय संविधान में दिये गये भाषण से स्पष्ट हैं।

श्री मेहता प्रारम्भ से ही कर्त्तव्यनिष्ठ, निःस्वार्थी, सच्चे, साहसी और स्पष्टवादी रहे। उन्होंने न तो कभी किसी के समक्ष झुकना स्वीकार किया और न ही सिद्धान्तों से समझौता किया। अपनी बात कहने से भी वे कभी नहीं हिचकिचाए, चाहे वह व्यक्ति देश का कितना ही बड़ा गर्णधार क्यों न हो।

सरदार पटेल ने राजस्थान का एकीकरण तो करवा दिया किन्तु आबू पर्वत को अलग रखकर। श्री मेहता को यह नागवार लगा। उन्होंने संविधान सभा के ऐतिहासिक भाषण में आबू पर्वत को राजस्थान में मिलाने की जोरदार वकालत की और कहा कि राजस्थान में 'सिरोही' को तलवार कहते हैं और

सरदार पटेल ने जब यह तलवार ही तोड दी तो फिर राजस्थान का शौर्य कहाँ रहा ? अपने अकाट्य तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए तथा संघर्षरत रहते हुए आखिर आपने आबू पर्वत सहित सिरोही को राजस्थान में सम्मिलित करवा कर ही चैन की सांस ली।

लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल से लोहा लेना कोई साधारण बात नहीं थी। फिर भी कोमल कुसुम सम सहृदय सरदार पटेल श्री मेहता से प्रसन्न थे और उन्हें अपना विश्वासपात्र मानते थे। सरदार पटेल हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे किन्तु नेहरू जी हिन्दुस्तानी के पक्षधर ही नहीं, कट्टर समर्थक थे। ऐसी विषम परिस्थिति में खुले तौर पर पं. नेहरू का विरोध करने का साहस भला कौन कर सकता था। सरदार पटेल ने श्री मेहता को अपने निवास पर बुलवाया और अपने मन की, राष्ट्रहित की यह बात कही। उनके ही निर्देश पर श्री मेहता सरदार पटेल के कुछ अन्य विश्वसनीय साथियों के साथ लालटेनें लेकर रात-रात भर सदस्यों के घरों पर घूमते रहे और उन्हें हिन्दी के हिमायती बनाते रहे। परिणाम अनुकूल और सुखद रहा और हिन्दी देश की राजभाषा स्वीकार कर ली गयी।

सरदार पटेल की भाँति श्री नेहरू भी श्री मेहता की कर्त्तव्यपरायणता, कर्मठता, स्पष्टवादिता, देशभक्ति और चरित्र की उत्कृष्टता से प्रभावित थे। उन्होंने श्री मेहता को, विशेष रूप से एक संसदीय मण्डल के साथ कश्मीर में सैन्य स्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा। 18000 फीट से भी अधिक ऊँचाई पर सैन्य अधिकारियों ने उन्हें देश की सीमा-स्थिति का अवलोकन करवाया और सुरक्षा उपायों पर विचार-विमर्श किया। श्री बलवंतसिंह मेहता को भारतीय संविधान पारित करवाने का भी प्रस्ताव प्रस्तुत करने का ऐतिहासिक गौरव व श्रेय प्राप्त हुआ। श्री मेहता अन्तरिम संसद (लोकसभा चुनाव के पूर्व) के भी सदस्य रहे।

आप राजस्थान में जयनारायण व्यास के मंत्रिमण्डल (1951-52) में उद्योग, खनिज व विकास मंत्री रहे। आपने अत्यन्त अल्पकालीन मंत्रीपद सुशोभित करते हुए भी राज्य व जनहित के कई कार्य किये, जिनमें खनिज मालिकों के एकाधिकार समाप्त करना, कई वस्तुओं पर चुंगी समाप्त करना,

अपने घर या झोंपड़े बनाने के लिए कई वस्तुओं पर कर नहीं देने की सुविधाएँ देना, कतिपय बड़े-बड़े उद्योग लगाना आदि सम्मिलित हैं।

सन् 1952 के प्रथम आम चुनाव में श्री मेहता उदयपुर से लोकसभा के सांसद निर्वाचित हुए। संभवतः वे देश में सबसे कम धनराशि (दस हजार से भी कम) व्यय कर चुनाव जीते। संसद सदस्य के रूप में उन्होंने शिक्षा, श्रम, उद्योग, खनिज आदि मंत्रालयों की संसदीय समितियों के सदस्य के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वे संसद की कई प्रवर समितियों के भी सक्रिय सदस्य रहे हैं। ट्रेड यूनियन एक्ट, इम्पलायज स्टेट इंश्योरन्स एक्ट आदि की संरचना व पारित कराने में भी उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। लोक लेखा समिति के कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में आपने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया तथा राजकीय उपक्रमों को व्यवस्थित करने व विकास के सुझाव दिये।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जिंक स्मेल्टर को बिहार ले जाना चाहते थे। बिहार में सीसे की खाने हैं और पानी भी प्रचुरता से उपलब्ध है जबकि जावर (उदयपुर) स्थित सीसा, जस्ता, खनिज क्षेत्र में पानी की कमी है। श्री मेहता ने लोक सभा में जावर में ही स्मेल्टर स्थापित करने पर दृढ़ता से बल दिया और अपने पक्ष में प्रबल तर्क दिए। अन्ततः जिंक स्मेल्टर जावर में ही स्थापित हुआ। खेतड़ी में हिन्दुस्तान कॉपर संयत्र स्थापित कराने में भी श्री मेहता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री मेहता की प्रेरणा से ही राष्ट्रीय राजमार्ग-8 के द्वारा उदयपुर होते हुए अहमदाबाद को दिल्ली से जोड़ा गया।

आप भारतीय लोक कला मण्डल के संस्थापक अध्यक्ष, कस्तूरबा मातृ मन्दिर के अध्यक्ष, राजस्थान वनवासी सेवा संघ के संस्थापक मंत्री, राजस्थान भूदान यज्ञ बोर्ड के अध्यक्ष, भारत सेवक समाज, राजस्थान के अध्यक्ष, उदयपुर नगर सुधार प्रन्यास के अध्यक्ष तथा राजस्थान सर्व-सेवा-संघ, भारतीय आदम जाति सेवक संघ, नाथद्वारा मन्दिर बोर्ड, राजस्थान विद्युत मण्डल आदि के सदस्य रहे।

महाराणा प्रताप स्मारक समिति के संस्थापक प्रधान मंत्री के रूप में आपके द्वारा बनवाया गया उदयपुर में मोती मगरी पर स्थित महाराणा प्रताप

स्मारक विश्व पर्यटन मानचित्र पर अंकित हो चुका है। आप राष्ट्रीय खनिज विकास निगम के वर्षों तक निर्देशक रहे। आपकी ही प्रेरणा से (संसद के रूप में) भारतीय डाकघरों में हिन्दी में तार भेजना प्रारम्भ हुआ।

ईरान के शाह, बैगम फारुहा एवं कश्मीर के युवराज डॉ. करणसिंह को मोती मगरी प्रताप स्मारक का अवलोकन कराते हुए श्री मेहता

श्री ठक्कर बापा की प्रेरणा से आपने मेवाड़ के आदिवासी क्षेत्र में बैठकर कई पाठशालाएँ एवं छात्रावास स्थापित किये और आदिवासियों के उत्थान में योगदान दिया। भूदान बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में सैकड़ों एकड़ जमीनें भूमिहीन किसानों में वितरित की और आदर्श ग्राम स्थापित किये। उदयपुर नगर सुधार प्रन्यास के अध्यक्ष के रूप में नगर के नियोजित विकास एवं इसे प्रदूषित रहित बनाने की चेष्टा की। भारत सेवक समाज के अध्यक्ष के रूप में आपने राजस्थान में श्रमजीवियों के लिए राज्य में प्रथम बार कॉलेज की स्थापना की जो आज जयपुर में लाल बहादुर शास्त्री कॉलेज के नाम से विख्यात है।

श्री मेहता की महिला शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी काफी रुचि रही है, जिसके लिए आपने उदयपुर में राजस्थान महिला विद्यालय की स्थापना में

सक्रिय सहयोग दिया तथा कुछ वर्षों तक वहाँ अध्यापन कर अपनी सेवाएँ भी दीं। आप ही की प्रेरणा व प्रयास से उदयपुर विश्वविद्यालय में जैनोलोजी तथा नाथद्वारा कॉलेज में वैष्णवोलोजी का शिक्षण, शोध व विकास कार्य प्रारम्भ हुए। राजस्थान हिस्ट्री काँग्रेस की स्थापना में भी आपका अमूल्य योगदान रहा। स्वयं इतिहास प्रेमी होने के कारण आपने इसके अधिवेशनों में शोध-पत्र पढ़े।

आपने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा राजस्थान के अधिकारी प्रशिक्षण विद्यालय में राजस्थान के आदिवासियों तथा अन्य सामयिक विषयों पर भाषण दिये।

जब मेहता जी व्यास मंत्रिमण्डल में उद्योग, खनिज एवं विकास मंत्री थे तब उन्होंने वर्षों से खनिज भूखण्डों पर एकाधिकार जमाए पूँजीपतियों को बेदखल कर मध्यम एवं निम्न वर्गीय उद्यमियों को विकास का समुचित अवसर दिया था। विकेन्द्रीकरण की इस नीति के निष्पादन से उन्होंने अनेक केन्द्रिय एवं काँग्रेस के शीर्ष नेताओं को नाराज कर दिया था। परिणामत: उन्हें अगले चुनावों में राज्यसभा का टिकट नहीं मिला। काँग्रेस पार्टी में भाई भतीजावाद के चलते द्वितीय लोकसभा के चुनाव में भी उन्हें टिकट नहीं मिला। ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा के अवमूल्यन के कारण शासकीय राजनीति से उनका मोह भंग हो गया। वे पूर्णत: आम आदमी की सेवा एवं वनवासी और आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा प्रसार एवं सामाजिक बुराइयों के खिलाफ अभियान को समर्पित हो गए। शारीरिक अशक्तता के बावजूद भारत के स्वतंत्रता संग्राम का यह पुरोधा मरते दम तक संघर्षरत रहा।

31 जनवरी, 2003 की रात्रि में 103 वर्षों की उपलब्धियों से सम्मानित इस संघर्षशील महामना का उदयपुर में देहावसान हुआ। उनकी शतायु पूर्ति पर लोकसभा में निम्न उल्लेख द्वारा उनका अभिनन्दन वर्तमान भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा।

Reference Re : Birth centenary of Sri Balwantsingh Mehta

Mr. SPEAKER : Hon. Members, I am happy to inform the Members that Sri Balwantsingh Mehta, who is one of the few

living members of that galaxy of men and women who laboured vigorously for outlining the dreams and aspirations of our Freedom Fighters in the Constituent Assembly, completed 100 years of his eventful life on 8 February, 2000. Sri Mehta was also a Member of the First Lok Sabha. I hope the House would join me in greeting him on this occasion and wishing Sri Mehta a long and healthy life.

G.C. Malhotra **Secretary General**
No. 22/1/99/T **Dated : 29th February 200**

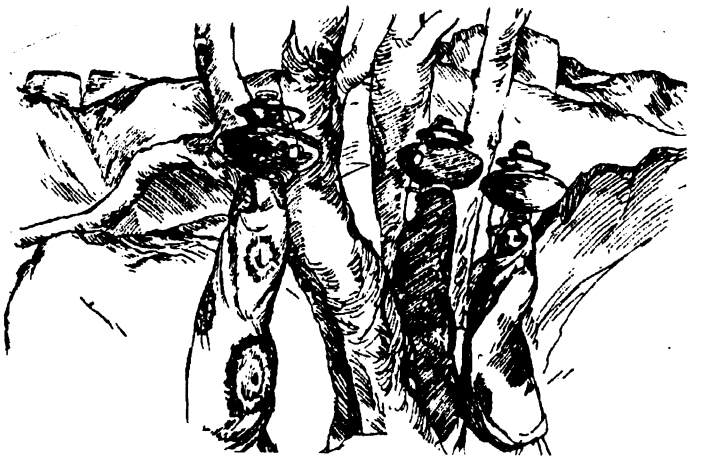

44. श्री जुगलकिशोर मुख्तार (1877–1968)

जन्म : सरसावा (सहारनपुर), 1377
पिताश्री : चौधरी नत्थूमल अग्रवाल
माताश्री : भोईदेवी
सृजन : मेरी भावना, युग भारती, ग्रंथ परीक्षा (चार भाग), जैनाचार्यों एवं जैन तीर्थंकरों में शासन भेद, स्वामी समन्तभद्र, रत्नकरण्ड, श्रावकाचार, समीचीन धर्मशास्त्र, जैन साहित्य और इतिहास, युगवीर ग्रंथावली (2 खण्ड) सन्मति सूत्र और सिद्धसेन
सम्पादन : जैन गजट, जैन हितैषी, अनेकान्त
दिवंगति : 1968

20वीं शताब्दी में जैन संस्कृति, साहित्य एवं समाज की तन-मन-धन से निष्ठापूर्वक सेवा कर अपने जीवन को धन्य मानने वाले मूर्धन्य साहित्यकार एवं समालोचक श्री जुगल किशोर मुख्तार सचमुच 'युगवीर' थे। प्राच्य विद्या के इस संशोधक, सम्पादक एवं लेखक के सुयश की सुगंध से दिग्-दिगन्त सुवासित हुआ। ईसा की दूसरी शदी में हुए महान् जैनाचार्य सामन्तभद्र के साहित्य एवं जीवन को अपने अध्यवसाय, सतत शोध-खोज एवं लगन से प्रकाश में लाकर आपने जैन समाज का बहुत उपकार किया।

सहारनपुर जिले के सरसावा ग्राम में चौधरी नत्थूमल अग्रवाल की धर्मपत्नि श्रीमती भोईदेवी की कुक्षि से सन् 1877 में एक बालक का जन्म हुआ। नामकरण हुआ–जुगल किशोर। पाँचवे वर्ष से बालक का शिक्षण उर्दू-फारसी मदरसे से आरम्भ हुआ। तदनन्तर हकीम उग्रसेन की पाठशाला में हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास भी किया। बालक की विलक्षण धारणा शक्ति एवं तर्कशक्ति से सभी चकित थे। ग्राम के पोस्टमास्टर के पास वे अंग्रेजी सीखने भी जाते। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने सहारनपुर हाई स्कूल में दाखिला लिया। मेट्रिक पास की।

पढ़ाई करते समय ही 16 वर्ष की किशोरावस्था में सन् 1893 में उनका विवाह तीतरों के मुंशी होशियार सिंह की सुपुत्री से हो गया। 7 अक्टूबर, 1896 को सरसावा में उनके पहली पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होंने सन्मतिकुमारी रखा। वह प्लेग से 24 जनवरी, 1907 को देवबन्द में कालकवलित हो गई। तदनन्तर 7 दिसम्बर, 1917 को सरसावा में दूसरी पुत्री विद्यावती का जन्म हुआ। जब वह मात्र तीन माह की थी, उसकी माँ इस संसार से कूच कर गई और 28 जून, 1920 को क्रूर काल ने मोतीझरे के बहाने उस बच्ची को भी छीनकर मुख्तार साहब को 42 वर्ष की वय में नितान्त एकाकी कर दिया। अपनी पुत्रियों से उन्हें इतना लगाव रहा कि कालान्तर में उनकी स्मृति में उन्होंने आकर्षक बाल ग्रन्थमाला के प्रकाशन हेतु 'सन्मति-विद्या-निधि' स्थापित की।

एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण करते ही जीविका की समस्या सामने आई। इधर-उधर नौकरी तलाश की। मन माफिक काम नहीं मिला तो नवम्बर 1899 में बम्बई प्रान्तिक सभा में वैतनिक उपदेशकी ग्रहण कर ली, किन्तु वह उनकी अन्तरात्मा को रास नहीं आई और डेढ़ माह बाद ही उसे छोड़ दिया। स्वतन्त्र रोजगार की दृष्टि से 1902 में मुख्तारी की परीक्षा पास की और सहारनपुर में प्रैक्टिस प्रारम्भ की। 1905 में वह देवबन्द चले आये और वहाँ 11 फरवरी, 1914 तक मुख्तारी करते रहे।

सरसावा की जैन पाठशाला में पढ़ते समय ही किशोर जुगलकिशोर में लेखन प्रवृत्ति प्रस्फुटित हो चली थी। 8 मई, 1896 के 'जैन गजट' (देवबन्द) में जब वह कक्षा 8 के छात्र थे, उनका पहला लेख, जो कॉलेज की स्थापना के समर्थन में था, छपा था। तदनन्तर 'जैन गजट' में प्राय: उनके लेख प्रकाशित होते रहे। 1 जुलाई, 1907 को इस साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का भार उन्हें ही मिला जिसका निर्वहन वे 31 दिसम्बर, 1909 तक करते रहे।

1 सितम्बर, 1907 के अग्रलेख में उन्होंने पत्रों में प्रकाशित होने वाले अश्लील विज्ञापनों का विरोध किया। सम्भवतया विज्ञापनों के संशोधन पर देश में सबसे पहले आवाज उठाने वाले सम्पादक वही थे।

उनके सजीव सम्पादन ने 'जैन गजट'' के ग्राहकों की संख्या 300 से बढ़ाकर 1500 कर दी। उनकी सम्पादन प्रतिभा से प्रभावित पं. नाथूराम प्रेमी ने अक्टूबर 1919 में उन्हें ''जैनहितैषी'' के सम्पादन का दायित्व सौंपा जिसे उन्होंने सन् 1921 तक निभाया। ''जैनहितैषी'' के बन्द हो जाने पर प्राचीन जैन साहित्य सम्बंधी शोध-खोजपूर्ण लेखों के प्रकाशन में आये गतिरोध को दूर करने के लिए उन्होंने अपने 'समन्तभद्राश्रम' से, जिसकी स्थापना उन्होंने दिल्ली में 21 अप्रेल, 1929 को की थी, नवम्बर 1929 से एक मासिक पत्र 'अनेकान्त' निकालना प्रारम्भ किया।

नवम्बर 1930 में प्रथम वर्ष की 12वीं किरण निकलने के उपरान्त आर्थिक एवं अन्य कारणों से इस पत्र का प्रकाशन 8 वर्ष तक बाधित रहा और वर्ष 2 की किरण 1 उनके सम्पादकत्व में वीरसेवा मंदिर, सरसावा से 1 नवम्बर, 1938 को प्रकाश में आ पाई। यह पत्रिका अभी जीवित है, नई दिल्ली से प्रकाशित त्रैमासिक के रूप में।

सन् 1914 में मुख्तारी छोड़ने के उपरान्त संस्कृत के विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों से अपने मनोनुकूल सुभाषितों का चयन कर उन्होंने उनका सरल हिन्दी पद्य में भावानुवाद या छायानुवाद किया। उन पद्यों को इस प्रकार अनुस्यूत किया कि वह 'मेरी भावना' नामक सुमनावलि बन गई। यह उनकी जीवन-साधना का मैनीफेस्टो (घोषणा-पत्र) थी। सर्वप्रथम 'जैन हितैषी' पत्रिका के अप्रेल-मई 1916 के संयुक्तांक में इसका प्रकाशन हुआ और यह एक कालजयी रचना सिद्ध हुई। इसमें उनका कवि उपनाम 'युगवीर' देखने को मिलता है। यह कृति इतनी लोकप्रिय हुई कि पुस्तिका रूप में इसकी 20 लाख प्रतियाँ हिन्दी में छपने और इसका अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में अनुवाद होने का उल्लेख कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'अनेकान्त' (जनवरी 1944) में किया था। बंगला भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ। आज भी सहस्त्रों व्यक्तियों को मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत यह रचना कंठस्थ है और वे इसका नित्यपाठ करते हैं।

सन् 1920 में उनका एक काव्य संकलन 'वीर पुष्पांजलि' नाम से प्रकाशित हुआ। उस समय वह समाज के घोर विरोध का सामना कर रहे थे। सन् 1928 में उनकी पद्य रचना 'मेरी द्रव्य पूजा' और 1933 में पूज्यपाद देवनन्दी की अमर कृति 'सिद्धि-भक्ति' के पद्यानुवाद स्वरूप 'सिद्धिसोपान' प्रकाशित हुई। तदनन्तर भी उनकी काव्य-साधना हिन्दी और संस्कृत में चलती रही। उनकी काव्य-कृतियों का एक संकलन 'युग भारती' नाम से प्रकाशित हुआ।

जुगलकिशोर जी की साहित्य साधना का एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष है उनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार और प्राचीन जैन साहित्य का अन्य सम्प्रदायों के साहित्य के साथ तुलनात्मक गहन अध्ययन–मनन, शोध-मंथन कर सत्य को निर्भीकता से उजागर करना। सन् 1913 में उनकी 'जिनपूजाधिकार मीमांसा' प्रकाशित हुई और सन् 1917 में 'ग्रन्थ परीक्षा' के प्रथम एवं द्वितीय भाग, सन् 1921 में भाग तृतीय और जनवरी 1934 में भाग चतुर्थ प्रकाश में आये। 'ग्रन्थ-परीक्षा' प्रथम भाग में उन्होंने 'उमास्वामी श्रावकाचार', 'कुन्दकुन्द श्रावकाचार' और 'जिनसेन त्रिवर्णाचार'–इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की। द्वितीय भाग में 'भद्रबाहु संहिता', तृतीय भाग में भट्टारक सोमसेन के 'त्रिवर्णाचार', 'धर्म परीक्षा', 'अकलंक प्रतिष्ठापाठ' और 'पूज्यपाद उपासकाचार' का तथा चतुर्थ भाग में 'सूर्यप्रकाश' ग्रन्थ का परीक्षण किया। उन्होंने अपने गहन तुलनात्मक अध्ययन और तटस्थ परीक्षण द्वारा उन ग्रन्थों में पाई गई विसंगतियों आदि पर प्रकाश डाला। भट्टारक सोमसेन के 'त्रिवर्णाचार' को तो जैन संस्कृति के आचार मार्ग के प्रतिकूल और 'सूर्यप्रकाश' को अप्रमाणिक ठहरा दिया। उनकी यह ग्रन्थ-परीक्षा परम्परागत संस्कारों पर कड़ा कुशाघात थी। अनेक विद्वान् उससे तिलमिला उठे और उन्हें 'धर्मद्रोही' की उपाधि दे डाली। किन्तु इससे अविचलित रह जुगलकिशोरजी अपने कार्य में लगे रहे। अपने गहन अध्ययन द्वारा उन्होंने 'जैनाचार्यों तथा जैन तीर्थंकरों में शासन भेद' नामक जो लेखमाला प्रकाशित की उसने तो कोहराम मचा दिया। उसके विरुद्ध भी उछल-कूद तो बहुत हुई, पर उनकी स्थापनाएँ अटल ही रहीं, कोई उनके

विरुद्ध प्रमाण न ला सका। उन्होंने विद्वानों को शास्त्र-परीक्षण की एक नई दिशा प्रदान की।

सन् 1923 में दिल्ली में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना हुई। इसके संस्थापकों में पं. जुगलकिशोर मुख्तार अग्रणी थे।

सन् 1921 में 'उपासनातत्त्व', 1922 में 'विवाह समुद्देश्य', 1925 में 'विवाहक्षेत्र पकाश' व 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार की प्रस्तावना', 1935 मं 'स्वामी समन्तभद्र', 1942 में 'रत्नकरण्डश्रावकाचार का अनुवाद', 1943 में 'वृहत्स्वयंभूस्तोत्र का अनुवाद' और 1944 में 'सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ' का प्रकाशन हुआ। अप्रेल 1955 में समन्तभद्राचार्य के 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' की विस्तृत व्याख्या 'समीचीन धर्मशास्त्र' नाम से प्रकाशित हुई।

अन्तर्जातीय विवाह के समर्थन में आपने एक पुस्तक लिखी। समाज में बहुत हल्ला हुआ। दस्सा-पूजा पर भी आपने एक किताब लिखी एवं कोर्ट में गवाही भी दी। इस पर आपको जातिच्युत घोषित कर दिया गया। यह घोषणा स्वत: अपनी मौत मर गई।

5 दिसम्बर, 1943 के दिन सरसावा के इस संत पं. जुगल किशोर मुख्तार का सहारनपुर में भव्य सार्वजनिक सम्मान किया गया।

मुख्तार साहब के 32 निबन्धों का लगभग 750 पृष्ठीय एक संग्रह सन् 1956 में 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' प्रथम खण्ड नाम से प्रकाशित हुआ था। तदुपरान्त 1963 में समाज सुधार, अंधविश्वासों एवं अज्ञानपूर्ण मान्यताओं-प्रथाओं आदि की तीव्र आलोचना, राष्ट्रीयता पोषण एवं राजनीतिक दशा, हिन्दी प्रचार, जैन नीति, जैन उपासना का स्वरूप, जैनी भक्ति का रहस्य आदि अनेक उपयोगी विषयों को समाविष्ट किये 41 मौलिक निबन्धों का संग्रह 'युगवीर-निबन्धावली-प्रथम खण्ड' के रूप में प्रकाशित हुआ।

उसी श्रृंखला में सन् 1967 में 872 पृष्ठीय एक अन्य संकलन 'युगवीर निबन्धावली-द्वितीय खण्ड' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें मुख्तार साहब के उत्तरात्मक, समालोचनात्मक, कृति परिचयात्मक,

विनोद-शिक्षात्मक एवं प्रकीर्णक–इन 5 विभागों में वर्गीकृत 65 निबन्ध-लेखादि समाहित हैं। निबन्धावली के इस खण्ड के पूर्व 1965 में उनकी कृति 'सन्मति सूत्र और सिद्धसेन' का डॉ. ए.एन. उपाध्ये कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुका था। उक्त कृति एवं निबंधावली के द्वितीय खण्ड का प्राक्कथन डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने लिखा था।

भगवान महावीर के परम उपासक और स्वामी समन्तभद्र के अनन्य भक्त जुगलकिशोर ने न केवल 'वीर सेवा मंदिर' और 'समन्तभद्राश्रम' जैसी संस्थाओं की अपने एकाकी बलबूते पर स्थापना की, अपितु अनेक शास्त्र-भण्डारों से खोज-खोजकर कितने ही प्राचीन ग्रन्थों का उनकी जीर्ण-शीर्ण पाण्डुलिपियों से उद्धार किया। उन्होंने उनका संशोधन भी किया तथा उनमें से कई को सुसम्पादित कर अपनी संस्था से प्रकाशित कराया। 'पुरातन जैन-वाक्य सूची', 'जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह' और 'जैन लक्षणावली' जैसे अतीव उपयोगी संदर्भ ग्रंथ उनके 'वीर सेवा मंदिर' की देन हैं।

'युक्तानुशासन', 'देवागम', 'अध्यात्म रहस्य', 'तत्त्वानुशासन', 'समाधितन्त्र' आदि अनेक अलभ्य ग्रंथों के अद्वितीय अनुवाद-भाष्य उन्होंने रचे और कई ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएँ लिखीं। मूल लेखक के भावों को हृदयंगम कर उसे सरल भाषा में प्रकट करना मुख्तार साहब के अनुवादों की विशेषता रही। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी वे 'हेमचन्द्रीय योगशास्त्र' की एक विरल दिगम्बर टीका, अमितगति के 'योगदासार', प्राभृत के 'स्वोपज्ञ भाष्य' तथा 'कल्याणकल्पद्रुम स्तोत्र' पर मनोयोगपूर्वक कार्य करते रहे।

सरलता-सादगी के पर्याय, सन् 1920 से बराबर खादी पहनने वाले और महात्मा गाँधी की पहली गिरफ्तारी पर यह व्रत लेने वाले कि 'बिना चर्खा काते भोजन नहीं करेंगे' पं. जुगलकिशोर जी में राष्ट्रीय भावना पूर्णत: समायी थी जो उनकी अनेक रचनाओं में भी मुखरित हुई। उन्होंने शहर के कोलाहल से दूर अपनी साहित्य-साधना हेतु जन्मभूमि सरसावा में वीर सेवा मन्दिर बनाया था। वह मंदिर तो नहीं, एक गुरुकुल सरीखा आश्रम था जिसके अधिष्ठाता वह स्वयं थे और उनके सान्निध्य

में वहाँ डॉ. दरबारीलाल कोठिया और पं. परमानन्द शास्त्री प्रभृति कई विद्वान साहित्य-साधनारत रहते थे। बाद में उनके प्रशंसक कतिपय उदार धनिकों के आग्रह और सहयोग से इस महत्त्वपूर्ण शोध संस्थान को राष्ट्रीय गरिमा प्रदान करने हेतु दिल्ली स्थानान्तरित किया गया। 17 जुलाई, 1954 को साहू शांति प्रसाद ने नये भवन का शिलान्यास किया था। किन्तु किन्हीं कारणों से दिल्ली में मुख्तार साहब का मन अधिक समय तक नहीं रम सका और वह जीवन के अंतिम वर्षों में अपने भतीजे डॉ. श्रीचन्द संगल के पास एटा आकर रहने लगे। वहीं 61 वर्ष 2 दिन की वय पाकर 22 दिसम्बर, 1968 के दिन अपनी पार्थिव देह त्याग कर उन्होंने महाप्रयाण किया।

वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति साहित्य साधना को अर्पित कर दी। मृत्यु से पूर्व अपनी शेष निजी सम्पत्ति का वे एक ट्रस्ट बना गए जिससे उनकी मृत्योपरांत कई पुस्तकें प्रकाशित हुई।

प्राच्य-विद्या-महार्णव, सिद्धान्ताचार्य एवं सम्पादकाचार्य विरुदों से विभूषित 91 वर्षों तक धर्म एवं समाज की सतत सेवारत पं. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' वस्तुतः जैन साहित्य-संसार के भीष्मपितामह थे।

45. पं. फतहचन्द कपूरचन्द लालन (1857-1953)

जन्म : नानकडा ग्राम (कच्छ), 1857

पिताश्री : कपूरचन्द जयराज लालन

माताश्री : लाछी बाई

उपलब्धि : सम्बोधन-विश्व धर्म परिषद्, शिकागो (1895), लंदन (1936)

दिवंगति : 1953

सन् 1857 भारत के इतिहास का संघर्ष, उत्तेजना एवं संक्रांति का काल था। एक तरफ मुगलिया सलतनत का अवसान हो रहा था एवं अंग्रेज अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित करने के लिए कृत संकल्प थे दूसरी तरफ हजारों वर्षों की विदेशी गुलामी से त्रस्त एवं सुषुप्त भारतीय मानस में स्वतंत्रता की चिंगारी भभक कर जल उठी थी एवं सुनहरे भविष्य का स्वप्न उभर रहा था। इस परिप्रेक्ष्य में भी प्रागैतिहासिक काल से ऋषि मुनियों की जलाई अध्यात्म की लौ पथ-प्रदर्शक बनी रही। विदेशों में इस प्रकाश को सम्प्रेषित करने वालों में पं. फतहचन्द लालन का योगदान कम नहीं था।

लालन गोत्र की उत्पत्ति कुछ इतिहासकार जालौर पारकर सिंध से मानते हैं। कुछ इतिहाकसार सोनीगरा सोढ़ा राजपूत वंश में रावजी नामक ठाकुर से मानते हैं। उनके पुत्र लालन रोग ग्रस्त थे। आचार्य जयसिंह सूरि ने मंत्र बल से बालक को स्वस्थ कर दिया। ठाकुर के समस्त परिवार ने सं. 1173 में जैन धर्म अंगीकार किया एवं ओसवाल कुल का अंग बन गए। इस गोत्र में अनेक शूरवीर, धनपति हुए हैं।

सन् 1857 में कच्छ के मांडवी ग्राम में कपूरचन्द जयराज की धर्मपत्नि लाछीबाई की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। बालक के मुख पर सदैव हास्य की किलकारी देख माता बड़ी आनन्दित होती। बालक का नाम फतहचन्द रखा गया। बड़े होकर पिता के साथ फतहचन्द

मुंबई आए। यहीं सड़क पर कॉर्पोरेशन के बिजली के खम्भे के नीचे बैठकर बालक ने मेट्रिक पास की। इनकी ग्रहण एवं स्मरण शक्ति बड़ी तेज थी। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी भाषाओं का अभ्यास किया। साथ ही जैन दर्शन एवं योग विषयक साहित्य का अध्ययन किया। जन्मभूमि की साहसिकता, सौराष्ट्र की जिज्ञासावृत्ति एवं मुंबई की विशालता—इस त्रिवेणी का संगम इनके जीवन में फलित हुआ। उन्होंने अध्यापन प्रारम्भ किया। विविध विषयों के ज्ञान, विचारों को सुंदर रीति से संप्रेषित करने की क्षमता ने उन्हें विद्वानों के समागम में 'पंडित लालन' नाम से विख्यात कर दिया। पाश्चात्य दर्शन एवं थियोसोफी के विशिष्ट ज्ञान ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया। उनके प्रवचन सुनने के लिए विपुल मेदिनी लालायित रहती थी।

सन् 1877 में उनका विवाह जेठाभाई हंसराज की पुत्री मोंधी बाई से हुआ। वे अपना समग्र जीवन सरस्वती की आराधना में समर्पित करने का संकल्प कर चुके थे। मोंधी बाई की कुक्षि से एक बालिका का जन्म हुआ। बड़ी होकर वह ब्याह दी गई परन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था। उनकी असमय मृत्यु हो गई। माता-पिता को जबरदस्त आघात लगा। फतेहचन्द भाई वैसे भी गार्हस्थ्य की तरफ से उदासीन थे। मात्र 39 वर्ष की वय में पति-पत्नि ने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लिया।

सन् 1895 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म-परिषद् में आपने श्री वीरचन्द राघवजी गाँधी के साथ जैन श्वेताम्बर कांफ्रेंस का प्रतिनिधित्व किया। वे अमरीका में साढ़े चार वर्ष रहे। वहाँ 'महावीर ब्रदरहुड' नामक संस्थान स्थापित किया। जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रसारार्थ उनका यह अवदान अविस्मरणीय रहेगा। हजारों भारतीय एवं स्थानीय अमेरिकन भाइयों में अहिंसा और सार्वभौम सौहार्द स्थापित करने में इस संस्थान का प्रमुख हाथ था। सन् 1936 में लंदन (इंग्लैण्ड) में आयोजित विश्व धर्म परिषद् में पुन: उन्होंने आचार्य विजयवल्लभसूरि के प्रतिनिधि रूप में भाग लिया। इस बार भी वे सात महीने लगातार जैन धर्म एवं योग साधना के प्रसार हेतु विदेशों में भ्रमण करते रहे।

पं. फतेहचन्द ने जैन धर्म की प्रभावना एवं प्रसार हेतु अनेक ग्रंथों की रचना की-जिनमें 24 गुजराती भाषा एवं 2 अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुए। ''सहज समाधि'' उनका अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ बन गया। इसमें उन्होंने अंतर्मुखी होकर आत्मज्ञान पाने हेतु योग पद्धतियों की चर्चा की है। सन् 1901 में प्रकाशित इस ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद श्री हर्बर्ट बोर ने सन् 1914 में प्रकाशित किया। 'दिव्य ज्योति दर्शन', 'स्वानुभव दर्पण, श्रमण नारद, Gospel of Man, आत्मबोध आदि उनकी अन्य लोकप्रिय रचनाएँ हैं। पं. फतहचन्द का व्यक्तित्व एक ध्येयनिष्ठ जीवन का मूर्त्तरूप था। जैन समाज के लिए वह अनुकरणीय एवं प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

46. पं. नाथूराम प्रेमी (1881-1959)

जन्म : देवरी ग्राम (मध्यप्रदेश), 1881
पिताश्री : टूंडेलाल मोदी (पोरवाड़)
सृजन : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर
दिवंगति : 1959, मुंबई

साहित्य सेवक, सौजन्य की मूर्ति एवं सम्पादक रत्न पंडित नाथूराम प्रेमी के रचनात्मक अवदान से हिन्दी का जैन साहित्य समृद्ध हुआ है। उनका जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले में देवरी ग्राम के एक सामान्य पोरवाड़ बाणिया मोदी परिवार में हुआ। इन परिवारों का मूल निवास मेवाड़ था, जहाँ से इनके पूर्वज आजीविका के लिए बुन्देलखण्ड में आ बसे। नाथूरामजी के पिता टूंडेलाल आस-पास के गाँवों में घूम-घूम कर चार पैसे कमा लेते थे। नाथूरामजी गाँव की शाला में ही पढ़े। कुशाग्र बुद्धि होने से शिक्षकों की उन पर कृपा दृष्टि रही। पढ़-लिखकर शिक्षक रूप में नौकरी भी लग गई। मासिक पगार शुरु में डेढ़ रुपया एवं कुछ समय बाद छः रुपए मिलते रहे। अतः वे मितव्ययी एवं निर्व्यसनी रहे। उनका यह संस्कार आगे चलकर उनकी प्रकाशन विद्या का मानदण्ड बना रहा।

इसी दरम्यान उनका परिचय शायर अमीर अली साहब से हुआ। उनकी शौबत में उन्हें कविता करने का शौक लगा। उनकी कविताएँ काव्य सुधाकर, रसिक मित्र आदि स्थानीय पत्रिकाओं में छपने लगी। इसी समय उनके नाम में 'प्रेमी' उपनाम जुड़ा। लेखकों एवं कवियों के समागम से उनका साहित्य एवं जैन शास्त्रों का ज्ञानवर्धन होता रहा। तभी मुंबई की प्रांतीय जैन सभा को अपने मुख पत्र ''जैन मित्र'' के लिए सम्पादक की आवश्यकता हुई। नाथूरामजी की दरख्वास्त मंजूर भी हो गई पर मुंबई जाने के लिए उनके पास किराये के लिए पैसे न थे।

स्नेही सेठ खूबचन्दजी से दस रुपए उधार लेकर वे मुम्बई गए एवं वहां उन्होंने सन् 1901 में 'जैन मित्र' का कार्यभार संभला। यहीं से प्रेमीजी ने जीवन की दिशा बदली। उन्हें इस मासिक पत्र के सम्पादन के साथ अन्यत्र कार्य भी करने पड़ते। परिश्रमी प्रेमीजी घबराये नहीं। यहाँ उन्होंने संस्कृत, मराठी एवं गुजराती भाषाओं का ज्ञानार्जन किया। यहीं रहते उन्होंने मंदिर के पुजारियों द्वारा दर्शन हेतु आने वाले सेठ श्रीमंतों के लिए की जाने वाली 'ठाकुर सुहाती' के विरोध में 'पुजारी स्तोत्र' नामक व्यंग्य लेख 'जैन मित्र' के मुख पृष्ठ पर छाप डाला। इससे तिलमिलाए पुजारियों के रोष का कोप भाजन होना पड़ा। उनका सारा सामान सड़क पर फेंक दिया गया।

मुंबई में उनका परिचय महान साहित्य प्रेमी श्री पन्नालालजी बाकलीवाल से हुआ। उन्होंने आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण कर सेवाव्रत स्वीकार किया था। जैन समाज में वे ''गुरुजी'' नाम से विख्यात थे। भारत के इने-गिने विद्वानों में वो अग्रगण्य थे। बाकलीवाल जी प्रेमीजी की कार्यशैली एवं निष्ठा से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपने ''जैन हितैषी'' मासिक पत्रिका एवं ''जैन ग्रंथ रत्नाकर'' प्रकाशन कार्यालय की सम्पूर्ण जिम्मेदारी प्रेमीजी को सौंप दी। शनैः-शनैः प्रेमीजी ने ''जैन हितैषी'' पत्रिका के सम्पादन के साथ नये-नये ग्रंथों के संशोधन, सम्पादन व प्रकाशन का कार्यभार भी संभाल लिया। उनके सम्पादकत्व में ''जैन हितैषी'' अखिल भारतीय स्तर की उत्तम पत्रिका बन गई। इसी समय उनका परिचय जैन समाज के उदार चेता दानवीर सेठ माणिकचन्द जे.पी. से हुआ। सेठजी जैन विद्या, जैन शास्त्रों एवं जैन तीर्थों के सर्वतोमुखी विकास के लिए अनेक प्रकार से आर्थिक सहयोग देकर शोधकर्त्ताओं एवं लेखकों को प्रोत्साहित करते। वे प्रेम जी के ग्रंथों की 300-400 प्रतियाँ खरीदकर देश के विद्वानों, ग्रंथागारों, मन्दिरों एवं जैन हित्कारिणी संस्थाओं में मुफ्त बंटवाते। समाज की बहुमुखी सेवा में ही उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी। प्रेमीजी ने उस अवदान से सेठजी के मरणोपरांत ''माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला'' की स्थापना की। इस श्रृंखला में उच्च कोटि के ग्रंथ अल्प मूल्य पर समाज

को उपलब्ध कराए गए। कुछ वर्षों बाद इस संस्था का 'भारतीय ज्ञानपीठ' में विलीनीकरण कर दिया गया।

प्रेमीजी ने सन् 1912 में 'हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर' संस्था की स्थापना की। इस संस्थान ने अनेकों अमूल्य साहित्य ग्रंथ पाठकों को उपलब्ध कराये। प्रेमीजी को राष्ट्र भाषा प्रचार के इस सत्कार्य में अभूतपूर्व सफलता मिली। वे समस्त हिन्दी प्रेमी समाज के प्रियपात्र बन गए। भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली विविध भाषाओं और प्राकृत-अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा विषयक ज्ञान सभी वर्ग के पाठकों को सम्प्रेषित करने में प्रेमीजी सफल हुए। इस ज्ञान यज्ञ में प्रेमीजी को अपना सर्वस्व होम देना पड़ा। वे जिस निष्ठा एवं तल्लीनता से उच्च स्तरीय पुस्तकों के प्रकाशन को समर्पित थे उससे परिवार की सुख-सुविधा भी दांव पर थी। सन् 1932 में उनकी धर्मपत्नि चल बसी। सन् 1942 में प्रेमीजी के सुपुत्र हेमचन्द्र भी चल बसे। प्रेमीजी सतत अपनी साहित्य साधना को समर्पित रहे। अपने कर्त्तव्य में दत्तचित्त होकर बाहरी तृष्णा और विपदाओं से अकुंठित रहे। इसीलिए वे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रसिद्ध कृति 'स्वाधीनता' एवं प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, चतुरसेन शास्त्री एवं सुदर्शनजी जैसे दिग्गज हिन्दी लेखकों की लोकप्रिय कृतियों को पाठकों तक पहुँचा सके।

जैनेन्द्रजी के 'परख' उपन्यास को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय प्रेमीजी को हुआ। उससे पहले साहित्य जगत में वे चर्चित नहीं हुए थे। परख का साहसिक कथानक और जैनेन्द्रजी की शैली पाठकों को ग्राह्य होगी भी—इसमें बहतों को संदेह था एवं जैनेन्द्र जी स्वयं आशंकित थे। प्रेमीजी की एक साहित्य-जौहरी की सी इस 'परख' से स्वयं जैनेन्द्रजी आह्लादित हुए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रेमीजी के इस संस्थान से ''जैन साहित्य का इतिहास'' ग्रंथ का प्रकाशन था, जिसमें जैन, न्याय दर्शन, अध्यात्म, योग, व्याकरण, काव्य, अलंकार, भाषा, कर्म सिद्धांत इत्यादि विषयों पर विस्तार से अधिकारी विद्वानों, आचार्यों एवं साधकों के चिंतन प्रस्तुत किये गए। इसके अलावा प्रेमीजी ने कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ साहित्य जगत को दी। उनमें मुख्य हैं विद्युत रत्नमाला, प्रद्युम्नचरित्र, पुण्स्याश्रव कथाकोश, ज्ञान सूर्योदय नाटक, जैन पद संग्रह

(6 भाग), पत्र चूड़ामणि, प्रतिभा, फूलों का गुच्छा, विषापहार, भक्तामर, रविन्द्र कथाकुंज आदि। अनेक अलभ्य अप्रकाशित ग्रंथों, शिलालेखों, तीर्थों के परिचय एवं विवरण प्रेमीजी ने प्रकाशित किए। विविध वैचारिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों का प्रकाशन उनकी निष्पक्ष विश्लेषण क्षमता एवं विवेचनात्मक अध्ययनशीलता का परिचायक है। उनके सम्पादित ग्रंथों में 'दौलत विजय', जिनशतक, बनारसी विलास आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमीजी की प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी संघवी से गहरी आत्मीयता थी। मुनि जिनविजयजी पर भी उनकी गहरी श्रद्धा थी। प्रेमीजी अपनी असाम्प्रदायिक दृष्टि, सरलता एवं निर्भयता के कारण सभी विद्वानों के प्रिय थे।

सत्योन्मुखी प्रेमीजी ने सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रतिकार के लिए अपनी पत्रिका से एक सुधारपरक आन्दोलन खड़ा किया। जब विधवा विवाह के पक्ष में उनके लेख निकलने शुरु हुए तो विरोध उठ खड़ा हुआ। सन् 1928 में अपने अनुज नन्हेलाल का विवाह एक विधवा से करा दिया तो उन्हें कई जगह जाति से बहिष्कृत करार दिया गया। पर वे इससे विचलित नहीं हुए।

भारत के उच्चकोटि के विद्वानों एवं जैन समाज ने उनकी साहित्य एवं समाज सेवा के अभार स्वरूप ''प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ'' प्रकाशित कर उनका सम्मान किया। 30 जनवरी, 1959 को मुंबई में प्रेमीजी का निधन हुआ।

47. पण्डित अजित प्रसाद (1874-1951)

जन्म : नसीराबाद (अजमेर) 1874

पिताश्री : देवी प्रसाद

माताश्री : मनभावती देवी

शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी.

दिवंगति : लखनऊ, 1951

जैन तीर्थ क्षेत्रों के लिए कानूनी संघर्षों को सफल अंजाम देने वाले अणुव्रती वकील एवं सद्गृहस्थ पण्डित अजित प्रसाद का जन्म 10 अप्रेल, सन् 1874 में अजमेर-मारवाड़ स्थित नसीराबाद छावनी में हुआ था। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद भारतीय सेना में कमसरियट गुमाश्ता थे। जब यह छः वर्ष के थे तो इनकी माता श्रीमती मनभावती का देहावसान हो गया। अगले वर्ष इनके पिता ने पुनर्विवाह कर लिया। इनकी विमाता इनसे केवल पाँच वर्ष बड़ी थी। माँ की ममता और वात्सल्य देने के बजाय विमाता ने पिता और पुत्र के बीच में एक दरार पैदा कर दी।

अजित प्रसाद जी की प्रारम्भिक शिक्षा, रूढ़की में हुई। पिताजी के मंसूरी स्थानान्तरण होने पर, अजितप्रसाद जी अपनी दादी के पास दिल्ली चले आए और यहीं आठवें दर्जे तक पढ़े। 1887 में इनके पिताजी का तबादला लखनऊ हो गया और लखनऊ आकर इन्होंने कैनिंग कॉलेज में नवीं कक्षा में दाखिला लिया। नवीं कक्षा से लेकर एम.ए., एल.एल.बी. की उपाधि तक अजित प्रसाद जी निरन्तर कैनिंग कॉलेज में पढ़े। हाई स्कूल, एफ.ए., बी.ए. सब परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और प्रत्येक वर्ष छात्रवृत्ति पाई। कैनिंग कॉलेज के बेनेट हाल की सम्मान नामावली में 1893 के सर्वप्रथम स्नातक की श्रेणी में अजित प्रसाद जी

का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा है। इसके बाद 1894 में एल.एल.बी. किया और 1895 में अंग्रेजी में एम.ए.।

उन दिनों लखनऊ में उच्च न्यायालय नहीं था। ज्युडिशल कमिश्नर न्यायपालिका के समक्ष अजित प्रसाद जी ने 1895 से 1916 तक वकालत की। न्यायपालिका में आसीन न्यायाधीश माननीय रोस स्कोट साहब अजित प्रसाद जी की वकालत से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें 1901 में रायबरेली का मुन्सिफ नियुक्त कर दिया। रायबरेली में केवल तीन महिने मुंसफी करने के बाद अजित प्रसाद जी लखनऊ में सरकारी वकील और लोक अभियोजक नियुक्त कर दिये गये।

अजित प्रसाद जी का विवाह केवल 12 वर्ष की आयु में कर दिया गया। उनकी पत्नी श्रीमती मनोहरी देवी उनसे डेढ़ वर्ष छोटी थीं। इनकी पहली संतान सरला देवी 1890 में हुई जब ये केवल 16 वर्ष के थे और एफ.ए. में पढ़ते थे। इतनी अल्पायु में पिता होने पर इनको इतनी लाज आई कि इन्होंने अपनी पत्नी को मायके भेज दिया और जब तक अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर ली उसे वापस लखनऊ नहीं बुलाया। ग्यारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। इनकी दूसरी संतान सुमति का जन्म दिसम्बर 1902 में हुआ। इस प्रकार भाई-बहन में 12 वर्ष का अन्तर था। इसके बाद चार संतान और हुईं—तीन पुत्र और एक पुत्री। छः सन्तानों में से अब केवल दो जीवित हैं।

आपकी सहधर्मिणी मनोहरी देवी बहुत धर्म परायण थीं। आषाढ़ 1918 के अन्तिम सप्ताह में नन्दीश्वर द्वीप पूजा विधान के दिनों में, जिनको अठाइयाँ कहते हैं, उन्होंने दो दिन का निरन्तर उपवास किया। उसको ''बेला'' कहते हैं। तीसरे दिन नियमों की कठिनता के कारण उन्होंने सूखे आटे की चपाती, कोयलों पर अधसिकी, खाकर पानी पी लिया। उसके कारण हैजा हो गया। डॉक्टर ने दवा लिख दी। अजित प्रसाद जी ने स्वतः दवा बनाकर उसमें पानी मिलाया और निशान बनाकर पीने को दे दी। फिर ''पुरुषार्थसिद्धयुपाय'' का अंग्रेजी अनुवाद करने में लग गये। जब रोग का आक्रमण बढ़ता गया और उन्होंने अन्दर जाकर पूछताछ की तो मनोहरी देवी ने स्वीकार किया कि उन्होंने दवा का एक

निशान भी नहीं पिया, एक-एक करके निशान के बराबर दवा चिलमची में गिराती रहीं क्योंकि उनको सन्देह हो गया था कि दवा डॉक्टर के विदेशी दवाखाने से बनकर आई है। लाचारी में उन्हें मेडिकल कॉलेज ले आया गया। पहुँच-पहुँचते रात हो गई। वहाँ नमक का पानी रग काटकर बेहोशी की दशा में चढ़ाया गया। बुखार चढ़ आया। होश नहीं आया। ज्वरताप बगल में 105 और दूसरी बार 106 था। बरफ में भिगोई चादर लपेटी गई। सब उपचार व्यर्थ गये और सूर्योदय से पहले 22 जुलाई, 1918 को प्राणान्त हो गया।

वकालत शुरु करने के समय अजित प्रसाद जी ने परिग्रह परिमाण का अणुव्रत ले लिया था। उनका लक्ष्य एक लाख रुपये था। उन दिनों सोने का भाव 20 रु. तोला था; आजकल 6,500 रु. तोला है। उस समय का एक लाख आजकल के 2,25,00,000 के बराबर हुआ। अपनी योग्यता के बल पर अजित प्रसाद जी ने यह धन केवल 16 वर्ष की वकालत में कमा लिया। तत्पश्चात् 1918 में उन्होंने सरकारी वकील के पदं से त्याग पत्र दे दिया।

विमाता से अजित प्रसाद जी को दु:ख मिला था। उस दु:ख से वह अपनी संतान को दूर रखना चाहते थे। अतएव उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। सरकारी वकालत से वह पहले ही त्याग-पत्र दे चुके थे। गृहणी के देहान्त पर सब कानूनी पुस्तकें तथा अस्बाब दो दिन तक नीलाम किया गया। हीवेट रोड़ पर स्थित अजिताश्रम और शान्ति-निकेतन दोनों कोठियाँ बेच दी गईं। अजित प्रसाद जी अपने दो छोटे बच्चों को लेकर काशीवास के अभिप्राय से बनारस चले गये। बड़े तीन बच्चे पहले से ही वहाँ छात्रावास में रहते थे। सबसे बड़ी बेटी सरला का 1904 में ही विवाह हो गया था।

पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने अजित प्रसाद जी को काशी विश्वविद्यालय के धर्म और दर्शन विभाग का मानद नि:शुल्क आचार्य नियुक्त कर दिया। पंडित मदनमोहन मालवीय कट्टर सनातन धर्मी थे और अजित प्रसाद जी जैन धर्मावलम्बी। दोनों की पटी नहीं। अजित

प्रसाद जी को विश्वविद्यालय से त्याग-पत्र देना पड़ा और एक ही वर्ष में काशीवास का स्वप्न समाप्त हो गया।

जब अजित प्रसाद जी ने वकालत शुरु की थी, तब वह 7/- मासिक किराये के मकान में गणेशगंज में रहते थे। बाद में उन्होंने यह मकान अपने सहकर्मी वकील मुंशी भगवत सहाय से खरीद लिया था। बनारस से लौटने पर अजित प्रसाद जी ने पुराना मकान खुदवाकर नींव से नया बनवाया और उसका 'अजिताश्रम' नाम रखा। आजकल इसमें उनके दो जीवित पुत्र, एक पौत्र और उनके परिवार रहते हैं। अजिताश्रम गणेशगंज मोहल्ले का लब्ध प्रतिष्ठित मकान है और उसकी आज की कीमत एक करोड़ रुपए है।

इसी अजिताश्रम में रहकर अजित प्रसादजी ने 30 वर्ष तक निरन्तर जैन समाज और जैन धर्म की सेवा की।

1910 में अखिल भारतीय जैन सभा का वार्षिक अधिवेशन जयपुर में हुआ। अजित प्रसाद जी इस अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि एक ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की जाये। फलत: पहली मई 1911 अक्षय तृतीया के दिन हस्तिानपुर में श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई।

28 सितम्बर 1912 के दिन दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा का अधिवेशन बम्बई में हुआ। अजित प्रसाद जी इस अधिवेशन के भी अध्यक्ष मनोनीत किये गये। उनका अध्यक्षीय भाषण एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

लखनऊ के हीवेट रोड़ स्थित अजिताश्रम में सन् 1916 दिसम्बर माह में भारत जैन महामण्डल तथा जीव दया सभा के विशाल सम्मिलित अधिवेशन हुए। अजिताश्रम का सभा मण्डप सजावट में लखनऊ भर में सर्वोत्तम था। इस सभा में महात्मा गाँधी पधारे थे। सभाध्यक्ष प्रख्यात पत्र सम्पादक बी.जी. होर्नीमन थे। वक्ताओं में गाँधी जी, बैरिस्ट विभाकर और एच.एस. पोलक थे। अधिवेश्न में उपस्थिति इतनी थी कि छतों और वृक्षों पर लोग चढ़े थे। सामने की सड़क रुक गई थी। खड़े रहने

की भी जगह न थी। अधिवेशन सम्पूर्ण होने पर गाँधीजी अजिताश्रम में पधारे, महिला समाज को उपदेश और आशीर्वाद दिया।

1913 में श्री इ.एस. मान्टेग्यु, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, लन्दन से भारत इस उद्देश्य से पधारे कि जाँच करके पार्लियामेंट को रिपॉर्ट करें कि भारतवासियों को क्या वैधानिक सुविधा तथा स्वत्व प्रदान किये जाने उचित हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सबने साम्प्रदायिक भाव गौण करके अखिल भारतीय जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली एक जैन पोलिटिकल कॉन्फ्रेंस नाम की संस्था स्थापित की। राय साहब बाबू प्यारेलाल अध्यक्ष और श्री अजित प्रसाद सेक्रेटरी निर्वाचित किये गये। 1917 का काँग्रेस अधिवेशन कलकत्ते में मिसेज एनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में हुआ। उसी समय लोकमान्य श्री बालगंगाधर तिलक के सभापतित्व में जैन पोलिटिकल कॉन्फ्रेंस का भी अधिवेशन हुआ। वाइसराय और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को जैनियों की ओर से जो आवेदन भेजा गया वह अजित प्रसाद जी ने ही लिखा था।

स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी की प्रबन्धकारिणी समिति के अजित प्रसाद जी सदस्य उसकी स्थापना के समय से रहे और अपने काशीवास के समय उसकी देखरेख की।

दिगम्बर जैन समाज के दानवीर सेठ मानिकचन्द हीराचन्द, जे.पी. ने जैन तीर्थ क्षेत्रों पर श्वेताम्बर जैन समाज द्वारा अनधिकृत अतिक्रमण के कारण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी की स्थापना करना आवश्यक समझा। कमेटी का कार्यालय बम्बई की हीराबाग धर्मशाला में खोला गया। अजित प्रसाद जी ने 7 वर्ष तक 1923 से 1930 तक तीर्थक्षेत्र कमेटी का काम किया। उनके नाम से तीर्थक्षेत्र कमेटी की बही में 46,000/- दानखाते में जमा है। अजित प्रसाद जी ने चार मुकदमों की पैरवी की।

(क) पूजा केस—7 मार्च, 1912 को बाबू महाराज बहादुरसिंह ने श्वेताम्बर जैन संघ की ओर से, सेठ हुकुमचन्द तथा 18 अन्य भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख सदस्यों के विरूद्ध, ऑर्डर 8 रूल 1

सी.पी.सी. के अनुसार सब जज हजारीबाग की कचहरी में नालिस पेश की। मुद्दई का दावा था कि ''श्री सम्मेद शिखर जी निर्वाण क्षेत्र स्थित टौंक, मन्दिर, धर्मशाला सब श्वेताम्बर संघ द्वारा निर्मित हुई है। अत: दिगम्बर आम्नायी जैनियों को श्वेताम्बर आम्नाय के विरूद्ध और श्वेताम्बर संघ की अनुमति बिना प्रक्षालन पूजा आदि करने का अधिकार नहीं है; न वे धर्मशाला में ठहर सकते हैं।''

यह मुकदमा साढ़े चार वर्ष से ऊपर चला। उभय पक्ष का कई लाख रुपया खर्च हुआ। अन्तिम निर्णय सब जजी से 31 अक्टूबर, 1916 को हुआ।

इस निर्णय के अनुसार ऋषभदेव, बासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर स्वामी—चार तीर्थंकरों की टौंकों के अतिरिक्त अन्य सब टौंकों में प्रतिवादी दिगम्बरी संघ का प्रक्षालन-पूजा का अधिकार निश्चित पाया गया। दिगम्बरी समाज के यात्री प्रात: जाते हैं और सूर्यास्त से पहले वापस लौट आते हैं। वह पर्वत राज पर अन्न-जल नहीं लेते, न वहाँ ठहरते हैं। धर्मशाला से उनको कुछ मतलब ही नहीं होता।

हजारीबाग सबजज के निर्णय के विरुद्ध उभय पक्ष ने उच्च न्यायालय, पटना और प्रीवी काउन्सिल, लन्दन में अपील की। उभय पक्ष की दोनों अपीलें खारिज हुई।

(ख) इंजक्शन केस— ''पूजा केस'' के निर्णय के पश्चात् जिसमें श्वेताम्बर समाज को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई, सम्मेदाँचल तीर्थराज के श्वेताम्बराम्नायी प्रबन्धकों ने यह प्रयत्न किया कि श्री कुंथनाथ की टौंक के पास जहाँ से मधुवन के रास्ते से तीर्थराज की यात्रा प्रारम्भ होती है, एक बड़ा फाटक खड़ा करें, जिसमें यात्रियों को यात्रा के लिए श्वेताम्बर समाज की दया-दृष्टि पर निर्भर रहना पड़े। उस फाटक के पास तलवार, बंदूक आदि हथियार बन्द सिपाही भी रक्खे जावें। तीर्थ राज पर बिजली गिरने से पूज्य चरणालय जिनको ''टौंक'' कहा जाता है टूट जाती हैं और नूतन चरण स्थापना की आवश्यकता होती है। ऐसे नवीन चरण श्वेताम्बर समाज के प्रबन्ध से इस रूप में स्थापित किये गये

जिस रूप से वे दिगम्बर आम्नायी उपासकों द्वारा पूज्य नहीं थे। अत: फाटक और सिपाहियों के निवासस्थान बनाने को रोकने और अपूज्य चरणों को हटाकर पूजा योग्य चरण चिह्न स्थापित किये जाने के वास्ते दिगम्बर समाज की ओर से हजारीबाग के सबजज की कचहरी में 4 अक्टूबर, 1920 को ऑर्डर 8, रूल 1 के अनुसार नालिश दाखिल की गई।

उभय पक्ष की बहस 18 दिन तक चली और 26 मार्च, 1924 को दिगम्बरों का दावा खर्चे समेत डिगरी हुआ। उस निर्णय की अपील पटना हाईकोर्ट में हुई। श्री चरण चिह्न के विषय में दिगम्बरों की जीत हुई और अन्य विषयों पर श्वेताम्बरी समाज की जीत हुई।

(ग) श्री राजगृह केस—राजगृह केस में पारस्परिक समझौता होकर सुलह नामा कचहरी में दाखिल हो गया। दोनों आम्नायों ने आपस में टौंकें बाँट ली।

(घ) पावापुरी केस—पावापुरी में तालाब के बीच में एक रमणीक मन्दिर है। उसमें भगवान के चरण चिह्न हैं। चरण चिह्नों के आगे श्वेताम्बरियों ने महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित कर रखी है। दिगम्बरी पूजा करते समय प्रतिमा को हटा देते थे। इस पर केस चलता रहा। पटना के सबजज की कचहरी में दिगम्बर आम्नाय की जीत हुई। अपील में हाईकोर्ट से भी वे जीते। किन्तु लन्दन में प्रीवी काउन्सिल में अपील की पेशी की खबर श्री चम्पतराय जी को, जो उस समय लंदन में ही थे, नहीं मिली। दिगम्बरियों के बैरिस्टर की नासमझी के कारण उनकी हार हो गई।

स्वर्गीय कुमार देवेन्द्र प्रसाद जी ने 1915 में आध्यात्मिक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ आरा में ''सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस'' नामक संस्था की स्थापना की। उसी ख्याति प्राप्त संस्था का स्थान परिवर्तन ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी के परामर्श और इन्दौर हाईकोर्ट के जज जुगमन्दरलाल जैनी की आर्थिक सहायता से, अजिताश्रम लखनऊ में कर दिया गया। सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस ने तेरह जैन शास्त्रों का अंग्रेजी में अनुवाद, भाष्य, उपोद्घात और प्राक्कथन छपवाया। ये तेरह प्रकाशन है—द्रव्य

संग्रह, तत्त्वार्थ सूत्र, पंचास्तिकायसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, गोमट्टसार-जीवकाण्ड, गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड, आत्मानुशासन, समयसार, नियमसार, गोमट्टसार कर्मकाण्ड भाग 2, परीक्षामुखम्, तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवे अध्याय का विशिष्ट विवेचन, जैन धर्म के अनुसार ब्रह्माण्ड। यद्यपि सभी प्रकाशनों में अजित प्रसाद जी का योगदान रहा, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय और गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग 2, की सम्पूर्ण टीका उनकी लिखी हुई है। भावपाहुड और आप्तमीमांसा की टीका भी अजित प्रसाद जी ने लिखी थी। यह उनके जीवनकाल में नहीं प्रकाशित हो पाई। उनके कनिष्ठ पुत्र कैलाश भूषण जी ने 'भावपाहुड' को पुनः सम्पादित कर गत साल छपवा दिया। 'आप्त मीमांसा' अभी छपनी बाकी है।

ब्रह्माचारी शीतल प्रसाद गोमट्टसार कर्मकाण्ड, भाग 2, के संयुक्त टीकाकार थे। इस टीका को समाप्त करने के लिए वह अजिताश्रम में एक वर्ष ठहरे। 23 जुलाई, 1926 को वह लखनऊ पधारे। ब्रह्माचारी जी का नित्य देवदर्शन का नियम था। अष्टमी व चतुर्दशी को ब्रह्माचारी जी का प्रोषधोपवास होता था। उस दिन वह सवारी का इस्तेमाल नहीं करते थे। 24 जुलाई, 1926 को चतुर्दशी थी। ब्रह्माचरी जी पैदल दर्शन करने यहियागंज गये और पैदल ही वापस आये। गरमी के मौसम में उनका इस प्रकार परिश्रम करना अजित प्रसाद जी को बहुत खटका। 25 जुलाई को इतवार था। उस दिन अजितप्रसाद जी बाराबंकी गये और वहाँ से एक प्रतिष्ठा योग्य मूर्ति ले आये। उसी दिन अजिताश्रम में जिनबिम्ब स्थापित करके पूजन, भजन, आरती हुई। ब्रह्मचारी जी ने शास्त्रोपदेश दिया। इस प्रकार पूजन-आरती, शास्त्र सभा का नित्यक्रम अजिताश्रम में जारी हो गया।

27 जुलाई को अजिताश्रम में चैत्यालय की नींव खुदनी प्रारम्भ हो गई। पहली अगस्त को नींव की पहली ईंट ब्रह्माचारी जी ने जमाई। 16 नवम्बर से 18 नवम्बर तक मंत्र के आठ हजार जप होकर वेदी प्रतिष्ठा हुई। चौक पंचायत ने ब्रह्मचारीजी से आग्रह किया कि अजिताश्रम चैत्यालय के लिये मूर्ति पसंद कर लें और बाराबंकी की मूर्ति वापस करा दें। ब्रह्मचारी जी ने दो मूर्तियाँ पसन्द की और उन दो प्रतिष्ठित मूर्तियों

को लाकर विराजमान किया गया। बाराबंकी की मूर्ति वापस कर दी गई। एक मूर्ति श्वेत पाषाण की पद्मासन, सुन्दर आकृति, करीब 800 वर्ष पूर्व की प्रतिष्ठित है। वह चन्द्रप्रभु भगवान की है। दूसरी मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है। यह पीतल व अष्टधातु की पार्श्वनाथ की है। ऐसी अर्द्धपद्मासन मूर्तियाँ उत्तर भारत में देखने में नहीं आती हैं। यह दोनों मूर्तियाँ चौक के मन्दिर से 12 जनवरी, 1927 को ब्रह्मचारी जी के साथ जाकर बहुत से लोग अजिताश्रम लाये और मंत्र का जप करके चैत्यालय में विराजमान करके मज्जन, अभिषेक, पूजन किया गया।

अजिताश्रम चैत्यालय को स्थापित हुए अब 65 वर्ष हो गये हैं। अमीनाबाद गणेशगंज चारबाग के सब जैन भाई यहाँ दर्शन करने आते हैं। दशलक्षणी और निर्वाण चौदश को तो इतनी भीड़ होती है कि तिल भर की भी जगह नहीं बचती।

1900 में दिगम्बर जैन महासभा और भारत जैन महामण्डल का सम्मिलित मुख पत्र 'जैन गजट' था। आरा निवासी दानवीर श्रीदेव कुमार जी सम्पादक और बाबू राजेन्द्र किशोर जी प्रकाशक थे। यह पाक्षिक पत्र इलाहाबाद में छपाया जाता था। हिन्दी के साथ 4 पृष्ठ अंग्रेजी में होते थे। सन् 1904 में जैन गजट अंग्रेजी में इलाहाबाद से जुगमन्दर लाल जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने लगा और केवल भारत जैन महामण्डल का मुख पत्र हो गया। 1912 में श्री जुगमन्दरलालजी जैनी 'जैन गजट' अजित प्रसाद जी को सौंप कर लन्दन चले गये। 1918 से जैन गजट श्री मल्लिनाथ के सम्पादकत्व में 1933 तक मद्रास से निकलता रहा। 1934 में फिर उसके सम्पादन का भार अजित प्रसाद जी ने ग्रहण कर लिया।

जैन गजट ने समाज की 47 वर्ष सेवा की। परन्तु धीरे-धीरे ग्राहकों की संख्या कम होती गई। निराश होकर 1950 के अन्त में अजित प्रसाद जी ने जैन गजट बन्द कर दिया।

जैन गजट को बन्द करने के ठीक नौ महीने बाद सितम्बर 17, 1951 की अर्धरात्रि को 77 वर्ष की आयु में अजित प्रसाद जी का पार्थिव शरीर पंचभूत में लीन हो गया।

48. डॉ. शार्लोटे क्राउजे (1895-1980)

जन्म : सलोरे (जर्मनी) 1895
पिताश्री : हरमन क्राउजे
शिक्षा : लिपजिग युनिवर्सिटी से Ph.D., 1920
जैन श्राविका दीक्षा : 1925
केथोलिक धर्म दीक्षा : ग्वालियर, 1962
दिवंगति : ग्वालियर, 1980

सन् 1925 में जैन दर्शन एवं साहित्य से प्रभावित होकर एक जर्मन महिला डॉ. शार्लोटे क्राउजे भारत आईं। उनका जन्म जर्मनी के सलोरे शहर में सन् 1895 में हुआ। उनके पिता श्री हरमन क्राउजे व्यापारी थे। तरुणी शार्लोटे क्राउजे ने लीपजिग युनिवर्सिटी के विश्वविख्यात आचार्य एवं भारत विद्याविद (Indologist) डॉ. जोहीनीज हर्टेले के निर्देशन में सन् 1920 में ''नंसिकेत री कथा''प्राचीन जैन उपाख्यान पर शोध कर पी-एच.डी. की डिग्री हासिल की। जैन दर्शन के सांगोपांग अध्ययनार्थ उन्होंने आचार्य विजयधर्मसूरि से सम्पर्क साधा एवं इसी हेतु वे बम्बई आईं। सन् 1925 में भारत पदार्पण के साथ ही वे प्राचीन जैन वाङ्मय की शोध को ऐसी समर्पित हुई कि उम्र भर न तो उन्होंने विवाह किया, न ही जर्मनी लौटी। यहीं रहकर उन्होंने अनेक प्राचीन जैन ग्रंथों का सम्पादन किया। उन्होंने जैन शास्त्रों एवं साहित्य पर अनेक टीकाएँ और शोध प्रबंध लिखे जो जर्मन, अंग्रेजी, गुजराती एवं हिन्दी भाषाओं में सन् 1922 से 1955 तक प्रकाशित होते रहे।

उनके शोध-प्रबंधों को विश्व के मूर्धन्य प्राच्य भाषाविदों यथा : हेमवर्ग के डॉ. लुटविग एल्स डोर्फ, बोन के डॉ. हरमन जेकोबी अमरीका के डॉ. फ्रेकंलिन एडगर्दन, जर्मनी के डॉ. वाल्टर शुब्रिंग एवं नार्वे, स्वीडन, रूस, चेकोस्लावाकिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड के विद्वत् समाज ने एक स्वर से

सराहा। उन्होंने सन् 1925 में जैनाचार्य विजयेन्द्र सूरि से जैन श्रावक दीक्षा ग्रहण की एवं ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। जैनाचार्य ने उन्हें नये नाम 'सुभद्रा देवी' से विभूषित किया। जैन संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से प्रेरित होकर वे जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में ऐसी लगी कि अपना वैयक्तिक सुख-दु:ख सब कुछ न्यौछावर कर दिया। उन्होंने भारत के सुदूर अंचलों में स्थित प्राचीन तीर्थों की यात्रा की। प्राय: सभी जैन संप्रदायों की मान्यताओं का बारीकी से अध्ययन किया एवं शोधार्थ ग्रंथागारों का अवगाहन किया।

शिवपुरी-प्रवास के दौरान डॉ. क्राउजे की भेंट महारानी ग्वालियर से हुई। उन्होंने डॉ. क्राउजे की योग्यता परख ली एवं तत्काल डॉ. क्राउजे को सिंधिया सरकार के शिक्षा विभाग में डाईरेक्टर पद पर नियुक्त कर दिया, जहाँ निरन्तर सन् 1950 तक वे सेवारत रही। कुछ समय तक उन्होंने सिंधिया सरकार के उज्जैन स्थित शोध संस्थान का क्यूरेटर पद भी संभाला। सन् 1944 में सिंधिया सरकार की ओर से ''विक्रम स्मृति महाग्रंथ'' का प्रणयन हुआ, जिसमें डॉ. क्राउजे का शोध-प्रबंध ''जैन साहित्य और महाकाल मन्दिर'' छपा। इसी कड़ी में उज्जैन शोध संस्थान द्वारा 1948 में प्रकाशित 'विक्रम स्मृति महाग्रंथ श्रृंखला' में डॉ. क्राउजे का शोध प्रबंध ''सिद्धसेन दिवाकर और विक्रमादित्य'' प्रकाशित हुआ। उपाध्याय मुनि मंगल विजयजी ने आचार्य विजयधर्म सूरि के जीवन पर गुजराती भाषा में जो काव्यमय रास ''धर्मजीवन प्रदीप'' प्रकाशित किया उसके एक प्रकरण में उनके द्वारा रचित ''डॉ. सुभद्रादेवी रास'' समाविष्ट था। डॉ. क्राउजे हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी भाषा में धारा प्रवाह प्रवचन देती थी। उनके प्रवचन एवं सन्देश तात्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होते रहे।

इसी दौरान डॉ. क्राउजे का एक आलेख सन् 1930 की कलकत्ता यूनिवर्सिटी की शोध पत्रिका 'कलकत्ता रिव्यू (Calcutta Review) में "The Social Atmosphere of Present Jainism" शीर्षक से छपा। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी ने डॉ. शार्लोटे क्राउजे एवं उनके साहित्य पर सन् 1999 प्रो. सागरमल जैन के सम्पादकत्व में जो ग्रंथ प्रकाशित किया है, उसमें भी यह आलेख संग्रहित है। इसका हिन्दी रूपान्तर 'अनेकांत' के वर्ष 1, किरण 8,9,10 अंकों में प्रकाशित हुआ।

डॉ. शालोटे क्राउजे का यह आलेख जैन धर्म के प्रति उनके प्रेम एवं सदाशयता से परिपूर्ण है। उन्होंने आलेख की प्रस्तावना में भारत के दक्षिणी प्रदेशों में सदियों से आवासित सरल एवं मेधावी द्रविड़ों के जैन संस्कारों एवं आचरणों की हृदय से सराहना की है। जैन शास्त्रों में विक्रम संवत् से 200 वर्ष पूर्व जैन आचार्यों के चतुर्विध संघ सहित बारह वर्षी अकाल की विभीषिका से त्रस्त उत्तरी भारत से दक्षिण की ओर प्रयाण के उल्लेख मिलते हैं। कभी ये दक्षिणवासी जैन धर्मावलंबी ही थे। शुरु में आदि शंकराचार्य एवं बाद में वल्लभाचार्य के प्रभाव में राजकीय दबाव से त्रस्त कहने को ये हिन्दू अवश्य कहलाने लगे पर उनके व्यवहार एवं क्रियाकलापों में जैन दर्शन का प्रभाव साफ परिलक्षित होता रहा। हालाँकि किसी भी जैन सम्प्रदाय से उनका किंचित भी सरोकार अब नहीं है पर जैन धर्म उनके लिए सच्चे तत्त्व ज्ञान की कुंजी है एवं अहिंसा, अपरिग्रह, शाकाहार की अवधारणाएँ उनकी चेतना में अब भी समाहित हैं। यह बोध आनुवांशिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है। वर्तमान धर्म पालना भी इसमें कभी बाधक नहीं बनी। जन्मना या अनुयायी रूप से जैन न होते हुए भी समूचे दक्षिण में, चाहे वे तमिल भाषी हो या कन्नड़ी, मलयालम या तेलगु भाषी, ये जैन धर्माधारित सैद्धांतिक अवधारणाएँ एक श्रृंखला में उन्हें इस तरह जोड़े हुए हैं, मानो वे धर्म-भाई हों। जातिपेक्षा से भी आपस में ऊँचे या नीचे का कोई भेद-भाव नहीं। उनमें एक अभूतपूर्व आपसी भाईचारा एवं रोटी-बेटी व्यवहार अब भी प्रचलित है। इन विशुद्ध हृदय जैनों के खाने-पीने के संस्कार भी

अहिंसा प्रेरित हैं। हाँ, उनकी मान्यताएँ दिगम्बर जैन दर्शन के अधिक अनुरूप हैं, क्योंकि वे जिस समय की परम्परा के वाहक हैं, उस सम श्वेताम्बर सम्प्रदाय का जन्म भी नहीं हुआ था। अवश्य ही उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में दक्षिण में प्रवासित उत्तर भारत के विभिन्न जैन सम्प्रदाय धर्मावलंबी जैनियों से वे सर्वथा भिन्न हैं। ये सद्य प्रवासित विभिन्न सम्प्रदायावलम्बी जैन सदा ही एक-दूसरे की टांग खींचने एवं अपना-अपना प्रचार करने में संलग्न रहते हैं—गृहस्थ भी और साधु भी। ये लोग 'जन्मना जैन' होने को भी व्यक्तिगत या सम्प्रदायगत स्वार्थ साधन के हथियार रूप में इस्तेमाल करते हैं।

वर्तमान जैन समाज के अंतर्विरोधों की बखिया खोलते हुए डॉ. शार्लोटे उक्त आलेख में कहती हैं—''यह कैसी विडम्बना है कि आत्मजयी जिनों का जो धर्म सार्वभौम सद्भाव का पाठ पढ़ाता है वही जाति-आश्रयित होकर मात्र वणिक वर्ग तक सीमित हो गया है। जाति और धर्म के इस अश्रद्धेय व अभंग अन्योनाश्रित संबंध ने दोनों को ही विग्रह के कगार की ओर ढ़केल दिया। उत्तरी भारत का यह जैन समुदाय मुख्यतः मिश्र-आर्यन नस्ल के वैश्य वर्ण का ही एक भाग है। कभी गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान के सुदूर प्रदेशों में बसे मोढ़ एवं नागर जाति के ब्राह्मण एवं बनिया सभी जैन धर्मावलंबी थे। वे सभी सोलहवीं/सत्रहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य एवं राज्याश्रय के प्रभाव में वैष्णव बन गए। भगवान महावीर के ग्यारह गणधर/शिष्य सभी ब्राह्मण थे। परवर्ती काल में अनेक जैनाचार्य ब्राह्मण वर्ण से ही थे। किंतु इतिहास गवाह है यह क्रम ऐसा टूटा कि ब्राह्मण और जैन एकदम विपरीत ध्रुवों पर स्थापित हो रहे। अलबत्ता आर्यों का क्षत्रिय वर्ण धर्म रूपांतरण से अवश्य जैन जातियों में परिवर्तित होता रहा। परन्तु इसका मूल कारण रण क्षेत्र की त्रासदी के विपरीत सामान्य नागरिक संहिता एवं खेती या व्यापार का शांतिपूर्ण जीवन रहा। सदियों से जैन धर्म बनिया जाति के ही मात्र ओसवाल, श्रीमाल पोरवाल घटकों की ही बपौती रहा है। ऐसा क्यों हुआ।''

डॉ. शार्लोटे जैन धर्मावलंबियों की निरंतर घटती संख्या का विश्लेषण करते हुए इसका मूल कारण मानती हैं धार्मिक संगठन के विग्रह को। ''भगवान महावीर के निर्वाण के 600 वर्ष बाद ही सन् 82 के आसपास उनके अनुयायी दो खण्डों में विभक्त हो गए–दिगंबर और श्वेताम्बर। धीरे-धीरे उनमें भी मतांतर होता ही चला गया। मूर्ति पूजकों एवं अमूर्ति-पूजकों के खेमे ऐसे गड़े एवं आपसी मतभेद ऐसे बढ़े कि श्वेतांबर में वृहदगच्छ, चैत्यवासी, अंचलगच्छ, खरतरगच्छ, तपागच्छ, स्थानकवासी तेरापंथी आदि विभेद हुए एवं दिगम्बरों में मूल संघ, काष्ठा संघ, माथुर संघ, गुमान पंथी, बीस पंथी, तोता पंथी संप्रदाय बने। ये विभेद आचार्यों एवं साधुओं की परस्पर असहिष्णुता, अहमन्यता, अनास्था एवं शिथिलता के परिचायक थे। इस निरंतर बढ़ते विग्रह के कारण जैनों के प्रति साधारण जन-मानस की अन्यमनस्कता एवं अनास्था बढ़ी।''

डॉ. शार्लोटे ने धर्म और जाति की परस्पर आश्रयता को भी इस विघटन का बड़ा कारण माना है। ''धर्म वैयक्तिक साधना का विषय है भले ही वह साधुगत हो या श्रावकगत। जैन धर्म मूलतः सत्योन्मुखी महाव्रतों पर आधारित है, जो ''संसार से अपूठा'' यानी वैराग्य मूलक हैं। इन्हीं महाव्रतों के कर्णधार साधु और आचार्य यदि जातिगत श्रेष्ठियों एवं उनके द्वारा उपार्जित संसाधनों के आश्रित या अधीन हो जाएँ तो धर्म साधना की नींव ही हिल न जाएगी। शनैः-शनैः जैनाचार्यों की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक शिथिलता एवं विभिन्न प्रदेशीय गृहस्थ-घटकों पर उनकी आश्रयता इस कदर बढ़ी कि वे टूटते ही चले गए। इसी कारण विशिष्ट जाति, गोत्र शहर या गाँव से जुड़े साधुओं के उसी नाम से अलग-अलग गच्छ बने जो सदा एक-दूसरे का विरोध करते रहे एवं अपने-अपने अनुयायियों की संख्या के बल पर एक-दूसरे को नीचा दिखाने में मशगूल रहे। वे स्वयं तो टूटे ही सभी अनुयायियों को एकसूत्र में बाँधे रखने वाले इस सेतु के टूट जाने से गृहस्थ घटक भी टूटे। जातियों में भी दस्सा, बीसा, पांचा, ढ़ाया, पंजाबी, काठियावाड़ी, गुजराती, मालवीय, मारवाड़ी, विभेद हुए और इसी कारण हिंदू, शैव एवं वैष्णव धर्म मतावलंबियों के

संगठित प्रसार का सामना करने में वे अक्षम हो गए। जैनों के उपाश्रय एवं चैत्य जन-साधारण के समीप शहरों एवं गाँवों में होते हैं। अतः वे अपनी दैनन्दिन खान-पान की आवश्यकता के लिए गृहस्थों पर ही निर्भर रहते हैं एवं हर समय साधारण स्त्री-पुरुषों के आने-जाने का ताँता लगा रहता है। अतः बिना किसी हस्तक्षेप के गृहस्थ और साधु–दोनों की ही स्वतंत्र सत्ता विकासमान नहीं रह सकी।''

डॉ. शार्लोटे ने बड़ी बारीकी से इस विग्रह की समीक्षा की है। ''जैन जातियों की इस फिरका परस्ती के कारण उनमें अपनी-अपनी मान्यताओं के प्रति कट्टरता बढ़ी। साथ ही अनुयायी गृहस्थ घटकों पर उनकी आश्रयिता बढ़ी। इसी के फलस्वरूप जातीय समूहों पर धन्ना सेठों का शिकंजा कसा। ये समूह शनैः-शनैः सीमित होते गए। एक समय ऐसा आया जब समाज व धर्म के ठेकेदारों ने अपनी व्याख्याओं, नियमों एवं आदेशों को चुनौती देने वालों को धर्म व जाति से बहिष्कृत कर दिया। जैन जातियों का उन्नीसवीं सदी में विदेश गमन को लेकर उभरा देशी-विलायती विवाद, जिसने समाज की जड़ें हिला दी थी, इसी कट्टरता की फलश्रुति था।

जातीय पंचायतों ने धर्माचार्यों की अहमन्यता को बढ़ावा दिया और धर्माचार्यों ने पंचायतों की ज्यादतियों को प्रश्रय दिया। इनकी कट्टरता के फलस्वरूप ही विधवाओं के पुनर्विवाह को जाति बहिष्कार का हेतु बना लिया गया और विधुरों के पुनर्विवाह को भले ही वे वृद्ध हों और वधू कुमारी बालिका हो, प्रश्रय दिया गया। उस जमाने में वैसे ही वैज्ञानिक संसाधनों एवं स्वास्थ्य-शिक्षा के अभाव में प्रसूति में ही बच्चों को जन्म देती महिलाओं की मृत्यु-दर बहुत अधिक थी। माता-पिता से सम्बन्धित चार-चार गोत्रों में विवाह-निषेध था। इन्हीं सब कारणों से उपयुक्त वधू खोज पाना मुश्किल हो गया, बाल विवाह एवं वधुओं की खरीद फरोख्त को बढ़ावा मिला।

परिणाम स्वरूप धर्मान्तरण होने लगे। बेटी व्यवहार बन्द हुआ तो रोटी व्यवहार भी टूट गया। लोग जाति बहिष्कृत होकर बस्ती के अन्य

जातीय समूहों में सम्बन्ध करने लगे। उत्तरी भारत में मोढ़, मनिहार, भावसार व नागर जैनों के वैष्णव हो जाने को इसी की फलश्रुति मानना चाहिए। दक्षिणी भारत में लिंगायत एवं बंगाल के 'सराक' बन्धु भी इन्हीं कारणों से जैन-धर्म-विमुख हुए। जिन प्रदेशों में जैन कम संख्या में थे वे अन्ततः अधिक संख्या (majority) वाली जैनेतर जातियों के अंग बन गए। समाज एवं धर्म की संकुचित एवं रूढ़िग्रस्त वृत्तियाँ ही उसके विघटन का कारण बनी। जैनाचार्य बुद्धिसागर जी ने ''जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह'' ग्रन्थ की अपनी प्रस्तावना में पिछली चन्द सदियों में ऐसे ही उत्तरी भारत के स्वधर्मत्यागी 'जैन' से 'वैष्णव' बने लोगों की 3,00,000 से भी अधिक संख्या सत्यापित की है।''

डॉ. शार्लोटे क्राउजे के अनुसार ''जैन समाज में धर्म को रूढ़िगत परम्पराओं के पालन तक सीमित कर दिया गया है। साधारण जन शास्त्रगत सिद्धान्त (थोकड़े), प्रार्थनाएँ (ढ़ालें), स्तवन (ऋचाएँ) रट-रट कर टेप रिकॉर्डर की मानिन उच्चारित करने को ही धर्म-ज्ञान की इतिश्री माने हुए हैं, कोई इन का हार्द्र तो दूर, शाब्दिक अर्थ भी जानने की कोशिश नहीं

सुश्री क्राउजे जयपुर में जैन श्रावकों के साथ

करता। उनके पूजा विधान मात्र औपचारिक रह गये हैं। दौड़ते-भागते वे किसी तरह उन्हें सम्पूर्ण कर अपने-अपने धन्धे लगते हैं। उनके दैनन्दिन क्रिया-कलापों में कहीं भी उनकी छाया तक दृष्टिगोचर नहीं होती। सद्गृहस्थों का ही नहीं, यही हाल साधु-संस्थान का भी है। एक धनी

जैन श्रेष्ठि का धर्म प्रेम लाखों-करोड़ों रुपये पूजा, अर्चना, भवन-प्रसाद, चतुर्मास एवं तीर्थों के लिए संघ सभायोजन कर प्रशस्ति पाने एवं संघपति या नारी रत्न, युवा रत्न, समाज भूषण आदि अन्यान्य उपाधियों को हासिल करने तक ही सीमित है। अब भी वे शिक्षा और स्वास्थ्य को जीवनोन्मेष का हेतु नहीं मानते। आत्मिक साधना उनसे क्या, जैन साधुओं से भी कोसों दूर है। साधु भी पूरा समय इस तथा कथित धर्म-प्रचार-प्रसार हेतु राजनेताओं एवं सत्ताधारियों से जोड़-तोड़ बैठाने में ही बिता देते हैं। यदि भूल से कोई शिक्षा-केन्द्र खुलता भी है तो वहाँ मीलों पसरे परिसर में पढ़कर डिग्री हासिल करने वालों में जैनेतर लोग ही अधिक होंगे, क्योंकि जैन श्रेष्ठियों के बच्चे उस धर्म-शिक्षा-परिसर में क्यों आने लगे, उन्हें मसें भींगते ही वंशानुगत अर्थोपार्जन में लगा दिया जाता है और पढ़े भी तो उसका हेतु आत्मिक विकास कभी नहीं होता, उद्देश्य तो अर्थोपार्जन ही रहता है।

अनेक ओसवाल श्रेष्ठि राज्याश्रय में ऊँचे-ऊँचे पदों पर कार्यरत थे। ऐसा भी हुआ कि उक्त जातिगत कदाग्रह से तंग आकर उन्होंने राजा के ही जैनेतर धर्म को अपना धर्म बना लिया। उदयपुर, जोधपुर आदि देशी रियासतों में अनेकानेक परिवार जो कभी कट्टर जैन थे, सतरहवीं से उन्नीसवीं शदी के बीच वैष्णव धर्म अंगीकार कर अपने मूल स्रोत से विलग हो गए।

कुछ ऐसे भी जैन परिवार थे जो जातिगत निषेधों एवं बहिष्कार के शिकार होते हुए भी वैष्णवों की अनेकानेक सर्वथा विपरीत मान्यताएँ स्वीकार करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे। वे समकालीन सुधारवादी आन्दोलनों से जुड़कर आर्य समाजी हो गए। हर शहर में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएँगे। विडम्बना तो यह रही कि जैनों का साधु समाज और अनुयायियों का गृहस्थ समाज—दोनों ही अपनी घटती हुई जनसंख्या के प्रति लापरवाह रहे। उन्होंने इस विग्रह के कारणों की कभी समीक्षा नहीं की। दोनों ही ऊपर से जैन धर्म का लबादा ओढ़े हैं परन्तु जैन आदर्शों से कोसों दूर हैं। लाखों, करोड़ों रुपए प्रचार पर खर्च करके भी

वे अन्य लोगों को जैन नहीं बना सके। वे पाश्चात्य देशों में जैन साहित्य एवं श्रमण भेजकर अपेक्षा रखते हैं कि वे ही उन जैन सिद्धांतों को अपनाकर विश्व की समस्याएँ हल करें। हालाँकि स्वयं ये तथाकथित जैन अपनी समस्याओं का हल निकालने में अक्षम हैं। अन्तरिक्ष, पावापुरी, राजगृह, केसरियाजी, सम्मेद शिखरजी, मक्षी आदि तीर्थों में श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय वर्षों से आपस में झगड़ रहे हैं। इस निष्प्रयोजन कलह में लाखों-करोड़ों रुपए व्यय हो चुके हैं। वे अन्य सम्प्रदाय की तत्त्व सम्बंधी महत्त्वहीन भिन्नताओं के लिए एक-दूसरे की टांग खींचने में लगे हैं और इसे हवा देते हैं अन्य श्रद्धालु भक्त और प्रशस्ति पिपासु धन्ना सेठ।''

डॉ. शार्लोटे जैन समाज की इस स्थिति से दु:खित थी। उन्होंने सुधारक वर्ग के सोच की सराहना भी की परन्तु यह वर्ग भी वांछित साहस के अभाव में कोई बदलाव लाने में असमर्थ था। लेख के अंत में उन्होंने अपने मन की भावना व्यक्त की कि ऐसा समय कब आएगा जब समस्त जैन समुदाय इन विकार ग्रस्त क्रियाकलापों से मुक्त, अंधश्रद्धा और संकुचित मनोवृत्तियों से ऊपर उठकर जिन उपदिष्ट प्राचीनतम धर्म का अनुगमन कर आत्म-कल्याण करेगा।

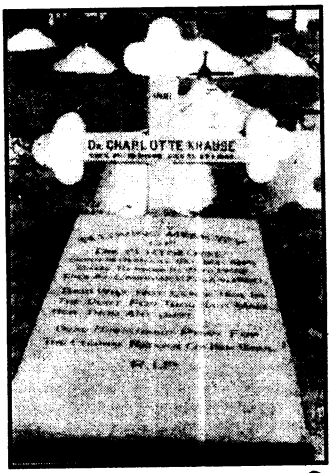

किंतु जैन धर्म और समाज की इस अमूल्य सेवा के एवज में जैसा सूलक जैन धर्मावलंबियों ने डॉ. शार्लोटे क्राउजे के साथ उनकी वृद्धावस्था में किया वह अशोभनीय था। सिंधिया सरकार की सेवा से निवृत्त होकर उन्हें आश्रय ढूँढ़ना पड़ा। उन्हें आशा थी कि जैन

समाज अवश्य उनकी सुरक्षा एवं सुश्रुषा का प्रबन्ध करेगा। वे रुग्ण रहने लगी थी। उन्होंने जैन समाज के कर्णधारों से अनुनय विनय की ताकि असहायावस्था में उनकी सुचारु देखभाल का प्रबंध हो सके। परन्तु समाज के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। समाज की इस उदासीनता से निराश होकर वे ग्वालियर के कैथोलिक चर्च में सन् 1962 में फिर से कैथोलिक धर्म में दीक्षित हुई। कैथोलिक धर्मावलम्बियों ने ही अंतिम समय तक उनकी सेवा सुश्रुषा की। वे सन् 1980 में ग्वालियर में दिवंगत हुई। इस तरह अहसान फरामोशी की इस अधर्म कथा का अंत हुआ।

49. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन (1912-1988)

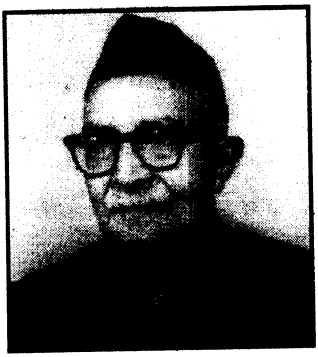

जन्म : ख्वाजा नगला (मेरठ), 1912
पिताश्री : पारसदास अग्रवाल
माताश्री : राम कटोरी देवी
शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी., पी-एच.डी.
दिवंगति : लखनऊ, 1988

भारतीय इतिहास, संस्कृति और जैन विद्या के जाने-माने लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान, इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का जन्म 6 फरवरी, 1912 के दिन उत्तरप्रदेश के मेरठ जिले के अन्तर्गत ग्राम ख्वाजा नगला में हुआ था। वे मेरठ नगर के एक मध्यवर्गीय गोयल गोत्रीय दिगम्बर जैन अग्रवाल परिवार के थे। उनके पिता श्री पारसदास और माता श्रीमती रामकटोरी सरल स्वभाव के धर्मपरायण दम्पत्ति थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा परम्परागत ढ़ंग से एक दिगम्बर जैन पाठशाला और पाण्डेजी की चटशाला में हुई, किन्तु शीघ्र ही वे शिक्षा की एंग्लो-वर्नाकुलर पद्धति से जुड़े और सन् 1928 में उन्होंने गवर्नमेन्ट हाईस्कूल, मेरठ से यू.पी. बोर्ड की हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। उनकी उच्च शिक्षा मेरठ के मेरठ कॉलेज तथा आगरा के सेन्ट जॉन्स कॉलेज एवं आगरा कॉलेज में हुई थी। उन्होंने सन् 1935 में आगरा विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सन् 1936 में उसी विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें मेरठ कॉलेज में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्होंने फ्रैंच भाषा का अध्ययन किया और सन् 1952 में अंग्रेजी साहित्य में भी एम.ए. किया।

अपने स्कूल के दिनों से ही उन्हें हिन्दी साहित्य से गहरा लगाव रहा। वे नागरी प्राचारिणी सभा, आगरा के सक्रिय सदस्य बने और सन्

1932 में उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की साहित्य विशारद परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

अपने अध्ययन-लेखन के प्रसंग में उन्होंने प्राच्य भाषाओं : संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का तथा आधुनिक भाषाओं : उर्दू, गुजराती, मराठी व बंगाली का ज्ञान अर्जित किया।

अपने छात्र जीवन के दौरान ही वह काँग्रेस सेवादल से भी जुड़े तथा खादी के प्रचार-प्रसार में लगे। सन् 1931 में महात्मा गाँधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्होंने सहभागिता की। बसन्त पंचमी 12 फरवरी, 1929 के दिन मास्टर उग्रसेन कन्सल की सुपुत्री अनन्तमाला से उनका विवाह हुआ।

सन् 1936 में कॉलेज छोड़ने के उपरान्त उन्हें आजीविका हेतु कठोर संघर्ष करना पड़ा। मेरठ में वकालत प्रारम्भ की, किन्तु यह व्यवसाय उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं था। मेरठ में ही उन्होंने एक काँच फैक्ट्री लगाई, जिसे कुछ समय पश्चात् ही बन्द करना पड़ा। लखनऊ में कई वर्ष तक अंग्रेजी औषधियों का विधिवत व्यापार किया। शिमला, विदिशा, हापुड़ और मेरठ में अध्यापन कार्य में रत रहे। उत्तर प्रदेश सचिवालय में अनुवादक का कार्य भी किया। किन्तु ये सब व्यवसाय ज्ञानार्जन के प्रति उनकी रुचि और लगन को बाधित नहीं कर सके और उनका अध्ययन-लेखन निरन्तर चलता रहा। यह उनके बीस वर्ष के समर्पित अध्ययन का परिणाम था कि सन् 1956 में आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें उनके शोध-प्रबन्ध ''प्राचीन भारत के इतिहास के जैन स्रोतों का अध्ययन (ई.पू. 100 से 900 ई. पर्यन्त)'' पर पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की। उनकी अर्हताओं को दृष्टि में रखकर उत्तरप्रदेश शासन ने जिला गजेटियर विभाग, लखनऊ में उन्हें सन् 1958 में दस अग्रिम वेतनवृद्धियाँ देकर 'संकलन अधिकारी एवं उप सम्पादक' के पद पर नियुक्ति प्रदान की। वहाँ से दो वर्ष की सेवावृद्धि प्राप्त कर वह ससम्मान सन् 1972 में सेवानिवृत्त हुए। उनके कार्यकाल में उनके सक्रिय सहयोग से उत्तरप्रदेश के 18 जिलों के गजेटियर तैयार हुए जिनमें इतिहास विषयक आलेख मुख्यतया उन्हीं के रहे।

अपनी छात्रावस्था से ही डॉक्टर साहब के मन में लेखन और सम्पादन की उत्कंठा रही। सन् 1926 ई. में उन्होंने 'जैन कुमार' नामक हस्तलिखित पत्रिका प्रारम्भ की। किसी सार्वजनिक पत्र में सर्वप्रथम प्रकाशित उनका लेख ''जैन धर्म के मर्म की अनोखी सर्वज्ञता'' था। वह ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी की प्रेरणा से लिखा गया था और सूरत से निकलने वाले साप्ताहिक ''जैन मित्र'' के 12 अक्टूबर, 1933 के अंक में प्रकाशित हुआ था। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक 16 पृष्ठीय 'पर्यूषण पर्व' थी जिसे सन् 1940 में श्री जैन सभा, मेरठ ने छपवाया था।

बहुभाषाविज्ञ डॉक्टर साहब की हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में समान रूप से प्रवाहमान लेखनी ने इतिहास और संस्कृति, पुरातत्त्व एवं कला, भाषा और साहित्य, धर्म और दर्शन, सामाजिक और सामयिक विषयों को स्पर्श किया। इन विषयों पर प्रसूत दो सहस्त्र से अधिक लेख देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए और लगभग पचास छोटी-बड़ी कृतियों का उन्होंने प्रणयन किया। गहन गंभीर विषय ही नहीं, कहानी-उपन्यास और काव्य सृजन भी उनकी लेखनी से अछूते नहीं रहे।

अपने शोध-प्रबन्ध 'The Jaina Sources of the History of Ancient India' में डॉक्टर साहब ने ई.पू. 100 से 900 ई. पर्यन्त एक सहस्त्र वर्ष की अवधि के भारत के इतिहास की अनेक विवादित तिथियों और जटिल प्रसंगों को जैन साहित्य, अभिलेख एवं अन्य पुरातत्त्वीय प्रमाणों के आधार पर सुलझाने का प्रयत्न किया है। यह शोध-प्रबन्ध सन् 1964 में दिल्ली के प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक 'मुंशीराम मनोहरलाल' द्वारा प्रकाशित किया गया था। यह अब अप्राप्य है और इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशनाधीन है।

जैन धर्म एवं संस्कृति की प्राचीनता के सम्बन्ध में जैनेतर जनमानस में व्याप्त भ्रान्ति का निरसन करने के उद्देश्य से डॉक्टर साहब ने 'Jainism : The Oldest Living Religion' का प्रणयन किया था। इसमें अनेक पुष्ट प्रमाणों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि जैन संस्कृति के बीज भारतीय वातावरण में सुदूर अतीत तक प्रसार प्राप्त थे।

प्रो. दलसुख मालवणिया की प्रेरणा से प्रणीत इस कृति का प्रथमत: प्रकाशन सन् 1951 में जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी, बनारस द्वारा हुआ था। तदनन्तर 1988 में पी.सी. रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वाराणसी ने उसकी द्वितीय आवृत्ति निकाली और 1979 में अहमदाबाद के श्री हेमंत जे. शाह ने उसका गुजराती रुपान्तर 'जैन धर्म साहुथी वधु प्राचीन अनेजुवन्त धर्म' नाम से प्रकाशित किया।

''अपने पूर्व पुरुषों के गुणों एवं कार्यकलापों को जानकर मनुष्य स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है, उनसे प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करता है और सबक भी लेता है। उनके द्वारा की गई गल्तियों को दोहराने से बचने का प्रयत्न करता है''—इतिहास की इस उपयोगिता में विश्वास रखने वाले इतिहास-मनीषी डॉक्टर साहब ने विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारत के इतिहास का अध्ययन-मनन कर 'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' ग्रंथ का प्रणयन किया। उसमें प्राग् ऐतिहासिक काल से लेकर सन् 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति पर्यन्त दक्षिण भारत सहित समग्र देश का एक सुव्यवस्थित तथ्यात्मक निष्पक्ष इतिहास प्रस्तुत किया। यह पहला इतिहास ग्रंथ है, जिसमें अन्य स्रोतों के साथ-साथ जैन सामग्री—साहित्य, अभिलेख, पुरातत्त्व आदि का भी सन्तुलित रूप से उपयोग किया गया। सन् 1961 में प्रथमत: प्रकाशित इस इतिहास-ग्रन्थ की लोकप्रियता के कारण सन् 1999 में भारतीय ज्ञानपीठ ने इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित किया।

अंग्रेजी भाषी सामान्य पाठकों को जैन धर्म और संस्कृति से परिचित कराने वाली, प्रो. जी.आर. जैन की प्रेरणा से प्रणीत उनकी कृति 'Religion and Culture of the Jains' प्रथमत: सन् 1975 में प्रकाशित हुई थी। यह देश-विदेश में इतनी लोकप्रिय हुई कि सन् 1999 में भारतीय ज्ञानपीठ ने इसका चौथा संस्करण प्रकाशित किया।

मुद्रणकला के इतिहास की पृष्ठभूमि में डॉ. माताप्रसाद गुप्त की सन् 1945 में प्रकाशित पुस्तक 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' से प्रेरणा लेकर साहित्यानुरागी डॉक्टर साहब ने सन् 1946-47 में प्रकाशित जैन साहित्य

एवं जैन पत्र-पत्रिकाओं की एक विवरणिका संकलित की थी। उक्त विवरणिका में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी की 2052, मराठी की 48, गुजराती की 70, बंगला की 52, उर्दू की 168 तथा अंग्रेजी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं की 290 कृतियों का समावेश है। साथ ही जैन धर्मानुयायियों द्वारा की गई साहित्य सेवा, उक्त साहित्य के प्रकाशन के इतिहास, जैन पत्रकारिता के इतिहास, जैन पुराभिलेखों, प्रशस्तियों, स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला आदि पर प्रकाश डालने वाली डॉक्टर साहब की 89 पृष्ठ की सारगर्भित भूमिका है। यह पुस्तक सन् 1958 में जैन मित्रमण्डल, दिल्ली से प्रकाशित हुई थी और तत्समय अपनी साहित्यिक निधि का लेखा-जोखा लगाने में उपयोगी इस कृति का विद्वज्जगत् द्वारा प्रभूत समादर हुआ था।

साधारण मनुष्य की भी एक अटूट परम्परा होती है और वह पर्दे के पीछे रहकर भी इतिहास को गति देती रहती है। इस असाधारणता का मूल्यांकन करने वाली, पारम्परिक लीक से हटकर रची गई उनकी कृति है–'प्रमुख इतिहास जैन पुरुष और महिलाएँ'। साहू शान्ति प्रसाद जैन की प्रेरणा से प्रणीत और फरवरी, 1975 में प्रथमत: प्रकाशित इस पुस्तक में विगत ढाई हजार वर्ष में हुए प्रमुख पुरुषों और महिलाओं का परिचय विभिन्न स्रोतों से एकत्र करके एक ऐसा स्मृति-ग्रंथ प्रस्तुत किया है, जिसे पढ़कर हम अपने आपको गौरवान्वित महसूस करेंगे। सन् 2000 में भारतीय ज्ञानपीठ ने इसकी द्वितीय आवृत्ति निकाली है।

इतिहास में एक ही नाम के अनेक विशिष्ट व्यक्ति हुए हैं और नाम साम्य के आधार पर कई व्यक्तियों को एक ही मान लेने की भ्रान्ति प्राय: हो जाती है। इससे ऐतिहासिक घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का समाकलन भ्रमपूर्ण हो जाता है। इतिहास के स्रोतों के सम्यक् अध्ययन के लिए प्रतिबद्ध डॉक्टर साहब ने अपनी पचास वर्ष की साधना से जैन आचार्यों, प्रभावक सन्तों, साध्वी आर्यिकाओं, साहित्यकारों, कलाकारों, धर्म एवं संस्कृति के पोषक राजपुरुषों और अन्य गणमान्य पुरुषों एवं महिलाओं का संक्षिप्त प्रामाणिक परिचय ससंदर्भ संकलित कर अकारादि क्रम से एक कोश तैयार किया था। उसका

प्रथम खण्ड उनके महाप्रयाण के उपरान्त जुलाई, 1988 में 'जैन ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश प्रथम खण्ड (अ-अं)' लखनऊ से प्रकाशित हुआ था।

डॉक्टर साहब की अन्य उल्लेखनीय प्रकाशित कृतियाँ हैं—सन् 1955 में उ.प्रा. शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित 'हस्तिनापुर', 1965 में अलीगंज (एटा) से प्रकाशित 'Jainism and Buddhism', 1965 में आरा से प्रकाशित 'जैनों का असाम्प्रदायिक साहित्य और कला, 1970 में लखनऊ से प्रकाशित 'रुहेलखण्ड-कुमायुं और जैन धर्म', 1974 में दिल्ली से प्रकाशित 'तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग', 1976 में लखनऊ से प्रकाशित 'उत्तरप्रदेश और जैन धर्म', 1979 में लखनऊ से प्रकाशित 'आदितीर्थ अयोध्या', 1983 में लखनऊ से प्रकाशित 'Way to Health and Happiness : Vegetarianism' एवं 'Bhagawan Mahavira : Life, Times and Teachings' तथा 1985 में दिल्ली से प्रकाशित 'समाजोन्नायक क्रान्तिकारी युगपुरुष ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद'।

विद्याव्यसनी डॉक्टर साहब ने ज्ञानार्जन और लेखन को व्यवसाय नहीं बनाया। उसके प्रति उनके मन में मात्र समर्पण भाव रहा। शासकीय सेवा से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त उन्होंने अपना प्रायः सम्पूर्ण समय और शक्ति बौद्धिक कार्यकलापों और समाज सेवा को अर्पित कर दी थी। अपने अपरिमित ज्ञान के कारण वह अपनी मित्र-मण्डली और सहयोगियों के मध्य एक चलता-फिरता ज्ञानकोश समझे जाते थे। अपना मौलिक लेखन तो वह करते ही थे, अन्य जनों को भी सदैव लेखन हेतु प्रोत्साहित, प्रेरित करते थे। अनेक मनीषियों की कृतियों को उन्होंने अपने विद्वतापूर्ण प्राक्कथन एवं भूमिका आदि से अलंकृत किया था। विभिन्न विश्वविद्यालयों, विशेषकर लखनऊ विश्वविद्यालय में जैन विद्या से सम्बन्धित किसी भी विषय पर डॉक्टरेट करने वाले शोधछात्र प्रायः उनके पास मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु आते थे और वे अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा उनकी सहायता करने में उदार रहते थे। डॉक्टर साहब न केवल एक बहुआयामी लेखक थे, अपितु एक कुशल वक्ता भी थे। आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों ही पर उनकी वार्ताएँ अनेक बार प्रसारित

हुईं। ऑल इण्डिया रेडियो, लखनऊ पर उनकी अन्तिम वार्ता 'नदिया एक, घाट बहुतेरे—जैन धर्म' 24 जनवरी, 1988 को प्रसारित हुई थी। उनकी संगीतबद्ध रचना 'जय महावीर नमो' न केवल भारत में आकाशवाणी से प्रसारित हुई, अपितु इसका टेप विदेशों में भी सुना जाता है।

भगवान महावीर के निर्वाण की 2500वीं वर्षगांठ पर उत्तरप्रदेश शासन के तत्त्वावधान में आयोजित विभिन्न समारोहों में डॉक्टर साहब की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। उनके प्रधान सम्पादकत्व में 'भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ, जिसमें उत्तरप्रदेश में जैन धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विभिन्न पक्षों को सन्दर्भित और समाहित करते हुए प्रामाणिक सामग्री का संकलन किया गया था। वह एक मौलिक शोध-संदर्भ ग्रन्थ है, जिसकी उपयोगिता शोधार्थियों के लिए अनवरत बनी रहेगी।

सन् 1976 में गठित तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तरप्रदेश के डॉक्टर साहब संस्थापक सदस्य थे और अपनी मृत्युपर्यन्त वह उसके शोध-पुस्तकालय एवं शोध-प्रवृत्तियों के मानद निदेशक रहे। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'जैन कला एवं स्थापत्य' ग्रन्थ के तीनों खण्डों के सम्पादन से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे और भारतीय ज्ञानपीठ की मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के वह मानद सम्पादक भी रहे।

जुलाई 1958 में डॉक्टर साहब ने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ मथुरा से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'जैन सन्देश' के 'शोधांक' का शुभारम्भ इस दृष्टि से किया था कि जैन विद्या से सम्बन्धित शोध के प्रति लोगों की अभिरुचि जागृत हो। अक्टूबर, 1983 तक उसके 51 अंक प्रकाशित हुए जो शोधार्थियों के लिए बहुत महत्त्व रखते हैं।

पुन: फरवरी, 1986 में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. के तत्त्वावधान में एक चातुर्मासिक शोध-पत्रिका 'शोधादर्श' नाम से लखनऊ से प्रारम्भ की, जिसके 6 अंक उनके जीवनकाल में प्रकाशित हुए थे। यह पत्रिका अब भी प्रकाशित हो रही है एवं अपनी निष्पक्ष सत्योन्मुखी सम्मतियों के लिए प्रसिद्ध है।

जैन विद्या की शोध से डॉक्टर साहब का प्रगाढ़ सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा। वे 'अनेकान्त', 'जैन सिद्धान्त भास्कर' और 'जैन एन्टीक्वारी' प्रभृति लब्धप्रतिष्ठ शोध-पत्रिकाओं से उनमें अपने शोध-पत्रों का योगदान कर जुड़े। कालान्तर में वर्षों तक इन शोध-पत्रिकाओं के वह मानद प्रधान सम्पादक भी रहे।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय (वाराणसी), प्राकृत जैन रिसर्च इन्स्टीट्यूट (वैशाली), भारतीय ज्ञानपीठ, विश्व जैन मिशन, अग्रवाल सभा (लखनऊ), थियोसोफिकल सोसायटी, सर्वधर्म मिलन, बुक क्लब प्रभृति विभिन्न शैक्षणिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं की गतिविधियों में उनका सक्रिय योगदान रहा। अपनी साहित्यिक सेवाओं के लिए यदा-कदा प्राप्त पत्रं-पुष्पं राशि को निर्माल्य मानकर उन्होंने पुण्यार्थ कार्यों के लिए स्वयं 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' की स्थापना की। वे 'अनन्त ज्योति विद्यापीठ' के अध्यक्ष रहे।

इतिहास और जैन विद्या के क्षेत्र में डॉक्टर साहब के अवदान हेतु वर्ष 1957, 1958, 1974, 1979 तथा 1986 में विभिन्न संस्थाओं द्वारा विभिन्न स्थानों पर उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया और उन्हें उनकी विद्वता के अनुरूप 'इतिहास-रत्न', 'विद्यावारिधि' एवं 'इतिहास-मनीषी' के विरुदों से अलंकृत किया गया।

डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने सरल-सादा जीवन व्यतीत किया। जैन विद्याविद् के रूप में वह अनेक जनों के लिए प्रेरणास्रोत रहे। आबालवृद्ध जो भी उनके सम्पर्क में आते थे उनके निश्छल सरल व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के अनुसार डॉ. ज्योति प्रसाद जी गीता के स्थितिप्रज्ञ की भाँति थे जो कर्म करने में विश्वास करता हो, किन्तु उसके फल की ओर से उदासीन रहता हो। बिना किसी अपेक्षा के स्वान्तःसुखाय साहित्य-साधना में रत साहित्य व्यसनी डॉ. ज्योति प्रसाद निरभिमानी और स्वभाव से धर्मात्मा तो थे ही, उनमें 'गुणिषु प्रमोदम्' की भावना प्रबल थी। अपने सम्पर्क में आने वाले सभी विद्वानों का स्वागत-सत्कार करके वह प्रभुदित होते थे। लखनऊ

में चारबाग स्टेशन से लगा उनका निवास 'ज्योति निकुंज' प्राय: विद्वानों का विश्रामागार बना रहता था। साहित्य के क्षेत्र में रहकर लेखनी के धनी होते हुए भी वह कभी किसी वाद-विवाद में नहीं पड़े। विद्यावारिधि होते हुए भी वह अन्त तक अपने को विद्यार्थी ही मानते रहे और अपने सतत अध्ययन और अनुभव से अर्जित ज्ञान-बिन्दुओं को अपने अन्तस् में संजोते रहे।

एक सक्रिय एवं सन्तोषयुक्त जीवन व्यतीत कर 76 वर्ष की वय में लखनऊ में 11 जून, 1988 की सायंकाल अपने पीछे एक भरापूरा परिवार छोड़ते हुए बीसवीं शदी की इस विभूति ने इस लोक से प्रयाण किया। भले ही डॉक्टर साहब की पार्थिव देह अब हमारे बीच नहीं है, वे अपनी कृतियों से अमर है। उनका प्रेरणास्पद व्यक्तित्व हमारी स्मृतियों में बसा हुआ है और उनके पुत्रद्वय—डॉ. शशिकान्त और रमाकान्त—अपने पिताश्री द्वारा प्रदीप्त ज्ञान-ज्योति की मशाल थामे हुए हैं।

50. डॉ. दौलतसिंह कोठारी (1905-1992)

जन्म : उदयपुर, 1905

पद/उपाधि : पद्मभूषण (1962), पद्मविभूषण (1973)

दिवंगति : जयपुर, 1992

भारत सरकार में अति उच्च पद पर आसीन होने एवं देश व विदेशों में अपार ख्याति अर्जित करने पर भी अत्यंत मृदुल स्वभाव एवं निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी डॉ. दौलतसिंह कोठारी की जीवनगाथा समस्त जैन समाज के लिए प्रेरणास्पद है।

विश्व के महानतम वैज्ञानिको में गिने जाने वाले डॉ. दौलतसिंह कोठारी का जन्म सन् 1905 में उदयपुर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा उदयपुर और इन्दौर में पूर्ण करने के बाद आपने इलाहाबाद युनिवर्सिटी से सन् 1928 में डॉ. मेघनाथ साहा के निर्देशन में भौतिकी में एम.एस.सी. (प्रथम श्रेणी में) पास की। तत्पश्चात् यू.पी. सरकार की स्कॉलरशिप पर आपने कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) युनिवर्सिटी में विश्व के चोटी के वैज्ञानिकों रदरफोर्ड, फाउलर आदि के साथ अनुसंधान में रत रहकर नभ भौतिकी का अध्ययन किया। सन् 1933 में वे पी-एच.डी. से सम्मानित किये गये। आपने दिल्ली युनिवर्सिटी में सन् 1934 से 1961 तक अध्यापन किया। वे भौतिकी विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे। कलकत्ते में सन् 1940 में हुई विज्ञान कॉन्फ्रेंस के सभापति सर जेम्स जीन ने आपके कार्य की बहुत सराहना की। सन् 1948 में उन्हें भारत सरकार ने रक्षा अनुसंधान एवं विकास की जिम्मेदारी सौंपी। वे सन् 1948 से 1961 तक भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार रहे। सं. 1961 में उन्हें युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन का चेयरमैन बनाया गया—तब भी वे दिल्ली युनिवर्सिटी के मानद प्रोफेसर बने रहे। उन्होंने नाभिकीय सितारों पर अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये जिससे उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

श्री कोठारी सन् 1963 में भारतीय विज्ञान काँग्रेस के स्वर्ण जयंती समारोह के अध्यक्ष मनोनीत हुए। भारत सरकार ने सन् 1964 में आपको भारतीय शैक्षणिक कमीशन का चेयरमैन नियुक्त किया। सन् 1948 में डॉ. राधाकृष्णन एवं सन् 1953 में प्रो. मुदालियर की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग शिक्षण के क्षेत्र में एकरूपता लाने में असमर्थ रहे थे। अत: भारत सरकार ने यह जिम्मेदारी कोठारी आयोग को सौंपी। गहन अध्ययन के बाद डॉ. कोठारी ने सन् 1966 में डेढ़ हजार पृष्ठों की जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें यथार्थवादी एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण से विद्यालयों के पाठ्यक्रम, छात्रों की प्रवेश-उम्र, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के शिक्षण आदि के बारे में अनेक उपयोगी सुझाव दिए जिससे सम्पूर्ण देश की भावात्मक एकता बनी रहे। सन् 1973 में आप भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकेडमी के सभापति चुने गए। आपने अन्य अनेक सरकारी निकायों की सदस्यता से देश को लाभान्वित किया। आप बड़े अध्यात्म प्रेमी थे। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी कॉन्फ्रेंस की अध्यक्षता कर आपने समाज को नई दिशा दी। सन् 1962 में भारत सरकार ने आपको 'पद्म-भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया एवं सन् 1973 में 'पद्मविभूषण' की उपाधि से विभूषित किया।

उनकी राष्ट्रीय उपलब्धियों से अभिभूत होकर 'नेशनल फेडरेशन ऑफ यूनेस्को एसोसिएशन' ने उन्हें 'यूनेस्को' एवार्ड से अलंकृत किया। सन् 1992 में जयपुर में आप दिवंगत हुए। आप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के चांसलर एवं अहिंसा इन्टरनेशनल के संरक्षक थे।

51. श्री भंवरमल सिंघी (1914-1984)

नये समाज के स्वप्न द्रष्टा, कवि चिंतक, स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक एवं धार्मिक क्रांतियों के प्रणेता एवं कलाकार श्री भंवरमल सिंघी का बहुआयामी संघर्षशील व्यक्तित्व जैनों और ओसवालो के लिए ही नहीं, समस्त भारतीय मनीषा के लिए प्रेरणास्रोत है।

संवत् 1971 में जोधपुर के निकट बडू ग्राम की एक झोपड़ी में उनका जन्म हुआ। सिंघी जी के दादा पेशे से मुंशी थे। उनके कुल 24 संतानें हुई। उन्नीस का निधन हो गया। सिंघी जी के पिता बीसवीं सन्तान थे। अत: उन्हें प्यार तो मिला पर अभाव भी। संवत् 1976 में फैली प्लेग की महामारी में दादा-दादी का देहांत हो गया। अनेक अन्य हादसों में से गुजरते हुए सिंघी जी बड़े हुए। मेधावी तो वे थे, मिडिल की परीक्षा में सर्वोच्च अंक मिले किन्तु घर की हालत पतली थी। पहले बिसात खाने की और फिर पान की दूकान पर बैठना पड़ा। पर पढ़ते रहे। हाई स्कूल की परीक्षा में जयपुर में सर्वोच्च अंक प्राप्त किए। उन्हें ग्लासीं गोल्ड मेडल प्रदान किया गया। किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। पिता की जब अमानत में खयानत के मुकदमे में गिरफ्तार होने की नौबत आई तो माँ के गहने और अपना गोल्ड मेडल बेचकर साहूकार की भरपाई की।

सन् 1934 में अजमेर में द्वितीय ओसवाल महासम्मेलन हुआ। सिंघीजी ने इस सम्मेलन से सामाजिक कार्यों में हिस्सेदारी शुरू की। तभी उनका प्रथम विवाह हुआ परन्तु मानसिक रूप से वे इसे कभी स्वीकार नहीं कर सके। हिन्दी के प्रति प्रेम और स्वराज्य-आन्दोलन का बीज वपन तब तक हो चुका था। उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद एवं तत्पश्चात् साहित्यरत्न परीक्षाएं उत्तीर्ण की। तभी उनका सम्पर्क श्री कंवरलाल बापना से हुआ जो प्रतिभावान वकील थे एवं आजादी के बाद राजस्थान उच्च न्यायालय के पहले मुख्य न्यायाधीश बने। उनके सहयोग से सिंघीजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने चले आए। यहाँ उनकी भेंट हिन्दी के प्रसिद्ध

उपन्यासकार प्रेमचन्द से हुई जिनकी प्रेरणा से सिंघीजी ने गद्य गीत लिखने शुरु किये जो 'हंस' में प्रकाशित हुए। प्रेमचन्द की संवेदना एवं उदात्त मूल्यों के प्रति आस्था ने सिंघीजी के जीवन की दिशा निर्धारित कर दी। बनारस से स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण कर आप कोलकाता आ गए। यहां आकर उनकी प्रतिभा चमक उठी – उनका क्षेत्र विस्तृत हो गया। वे अनेक सामाजिक नेताओं और संस्थाओं (विशेषत: मारवाड़ी सम्मेलन) से जुड़े। संवत् 1994 में उनके गद्यकाव्यों का संकलन 'वेदना' प्रकाशित हुई। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इस काव्य ग्रंथ की भूमिका लिखी थी। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हिन्दी साहित्य में इस नये प्राण संचार एवं भावक्षेत्र के सीमा प्रसार की प्रशंसा की। डॉ. रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' में सिंघीजी को हिन्दी का प्रथम गद्य गीतकार माना है।

इसी दरम्यान सिंघी जी ने 'ओसवाल नवयुवक' पत्र का सम्पादन भार सम्भाला। वे समाज को रूढ़ियों एवं अंध धार्मिक साम्प्रदायिकता की कारागार से बाहर लाना चाहते थे। होम करते हाथ जल गया। ज्यों ही पत्रिका में भग्न हृदय का 'साधुत्व' शीर्षक लेख छपा, धर्म एवं समाज के तथाकथित ठेकेदार बौखला गए एवं सिंघी जी को स्तीफा देना पड़ा। संवत् 1997 में उन्होंने तरूण संघ की स्थापना की एवं तरूण ओसवाल (जो बाद में 'तरुण जैन' और फिर 'तरूण' नाम से निकला) पत्र निकालना शुरु किया। अपनी ओजस्वी पत्रकारिता से उन्होंने समाज को नई दिशा दी। इसी वर्ष राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्घा की एक बैठक में वे महात्मा गांधी से मिले। स्वाधीनता आन्दोलन तीव्रतर हो रहा था। संवत् 1999 में गांधीजी जी ने 'करो या मरो' एवं ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' का नारा दिया। सिंघीजी तन-मन से आन्दोलन में कूद पड़े। इस बीच उनकी प्रथम पत्नि असमय काल-कवलित हो चुकी थी। आन्दोलन के दरम्यान वे अनेक क्रांतिकारियों से मिले एवं भूमिगत राष्ट्रीय नेताओं से उनका घनिष्ट सम्पर्क रहा। जब नागपुर और मुम्बई के बीच रेलवे ट्रेनों को डायनामाइट से उड़ाने की योजना बनी तो सिंघीजी उसके सूत्रधार नियुक्त हुए। वे डायनामाइट प्राप्त करने में भी समर्थ हुए परन्तु तभी पुलिस को इसकी भनक मिल गई, तलाशी हुई और वे गिरफ्तार कर लिए गये। प्रेसिडेंसी जेल में उन्हें वर्षों रखा गया। पेट में दर्द के

कारण उनकी तबीयत बहुत शोचनीय रहने लगी तब उन्हें अस्पतला में स्थानान्तरित किया गया एवं अन्ततः संवत् 2002 में रिहा किया गया।

संवत् 2003 में सिंघी जी ने सामाजिक क्रांति में एक नया पृष्ठ जोड़ा। उन्होंने बाल विधवा 'सुशीला जैन' से पुनर्विवाह किया जिसे मारवाड़ी समाज के गणमान्य नेताओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। यह विवाह रूढ़ परम्पराओं को तिलांजली देकर हुआ एवं इसमें पौरोहित्य भी एक महिला ने किया। जब संवत् 2003-4 में बंगाल में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे तो सिंघीजी एवं सुशीला जी ने 'बड़ा बाजार अमन सभा' के तहत मुसलमानों की सुरक्षा व्यवस्था में अहम भूमिका निभाई। देश आजाद होने के बाद जब नेतागण अपने राजनैतिक प्रभाव को भुनाने में लग गए तब सिंघीजी राजनीति को ठोकर मार कर सामाजिक सुधारों के अभियान पर निकल पड़े।

'नया समाज' के माध्यम से सिंघीजी का लेखन एक बार फिर सक्रिय हुआ। संवत् 2006 में उन्होंने कोलकाता में एक विराट सामाजिक क्रांति सम्मेलन का आयोजन किया जिसका सभापतित्व राजस्थान के तात्कालीन नव नियुक्त उद्योग मंत्री श्री सिद्धराज ढ़ढा ने किया एवं उद्घाटन किया श्रीमती अरूणा आसफअली ने। इस सम्मेलन की एक ओर उपलब्धि भी थी – मिनर्वा थियेटर में विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित एकांकी नाटकों का समाज कर्मियों द्वारा सफल मंचन। इन नाटकों में मारवाड़ी समाज के अनेक युवकों-युवतियों ने भाग लिया। ऐसा लगा कि समाज सुधार आन्दोलन में ये नाटक महत्त्वपूर्ण माध्यम बन सकते हैं। इसी की फलश्रुति थी प्रसिद्ध नाटककार तरूण राय के साथ मिलकर 'थियेटर सेंटर' की स्थापना। इस सेंटर द्वारा बहुभाषी नाट्य प्रस्तुतियों के साथ नाटक समारोह भी आयोजित किए गए। प्रमुख नाट्य संस्थान अनामिका को अस्तित्व में लाने एवं प्रसिद्ध नाट्यकर्मी श्रीमती प्रतिभा अग्रवाल एवं श्यामानंद जालान को मंच पर लाने का श्रेय सिंघी जी को ही है। संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार पाने वाली अनामिका की प्रस्तुति 'नये हाथ' में सिंघीजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। संवत् 2037 में अनामिका के रजत जयंती वर्ष पर नये हाथ का पुनः मंचन हुआ तो सिंघी जी ने 66 वर्ष की अवस्था में एक बार फिर वह भूमिका निभाकर सबको अचंभित कर दिया।

पण्डित नेहरू के साथ विचार-विमर्श करते हुए श्री सिंघी

उनके अदम्य साहस, क्षमता और निडरता का एक उदाहरण संवत् 2007 में सामने आया। पूर्वी पाकिस्तान (अब 'बंगलादेश') में फंसे हजारों हिन्दुओं को पश्चिमी बंगाल में लाने की चुनौती सामने थी। पं. बंगाल के मुख्यमंत्री डॉ. विधानचन्द्र राय ने बड़े सोच-विचार के बाद सिंघीजी को इस अभियान की कमान सौंपी। बड़ी ही खतरनाक परिस्थिाति में 17 विशाल जहाजों का बेड़ा लेकर सिंघीजी रवाना हुए। जैसे-जैसे पूर्वी पाकिस्तान का किनारा नजदीक आ रहा था पानी में डूबती उतरती लाशें दिख रही थी, साम्प्रदायिकता ने खुलकर खून की होली खेली थी। खुलना के पास पाकिस्तान सेना ने आकर जहाजों को घेर लिया। नेहरू, लियाकत अली और डॉ. विधान चन्द्र राय से सम्पर्क किया गया, समझौतों की याद दिलाई गई तब कहीं पाकिस्तानी सेना राजी हुई। ढ़ाका, नारायणगंज, चाँदपुर, बारीसाल से शरणार्थी शिविरों में घोर दुर्दशा भोगते बीस हजार हिन्दुओं को जहाजों पर लादा गया। पर रसद और ईंधन भला पाकिस्तानी क्यों देते। रसद खत्म होते देर न लगी और तब शुरु हुआ भूख से तड़पना और दम तोड़ती मौतों का सिलसिला। कोलकाता पहुंचने तक एक सौ पचास लाशों को

पानी में फेंकने के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं था। ज्यों ही जहाज कोलकता पहुंचे डॉ. राय ने सिंघीजी को गले लगा लिया। बीस हजार निराश्रितों की आँखों से प्रकट होता आभार पाकर सिंघीजी का सीना गर्व से फूल गया।

सिंघीजी की जिस कार्य के लिए देशभर में राष्ट्रीय स्तरीय छवि बनी वह था परिवार नियोजन का प्रचार-प्रसार। इस अपूर्व विचार व कार्य को पूर्णत: समर्पित दो-चार लोग ही हुए हैं। संवत् 2005 में पहली परियोजना क्लीनिक खुली-मातृ सेवा सदन अस्पताल के भवन में। कहते हैं पहले सात महीनों में मात्र दो स्त्रियां सलाह लेने आई। पर सिंघीजी ने हार न मानी, दर्जनों लेख लिखे, पेम्पलेट छपवा कर वितरित किए, घरों और फक्ट्रियों में जाकर प्रशिक्षण की व्यवस्था करवाई। उनकी लिखी 'राष्ट्र योजना और परिवार योजना' पुस्तक बेहद लोकप्रिय हुई। नियोजन सम्बंधी एक पत्रिका का नियमित प्रकाशन किया। परिवार नियोजन संघ की स्थापना उन्होंने ही की थी। पन्द्रह वर्षों तक वे इस संघ के उपाध्यक्ष रहे। इसी हेतु जापान, थाईलैंड, इंग्लैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क, स्वीडन, अमरीका, नाईजेरिया, ट्यूनिशिया, चिली, सूरिनाम आदि देशों की यात्राएं की।

शिक्षा प्रसार में सिंघीजी की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण रही। कोलकाता स्थित नोपानी विद्यालय, बालिका शिक्षा सदन, टांटिया हाई स्कूल, शिक्षायतन कॉलेज, पारिवारिकी आदि संस्थाएं उनके निर्देशन से उपकृत हुई। पारिवारिकी सुशीला जी द्वारा स्थापित झुग्गियों में रहने वाले बच्चों का सबसे बड़ा स्कूल है जहां 700 बच्चे नि:शुल्क शिक्षा, दोपहर का भोजन, पुस्तकें एवं ड्रेस मुफ्त पाते हैं। जयपुर के कानोड़िया महिला महाविद्यालय, मुकन्द गढ़ के शारदा सदन, रांची के विकास विद्यालय आदि के संचालन व विकास में भी सिंघीजी का प्रमुख हाथ था।

सामाजिक एवं धार्मिक सुधार-आन्दोलनों में उन्हें साम्प्रदायिक व कट्टर परम्परावादी तत्त्वों की प्रताड़ना व प्रहार भी कम नहीं सहने पड़े। परदा विरोधी प्रदर्शनों में धरना और सत्याग्रह भी शामिल थे। इन प्रदर्शनों में प्रदर्शकों पर पत्थर बरसाये जाते, थूका जाता, अपमानित किया जाता, महिला प्रदर्शनकारियों के कपड़े तक फाड़ दिए जाते। परन्तु सिंघीजी ने हार

न मानी। आखिर पर्दा समाज से विदा लेकर ही रहा। इसी तरह विवाहों में होने वाले आडम्बर, फिजूलखर्ची एवं दिखावे के खिलाफ भी उन्होंने आन्दोलन किया। इन कार्यों में उनके बहुत से दुश्मन भी बने। संवत् 2012 में ''बाल दीक्षा निवारक विधेयक'' के समर्थन में कोलकाता स्थित जैन भवन में हुई एक सभा में धार्मिक सम्प्रदाय के कट्टरपंथियों ने उन पर प्राणघाती हमला किया। हॉल की बिजली गुल कर लोहे की छड़ों से उन पर अंधाधुंध वार किये गए। 48 घंटे बाद उन्हें होश आया।

१९७६ : मारवाड़ी सम्मेलन के १२वें अधिवेशन में प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए

मारवाड़ी समाज ने उनकी अनगिनत सेवाओं का समुचित सम्मान करते हुए संवत् 2030 में रांची में हुए अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन का उन्हें अध्यक्ष चुना। पहली बार एक पूँजीपति श्रेष्ठि की बजाय एक मामूली नौकरी पेशा व्यक्ति को अध्यक्ष चुन कर समाज ने उनके अमूल्य अवदान का उचित मूल्यांकन किया। संवत् 2033 में हैदराबाद में हुए सम्मेलन में उन्हें पुन: अध्यक्ष चुना गया। सम्मेलन के इतिहास में यह पुनरावृत्ति भी पहली बार हुई। यह सिंघीजी के संघर्षशील उदात्त व्यक्तित्व का शीर्ष बिन्दु था। 'मारवाड़ी' शब्द जो अपनी साख पूर्णतया खो चुका था, सिंघीजी ने उसे प्रणम्य बना दिया। संवत् 2043 में जीवन के 70 वर्ष पूरे कर लेने पर कोलकाता में श्री भगवती प्रसाद खेतान की अध्यक्षता में बनी अभ्यर्थना समिति द्वारा सिंघीजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

संवत् 2043 में जयुपर में उनका देहावसान हुआ।

52. जस्टिस रणधीरसिंह बच्छावत (1907–1986)

जन्म : कोलकाता, 1907

पिताश्री : प्रसन्नचन्द बच्छावत

पद/उपाधि : बैरिस्टर, विचारपति, उच्च न्यायालय कलकत्ता एवं *उच्चतम न्यायालय नई दिल्ली*

दिवंगति : 1986

बंगाल के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक क्षितिज को अपनी मेधा के आलोक से आलोकित करने वाले जैनधर्मी ओसवालों में श्री रणधीरसिंह बछावत अग्रगण्य थे। एक विधिवेत्ता एवं कलकत्ता उच्च न्यायालय और दिल्ली उच्चतम न्यायालय के माननीय जज के नाते अपने महत्त्वपूर्ण निर्णयों के लिए वे हमेशा याद किये जाते रहेंगे।

सन् 1907 में जन्मे श्री बच्छावत की प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ता में हुई। यहीं से उन्होंने एम.ए. किया। वे एक मेधावी छात्र थे। उन्होंने अनेक पारितोषिक जीते, जिनमें बंकिम बिहारी गोल्ड मेडल एवं सर्वेश्वर पूर्णचन्द्र गोल्ड मेडल मुख्य थे। तात्कालीन बंगाल में मेधावी छात्रों के लिए इंग्लैंड जाकर बैरिस्टर बनना सम्मानजनक माना जाता था। श्री बच्छावत भी इंग्लैंड गए एवं सन् 1939 में लंदन यूनिवर्सिटी से एल.एल.बी. की डिग्री ली और बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। कलकत्ता उच्च न्यायालय में प्रेक्टिस शुरु करते ही चन्द महीनों में ही वे अपनी विश्लेषण की क्षमता एवं अभिव्यक्ति की सरलता के कारण लोकप्रिय हो गए। व्यवसायिक न्याय विधि के वे विशेषज्ञ माने जाते थे। कुछ ही वर्षों में उनकी प्रेक्टिस आसमान छूने लगी।

सन् 1950 में उनकी इस विशेषता को मान्यता मिली और वे कलकत्ता उच्च न्यायालय के जज बना दिए गए। मात्र ओसवाल ही नहीं समूची मारवाड़ी जातियों में वे पहले व्यक्ति थे, जिन्हें बंगाल में यह सम्मान हासिल

हुआ। अपनी लाखों की प्रेक्टिस छोड़कर सामाजिक कर्त्तव्य को सर्वोपरि मानते हुए जजशीप स्वीकार करना उनके न्याय-बोध का परिचायक था। अपने निर्णयों में तथ्यपरक निष्पक्षता के कारण वे हमेशा याद किये जाएँगे। सन् 1964 में वे उच्चतम न्यायालय दिल्ली के माननीय जज मनोनीत हुए। उनमें तथ्यों के जंगल में मुख्य बात तत्काल ढूँढ़ लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। इसी कारण बिना तैयारी आने वाले वरिष्ठ वकील भी उनसे सकपकाते थे। वे हमेशा साफ और सत्य बात पसन्द करते थे एवं जल्द ही तथ्यों के हार्द्र तक पहुँच कर मूल प्रश्न पर आ जाते थे, जिस कारण बाल की खाल खींचने वाले विधिवेत्ताओं की एक नहीं चल पाती थी। उनके अनेक निर्णय विधिजगत के मील के पत्थर माने जाते हैं।

सन् 1969 में उच्चतम न्यायालय से अवकाश लेने के बाद भी वे सक्रिय रहे। भारत सरकार ने उनकी निष्पक्ष निर्णायकता का सम्मान करते हुए उन्हें ''गोदावरी जल विवाद ट्रिब्यूनल'' का चेयरमेन नियुक्त किया। इस *विवाद में उनके निर्णय की सभी पक्षों ने सराहना की। सन् 1979 में विवाद* पर अपना निर्णय देने के बाद वे कलकत्ता आकर रहने लगे। आपने लॉ ऑफ *आर्बिट्रेशन पर एक ग्रंथ लिखा जिसे विधि न्यायालयों में बड़े सम्मान से उद्धृत* किया जाता है। सन् 1986 की 12 जून को उनका देहांत हुआ। उन्होंने अपनी सौरभ से विधि जगत को ही नहीं महकाया, ओसवालों एवं सम्पूर्ण जैन समाज की गौरवशाली परम्परा को भी अक्षुण्ण रखा।

53. श्री इन्द्रचन्द हीराचन्द दूगड़ (1918-1989)

जन्म : 1918

पिताश्री : हीराचन्द दूगड़

दिवंगति : 1989

क्षात्र तेज को चित्र फलक पर रूपायित करने वाले लब्ध प्रतिष्ठित चित्रकार श्री इन्द्र दूगड़ ने ओसवाल समाज को एक अछूते एवं अभिनव क्षेत्र में महिमा मंडित किया। आदि काल से ओसवाल श्रेष्ठियों ने कला व संस्कृति के पुजारियों को भरपूर आश्रय दिया था किन्तु स्वयं तूलिका, रेखाओं और रंगों से अरूप की अभिव्यंजना एवं अभ्यर्थना को समर्पित हो जाने वाले इन्द्र बाबू के समान कला साधक गिने चुने ही हुए हैं।

मुर्शिदाबाद जिला का जियागंज अंचल जगत सेठों के समय से *सुविख्यात रहा। श्री इन्द्र दूगड़ के पूर्वज दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व* राजलदेसर (राजस्थान) से आकर यहाँ बस गए। पिताश्री हीराचन्द्र दूगड़ (जन्म संवत् 1955) पुश्तैनी व्यवसाय छोड़कर कला की ओर आकर्षित हुए। कलकत्ता आर्ट स्कूल में उत्तीर्ण होकर शांति निकेतन चले गए। वहाँ आचार्य नन्दलाल बसु के निर्देशन में चार-पाँच साल कला-भवन में प्रशिक्षण ग्रहण किया। तभी पारिवारिक समस्याओं से घिरे हीराचन्दजी को जियागंज लौटना पड़ा। आते ही माँ का देहान्त हो गया। चन्द महीनों बाद ही तीन छोटे बच्चों को छोड़कर पत्नि चल बसी। इन मार्मिक आघातों से वे तिलमिला उठे। रोजगार के लिए तूलिका और रंग बक्शे में बन्द कर देने पड़े। बीस वर्षों तक उन्होंने तूलिका को हाथ नहीं लगाया। परन्तु उनके जीवन के अंतिम दस वर्ष एक कलात्मक चेतना के ज्वार से उद्वेलित रहे। इस

काल में उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण चित्रों का सर्जन किया। अपने गुरू श्री ईश्वरीप्रसाद वर्मा से सीखी मिनियेचर शैली में हाथी दाँत पर उन्होंने अद्‌भुत चित्रों का निर्माण किया। राजगृह के प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक सौन्दर्य से अभिभूत चित्रों की एक श्रृंखला ही रच डाली। संवत् 2008 में वे जैन तीर्थ स्थल पालिताना गए। तीर्थ के भव्य सौन्दर्य को रूपायित करते वहीं मात्र 52 वर्ष की अवस्था में उनका अकस्मात् देहांत हो गया। उनके बनाए चित्र प्रकृति के सूक्ष्म चित्रांकन, नारी सौन्दर्य के अंकन एवं भावाभिव्यंजना में बेजोड़ हैं।

इन्हीं हीराचन्दजी के सुपुत्र थे श्री इन्द्र दूगड़। इन्द्र बाबू का जन्म सन् 1918 में हुआ। कल्पनाशील मन, तूलिका और रंग उन्हें विरासत में मिले। पिता की देखरेख में चित्रांकन प्रारम्भ हुआ। प्रकृति से उन्हें प्रेम था। धीरे-धीरे उनकी चित्रशैली में निखार आता गया। इन्द्र बाबू भी शांति-निकेतन गए। वहाँ पितृ-गुरु श्री नन्दलाल बसु का निर्देशन उन्हें मिला। भारतीय सौन्दर्य तत्त्व एवं कला सौष्ठव के पाठ उन्हीं से पढ़े। इस प्रकार दीक्षित होने पर भी इन्द्र बाबू की चित्रकला पर गुरु का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ा।

संवत् 1996 में रामगढ़ काँग्रेस अधिवेशन में स्थल एवं मंच की साज-सज्जा के लिए चार कलाकार आमंत्रित किये गये, इनमें इन्द्र बाबू भी थे। उनके बनाए बिहार के प्राचीन इतिहास सम्बंधी चित्रों ने प्रथम बार कला रसिकों की दृष्टि आकृष्ट की। संवत् 2003 में राजगिर के विस्तृत प्रांतर, प्राकृति छटा और इतिहास बोध से अभिभूत पिता और पुत्र दोनों ने तूलिका सम्भाली और अनेक चित्रों का सृजन किया। जहाँ हीराचन्द जी के चित्रों में सूक्ष्म रेखाओं एवं स्निग्ध रंगों का समावेश था,

इन्द्र बाबू के चित्र अधिक मुखर और त्रिमात्रिक (थ्री डाई मेन्सनल) आभाष युक्त थे। आधुनिक निसर्ग चित्रकारों की नामावली में तभी से इन्द्र बाबू का नाम जुड़ा।

संवत् 2006 में जयपुर में काँग्रेस नगर सुसज्जित करने एवं संवत् 2013 में अमृतसर में हुए काँग्रेस अधिवेशन में तोरणद्वार एवं मंच अलंकृत करने के लिए भी इन्द्र बाबू को आमंत्रित किया गया। यूनेस्को के तत्त्वावधान में संवत् 2003 में पेरिस में हुई आधुनिक चित्रकला प्रदर्शनी में उनके चित्र प्रदर्शित हुए। संवत् 2021

श्री इन्द्र दूगड़ द्वारा बनाए तोरण के नीचे से गुजरते हुए पण्डित नेहरू, इन्दिरा गाँधी (अमृतसर काँग्रेस)

लेडी रानू मुखर्जी से पुरस्कार गृहण करते हुए श्री इन्द्र दूगड़

में पश्चिमी जर्मनी के विभिन्न नगरों में उनके 80 चित्रों की एकल प्रदर्शनी लगी। जैन मंदिर, ग्रांड होटल, दिल्ली के संसद भवन आदि विभिन्न स्थलों पर उनके भित्ति चित्र अंकित हैं। संवत् 2038-39 में वे पश्चिमी बंगाल की नृत्य नाटक संगीत व चारूकला अकादमी द्वारा पुरस्कृत किए गए।

संवत् 2043 में संगीत श्यामला के वार्षिक पुरस्कार द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया।

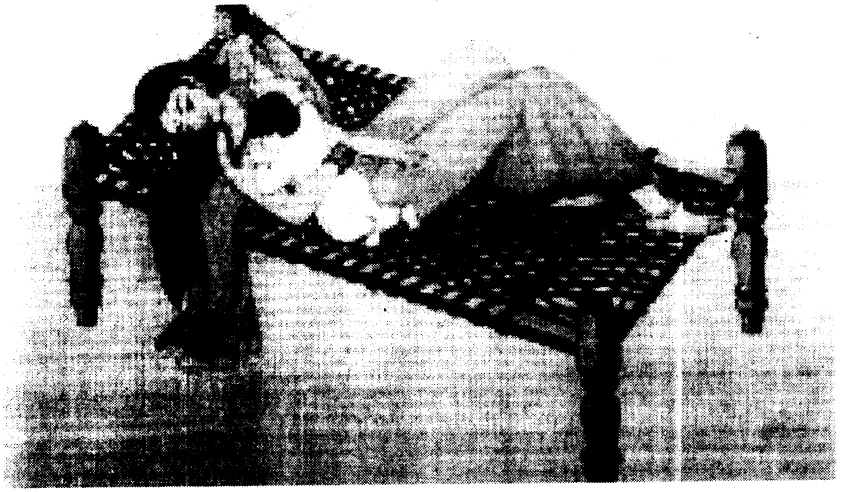

इन्द्र बाबू ने राजस्थान के जन-जीवन के असंख्य चित्र बनाए। उनमें रंग बहुल साज-सज्जा एवं वर्ण सुषमा का सौन्दर्य है। शिल्पगत वैशिष्ट्य के अलावा उनका सामाजिक एवं नृतात्विक मूल्य है। प्रसिद्ध अंग्रेज चित्रकार सर रसेल फ्लीटंस, फ्रेंक ब्रैगुइन एवं आगस्टस जॉन उन्हें देखकर मुग्ध हो गए। साधारणत: वे टेम्पेरा व वास पद्धति से चित्र अंकित करते थे किन्तु कहीं-कहीं तेल रंगों का भी व्यवहार किया है। संवत् 2032-33 में इन्द्रबाबू ने विभिन्न ऋतुओं के आगमन में गंगा के रूप परिवर्तन से अभिभूत हो अनेक चित्र बनाए। ये चित्र उनके शिल्प जीवन की महत्तम कीर्ति हैं। संवत् 2039 में उन्होंने कश्मीर

के दृश्य-सौन्दर्य से प्रेरित हो शिल्प सृजन किया। इस चित्रमाला में उन्होंने अत्यंत सूक्ष्म भाव से यथावत रंगों के प्रयोग द्वारा प्रकृति के इन्द्रिय लब्ध रूप को उद्‌घाटित किया। दर्शकों को मंत्र-मुग्ध कर देने वाले इन चित्रों को सदरे रियासत डॉ. कर्णसिंह ने अमर महल (जम्मू) की कला दीर्घा के लिए माँग लिया और उदार मना सरल हृदय इन्द्र बाबू ने विश्व बाजार में लाखों की कीमत वाले ये चित्र उन्हें प्रदान कर दिए।

सेतोस्लाव रोरिक एवं देविका रानी के साथ श्री एवं श्रीमती इन्द्र दूगड़

समाज ने उनकी अभ्यर्थनार्थ एक समिति गठित की किन्तु संवत् 2046 में इन्द्र बाबू के आकस्मिक निधन से कला जगत निस्तब्ध रह गया।

54. श्री अगरचन्द नाहटा (1911-1983)

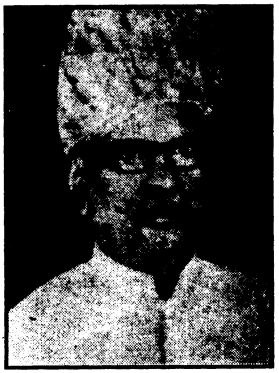

जन्म : बीकानेर, 1911

पिताश्री : शंकरदान नाहटा

अवदान : प्राचीन पुरातात्त्विक एवं धार्मिक जैन पांडुलिपियों एवं ग्रंथों का संग्रह

दिवंगति : 1983

जैन शासन के साधनाशील, अन्वेषी एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी ओसवाल वंश एवं नाहटा गोत्र के सरस्वती समुपासक श्री अगरचन्दजी नाहटा का जन्म बीकानेर में संवत् 1967 (सन् 1911) चेत्र कृष्णा चतुर्थी को हुआ। स्कूली शिक्षा नहीं के बराबर हुई। जल्द ही कलकत्ते की गद्दी में व्यापार सीखने लगे।

उनका परिवार कलकत्ता सिलचर एवं अन्य स्थानों में प्रस्थापित व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का मालिक था। संवत् 1984 में श्री जिन कृपाचन्द सूरि की प्रेरणा से आप धार्मिक-साहित्योन्मुखी हुए एवं प्राचीन लिपि और ग्रंथों के अनुशीलन में प्रविष्ट हुए। धीरे-धीरे ताड़पत्र उत्कीर्ण ग्रंथों का संग्रह करने लगे। हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में आप अनेक ज्ञान भंडारों एवं ग्रंथागारों का चक्कर लगाने लगे एवं घंटों वहाँ निमग्न रहने लगे। इसके लिए आपको कहाँ नहीं जाना पड़ा—एक जुनून सर पर सवार था—श्मशानों, ध्वस्त खंडहरों में भूखे-प्यासे, चिलचिलाती धूप में मीलों पैदल सफर कर पहुँचंते और मंजिल पर मनचिंती सामग्री पाकर उल्लसित हो उठते। उन्होंने बड़े अध्यवसाय से वृहद् खरतर गच्छ, बड़ा उपासरा, बीकानेर के अंतर्गत नौ ज्ञान भंडारों की 10000 एवं श्री जिनचन्द सूरि ज्ञान भंडार के 60000 प्राचीन ग्रंथों की केटेलोग (ग्रंथसूची) बनाकर प्रकाशित की। पचासों ग्रंथों की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखी। उनके इस कार्य में सहयोगी बने भ्रातृपुत्र श्री भंवरलालजी नाहटा। कठिन परिश्रम से ग्रंथों का अमूल्य भंडार आपने संग्रहित किया। ग्रंथों के अलावा प्राचीन

चित्रों, मूर्तियों, सिक्कों, सीलों का भी अलभ्य संकलन किया। आज उनका श्री अभय जैन ग्रंथालय और श्री शंकरदान नाहटा कला भवन विश्व के प्रथम श्रेणी के ग्रंथालयों में है जहाँ तीन हजार दुष्प्राप्य चित्र, सैकड़ों सिक्के, हजारों मूर्तियाँ, सत्तर हजार दुर्लभ हस्तलिखित एवं पचास हजार मुद्रित ग्रंथ संकलित हैं। इन अमूल्य दस्तावेजों में प्राकृत अपभ्रंश राजस्थानी, सिंधी, हिन्दी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, कश्मीरी, अरबी, फारसी, बंगला, उड़िया आदि भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

आपने अनेक पत्रिकाओं का सम्पादन किया, यथा—राजस्थानी, विश्वम्भरा, मरू भारती, मरूश्री, वरदा, परम्परा, अन्वेषणा, वैचारिकी आदि। अनेक स्मारक ग्रंथों का सम्पादन आपने किया है, जिनमें मुख्य हैं—राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रंथ। आपके पाँच हजार से अधिक शोध प्रबंध विभिन्न भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। संवत् 1984 से लगातार 55 वर्षों की श्रम साध्य यात्रा में आपने साठ से अधिक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथों का सम्पादन किया है, जिनमें मुख्य हैं—युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, बीकानेर जैन लेख संग्रह, ज्ञान सार ग्रंथावली, रत्नपरीक्षा, राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (4 भाग), जसवंत उद्योत, जिनराज सूरि कृत कुसुमांजलि, जिनहर्ष ग्रंथावली, दम्पत्ति विनोद, सभा श्रृंगार, प्राचीन कवियों की रूप परम्परा, धर्म वर्द्धन ग्रंथावली, सीताराम चौपाई आदि। आपने बिना पढ़े-लिखे होकर भी एक सौ से अधिक पी.एच-डी. के शोधार्थियों का मार्गदर्शन किया है। आप द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथों में मूलतः पुरातत्त्व, कला, इतिहास, लोक संस्कृति, जैन धर्म एवं दर्शन से संबंधित ग्रंथ हैं। आपके भ्रातृ-पुत्र श्री भंवरलालजी नाहटा सरस्वती उपासना की इस मशाल को थाम रखने में सहयोगी हुए हैं। उनके श्री अगरचन्दजी नाहटा के साथ सह-सम्पादित ग्रंथों की भी लम्बी सूचि है, जिनमें उल्लेखनीय है—युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, मणिधारी जिनचन्द्र सूरि, दादा जिनदत्त सूरि, कयामखान रासो, विशालदेव रासो, प्राचीन गुर्जर रास संचय, खरत्तर गच्छ प्रतिबोधित गोत्र एवं जातियाँ आदि।

श्री नाहट राजस्थानी साहित्य परिषद् एवं शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर के निर्देशक थे। वे आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी, नागरी प्रचारिणी सभा, जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस एवं राजस्थान साहित्य एकेडेमी उदयपुर के भी मान्य सदस्य थे।

समाज ने आपके कृतित्व का समुचित सम्मान कर आपको सिद्धांताचार्य, जैन इतिहास रत्न विद्यावारिधि, संघ रत्न, साहित्य वाचस्पति आदि उच्च स्तरीय उपाधियों से विभूषित किया। सरस्वती के इस वरद पुत्र का स्वर्गवास संवत् 2040 में हो गया।

55. डॉ. विक्रम साराभाई (1919-1971)

जन्म : अहमदाबाद, 1919

पिताश्री : अंबालाल साराभाई

माताश्री : सरला देवी

पद/शिक्षा : अध्यक्ष, एटामिक इनर्जी कमीशन, भारत सरकार

उपाधि : पद्मभूषण,1966, पद्मविभूषण, 1972 (मरणोपरांत)

दिवंगति : थुंबा, त्रिवेन्द्रम, 1971

ओसवाल कुल श्रीमाल गोत्र (दसा) के नक्षत्र एवं भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान के जनक डॉ. विक्रम साराभाई का नाम आधुनिक भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो चुका है। उन्होंने अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा विज्ञान को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्थापित कर भारत को विश्व के अग्रणी देशों की कोटि में ला खड़ा किया। स्वयं ऊर्जा के इस भण्डार से भारत के अनेक वैज्ञानिक, शैक्षणिक व अनुसंधान केन्द्र संचालित हुए।

आपका जन्म अहमदाबाद में सन् 1919 में हुआ। आप के पिताश्री अंबालाल साराभाई बड़े उद्योगपति थे। आपकी माता सरला देवी बड़ी आदर्श महिला थीं। प्रारम्भिक शिक्षा अहमदाबाद में ग्रहण करने के उपरांत आपने इंग्लैण्ड के केम्ब्रिज शिक्षण संस्थान से वि.सं. 1996 में विज्ञान की डिग्री हासिल की। तत्पश्चात् आप बंगलोर के इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स में कास्मिक किरणों पर शोधकार्य में लगे। नोबल प्राइज विजेता सर सी.वी. रमन के निर्देशन में कार्य करने का सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ। महायुद्ध की समाप्ति पर एक बार फिर कैम्ब्रिज लौटकर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया। फलतः सं. 2004 में इसी विषय पर डाक्टरेट की उपाधि मिली।

संवत् 1998 में विक्रम साराभाई डॉ. सी.वी. रमन के सान्निध्य में बंगलौर में शोध-कार्य कर रहे थे। वहीं एक नृत्य कार्यक्रम में आपका परिचय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज की कमान सम्भालने वाली डॉ. लक्ष्मी स्वामीनाथन की छोटी बहन मृणालिनी जी से हुआ। वही परिचय प्रगाढ़ होकर संवत् 1999 में सदा-सदा के लिए दोनों को परिणय सूत्र में बाँध गया। मृणालिनी जी ने नृत्य-कला के संवर्धन हेतु ''दर्पणा'' नाट्य एकेडमी की स्थापना की। डॉ. साराभाई के सहयोग से इस संस्थान ने अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाई।

भारत आकर वे अनेक पारिवारिक उद्योगों से जुड़े। उनके विकास में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी महत्ती उपलब्धि अहमदाबाद में भौतिक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की। प्रो. के.आर. रामनाथन के सहयोग से संचालित इस अनुसंधान केन्द्र ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। डॉ. साराभाई के निर्देशन में 20 से अधिक शोधार्थी डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। संवत् 2003 में स्थापित अहमदाबाद का टेक्सटाईल उद्योग अनुसंधान केन्द्र (ए.टी.आई आर.ए.) आपके ही अध्यवसाय का फल है। वे 2013 तक उसके मानद निर्देशक रहे। आप द्वारा संस्थापित ''साराभाई केमिकल्स'' भारत के फार्मास्यूटिकाल उद्योग में अग्रणी है। दवाओं एवं रसायनों के जनोपयोग घटक तैयार करने का श्रेय इसी संस्थान को है। 'टीनोपल' नामक कपड़ों में सफेदी लाने वाला द्रव्य आपके ही सहयोगी संस्थान का उत्पाद है। भारत के फार्मास्यूटिकल उद्योग में सर्वप्रथम इलोक्ट्रोनिक डाटा प्रोसेसिंग की संशोधन पद्धति लागू करने का श्रेय विक्रम साराभाई को ही है। सं. 2013 में उन्होंने भारतीय प्रबन्ध संस्थान (आई.आई.एम.), अहमदाबाद की स्थापना की। विक्रम साराभाई ने विकासमान भारत की औद्योगिक शक्ति के संचालन हेतु सुविज्ञ प्रबंधकों की आवश्यकता का अनुमान लगा लिया था। इस संस्थान ने भारत का भविष्य गढ़ने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अहमदाबाद में 'कम्यूनिटी साइंस सेंटर' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य विज्ञान को सामान्य जन तक पहुँचाना था। इस संस्थान ने देश की युवा-शक्ति को नई दिशा दी। तभी पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें भारत के अत्यन्त

मूल्यवान नाभिकीय अनुसंधान केन्द्र का भार सौंपा, जिसे उन्होंने बड़ी योग्यता से निभाया। थुंबा का राकेट लांचिंग स्टेशन उन्हीं दिनों स्थापित हुआ। रोहिणी एवं मेनका राकेटों के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। सं. 2013 में उन्हें एटामिक एनर्जी कमीशन का अध्यक्ष बना दिया गया। वे भारत सरकार के इस विभाग के सचिव मनोनीत हुए। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसों, सेमिनारों तथा सभाओं की अध्यक्षता उन्होंने की। राष्ट्रसंघ की 'अन्तरिक्षीय अस्तित्व के शान्तिपरक उपयोगों की खोज' के निमित्त वि.सं. 2025 में हुई कॉन्फ्रेंस के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वि.सं. 2027 में विएना में परमाणु ऊर्जा के विकासार्थ हुई 14वीं अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस के आप सभापति चुने गये। वि.सं. 2028 में राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में परमाणु ऊर्जा के शांतिपरक उपयोगार्थ हुई चौथी कान्फ्रेंस के आप उपसभापति मनोनीत हुए।

देश और विदेश में अनेक अलंकरणों से डॉ. साराभाई को सम्मानित किया गया। सं. 2019 में उन्हें 'शान्ति स्वरूप यादगार एवार्ड' से सम्मानित किया गया। सं. 2023 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित किया। वे नृत्य तथा ड्रामा के आश्रयदाता थे। उनके सुपुत्र कार्तिकेय तथा सुपुत्री मल्लिका ने भी अपने क्षेत्र में निजी पहचान बनाई। कीर्ति के शिखर पर होते हुए भी अभिमान उन्हें छू तक न सका। प्रकृति से उन्हें अत्यन्त प्रेम था।

श्रीमती मृणालिनी एवं मल्लिका साराभाई

वि.सं. 2028 में (30 दिसम्बर, 1971) थुंबा में

मात्र 50 वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हुआ। राष्ट्रपति ने वि.सं. 2029 में उन्हें मरणोपरांत 'पद्मविभूषण' अलंकरण से विभूषित कया। किसी भी राष्ट्र के इतिहास में बड़े अन्तराल से ऐसे बिरले मनुष्य आते हैं, जो आगामी 200 वर्षों के विकास को आकार प्रदान कर जाते हैं। नभ भौतिकी तथा परमाणु ऊर्जा के शान्तिपरक उपयोग में डॉ. साराभाई का अवदान इसी कोटि का है। एक बार महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर सं. 1977 में अहदाबाद पधारे थे, तब बालक विक्रम साराभाई घुटनों के बल चलने लगे थे। महाकवि ने उन्हें गोद में उठाकर माता सरला देवी से कहा था–'बहन! तुम बड़ी भाग्यशाली हो। तुम्हारा यह पुत्र बड़ा होकर बहुत नाम कमाएगा।' महाकवि की वह भविष्यवाणी अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई।

56. श्री भँवरलाल नाहटा (1911-2002)

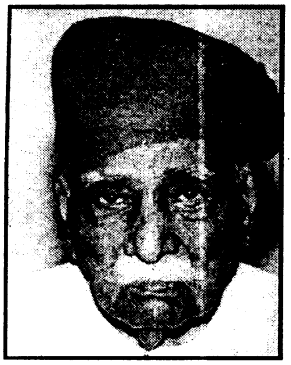

जन्म	:	बीकानेर, 1911
पिताश्री	:	भेरुदान नाहटा
दत्तक	:	लक्ष्मीचन्दजी नाहटा
माताश्री	:	तीजां देवी
दिवंगति	:	कोलकाता, 2002

जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य के मर्मज्ञ, लब्धिप्रतिष्ठित इतिहासकार, निष्काम कर्मयोगी, पुरातत्त्ववेत्ता, बहुभाषाविद्, आशुकवि एवं साहित्यवाचस्पति श्री भँवरलालजी नाहटा ने अपने जीवन प्रसंगों से श्रीमद् राजचन्द्र की उक्ति ''आत्मा छूँ नित्य छूँ, देह थी भिन्न छूँ'' की उक्ति को साकार कर दिखाया।

श्री भँवरलालजी नाहटा का जन्म राजस्थान के बीकानेर शहर के प्रसिद्ध नाहटा परिवार में दानवीर सेठ श्री शंकरदानजी के पुत्र समाजसेवी श्रेष्ठिवर्य श्री भैरुंदानजी नाहटा की धर्मपत्नि श्रीमती तीजादेवी की रत्नकुक्षी से मिती आश्विन कृष्ण 12, सं. 1968 मंगलवार दिनांक 19 सितम्बर, 1911 को हुआ था। जैन पाठशाला से पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर आप चाचा सिद्धांतमहोदधि श्री अगरचंदजी नाहटा के साथ परम श्रद्धेय आचार्यश्री सुखसागरसूरिजी, आचार्यश्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के सान्निध्य व मार्गदर्शन में आप जैन साहित्य के पठन-पाठन, लेखन व शोधकार्यों में समर्पित भाव से जुट गए।

14 वर्ष की अवस्था में सेठ श्री रावतमलजी सुराणा की सुपुत्री जतनकंवर के साथ आपका विवाह आषाढ़ बदी 12 संवत् 1983 को हुआ। धर्मपरायण श्रीमती जतनदेवी जीवनपर्यन्त धार्मिक कार्यों, तपस्याओं में प्रत्यक्ष व अध्ययन, लेखन, शोध आदि में परोक्षरूप से पूर्ण सहयोग देकर नाहटाजी के जीवन लक्ष्य में सहायक रहीं।

श्री नाहटा ने अपने जीवनकाल में हजारों शोधपूर्ण लेख व सैकड़ों ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन व प्रकाशन किया। आपने अनेक शोधार्थियों को मार्गदर्शन देकर विभिन्न विषयों पर शोध करवाकर पी-एच.डी. आदि उपाधियों से गौरवान्वित करवाया। अनेक साधु-साध्वियों को आपने धार्मिक, साहित्यिक शिक्षा व लिपिज्ञान प्रदान किया व उनकी ज्ञान-साधना के मार्गदर्शक रहे। श्रद्धेय आचार्यों, साधु-साध्वियों व बड़े-बड़े विद्वानों की विभिन्न विषयों पर जिज्ञासाओं का समाधान कर आप उनके ज्ञान-यज्ञ में सहयोगी बने। 22 वर्षों तक जैन साहित्य की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'कुशल-निर्देश' का अनवरत रूप से सम्पादन किया।

ब्राह्मी, खरोष्टी, देवनागरी आदि प्राचीन लिपियों एवं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्टी, राजस्थानी, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं में लेखन व उपरोक्त भाषाओं के साथ मराठी आदि भाषा के ग्रंथों का अनुवाद किया। पूर्ण सतर्कता हेतु लेखन, सम्पादन आदि कार्यों की प्रूफरीडिंग भी वे स्वयं ही करते थे। आप द्वारा लिखित शोधपूर्ण लेख व ग्रंथ अनेक न्यायालयों में साक्षी के रूप में स्वीकार किये गये। भारत के अलावा विश्व के कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में आपके शोधपूर्ण लेखों को सम्मिलित किया व संदर्भ के रूप में उल्लिखित किया। अपने चाचाश्री अभयराजजी नाहटा की स्मृति में बीकानेर का विश्वप्रसिद्ध अभय जैन ग्रन्थालय आपके व श्री अगरचंदजी नाहटा के जीवनभर के श्रम से संग्रहित 60,000 हस्तलिखित ग्रन्थों, लाखों मुद्रित पुस्तकों व अद्वितीय प्राचीन कलाकृतियों आदि से सुसज्जित व सुशोभित है। देश व मानव सेवा के लिए समर्पित श्री नाहटाजी ने जातपांत के भेदभाव से ऊपर उठ बचाव व राहत कार्यों में सक्रिय रूप से योगदान किया। भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अग्रणी संस्थाओं में पद सहित व पद रहित अपनी सेवा देकर उनकी उन्नति व कार्यों में स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अनेक संस्थाओं के संस्थापक श्री नाहटा ने विभिन्न पदों पर रहकर संघ व समाज को नेतृत्व प्रदान किया। साहित्य व समाज की सेवाओं के लिए अनेकानेक संस्थाओं ने समय-समय पर आपका सम्मान कर गौरव की अनुभूति की।

14 सितम्बर, 1986 को उड़ीसा के राज्यपाल श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डेय ने कलकत्ता में आयोजित आपके अभिनन्दन समारोह में अभिनन्दन

(1986 के अभिनन्दन समारोह में श्री एवं श्रीमती नाहटा)

ग्रंथ समर्पित कर आपकी अभ्यर्थना की। 13 जनवरी, 1991 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा धनबाद अधिवेशन में आपको ''साहित्य वाचस्पति'' उपाधि से सम्मानित किया गया। 30 जनवरी, 1999 को श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट, माण्डवला द्वारा आपको ''जिन शासन गौरव'' के विरुद से सम्मानित किया गया। 6 जून, 1999 के दिन श्री जैन कल्याण संघ, कलकत्ता ने आपको ''समाज रत्न'' विरुद से सम्मानित किया। सरस्वतीपुत्र नाहटाजी ने व्यापार में विशेष रुचि लेकर अपने पारिवारिक व्यापार को खूब फैलाया। भावी पीढ़ी को व्यापारिक ज्ञान व व्यापार की बारीकियों की जानकारी प्रदान की। यह एक संयोग ही है कि नाहटाजी श्री लक्ष्मीचन्दजी नाहटा के गोद गए।

सभी क्षेत्रों में विशिष्टता व उच्चता लिए नाहटाजी की सादगी देख अनेक विद्वान व अग्रणी श्रावक आश्चर्यचकित हो उठते थे। सादगी की मूर्ति श्री नाहटाजी को छठे जैन साहित्य समारोह खम्भात में अध्यक्ष के रूप में आमंत्रित किया गया था। मारवाड़ी पगड़ी व वेश-भूषा के कारण उपस्थित विद्वानों ने सोचा कि एक धनी सेठ को समारोह अध्यक्ष बनाया है जिसकी इस क्षेत्र में क्या पैठ होगी? लेकिन तीन दिवसीय समारोह

के समापान समारोह की अध्यक्षता करने वाले विद्वान् स्थानीय नगरपालिका के अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि ''तीन दिनों तक विद्वानों की जिज्ञासाओं का समाधान कर श्री नाहटाजी ने यह प्रमाणित किया कि मारवाड़ी श्रेष्ठी व्यापार में ही नहीं साहित्य क्षेत्र में भी अग्रणी हैं। सिर पर पगड़ी, टोपी या हैट देखकर किसी की विद्वता का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता, उसके नीचे जो खोपड़ी है उसके ज्ञान भण्डार को उसके मुखारविन्द से सुनकर ही आंका जा सकता है। जब तक नाहटाजी को सुन नहीं लिया तब तक उनकी सादगी के कारण उनकी विद्वता का हम अन्दाजा नहीं लगा पाये।''

नाहटाजी अपने चाचाश्री अगरचन्दजी के हमउम्र थे परन्तु उनके प्रति पूज्य भावना जीवनपर्यन्त रही। सरल स्वभावी एवं विनम्र श्री नाहटाजी ने नाम व्यामोह से विमुख रह ऐसी अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया जिसमें चाचाजी के नाम के साथ अपना नाम जोड़ा तक नहीं।

देव गुरु धर्म के प्रति पूर्ण समर्पित नाहटाजी ने भगवान महावीर पर चंडकौशिक द्वारा दिये उपसर्ग स्थल की खोज कर जोगी पहाड़ी पर तीर्थ की पुनर्स्थापना कराई।

नाहटाजी ने अनेक बार अपनी भावना की अभिव्यक्ति चित्र अंकित कर भी की। गद्य, पद्य व विभिन्न पुरातन व वर्तमान भाषाओं के माध्यम से भावना अभिव्यक्ति की उनकी कृति 'क्षणिकाएँ' काफी चर्चित रही व श्रेष्ठकृति के रूप में पुरस्कृत भी हुई। शोधपरक, उपदेशात्मक, प्रेरणात्मक, गम्भीर, हल्की-फुल्की हंसी मजाक युक्त, व्यंग्यपरक तथ्यों को किसी भी माध्यम से प्रकट करने की अपूर्व क्षमता उनमें थी।

20वीं शताब्दी के उच्चतम अध्यात्मयोगी युगप्रधान गुरुदेव श्री सहजानंदघनजी महाराज आपके विशेष श्रद्धास्पद थे। लगातार कई-कई महीनों तक आपने उनके साथ रहकर तथा भ्रमणकर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि की। गुरुदेव पर आपने अपभ्रंश भाषा में उनका जीवन चरित्र लिखकर एवं उसका हिन्दी अनुवाद कर एक संकल्प पूर्ण किया। कलकत्ता

विश्वविद्यालय के भाषा विभाग के प्रमुख प्रो. सत्यरंजन बनर्जी ने श्री नाहटाजी को इस काल का विद्यापति व पिंगलाचार्य बताया। पिछले 300 वर्षों में अपभ्रंश भाषा की प्रथम रचना कर आपने अपभ्रंश भाषा का एकमात्र कवि/विद्वान होने का गौरव प्राप्त किया।

श्री नाहटाजी के अथाह शब्दकोश खजाने में 'मूड' शब्द का अभाव था। किसी भी समय किसी भी विषय पर किसी की जिज्ञासा को शान्त करने की आप में अप्रतिम क्षमता थी।

छ: फुट के लम्बे चौड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी श्री नाहटाजी के चेहरे का तेज किसी को भी प्रभावित करने में सक्षम था। ऊँची मारवाड़ी पगड़ी, धोती-कुर्ता, पगरखी का पहनावा जीवन पर्यन्त रखा। व्यापार के निमित्त राजस्थान छोड़ दिया पर राजस्थानी वेश, खानपान व भाषा नहीं छोड़ी।

85 वर्ष की उम्र तक आपने निरन्तर भ्रमण किया। भ्रमण का मुख्य उद्देश्य शोध ही रहा, चाहे वो पुरातत्त्व शिलालेखों का हो, साहित्य का हो, मूर्तियों का हो, खुदाई में प्राप्त पुरावशेषों का हो, तीर्थों का हो या इतिहास का हो।

सन् 1997 में वे बीकानेर गये। इसी प्रवास में मन्दिर दर्शन करने जाते समय एक दुर्घटना में पाँव की हड्डी टूट गई, जिसके कारण उनका भ्रमण छूट गया। लेकिन शेष पाँच वर्षों में घर में रहकर भी आपने अध्ययन नहीं छोड़ा। सभी से पत्रों के माध्यम से सम्पर्क बनाए रखा। नये लेखन व प्रकाशन का कार्य अनवरत चलता रहा।

शेष पाँच वर्षों में शारीरिक व्याधि भी बढ़ी लेकिन उन्होंने उस तरफ से अपना ध्यान हटाए रखा। पारिवारिक सदस्यों के टोकने पर वे श्रीमद् राजचन्द्र की ये पंक्तियाँ सुनाते–''आत्मा छूँ, नित्य छूँ देह थी भिन्न छूँ'' और इस पंक्ति को अंतिम दिनों में उन्हें कई बार गुनगुनाते हुए पाया गया। अपनी अथाह वेदना को अप्रकट ही रखते। देहावसान के दो दिन पूर्व ही उन्होंने कहा कि देह व आत्मा अलग हैं। स्विच ऑफ कर

देने से दोनों का सम्बन्ध विच्छेद कर देह के कष्टों से अपने आप उभरा जा सकता है। आपने ''तन में व्याधि मन में समाधि'' की उक्ति को अपने आचरण में ला अपनी सहनशीलता व शरीर से आत्मा की भिन्नता पर अपनी दृढ़ आस्था का परिचय दिया।

11 फरवरी, 2002 को प्रातःकाल आपने प्रथम बार कहा–''मैं बहुत थक गया हूँ, देर हो रही है, अब मुझे जाना है।'' सदैव की भाँति उस दिन भी धार्मिक स्तोत्र, स्तवन आदि का श्रवण बड़े ध्यान पूर्वक किया। अंतिम समय तक वे पूर्ण चेतन अवस्था में थे। अंत समय के दस मिनट पूर्व आप पूर्ण ध्यानावस्था में चले गए व भौतिक देह का त्याग दिव्य शान्तिपूर्ण अवस्था में सायं 4.10 बजे कर दिया। उनके स्वर्गवास से जैन समाज की ही नहीं, अपितु भारतीय वाङ्मय एवं मनीषा की अपूरणीय क्षति हुई है।

श्री नाहटा की प्रकाशित रचनाएँ–

1. सती मृगावती, 2. राजगृह, 3. समय सुन्दर रासपंचक, 4. हम्मीरायण, 5. उदारता अपनाइये, 6. पद्मिनी चरित्र चौपाई, 7. सीताराम चरित्र, 8. विनयचन्द्र कृति कुसुमांजलि, 9. जीवदया प्रकरण काव्यत्रयी, 10. सहजानंद संकीर्तन, 11. बानगी, 12. महातीर्थ पावापुरी, 13. श्री जैन श्वे. पंचायती मन्दिर सार्द्ध शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, 14. श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ स्मारिका (अमरावती), 15. श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ स्मारिका (बीलाड़ा), 16. नालन्दा (कुण्डलपुर), 17. चम्पापुरी, 18. वाराणसी, 19. कांपिल्यपुर, 20. अहिच्छत्रा, 21. विविध तीर्थकल्प, 22. जैन कथा संचय, भाग–1 व2, 23. द्रव्य परीक्षा, 24. तरंगवती, 25. सहजानन्द सुधा, 26. सती मृगावती रास सार, 27. युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्रम्, 28. चार प्रत्येक बुद्ध, 29. क्षणिकाएँ, 30. श्री सहजानंदघन पत्रावली, 31. निन्हववाद, 32. जैसलमेर के कलापूर्ण जैन मन्दिर, 33. कलकत्ते का कार्तिक महोत्सव, 34. विचार रत्नसार, 35. अनुभूति की आवाज, 36. आत्मसिद्धि, 37. आत्मद्रष्टा मातुश्री धनदेवीजी, 38. नगरकोट कांगड़ा–महातीर्थ, 39. शाम्ब प्रद्युम्न कथा,

40. आनन्दघन चौबीसी, 41. सिरी सहजाणंदघन चरियं, 42. खरतरगच्छ दीक्षानन्दी सूची, 43. खरतरगच्छ का इतिहास, 44. जोगी पहाड़ी और पूर्व भारत के जैन तीर्थ व मन्दिर, 45. महातीर्थ श्रावस्ती, 46. सुमित्र चरित्र, 47. दीवानसाब सर सिरेमलजी बापणा, 48. जालोर स्वर्णगिरि तीर्थ, 49. अलंकार दप्पणम, 40. शृंगार गाथा कोश, 41. आत्मसिद्धि शास्त्र (बंगला भाषा)।

स्व. अगरचन्दजी नाहटा के साथ सह-सम्पादित ग्रंथ-

1. बीकानेर जैन लेख संग्रह, 2. समय सुन्दर कृति कुसुमांजलि, 3. युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि, 4. युगप्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, 5. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, 6. मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि, 7. दादा जिनकुशल सूरि, 8. बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवन संग्रह, 9. ज्ञानसार ग्रन्थावली, 10. सीताराम चौपाई, 11. रत्न परीक्षादि सप्त ग्रंथ संग्रह, 12. रत्न परीक्षा, 13. क्याँम खाँ रासो, 14. मणिधारी अष्टम शताब्दी ग्रंथ, 15. क्षत्रियकुण्ड, 16. खरतरगच्छाचार्य प्रतिबोधित गोत्र व

श्री भंवरलालजी नाहटा की स्मृति में भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा जारी किया गया डाक कवर व सील

जातियाँ।

श्री सत्यरंजन बनर्जी के साथ सह-सम्पादित : कान्हड़ कठियारा की चौपाई

श्री रमनलाल साह के साथ सह-सम्पादित : थावच्चा पुत्र ऋषि चौपाई

57. श्री गणेश ललवानी (1924-1994)

जन्म	:	राजशाही, 1924
पिताश्री	:	रावतमल ललवानी
माताश्री	:	भृतु बाई
शिक्षा	:	एम.ए.
दिवंगति	:	1994

लोकोक्ति है 'विद्या विनय प्रदान करती है' किन्तु यह आंशिक सत्य होने पर भी पूर्ण सत्य नहीं है। विनय तो होता है सच्चरित्रता का परिणाम। बहुत से अनपढ़ लोगों में भी विनय की स्निग्ध द्युति जब-तब देखी है। अपने ज्ञान का ढोल-निनाद तो प्रतिदिन हमारे सामाजिक परिवेश में देखने को मिलता ही है। श्रीगणेश ललवानी इसके अपवाद थे। वे अनेक विद्याएँ एवं ज्ञान के अधिकारी विद्वान् होकर भी पांडित्य प्रदर्शन एवं आत्मश्लाघा से कोसों दूर रहते थे।

ललवानी परिवार का आदिवास राजस्थान का रतनगढ़ शहर था। किन्तु उत्तरी बंगाल के राजशाही नगर को उन्होंने आजीविका निमित्त अपना आवास बना लिया था। श्री गणेश ललवानी का जन्म राजशाही में 12 दिसम्बर, 1923 के दिन हुआ। राजशाही के भोलानाथ विश्वेश्वर हिन्दू अकादमी में जबकि वे नवम् श्रेणी के छात्र थे रवीन्द्रनाथ टैगोर पर एक कविता लिखकर उन्हें भेजी। रवीन्द्रनाथ ने भी स्व हाथों से लिखकर अपना आशीर्वाद भेजा। 1940 में मैट्रिक पास कर आप कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज में भर्ती हुए। यहीं पढ़ाई के साथ-साथ रानाघाट के प्रख्यात संगीतज्ञ स्वर्गीय नगेनदत्त से संगीत सीखा। चित्र बनाना भी इसी समय से प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1944 में आपने इतिहास में आनर्स लेकर बी.ए. पास किया। आपकी इच्छा आगे न पढ़कर केवल चित्रकारिता एवं गायन सीखने की थी। अत: दौड़े शान्तिनिकेतन। लखनऊ और बम्बई भी गए। किन्तु मन कहीं नहीं रमा। आप पुन: कलकत्ता लौट

आए। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् 1946 में बंगला साहित्य में एम.ए. पास किया।

इसी मध्य आपके विवाह की बातचीत भी चल रही थी। अच्छे सम्बन्ध आए। एक तो गाड़ी-बाड़ी के साथ-साथ इटली जाकर चित्रांकन सीखने का व्यय भार तक वहन करने को प्रस्तुत थे। किन्तु ललवानीजी ने आजीवन विवाह न करने की इच्छा प्रकट की। माता-पिता के प्रबल आग्रह पर एक बार सहमत भी हुए तो अस्वस्थ हो गए। अत: माता-पिता ने दबाव न डालना ही उचित समझा। एतदर्थ आप आजीवन अविवाहित ही रहे।

1947 भारतीय इतिहास का एक स्मरणीय वर्ष है। भारतवर्ष ने 15 अगस्त के रक्तक्षयी दंगों के मध्य स्वतन्त्रता प्राप्त की। इसी वर्ष सेप्टेम्बर में आपने अपने पूज्य पिताजी को खो दिया। आपके अग्रज प्राध्यापक श्री कस्तूरचन्दजी ललवानी इस समय कलकत्ते के जयपुरिया कॉलेज में लेक्चरार थे। अत: इन्हें बाध्य होकर राजशाही में पिता का व्यवसाय देखना पड़ा। 1949 के अन्त में वे कलकत्ता आए। इसी मध्य नगेन दत्त की मृत्यु हो गई। एतदर्थ इनका संगीत पर्व भी बन्द हो गया। अब रह गया चित्रांकन, कविता और साहित्य एवं इसके साथ भी चिरकाल की जिज्ञासा ''जीवन का उद्देश्य क्या है?''

निकल पड़े तीर्थ पर्यटन में। घूम आए काशी, प्रयाग, अयोध्या, वृन्दावन, मथुरा, हरिद्वार और ऋषिकेश। काम में आपका मन नहीं लगता था। इस कारण आपके अग्रज चिन्तित थे। वे इन्हें Temple Press के श्री शारदाचरण वन्द्योपाध्याय के पास ले गए। स्थिर हुआ– एक पत्र निकलेगा, उसके सम्पादक बनेंगे श्री उपेन गंगोपाध्याय। इसी पत्र में काम करेंगे गणेश ललवानी। किन्तु पत्र नहीं निकल सका। कलकत्ता में ही किताब की दुकान खुली 'उत्तरायण'। इसी उत्तरायण में इन्होंने तीन वर्ष तक काम किया। इस समय इनका बहुतों से परिचय हुआ। जब श्रीमती वीणा चक्रवर्ती ने बंगला भाषा में 'कथाशिल्प' का प्रकाशन प्रारम्भ किया तब उनके आग्रह पर आप कथाशिल्प का कार्य देखने लगे। इस

पत्र के लिए स्वयं भी बंगला भाषा में लिखने लगे–कविता, कहानी, प्रबन्ध, समालोचना, यात्रा संस्मरण। कुछ दिनों के लिए आप Rhythm पत्र से भी जुड़े। तत्पश्चात् विनयकृष्ण दत्त के आग्रह पर 'दर्शक' गोष्ठी में भी आपने सहयोग दिया। अब 'दर्शक' के लिए धर्म और नीति पर लिखने लगे।

जैन होकर भी इतने दिनों तक जिस धर्म को लेकर वे चर्चा करते थे वह था–हिन्दू धर्म, वैष्णव धर्म, तन्त्र, सांख्य, योग और वेदान्त। अब दृष्टि गयी जैन धर्म की ओर। अत: जैन कथानकों को लेकर कहानियाँ लिखने लगे। वे कहानियाँ प्रकाशित हुई 'गल्प भारती' और 'कथाशिल्प' में।

चार वर्षों तक प्रकाशित होने के बाद कथाशिल्प बन्द हो गया। अत: गणेश ललवानी इस बार निकल पड़े हिमालय भ्रमण को। यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, गोमुख होते हुए पाँवाली की चढ़ाई का अतिक्रम कर केदारनाथ-बदरीनाथ के हिम शिखरी तीर्थ स्थल पहुँच गए। पथ की यह परिक्रमा एक मास तक चली। आप प्राय: 400 मील पैदल चले। बाद में इस भ्रमण वृतान्त को 'विंश शताब्दी' में प्रकाशित करवाया।

काम में आपका मन नहीं लगता था एतदर्थ आपके अग्रज को फिर आजीविका की चिन्ता ने घेर लिया। इन्हें कार्य में खींचने के लिए श्री सुमतिचन्दजी सामसुखा ने अपने जैन शास्त्रों के सुप्रसिद्ध विद्वान् पिता श्री पूरणचन्दजी सामसुखा के अभिनन्दन ग्रन्थ संयोजन-सम्पादन का भार सौंपा। अभिनन्द ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। अब जैन भवन में कार्य करने के लिए बुलाहट आयी। ललवानी जी की इच्छा नहीं थी कार्य में आने की। पर अग्रज और श्री सुमतिचन्द जी सामसुखा के आग्रह से अन्तत: कार्य-भार ग्रहण करना ही पड़ा।

1963 में आपने जैन भवन को अपना योगदान देना प्रारम्भ किया। यथार्थत: आपका कर्म-जीवन इसी वर्ष से प्रारम्भ हुआ। अब तो आपका जीवन जैन-भवन से अभिन्न रूप में जुड़ गया। यह जीवन एक साधक का जीवन था। इस जीवन ने इन्हें सुप्रसिद्ध बना दिया न केवल पश्चिम बंगाल में बल्कि भारत और भारत के बाहर भी। जो जैन धर्म के विषय

में अध्ययन या अध्यापन करते थे वे चाहे बर्लिन में हों या टोकियो में, रोम में हों या न्यूयार्क में सब गणेश ललवानी के नाम से परिचित हैं। इसका कारण है इनके द्वारा सम्पादित अंग्रेजी त्रैमासिक 'जैन जर्नल'। एक उत्कृष्ट परिच्छन्न पत्र। 1966 में इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी भाषा में जैनालोजी पर केवल भारत में ही नहीं शायद विश्व में भी उस समय यह एकमात्र पत्र था। मात्र एक धर्म से सम्बन्धित पत्र कितना उत्कृष्ट हो सकता है, यह तो इसके किसी भी एक अंक को पढ़ने से ही ज्ञात हो जाएगा।

श्री ललवानी जी केवल एक इसी पत्र के सम्पादक नहीं थे। इसके अतिरिक्त और दो पत्रों का भी सम्पादन आपने शुरु किया, उसमें एक था–बंगला भाषा का 'श्रमण', दूसरा था हिन्दी का–'तित्थयर'। श्रमण मासिक का प्रकाशन 1963 से प्रारम्भ हुआ। बंगला भाषा में जैनधर्म, दर्शन, साहित्य और कला सम्बन्धी यह भी एकमात्र पत्र है। बंगाली इतने दिनों तक बौद्ध धर्म की ही चर्चा करते थे, जैन धर्म की नहीं। किन्तु अब उनकी दृष्टि जैन धर्म की ओर भी आकृष्ट हुई। यह श्रमण की ही देन है।

हिन्दी पत्र तित्थयर का प्रकाशन शुरु हुआ–1977 में। अनेक जैन पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित होती हैं किन्तु तित्थयर का व्यक्तित्व एवं वैशिष्ट्य विद्वत् वर्ग को प्रिय है। इसके सम्पादन में इन्हें श्रीमती राजकुमारी बैंगानी सहयोग देती थी। श्रीमती बैंगानी ने गणेश ललवानी की कहानियाँ, नाटक, प्रबन्धादि का हिन्दी में रूपान्तर कर ललवानी-साहित्य हिन्दी भाषा-भाषियों को परिचित करवा दिया है।

आपके प्रकाशित साहित्य–

1. ''सातटि जैन तीर्थ'' (1963) ग्रन्थ में सात प्रमुख जैन तीर्थों का विशद् वर्णन है।

2. ''अतिमुक्त'' (1972) बंगला पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित जैन कहानियों का संकलन है। इस पुस्तक को पढ़कर प्रमुख भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने उद्‌बुद्ध होकर लेखक को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने आपकी भाषा शैली की उच्छ्वसित प्रशंसा की एवं

इस भाँति की अन्य पुस्तकें लिखने का अग्रह किया। श्रीमती राजकुमारी बैंगानी द्वारा अनुदित होकर 1975 में यह ग्रंथ हिन्दी में भी प्रकाशित हुआ। हिन्दी में तो इसका द्वितीय संस्करण भी निकल चुका है। इसका सर्वाधिक प्रचार हुआ है—मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में।

3. ''श्रमण संस्कृति की कविता'' (1974) में जैन आगम-ग्रन्थों के अंश विशेष का काव्यमय सरलतम वर्णन है। इसका श्रीमती बैंगानी कृत हिन्दी अनुवाद 1976 में प्रकाशित हो गया है।

4. "Thus Sayeth Our Lord, Teachings of Lord Mahavira" जैन आगम ग्रन्थों से महावीर वाणी का संक्षिप्त संकलन है। असाम्प्रदायिक चयन और भाषा के लिए इसे सभी पसन्द करते हैं। इसका तेलगु अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव पर विदेशों में भेजने के लिए जिस किताब का चयन किया गया था वह यही थी।

5. "Essence of Jainism" श्री पूरणचन्द सामसुखा द्वारा बंगला में लिखी 'जैन धर्मेर परिचय' ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद है। इसका भी तेलगु भाषा में अनुवाद हुआ है। बम्बई से प्रकाशित 'प्रबुद्ध जीवन' ने इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित किया है।

श्री ललवानीजी अधिकांशत: बंगला में ही लिखते थे और अनवरत। कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध, नृत्य-नाटिकाएँ, व्यंग आदि प्राय: सभी विधाओं में आपने लिखे। वह भी पूर्ण अधिकार के साथ। इनकी 'नीलांजना' आदि 12 कहानियाँ श्रीमती बैंगानी द्वारा अनुदित होकर इन्दौर से निकलने वाले 'तीर्थंकर' में प्रकाशित हुई हैं। अपनी विशिष्ट शैली, भाव एवं भाषा के लिए बहुचर्चित होकर इन कहानियों ने पाठकों को आत्म-विभोर एवं मुग्ध किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री वीरेन्द्र कुमार जैन ने ललवानी जी को एक पत्र लिखकर इसके लिए अभिनंदित किया था। आपकी 'चन्दनमूर्ति' भी श्रीमती बैंगानी द्वारा अनुदित होकर दिल्ली से प्रकाशित 'कथालोक' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई। 'श्रमण' में प्रकाशित भगवान महावीर की जीवनी भी हाल ही में 'करुणा

प्रकाशनी' से 'वर्द्धमान महावीर' नाम से प्रकाशित हो चुकी है। आपका 'जैन धर्म व दर्शन' अजमेर से प्रकाशित हुआ है। आपकी लिखी एकांकियाँ कई-कई बार मंचस्थ हो चुकी हैं, वह भी मात्र कलकत्ता के विभिन्न रंगमंचों पर ही नहीं, शान्ति निकेतन, जियागंज, अजीमगंज एवं मधुवन में भी ये अभिनीत हुई हैं।

आप द्वारा लिखित ''भगवान महावीर'' नाटक कलकत्ता आकाशवाणी से रेडियो कलाकारों द्वारा 1974-1975 में अभिनीत होकर प्रसारित हुआ है। आपकी व्यंग रचनाओं ने 'अन्तिम पृष्ठ: खत के रूप में चिन्तन' नाम से इन्दौर के तीर्थंकर में प्रकाशित होकर समाज को आलोकित किया है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप में सभा समिति एवं आन्दोलन तक हुए।

श्री ललवानी जी का सृजनात्मक वैशिष्ट्य यही है कि उन्होंने समस्त रसों का प्रयोग करने पर भी उसकी परिसमाप्ति शान्त और वैराग्य रस में ही की है। अत: आपकी समस्त रचनाएँ वैराग्य मूलक भावनाओं से उद्दीप्त हैं एवं पाठकों के मन को कथानकों की सहजता से उच्चतर भूमिका में ले जाने में समर्थ हैं। जैन कथानकों की नीरस अभिव्यक्ति को इन्होंने ऐसा रसमय रूप दिया है कि वे पाठकों को मुग्ध किए बिना नहीं रहतीं। इनके साहित्य की इसी विशेषता को दृष्टिगत कर रायपुर के 'शान्ति विजय ज्ञानपीठ' ने आपको 1978 के श्रेष्ठ साहित्य सृजन के लिए पुरस्कृत घोषित किया है। आपके ललित निबन्ध के लिए 'जिनेश्वर पुरस्कार निधि' ने भी एक पुरस्कार देने की 1982 में घोषणा की थी।

व्यक्तिगत रूप में ललवानी जी सरल एवं निष्कपट थे। इनका स्वभाव मृदुल, शान्त, विनीत और लज्जालु था। वे अल्प-भाषी एवं भीड़ से बहुत दूर रहने वालों में से थे। आप साथ ही एक अच्छे कार्यकर्त्ता भी थे। जैन भवन का प्रकाशन, प्रबन्ध एवं विद्यालय संचालन आदि सभी कार्य आपसे जुड़े हुए थे। अपनी साहित्य-सृष्टि के अतिरिक्त वे देश-विदेश के जैन-अजैन पण्डितों को भी जैन विषयों के अध्ययन और गवेषणा के लिए उत्साहित करते रहते थे एवं उनकी रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में स्थान भी देते

थे। जैन धर्म और साहित्य के प्रचार में आप सक्रिय योगदान देते थे। कलकत्ता जैन समाज के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आपका बहुत योगदान रहता था।

मौलिक सृजन के साथ अन्य मनीषियों की अच्छी रचनाओं को भी वे बंगला एवं अंगेजी में अनुदित करते थे। मुनि रूपचन्द्रजी की 'भीड़भरी आँखें' और 'भूमा' काव्य ग्रन्थों के बंगला अनुवाद को बंगाली कवियों ने बहुत पसन्द किया। हिन्दी के श्रेष्ठ कवि श्री कन्हैयालालजी सेठिया के 'निर्ग्रन्थ' काव्य को आपने बंगला में अनुदित किया जो कि प्रकाशित भी हो चुका है। मुनि रूपचन्द्र जी की 'भूमा' का आपने अंग्रेजी अनुवाद भी किया है। उनके अनुदित जैन साधक कवि चिदानन्द के पद जब जैन जर्नल में प्रकाशित हुए तो उन पदों ने विदेशी पाठकों की दृष्टि भी आकृष्ट कर अनेकों के जीवन को प्रभावित किया।

गणेश ललवानी शिल्पी भी थे। उनकी चित्र-प्रदर्शनी 1965 में आपके बन्धु-बान्धवों के उद्योग से अनुष्ठित हुई थी। पूर्व की भाँति समयाभाव से दत्त चित्त न हो पाने पर भी आप प्राय: चित्र अंकन कभी भी करते रहते थे। जैन विषयों पर अंकित चित्र अक्सर प्रकाशित भी होते रहे हैं। किन्तु आप मुख्यत: निसर्ग शिल्पी थे। तेलरंग, जलरंग, इन्क, पैस्टेल सबका व्यवहार वे अनयास ही कर सकते थे जबकि कभी कहीं किसी गुरु से उन्होंने शिल्प-शिक्षण नहीं लिया। वस्तुत: संगीत, साहित्य, शिल्पकला, धर्मतत्त्व की व्याख्या आदि सभी उनके चरित्र विकास के पथ पर सामयिक आश्रय मात्र हैं, एक परिपूर्णता की ओर उत्तरण।

सन् 1994 में कलकत्ता के जैन समाज, सार्वजनिक संस्थाओं एवं उनके बंगाली आत्मीय प्रशंसकों द्वारा उनके उदात्त कृतित्व एवं निश्छल व्यक्तित्व के अभिनन्दन का अभूतपूर्व संयोजन हुआ। इस अवसर पर उन्हें एक लाख रुपये की थैली एवं शॉल समर्पित किया गया। उस निस्पृही साधक ने तत्काल समस्त राशि सार्वजनिक समाज हितकारी प्रवृत्तियों के संचालन हेतु भेंट कर दी।

चन्द दिनों बाद ही वे यह पार्थिक शरीर त्याग महाप्रयाण कर गए।

58. श्री देवीलाल सामर (1911-1982)

जन्म	:	उदयपुर, 1911
पिताश्री	:	अर्जुनसिंह सामर
अलंकरण	:	पद्मश्री (1968)
दिवंगति	:	मुम्बई, 1982

राजस्थान की लोक संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने का श्रेय ओसवाल कुल दीपक श्री देवीलाल सामर को है। गर्मी की तपती दोपहरी और सर्दी की ठिठुराती रातों में गाँव-गाँव घूमकर इस कला उपासक ने लोक कथाओं के संरक्षण, संकलन एवं संवर्धन में जो योगदान दिया, वह स्वातंत्रोत्तर भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विशिष्ट उपलब्धि है।

आपका जन्म खैरादीवाड़ा, उदयपुर में 30 जुलाई, 1911 के दिन हुआ। आपके पिता अर्जुनसिंह जी पुत्र जन्म के तीन महीने पूर्व ही परलोकवासी हो गये थे। पाँच वर्ष बाद माता भी नहीं रहीं। उस समय रामलीला का अच्छा प्रसार था। बाहर से मण्डलियाँ आती थीं। देवीलालजी को रामलीला में इतना रस आया कि 11-12 वर्ष की उम्र में ही एक मण्डली के साथ निकल पड़े। मामा को यह मंजूर न हुआ तो उदयपुर में ही अपनी एक मण्डली बना ली—यही उनके कला जीवन की शुरुआत थी।

जब से प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ. मोहनसिंह मेहता के सम्पर्क में आये, जीवन में व्यवस्था एवं सुधार का सूत्रपात हुआ। 16 वर्ष की उम्र में ही विवाह हो गया। संवत् 1984 में वे श्वसुर के प्रयत्न से पढ़ने काशी विश्वविद्यालय, बनारस चले आये। वहाँ अभिनय कला को उपयुक्त बढ़ावा मिला। वे नायक की भूमिकाओं में पारंगत हो गये एवं अच्छी ख्याति अर्जित की। यहीं उन्होंने संगीत एवं वायलिन की शिक्षा पायी। सन् 1930 की गाँधी की आँधी में वे भी बह गये। सत्याग्रह आन्दोलन में

श्री देवीलाल सामर
(गंगापार नृत्य नाट्य में राम की भूमिका में)

हिस्सा लेने लगे लेकिन नानी की भूख-हड़ताल से द्रवित हो उदयपुर लौट आना पड़ा। फिर से नाटक प्रदर्शनों का दौर चला। सामरजी की प्रेरणा से संपूर्ण मेवाड़ में अनेक मण्डलियों की स्थापना हुई। मामा को जब यह सहन न हुआ तो उनका घर छोड़कर डॉ. मेहता के स्काउट आश्रम चले आये। जब डॉ. मेहता के विद्या-भवन की स्थापना हुई तो सामरजी उसे समर्पित हो गये। वहीं से लोक कला के अभिनव प्रयोग शुरु किये। उसके सांस्कृतिक मंच 'कला-मण्डल' की नींव रखी। बुद्ध, गांधी, राम एवं कामायनी पर उनकी लिखी एवं निर्देशित नाट्य प्रस्तुतियों में विद्याभवन के डेढ़-डेढ़ सौ कलाकार अभिनय करते थे एवं समूचा उद्यान ही रंगमंच बन जाता था।

नाट्य लेखन के साथ गद्यगीत एवं कविता भी सामरजी लिखते रहे जो विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उनकी पहली कहानी 'तिरस्कृत' संवत् 1985 में छपी। 'चन्द्रलोक', 'मृत्यु के उपरान्त' एवं 'आत्मा की खोज' नामक नाटक संग्रह प्रकाशित हुए। अनेक उच्चस्तरीय एकांकी लिखकर उन्होंने साहित्य के इस पक्ष को गरिमा प्रदान की। अनेक एकांकी आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित हुए। सं. 2004 में सामरजी प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर के सम्पर्क में आये एवं अल्मोड़ा में उनके

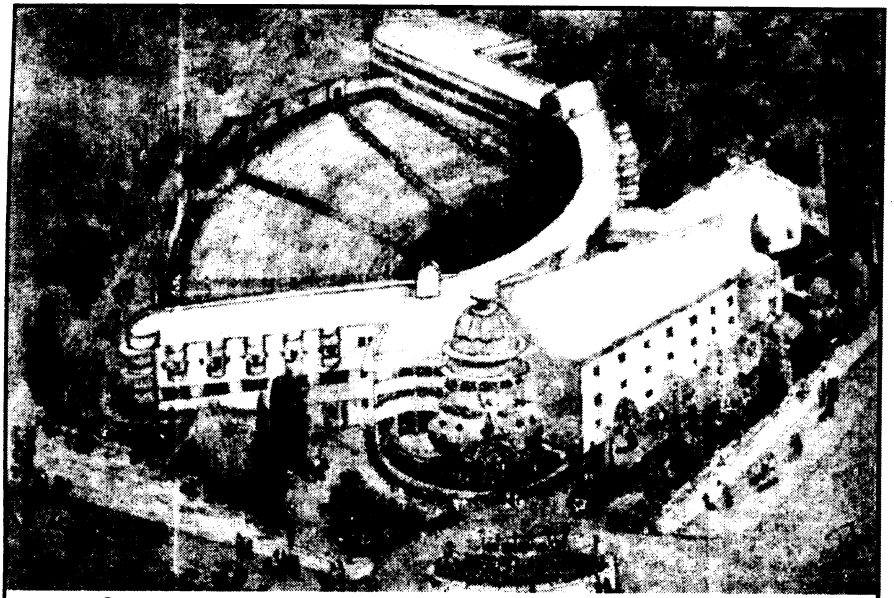

सामरजी का साकार स्वप्न : भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर

नृत्य केन्द्र में नृत्य शिक्षक नियुक्त हुए। उदयशंकर की नृत्य-फिल्म 'कल्पना' में सामरजी ने 'सुन्दर' की महत्त्वपूर्ण भूमिका ही नहीं अदा की, बल्कि उसके गीत संवादों का भी सृजन किया।

संवत् 2009 में सामरजी ने विद्याभवन छोड़ा और लोक-धर्मी कलाओं के शोध-संवर्धन एवं उन्नयन के लिए 'भारतीय लोककला मण्डल' की स्थापना की। बड़े धैर्य और हिम्मत के साथ इस महत् कार्य में जुटे। लेखन भी चलता रहा। लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य, लोकोत्सव आदि एक-एक कर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। अनेक कलाकारों को खड़ा किया। आपके द्वार निर्देशित कठपुतली के समारोहों ने देश में धूम मचा दी। उन्होंने भारत सरकार के आग्रह पर मध्य प्रदेश, राजस्थान, मणिपुर एवं त्रिपुरा के आदिवासियों के सर्वेक्षण एवं फिल्मांकन का दुःसाध्य कार्य बड़ी लगन एवं सफलतापूर्वक कर दिखाया। संवत् 2013 में कला मण्डल का संग्रहालय बना, जो अब अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुका है। इसमें लोकमंचीय विधाओं, वाद्यों, प्रतिमाओं, भित्तिचित्रों, कठपुतलियों का अभूतपूर्व संग्रह है। कला मण्डल द्वारा लोककलाओं की अन्वीक्षक

'रंगायन' एवं 'लोककला' पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। राजस्थान के सांस्कृतिक गौरव को उजागर करने वाले ढेर सारे प्रकाशन हुए हैं। विविध अंचलों में व्याप्त लोकधर्मी रंगीनियों को इस तरह सबके लिए सुलभ कर देने से एक सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण हुआ। विश्वविद्यालयों ने लोककला का पठन-पाठन शोध के लिए स्वीकृत किया। डॉ. महेन्द्र भानावत के निर्देशन में कला मण्डल में अब भी सामरजी का स्वप्न साकार हो रहा है। विदेशी कलाकारों का तो यह तीर्थस्थल ही बन गया है। उनके वरद पुत्र गोविन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कठपुतली सर्कस को तो उन्होंने चमत्कार युक्त कर दिया था। उसके असमय निधन ने सामरजी को निढाल कर दिया।

सामरजी अपने वरद पुत्र गोविन्द के साथ लन्दन के विश्वप्रसिद्ध कठपुतली विशेषज्ञ फिलपोट के वर्कशॉप में

सामरजी ने अनेक बार विदेश यात्राएँ की एवं लोककला का प्रदर्शन कर अपार ख्याति अर्जित की। संवत् 2024 में राज्य सरकार ने उन्हें राजस्थान संगीत नाटक अकादमी का अध्यक्ष मनोनीत किया। संवत्

2025 में वे राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित हुए। संवत् 2026 में कालिदास अकादमी, इलाहाबाद ने उन्हें 'लोकनाट्यश्री' की उपाधि दी। राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर द्वारा वे 'कलानिधि' की उपाधि से सम्मानित किये गये। इटली के पादुआ विश्वविद्यालय ने उन्हें रजत पदक से अलंकृत किया। हनोई की वियतनाम सरकार ने उन्हें सर्वोच्च कला पदक प्रदान किया।

इस प्रख्यात लोक संस्कृतिविद् एवं कला मर्मज्ञ का 71 वर्ष की आयु में सन् 1982 में मुम्बई में देहांत हुआ।

59. श्री यशपाल जैन (1912-)

हिन्दी पत्रकारिता एवं लेखन पर अपनी छाप छोड़ने वाले एवं समग्र जैनसमाज में अपनी क्रांतिकारी सोच से विशिष्ट पहचान बनाने वाले सरस्वती के वरद् पुत्र श्री यशपाल जैन का जन्म सन् 1912 में अलीगढ़ जिलान्तर्गत विजयगढ़ ग्राम में हुआ। आपने सन् 1935 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण की एवं 1937 में एल.एल.बी.। छात्रावस्था में ही आपकी रुचि लेखन में थी। जब वे मात्र 9 वर्ष के थे, तभी उन्होंने हिन्दी में एक रोचक उपन्यास लिखकर सबको चकित कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद की 'साहित्यरत्न' उपाधि भी उन्होंने हासिल की।

सन् 1937 में वे राष्ट्रीय पुस्तकों के प्रकाशक सस्ता साहित्य मण्डल से जुड़े। उन्होंने सन् 1938-39 में 'जीवन-सुधा' का सम्पादन भार संभाला। सन् 1940 से 1946 तक टिकमगढ़ से प्रकाशित 'मधुकर' पत्र के संपादक रहे। सन् 1946 में सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली के निर्देशक नियुक्त हुए। तभी से मण्डल द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय विचारों के पत्र 'जीवन साहित्य' का सम्पादन भार भी आपके कंधों पर पड़ा। सन् 1975 में आप मण्डल के कार्यमंत्री मनोनीत हुए। आपके निर्देशन में मण्डल ने सांस्कृतिक एवं साहित्यिक महत्त्व के अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए। उनके अनेक राष्ट्रीय महत्त्व के लेख अन्यान्य पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते रहे। यशपाल जी जैन सिद्धांतों के अधिकारी व्याख्याता थे। बौद्ध ग्रंथों का उन्होंने गहन अध्ययन किया। वे महात्मा गाँधी और संत विनोबा के अहिंसापरक आदर्शों से बहुत प्रभावित थे। उन्हें गाँधीवाद का अधिकारी विद्वान् होने का श्रेय प्राप्त था। दिल्ली की भारतीय साहित्य परिषद् के वे अध्यक्ष चुने गए। राष्ट्रीय भाषा प्रचार समिति एवं चित्र कला संगम ने भी उन्हें अपना उपाध्यक्ष चुना।

सन् 1972 में उन्होंने कनाडा एवं अमरीका की यात्रा की। उन्होंने उत्तरी अफ्रीका के भारतीय मूल के निवासियों के आमंत्रण पर सूरीनाम,

ट्रिनिडाड, गुयाना, टोबेगो आदि देशों की भी यात्रा की। उन्होंने अन्यान्य देशों की सांस्कृतिक संस्थानों के आमंत्रण पर रूस, बर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, वियतनाम, सिंगापुर, मलाया, मोरीशस, जापान, आस्ट्रेलिया, फिजी, न्यूजीलैण्ड एवं यूरोप के विभिन्न देशों का भ्रमण किया। सन् 1980 में फिर एक भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से इंग्लैण्ड, कनाडा और अमरीका में आयोजित विभिन्न आयोजनों में शामिल हुए। सन् 1981 में जापान के टोकियो शहर में आयोजित 'वर्ल्ड पीस कॉन्फ्रेंस' में जैन विद्या एवं गाँधी-दर्शन के अधिकारी विद्वान् की हैसियत से शामिल हुए।

सन् 1975 में संत ऐलाचार्य विद्यानन्दजी के सान्निध्य में दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित एक समारोह में उन्हें 'साहित्य-वारिधि' की उपाधि से सम्मानित किया गया। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव समिति में उन्हें सदस्य मनोनीत किया गया।

उनके प्रकाशित साहित्य में समाज विकास माला के अन्तर्गत रचित 174 पुस्तकों का अवदान अविस्मरणीय है। दस प्रमुख इतिहास पुरुषों के अभिनन्दन ग्रंथ सम्पादित करने का भी श्रेय यशपालजी को है। उनके मौलिक साहित्य में कहानियाँ मुख्य हैं, जिनमें नव प्रसून, मैं मरूँगा नहीं, एक थी चिड़िया, सेवा करे सो मेवा पाये, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने एक उपन्यास भी लिखा। यात्रा साहित्य के तो वे पुरोधा माने जाते हैं। जै अमरनाथ, उत्तराखण्ड के पथ पर, रूस में 46 दिन (सोवियत लेंड नेहरू एवार्ड से पुरस्कृत), कोनार्क, जगन्नाथ पुरी, अजन्ता एलोरा, यूरोप की परिक्रमा, पड़ोसी देशों में (यू.पी. सरकार द्वारा पुरस्कृत) आदि उनके उल्लेखनीय यात्रा संस्मरण हैं।

उन्होंने अनेक रेडियो फीचर्स भी लिखे। स्टीफन ज्वेग के तीन लोकप्रिय अंग्रेजी उपन्यासों का उन्होंने हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित किया। उनके विचारोत्तेजक लेखों के चार संकलन भी प्रकाशित हुए। 'तीर्थंकर महावीर' और 'साबरमती का संत' उनका जीवन-चरित्र परक ग्रंथ अवदान है। लेखन एवं पत्रकारिता में यशपालजी ने अपने नाम के अनुरूप यश अर्जित किया।

60. श्रीमती सुशीला सिंघी (1924–1998)

जन्म : लखनऊ, 1924
पिताश्री : अशर्फीलाल जैन
माताश्री : कटोरी देवी
(मासी माँ : ईश्वरी देवी)
पतिश्री : भंवरमल सिंघी
शिक्षा : एम.ए.
दिवंगति : रांची, 1998

आधुनिक युग में सामाजिक क्रांति की मशाल थाम कर सामाजिक विकास के लिए सतत संघर्ष करने वाली जैन महिलाओं में सुशीलाजी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

पिताश्री अशर्फीलाल जैन लखनऊ में रेल के उच्च पदाधिकारी थे। 30 दिसम्बर, 1924 के दिन माँ श्रीमती कटोरीदेवी की कुक्षि से एक बालिका का जन्म हुआ। माली हालत अच्छी न थी। जल्दी ही टी.बी. से कटोरी देवी की मृत्यु हो गई। सुशीला जी तब छोटी सी थी। पिता ने माँ की मौसेरी बहन ईश्वरी देवी से पुनर्विवाह किया। ईश्वरीदेवी सुशीलाजी से मात्र 9 वर्ष बड़ी थी। दोनों में माँ-बेटी से ज्यादा सहेलियों का सा सम्बन्ध था। यह परिवार कलकत्ता आ बसा। सुशीलाजी की शिक्षा कलकत्ता में ही हुई। वे बहुधा स्कूली एवं सामाजिक गतिविधियों में भाग लिया करती थीं। विमाता ईश्वरी देवी से उनके सात भाई बहन हुए। सुशीलाजी जब 15 साल की थी तभी आगरा के श्री अशर्फीलाल जैन से ब्याह दी गई। परन्तु विधाता को यह रिश्ता मंजूर नहीं हुआ। शादी के डेढ़ साल बाद ही पति की मृत्यु हो गई। सुशीलाजी पीहर कलकत्ता चली आईं। जो चिंगारी दबी हुई थी राष्ट्रीय आन्दोलन की हवा पाकर लहक उठी। वे बढ़-चढ़कर राष्ट्रीय एवं सामाजिक क्रांति सम्मेलनों में भाग लेने लगी।

एक सामान्य परिवार में पली-पोसी चवदह वर्षीय कन्या के अन्तर में क्रांति की इस छुपी चिंगारी को महात्मा गाँधी ने पहचाना एवं उनकी प्रेरणा पाकर यह बालिका सदैव के लिए सामाजिक उन्नयन के लिए समर्पित हो गई। कैशौर्य आते-आते बाल विधवा हो जाने की नियति को निज के पुरुषार्थ एवं सामाजिक क्रांति के सूत्रधार श्री भंवरमलजी सिंघी के संसर्ग ने पराजित कर दिया। सुशीला जी ने उनकी सहधर्मिणी बनकर सामाजिक चेतना के नये युग का सूत्रपात किया।

16 अप्रैल, 1946 को श्री भंवरमलजी सिंघी से उनका पुनर्विवाह हुआ। भंवरमलजी का यह द्वितीय विवाह था। प्रथम विवाह से उनके एक पुत्र श्रीकान्त की उम्र उस समय 8 साल थी। श्रीकान्त सुशीलाजी की ही देख-रेख में बड़े हुए। सिंघीजी से विवाहोपरांत सुशीलाजी बड़े उत्साह से कलकत्ता की संस्कृतिक गतिविधियाँ में भाग लेने लगी।

सन् 1952 में पर्दा एवं दहेज विरोधी अभियानों में वे सदा अग्रणी रही। मारवाड़ी सम्मेलन के मंच से सामाजिक सुधारों के लिए सदैव संघर्षरत रहते-रहते ही कलकत्ता यूनिवर्सिटी से उन्होंने एम.ए. किया। राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़कर काँग्रेस के अधिवेशनों को सम्बोधित किया। सन् 1958 से 1972 तक अखिल भारतवर्षीय परिवार नियोजन कौंसिल एवं कोलकाता की महिला सेवा समिति की मानद मंत्रिणी रही। उनका कार्यक्षेत्र मारवाड़ी समाज या कोलकाता तक ही सीमित नहीं रहा, पुरुलिया के आदिवासी अंचलों, कोयला खानों, चाय बागानों एवं कोलकाता के स्लम क्षेत्रों के मजदूर परिवारों के शैक्षणिक एवं सामाजिक विकास के

लिए सुशीला जी सर्वदा सेवारत रही। सन् 1968 में उन्होंने 'पारिवारिकी' की स्थापना की जहाँ 2 से 16 वर्ष की उम्र के दरिद्र परिवारों के सैकड़ों बच्चों के समुचित विकास की अभूतपूर्व व्यवस्था है।

पश्चिम बंगाल की सरकार ने उन्हें प्रथम महिला जस्टिस ऑफ पीस (1963-73) मनोनीत कर सम्मानित किया। सन् 1985 में कोलकाता के 'लेडीज स्टडी ग्रुप' द्वारा वे सर्वप्रमुख सामाजिक कार्यकर्त्री एवं सन् 1987 में बम्बई के 'राजस्थान वेलफेयर एसोशियेसन' द्वारा 'सर्व प्रमुख महिला कार्यकर्त्री' चुनी गई। वे महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित 'कस्तूरबा गाँधी स्मारक निधि' की ट्रस्टी नियुक्त हुई। समाज सेवा के अतिरिक्त अनेक शैक्षणिक एवं कला संस्थानों को उनका निदर्शन उपलब्ध था। अनामिका, संगीत कला मन्दिर, अनामिक कला संगम, शिक्षायतन, यूनिवर्सिटी महिला एसोशियेसन, महिला समन्व्य समिति, गाँधी स्मारक निधि, मारवाड़ी बालिका विद्यालय आदि अनेक संस्थाएँ सुशीलाजी की सेवाओं से लाभान्वित हुई हैं।

सुशीलाजी सन् 1961 से 66 तक लगातार काँग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की डेलीगेट रहीं। वे बंगाल महिला सेवा समिति एवं कलकत्ता महिला वेलफेयर संस्थान की मानद मंत्रिणी (1958-72) रही। इंडियन रेड क्रास सोसाईटी एवं ऑल इंडिया रेडियो कलकत्ता के परामर्शक मण्डल से भी जुड़ी रही। मारवाड़ी बालिका विद्यालय की लगातार 14 वर्ष मंत्री रहकर वे उसकी अध्यक्ष चुनी गई। उन्होंने अपनी सामाजिक गतिविधियों के सन्दर्भ में अमरीका, जापान, यूरोप एवं थाईलैंड की यात्राएँ की। सन् 1984 में सिंघीजी की अकस्मात् मृत्यु के बाद भी वे सार्वजनिक क्षेत्र से जुड़ी रही। सिंघीजी के सपनों की वे जीती जागती तस्वीर थी।

सिंघीजी एवं सुशीलाजी का परिवार अन्तर्जातीय सौहार्द्र का जीता-जागता उदाहरण है। सिंघीजी के प्रथम पुत्र श्रीकांत ने बंगाली घराने की तरुणी तापती बसु से विवाह किया। वे नई दिल्ली रहते हैं एवं चमड़े के व्यवसाय से जुड़े हैं। सुशीलाजी की बड़ी पुत्री सुषमा ने कॉलेज के सहपाठी बंगाली युवक उज्ज्वल गुप्ता से विवाह किया। वे भी अब

दिल्लीवासिनी हैं। कनिष्ठ पुत्री सुस्मिता वाराणसी के श्री शिशिर गुप्ता को ब्याही गई। वे कलकत्ता रहते हैं एवं पत्रकारिता से जुड़े हैं। सुस्मिताजी कलकत्ता के सुप्रसिद्ध दैनिक Telegraph के आठ साल तक सम्पादकीय विभाग में काम करने के बाद अब कलकत्ता दूरदर्शन की वरिष्ठ संवाद्दाता हैं।

30 अगस्त, 1998 को रांची में सुशीलाजी का देहावसान हुआ।

61. श्री हरखचन्द बोथरा (1904-1989)

जन्म : पुनरासर, 1904

पिताश्री : रावतलमल बोथरा

दिवंगति : कोलकाता, 1989

थली प्रदेश की शुष्क भूमि पर ज्ञान की ऐसी अजस्र पावन धारा शायद ही कभी बही हो एवं चेतन के उर्ध्वगमन की ऐसी ऊँचाई शायद ही अन्य किसी जैन गृहस्थ श्रेष्ठि ने छुई हो जैसी श्री हरखचन्दजी बोथरा ने छुई। वे न सिर्फ जैनसमाज के ललाट पर वरन् सम्पूर्ण मानवता के भाल पर गौरव तिलक हैं। उनका विचक्षण व्यक्तित्व कमल की पांखुरी पर स्थित पारदर्शिनी ओस की बूँद की तरह है। उनकी निर्लिप्त सख्शियत में सम्यक्त्व रच पच गया था।

आपका जन्म पुनरासर में सन् 1904 में हुआ। उनके पिताश्री रावतलमलजी बोथरा की संयमित जीवनशैली ने परिवार को साधनामय संस्कार दिए। हरखचन्दजी की शिक्षा कोलकाता में हुई। कुशाग्र बुद्धि एवं अंग्रेजी भाषा के प्रति अत्यधिक रूझान होते हुए भी वे व्यापार की ओर अग्रसर हुए। परन्तु उनका धर्मानुरागी हृदय अपने मूल की पहचान के लिए व्यग्र रहा। उन्होंने संस्कृत व प्राकृत भाषा एवं जैन आगमों का गहरा अध्ययन किया। वे महात्मा गाँधी से प्रभावित हो खादी पहनने लगे और अंत तक पहनते रहे। प्रचलित सामाजिक प्रथा के अनुसार मात्र 14 वर्ष की वय में हरखजी का विवाह हो गया। पूज्य पिताजी से मिली संस्कारों की विरासत के साथ वे धार्मिक, व्यावसायिक एवं गार्हस्थ्य जीवन में आगे बढ़ते रहे।

इस बीच में सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरु हुआ। उन्होंने जमकर उसका फायदा उठाया। जिन दिनों कोलकाता में गोलीबारी हो

रही थी और राजस्थान के 80 प्रतिशत व्यापारी अपना माल-असबाब बिक्री पर कोलकाता छोड़ राजस्थान लौट रहे थे, हरखचन्दजी निधड़क कोलकाता में ही डटे रहे। सन् 1943 के बाद वे बीकानेर रहने लगे।

तैंतीस वर्ष की वय में ही जीवन-मरण के प्रश्न उन्हें मथने लगे। सन् 47 आते-आते वे जीवन के लोक-व्यवहार को त्याग, आत्मानुभव के एकाकी पथ पर निकल पड़े। पावापुरी के पावन परिसर में निर्बाध साधनारत रहे। सन् 51 में उनकी चेतना ने ऊर्ध्वारोहण का नया आयाम लिया। सन् 59 से 80 तक कोलकाता का जैन भवन उनके दैहिक क्रियाकलापों एवं आत्मोत्थान का साक्षी रहा। मात्र एक वल्कल चीर उनकी देह पर रहने लगा।

नंगे पाँव जाते आते थे। अध्ययन, स्वाध्याय एवं साधना में तल्लीन रहते थे। एक बार सन् 1951 में बीकानेर गए। बड़े लड़के की शादी करनी थी। उसे 1952 में निपटाया और फिर कोलकाता रहने लगे। सन् 1955 में दो बड़ी हृदय विदारक दुर्घटनाएँ हुईं। कुछ ही महीनों के अंतराल से उनके तरुण बेटे एवं युवा दामाद काल कवलित हो गए। सन् 1957 में पूज्य पिताजी का भी देहावसान हो गया। ये मर्मान्तक घटनाएँ उन्हें आत्मलीनता से विचलित न कर सकी। वे निरन्तर आत्मोत्थान में लगे रहे। सन् 1985 में उनकी धर्मपत्नि चल बसी।

सन् 85 से मृत्यु पर्यन्त वे बीकानेर दैहिक प्रवास पर रहे। वे वास्तव में प्रज्ञा पुरुष थे। सदा जागृत रहने को वे साधना का मूल मंत्र मानते थे। प्रकृति के सहज नियमों में उनकी गहरी आस्था थी। जैन धर्म को वे प्रकृत धर्म मानते थे। भौतिक स्थितियों के विश्लेषण की उनमें अतीन्द्रिय शक्ति थी। अपने कनिष्ठ भ्राता किशनचन्दजी को नैसर्गिक करुणा एवं वात्सल्य भाव से लिखे उनके पत्र इस निर्विवाद सत्य के निःसन्देह साक्षी हैं और साक्षी हैं उनकी परम शिष्या अमरीकन भक्त श्रीमती लिओना स्मिथ क्रेमर जिसने मात्र उनके साथ हुए पत्राचार की बदौलत जैन धर्म अंगीकार कर अपने को धन्य किया। सजगता, शांति एवं निर्लिप्तता की ये पावन सांसें 30 मार्च, 1989 की शाम परम अस्तित्व

में विलीन हो गई। उनकी मृत्यु पर श्रीमती क्रेमर ने जो मृत्युलेख भेजा वह इस प्रकार है–

''उनकी मृत्यु की खबर सुनकर मेरे आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। यह उनकी मृत्यु के दु:ख से नहीं क्योंकि परम आत्मा के वाहक इस जर्जर शरीर को छोड़ वे तो नि:संदेह विदेह हो गए थे। मेरे आँसू मेरे ही लिए थे क्योंकि गत दस वर्षों के पत्राचार से वे मेरे आध्यात्मिक मार्गदर्शक एवं गुरु बन गए थे। मैं अब उससे वंचित हो गई। मैं भरसक उनके दर्शन को मन, वचन एवं कर्म में परिणत करने का यत्न करूँगी।''

ओसवाल जाति ऐसे आध्यात्म योगी को पाकर धन्य हुई। उनके कनिष्ठ भ्राता श्री किशनचन्दजी को लिखे प्रेरणा दायक आध्यात्मोन्मुखी पत्राचार को डॉ. नेमीचन्द्र जैन (सम्पादक-तीर्थंकर) ने 'हरख-पत्रावली' नाम से सम्पादित कर सन् 1996 में प्रकाशित किया।

62. श्री जैनेन्द्र कुमार जैन (1909–1988)

जन्म : 1909 बोड़ियागंज (अलीगढ़)
अभिभावक : (मामा) महात्मा भगवानदीन
माताश्री : रमा देवी
धर्मपत्नि : श्रीमती भगवती देवी .
कृतियाँ : परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध, दशार्क (उपन्यास), जैनेन्द्र के विचार, काम प्रेम और विचार, समय और हम, प्रस्तुत प्रश्न (निबंध) दो चिड़ियाँ, जान्हवी (कहानी), प्रेम में भगवान (अनुवाद)
अलंकरण : पद्मश्री
दिवंगति : *24 अप्रैल, 1988*

श्री जैनेन्द्रकुमार नव्य भारत के ऋषितुल्य साहित्यकार थे। उनकी सृजन चेतना वेद की ऋचाओं और उपनिषद के सूत्रों की भाँति बीज रूप आविर्भूत हुई। वे वाक् एवं शब्द के ऐसे स्वामी थे जो आत्मा की गहिरतम ध्वनियों से ऊर्जायित थे। उनकी भाषा मंत्र वत एवं सूत्रात्मक हैं। आर्ष भाषा के वे पहले हिन्दी रचनाकार थे। वे हिन्दी उपन्यास और कथा साहित्य के भीष्म पितामह कहे जाते हैं। उनकी रचनाएँ एक चैतन्य-महाभाव से तरंगित थी। उनकी सुनीता (उपन्यास की नायिका) का सहसा नग्न हो जाना इसी महाभाव की भूमिका में सम्भव हो सका। उक्त चित्रण ने तात्कालीन हिन्दी के साहित्य जगत में भूकम्प ला दिया था।

जैनेन्द्रजी कभी स्वयं कलम से नहीं लिखते थे। वे बोलते थे और कोई युवक या युवती उसे लिपिबद्ध करता चलता। उनके प्रथम वाक्य में सम्पूर्ण कथ्य का बीज छुपा रहता। उनका कोई कथानक

योजनाबद्ध नहीं होता था। वे स्वयं नहीं जानते थे कि उनकी कथा कब, कैसे और क्या मोड़ लेगी? मानो कोई अपौरुषेय वाणी उनके मुख से बहती चलती।

जैनेन्द्रजी का जन्म अलीगढ़ जनपद के बोड़ियागंज ग्राम में श्रीमती रमादेवी की कोख से सन् 1909 में हुआ। दो वर्ष बाद ही पिता की मृत्यु हो गई। माताश्री एक जैन महिला विद्यापीठ की अधिष्ठात्री थी। बड़ा मुश्किल से गुजारा होता था, इसलिए जैनेन्द्रजी की शिक्षा इंटर से आगे न जा सकीं। प्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक महात्मा भगवानदीन उनके मामा थे। उन्हीं से जैनेन्द्र ने गांधी-दर्शन का संस्कार पाया। सन् 1921 में गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में शरीक होने वे दिल्ली आ गए। कुछ समय लाला लाजपत राय के 'स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में रहे। 'कर्मवीर' के यशस्वी सम्पादक माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आए। सन् 1923 में नागपुर के एक पत्र के संवाद लेखन का कार्य किया। तभी गाँधीजी का यह समर्पित सेनानी गिरफ्तार कर लिया गया। तीन माह की जेल हुई। जेल से छूटकर फिर दिल्ली आए। आजीविका हेतु चन्द माह कलकत्ता भी रहे, पर रास नहीं आया। निराश होकर लेखन को ही आजीविका का साधन बनाने की ठानी और मृत्यु पर्यन्त उसी को समर्पित हो रहे।

तरुण जैनेन्द्र संकोची थे। उनकी प्रथम कहानी सुभद्राकुमारी चौहान एवं महात्मा भगवानदीन के हाथ पड़ी। वे लड़के की मौलिक प्रतिभा से चमत्कृत हो गए। लेखन चल निकला। प्रथम उपन्यास 'तपोभूमि' स्व. ऋषभचरण जैन के साथ मिलकर लिखा। फिर 'परख' लिखा। साहित्य-जौहरी पं. नाथूराम प्रेमी ने रत्न परख लिया एवं 'परख' प्रकाशित किया। उसने हिन्दी साहित्य में धूम मचा दी। 'परख' के लिए जैनेन्द्रजी को हिन्दूस्तानी अकादमी का पुरस्कार (1931) मिला। फिर 'त्याग-पत्र', 'सुनीता' आदि उपन्यासों का सिलसिला चल पड़ा। समाज को एक चिन्तक मिला। गौर वर्ण, तेजस्वी ललाट, पैनी नासिका, खादी का कुर्त्ता-धोती, कन्धे पर चादर धारण किए जैनेन्द्रजी ने हिन्दी के वाङ्मय जगत में अपनी एक भव्य छवि बना ली। प्रभाकर माचवे द्वारा संकलित

'जैनेन्द्र के विचार' ग्रंथ में जैनेन्द्रजी का सर्वतोमुखी विचारक के रूप में विराट् व्यक्तित्व प्रकट हुआ।

सन् 1935 में जब उनका उपन्यास 'सुनीता' चित्रपट में धारावाहिक छप रहा था तो साहित्य जगत में बड़ा बावेला मचा। उपन्यास हठात चर्चा का विषय बन गया। अंतिम परिच्छेद के प्रतीकात्मक दृश्य में नायिका सुनीता अनावृत्त होकर अपने प्रिय पात्र हरिप्रसन्न को नग्न सत्य का सामना करने की चुनौती देते हुए कहती है–''मुझे चाहते हो, तो मुझे लो'' और अपने एक-एक वस्त्र उतारते हुए कहती जाती है–''मैं तो यह साड़ी नहीं हूँ, आदि।'' हरिप्रसन्न इस अनावृता की ओर आँख भर देखने का भी साहस नहीं जुटा पाता। दोनों हाथों से अपनी आँखें ढक लेता है और भाग खड़ा होता है। इसी दृश्य को लेकर आलोचकों ने तीखे व्यंग्य किए, परिहास भी किया। जैनेन्द्रजी ने 'हँस' में एक प्रतिलेख लिखकर अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। भारतीय संस्कारों में पत्नी नारी का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उकेरा गया यह चरित्र समस्या का समाधान न भी हो पर वर्तमान 'घर' और 'बाहर' के द्वन्द्व को चरितार्थ करने में सक्षम है।

इतनी कम शिक्षा-दीक्षा के होते हुए भी जैनेन्द्रजी के व्यक्तित्व का प्रभा मण्डल इतना ज्वाज्वल्यमान था कि भारत के सभी प्रदेशों से उन्हें चिन्तन गोष्ठियों के लिए आमंत्रण मिलते रहे। अंग्रेजी पर भी उनकी पकड़ अच्छी थी अत: यूरोप, अमरीका, रूस भी हो आए। प्रश्नोत्तर परिषदें चलती। वे आक्रमणकारी प्रश्नकर्त्ता की बात के स्वीकार से प्रारम्भ करते और अन्त में उसी पर प्रश्न चिह्न लगा देते। उनकी मनीषा में जैनों की अनेकान्त दृष्टि सक्रिय रहती क्योंकि सत्ता और वस्तु की सम्यक् पहचान के लिए सापेक्ष दृष्टि ही नैसर्गिक है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने जैनेन्द्र जी की रचनाओं पर मुग्ध होकर कभी कहा था–'रविन्द्र और शरत् को हमने हिन्दी में अब एक साथ पाया।''

उनके उपन्यासों में व्यक्ति स्वातंत्र्य की उत्कट चेतना है। रूढ़ियों के प्रति विद्रोह है। नारी मुक्ति आन्दोलन के सूक्ष्म तन्तुओं का उनके

पात्रों में सटीक निर्माण हुआ है। परख में वे एक विधवा को प्रणय एवं परिणय की छूट देते हैं, 'सुनीता' (चित्रपट धारावाहिक) में पति द्वारा पर-पुरुष के जीवन में समरसता का संचार करने का आग्रह है। त्यागपत्र की मृणाल का अपनी रूचि के प्रतिकूल पड़ने वाले पति से विमुख होना विवाह-पूर्व के प्रेमी पर सर्वस्व न्यौछावर करने की कामना है। इसी तरह कल्याणी, सुखदा (धर्मयुग में धारावाहिक), विवर्त्त (हिन्दुस्तान में धारावाहिक) की नायिकाएँ अनमेल विचारों के दाम्पत्य से मुक्ति चाहती हैं। जैनेन्द्रजी पर अक्सर अनैतिकता पर आरोप लगा। असल में यह समाज के स्वीकृत मूल्यों के प्रति विद्रोह और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्रस्थापना है। उनकी अंतिम कृति 'दशार्क' कालजयी कृति है, कथ्य एवं शिल्प का उत्कर्ष चरम पर पहुंचा है। इसमें 'वेश्या' के शाश्वत प्रश्न की चुनौती को लेखक ने भोगोपभोग के दृष्टिकोण से नहीं वरन् गहरे समाज-वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र ने नारी को सदा वन्दनीया दिखाया, उसके नख-शिख वर्णन में उनकी किंचित् रुचि नहीं है। जैनेंन्द्र के पात्र दैहिकता से अधिक मानसिकता में जीते हैं। लगभग 25-30 वर्षों के लेखन के दरम्यान उनके 12 उपन्यास, 10 कहानी संग्रह, 1 अनुवाद ग्रंथ एवं 5

''समय और हम'' (निबंध) में जैनेन्द्रजी के तत्त्व दर्शन की प्रगल्भता, हृदय का सौहार्द्र, वस्तुनिष्ठा तथा वैज्ञानिकता का प्रत्यय एक साथ प्रकट हुआ है। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक समस्याओं का मूलगामी विवेचन हैं। ग्रंथ को हिन्दी साहित्य के ''मंगलाप्रसाद परितोषिक'' के लिए चुना गया। उनके विचार गाँधीजी के अहिंसा और सत्य दर्शन से प्रभावित जरूर थे पर उनके संयम और आत्मशुद्धि तत्त्वों को जैनेन्द्रजी ने निषेधात्मक मानकर स्वीकार कभी नहीं किया।

पंजाब जेल में एक समय सभी बड़े नेता बन्द थे, जैनेन्द्र भी। वहाँ गोष्ठियाँ होती थी। एक बार आसफअली भी गोष्ठी में आए, कहने लगे– ''राजनीति करने वाले बहुत हैं पर गहरे सोच वाले नहीं। जैनेन्द्र को तो

सक्रिय राजनीति में आना चाहिए।'' जैनेन्द्रजी ने इन्कार कर दिया। वे गाँधीवाद और सर्वोदय दर्शन की गोष्ठियों में प्राय: आमंत्रित रहते थे एवं उसके वैचारिक धरातल को संपुष्ट करने से कभी नहीं चूकते थे। सभी नेता उन्हें समादृत करते एवं एक ''संत साहित्यकार'' मानते थे। बम्बई में ''टैगोर जन्म शताब्दी'' के भव्य समारोह में हुई एक गोष्ठी में मोरावियो जैसे दिग्गज साहित्यकारों के बीच जैनेन्द्र जी धाराप्रवाह अंग्रेजी में बोले– सारा सारस्वत समुदाय सुनकर स्तब्ध रह गया।

जैनेन्द्रजी बड़े भाग्यवान थे। उनकी सुधर्मिणी भगवती देवी ने अंत समय तक उनकी सेवा सुश्रुषा में कोई कसर नहीं रखी। वे अहर्निश उनके निकट रहती। दिल्ली जैसे महानगर में उन्होंने न एक दिन भी बाजार का मशीन पिसा आटा खाने दिया, न धोबी धुला कपड़ा पहनने को दिया। स्वयं तड़के उठकर च
घर की सफाई करती और जिस पर गजब यह कि सार्वजनिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी भाग लेतीं।

जीवन की सांध्य वेला में जैनेन्द्रजी को 'अणुव्रत पुरस्कार' (1985) एवं भारतभारती पुरस्कार से नवाजा गया। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से विभूषित किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्र ने उनके लेखन एवं कृतित्व पर डाक्टरेट की। परन्तु हिन्दी के आलोचक कभी उनकी रचनाओं के साथ न्याय नहीं कर पाए। किसी ने उनके ''पात्रों पर कामकुंठा से ग्रसित होने'' का आरोप लगाया, किसी ने उन्हें स्पिरिच्युअल मायोपिया का शिकार बताया। पर जैनेन्द्र उन सभी समीक्षाओं से अप्रभावित रहे।

उनके उपन्यास 'त्याग-पत्र' पर एक फिल्म भी बनी, पर असफल रही। दूरदर्शन ने कभी उनकी किसी कृति को धारावाहिक बनाने के लायक नहीं समझा। विडम्बना यह रही कि किसी प्रादेशिक सरकार या संस्थान ने उन्हें सम्मानित नहीं किया। छोटे-मोटे लेखक का भी अभिनन्दन-ग्रंथ है पर जैनेन्द्रजी के जीवित रहते उनका कोई अभिनन्दन-ग्रंथ नहीं निकला जबकि उनके उपन्यासों का अनुवाद विश्व की 34

भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी से अभिनन्दन स्वीकार करते श्री जैनेन्द्र कुमार

भाषाओं में हुआ। पिछले 30 वर्षों में वे कोई सृजनात्मक साहित्य भी नहीं रच रहे थे। वे उपन्यासकार से अधिक विचारक रहे। जैनेन्द्र ने अपने जीवन में बहुत बाद बेटे दिलीप के लिए पूर्वोदय प्रकाशन शुरु किया। पर आदर्शवादी होने से घाटा ही खाया। कनिष्ठ पुत्र प्रदीप उसे संभालते हैं। बड़े बेटे दिलीप कुशाग्र बुद्धि एवं मेधावी थे। उसने तीव्र तार्किक पिता से भी विद्रोह किया। यह जैनेन्द्रजी के जीवन का कष्टपूर्ण अध्याय रहा। युवावस्था में ही दिलीप चल बसे। जैनेन्द्रजी को जीवन का सबसे बड़ा सदमा लगा। वे गम्भीर रूप से बिमार होकर बम्बई आये। अंतिम दो वर्ष पक्षाघात में रहे, नाड़ी भंग हो गया था। मेरुदण्ड में अस वेदना रहती। 24 दिसम्बर, 1988 के दिन उनका पार्थिव शरीर शांत हो गया। वे अपना मृत्यु-लेख इससे पूर्व खुद ही अपने संस्मरण ग्रंथ में ''जैनेन्द्रकुमार की मौत पर'' लिख चुके थे।

63. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (1906-1975)

जन्म : सदल्गा ग्राम (बेलगाम, कर्नाटक), 1906

पिताश्री : नेमन्ना भोमन्ना

शिक्षा : एम.ए., डि.लिट्.

दिवंगति : 1975

भारतीय दर्शन के विश्व प्रसिद्ध विद्वान डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये का सम्पूर्ण जीवन अध्ययन, मनन एवं सम्प्रेषण को ही समर्पित था। उनका जन्म सन् 1906 में कर्नाटक के बेलग्राम जिले के सदल्गा ग्राम के एक परम्परागत धर्मनिष्ठ परिवार में हुआ। पिताश्री नेमन्ना भोमन्ना पुरोहित वंश के होते हुए भी पेशे से खेतिहार थे। आदिनाथ की प्रारम्भिक शिक्षा सदल्गा में हुई एवं तदपुरांत बेलगाम, कोल्हापुर एवं सांगली अध्ययनरत रहकर सन् 1928 में उन्होंने स्नातकीय परीक्षा मुंबई विश्वविद्यालय से ओनार्स के साथ उत्तीर्ण की। सन् 1930 में उन्होंने अर्धमागधी एवं संस्कृत भाषाओं में एम.ए. किया। इसी समय पूना के भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में उनका सम्पर्क अनेक प्राचीन भाषाविदों से हुआ। वे कोल्हापुर के राजाराम कालेज में अर्धमागधी भाषा के लेक्चरर नियुक्त हुए। सन् 1933 में वे पदोन्नति पाकर प्रोफसर बन गए। सन् 1939 में मुंबई विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डी.लिट्. की उपाधि से विभूषित किया गया। सन् 1962 तक वे कोल्हापुर में अध्यापनरत रहे।

उन्हें प्राकृत भाषा-साहित्य में जैन-विद्या के शोध कार्यों के लिए यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन द्वारा अवदान दिया गया। उन्होंने भारत की प्राय: लुप्त भाषाओं अर्धमागधी एवं प्राकृत को छात्रों में लोकप्रिय बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कोल्हापुर के शिवाजी विश्वविद्यालय से भी

उनके अध्यापन-सम्बंध रहे। इस बीच उनके शोध-पत्रों का वाचन-प्रकाशन निरंतर होता रहा। वे जल्दी ही अपने विषय के विश्व प्रसिद्ध विद्वान् माने जाने लगे। ''ज्ञानम् एव अमृतम्'' उनका अध्यापन मंत्र था। वे शिवाजी विश्वविद्यालय के कुछ समय तक वाईसचांसलर भी नियुक्त हुए। सन् 1968 में उन्होंने कोल्हापुर में प्रथम ''अखिल भारतीय प्राकृत-विद्या सेमिनार'' का संयोजन किया। सन् 1971-75 तक मैसूर विश्वविद्यालय के प्राच्य-भाषा विभाग को भी उन्होंने अपनी सेवाएँ दी।

जैन जगत् को उन्होंने अनेकों शोध-उपहार दिए। सन् 1997 में जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर द्वारा प्रकाशित सूचि के अनुसार उन्होंने कुल 35 शोध ग्रंथ लिखे, 165 शोधपत्र विश्व की विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए और 76 समीक्षाएँ एवं 12 प्रा
उपाध्ये को है। उन्होंने जीवराज जैन ग्रंथमाला के 23 एवं भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली के 50 शोध-ग्रंथों का सम्पादन किया। इसके अलावा विश्वविद्यालयों के प्राकृत पाठ्यक्रम के लिए भी उन्होंने अनेक ग्रंथों का लेखन भार स्वीकारा। अपनी मातृ भाषा कन्नड़ में डॉ. उपाध्ये ने 18 शोध-प्रबंध लिखे।

सन् 1939 में डी.लिट्. की उपाधि के लिए जो शोध-प्रबंध उन्होंने लिखे वे अभूतपूर्व थे। वे तीन खण्डों में प्रकाशित हुए—आचार्य कुन्दकुन्द का 'प्रवचन सार' (1935), योगिन्दु देव का 'परमात्म-प्रकाश' (1937) एवं जातसिनन्दी का 'वारांगचरित्' (1938)। सन् 1946 तक हैदराबाद के अखिल भारतीय प्राच्य विद्या कान्फ्रेंस के प्राकृत, पाली, जैन एवं बौद्ध विभाग के अध्यक्ष रहे। सन् 1963 में बिहार के गवर्नर द्वारा उन्हें 'सिद्धांताचार्य' के विरुद से अलंकृत किया गया। सन् 1966 में वे अलीगढ़ में आयोजित 23वें अखिल भारतीय प्राच्य विद्या कान्फ्रेंस के सभापति चुने गए। सन् 1967 में श्रावणबेलगोला में आयोजित 46वें कन्नड़ साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष मनोनीत हुए। सन् 1971 में आस्ट्रेलिया के केनबेरा शहर में समायोजित 28वें अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या काँग्रेस में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से शामिल हुए। वहाँ उन्होंने

अपने शोध-प्रबंध ''आचार्य पूज्यपाद एवं सामन्तभद्र'' का वाचन किया। सन् 1972-75 तक वे भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली की संचालक समिति एवं ट्रस्ट के माननीय सदस्य रहे। सन् 1973 में उन्हें उनके ग्रंथ ''गीता वीतराग'' के लिए स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। सन् 1973 में 29वें अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या काँग्रेस के पेरिस में हुए अधिवेशन में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से वे शामिल हुए एवं अपने शोध-प्रबंध ''यापनीय संघ'' का वाचन किया। सन् 1974 में उन्होंने बेलजियम में आयोजित धर्म एवं शांति के लिए हुई द्वितीय विश्व कान्फ्रेंस में भाग लिया। सन् 1975 में उन्हें मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा उनके शोध-प्रबंध ''सिद्धसेन का न्यायावतार'' के लिए स्वर्ण जयंति पुरस्कार दिया गया। सन् 1925 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा स्वतंत्रता दिवस पर उन्हें ''राष्ट्रीय संस्कृत पण्डित'' के विरुद से विभूषित किया गया।

डॉ. उपाध्ये का सम्पूर्ण जीवन प्राच्य विद्या साहित्य की शोध के लिए ही समर्पित रहा। उन्होंने प्राकृत ग्रंथों के सम्पादन में अधुनातन संसाधनों का प्रयोग किया। इस अभूतपूर्व शोधकार्य के लिए समग्र जैन समाज सदैव उनका कृतज्ञ रहेगा। प्राकृत भाषा एवं जैन साहित्य को उनका शोध-अवदान अविस्मरणीय है। उन्हें वर्तमान का 'कुन्दकुन्द' कहा जाता है। सन् 1977 में शिवाजी विश्वविद्यालय एवं सन् 1980 में मैसूर विश्व-विद्यालय द्वारा उनकी स्मृति में ''डॉ. ए.एन. उपाध्ये मेमोरियल लेक्चर्स'' का संयोजन किया गया।

सन् 1975 में इस महामनीषी का देहावसान हुआ।

64. श्री रामचन्द्र जैन (1913-1995)

जन्म : किकरवाली (श्रीगंगानगर), 1913

पिताश्री : छोगमल सिरोहिया

सृजन : The most ancient Aryan Society (1964), The Ethnology of Ancient Bharat, The Great Revolution, Ancient India, Jaya

दिवंगति : 1995

प्रागैतिहाकि भारत की खोज एवं श्रमण संस्कृति के सही अवदान को वैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने वाले इतिहासकार विरले ही हुए हैं। हमारे यहाँ ऋग्वेद की ऋचाओं से ही भारत की आदि सभ्यता को रेखांकित किये जाने की परम्परा चली आ रही थी। ''आर्यों को मध्य एशिया से सत्ता और सम्पत्ति की टोह में उठा आतताइयों और आक्रमणकारियों का हजूम'' सिद्ध करने वाले खोजी इतिहासकारों की श्रेणी में श्री रामचन्द्र जैन अग्रणी हैं।

बहुमुखी प्रतिभा एवं आकर्षक व्यक्तित्व के धनी श्री रामचन्द्र जैन का जन्म गंगानगर जिले के किकरवाली ग्राम में सन् 1913 में हुआ। आपके पिता श्री छोगमलजी सिरोहिया का देहावसान आपके जन्म के दो माह पूर्व ही हो गया था। मात्र चार वर्ष की अवस्था में आपके ऊपर से माँ की ममता का साया भी काल के क्रूर हाथों ने छीन लिया। पाँचवी कक्षा तक पढ़ने के बाद नानाजी ने उनसे पैतृक कार्य के रूप में दूकान पर बैठने के लिए आग्रह किया किन्तु बालक रामचन्द्र के मन-मस्तिष्क में उच्च अध्ययन और कुछ अलग से कर गुज

पढ़ाई के प्रति उनकी अभिरूचि को
उन्हें उच्च अध्ययन के लिए बीकानेर भेजा। य
के कला संकाय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वा
विद्यार्थी जीवन से ही घर कर गया था। अपने अध्ययन का खर्च निकालने के लिए वे अध्यापन और अनुवाद का कार्य करने लगे।

एल.एल.बी. करने के लिए वे बीकानेर से बनारस चले गए। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1937 में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर पुनः राजस्थान लौट आए। विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान उन पर महात्मा गाँधी, शिक्षाविद् मदनमोहन मालवीय आदि के सद्कार्यों का गहरा प्रभाव पड़ा। श्री जैन इस दौरान बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्टूडेंट यूनियन के सचिव भी रहे।

श्री गंगानगर में एक ओर आपने वकालत का कार्य शुरु किया, दूसरी ओर स्वतंत्रता समर में भी सक्रिय हो गए। बहावल नगर (अब पाकिस्तान में) में अपनी पुस्तैनी जमीन की कानूनी लड़ाई के लिए एडवोकेट रामचन्द्र जैन को रायसिंहनगर जाना पड़ा। यह सन् 1946 की बात है। वहाँ एक राजनैतिक सम्मेलन में जब आप मंच पर भाषण दे रहे थे, उसी समय हुए गोली कांड में 'बीरबल' शहीद हो गए। आपको भी कैद कर बीकानेर ले जाकर जेल में बंद कर दिया गया। उस समय आप प्रजा परिषद, गंगानगर के अध्यक्ष थे। रायसिंहनगर में आजादी का झंडा फहराने का श्रेय आपको ही है।

श्री जैन ने संत विनोबा के सर्वोदय एवं भूदान आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी की। विनोबा जी से उनके आत्मीय सम्बंध इतने घने थे कि सन् 1977 में विनोबाजी के गुजर जाने के बाद वर्धा आश्रम के संचालन का भार उन्हें ही सौंपा गया। वे राजस्थान प्रदेश काँग्रेस समिति एवं अखिल भारतवर्षीय क्राँगेस कार्यकारिणी के भी सदस्य रहे।

सन् 1952 के बाद आपका रूझान भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, धर्म और इतिहास के अध्ययन, मनन की ओर हुआ। एक दशक में ही उनके निजी संग्रह में करीब दो हजार बहुमूल्य पुस्तकें एकत्र हो गई, जिन्होंने एक वृहद् पुस्तकालय का आकार ले लिया। वे स्वयं अपने आप में एक शोध संस्थान बन गये। मार्ग दर्शन के लिए अनेक शोधार्थी उनके पास आते थे। श्रीगंगानगर में ''इन्स्टीट्यूट ऑफ भारतोलोजिकल रिसर्च'' संस्थापित करने का श्रेय आपको ही है। आप आरियंटल हिस्ट्री कांग्रेस, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस तथा आर्कियोलोजिकल

सोसायटी ऑफ इंडिया के सदस्य भी रहे। अनेक सम्मेलनों में उन्होंने विविध विषयों पर सारगर्भित शोध-पत्रों का वाचन किया। इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस, इन्टरनेशनल काँग्रेस ऑफ ओरियंटलिस्ट्स, ऑल इण्डिया ऑरियन्टल कान्फ्रेंस आदि के समारोहों एवं अधिवेशनों में उन्होंने अपने शोध-प्रबंधों का वाचन प्रकाशन किया एवं भूरि-भूरि प्रशंसा पाई।

श्री रामचन्द्र जैन के 6 शोध-ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। ''जया'' नामक उनकी शोध-कृति में उन्होंने महाभारत की कथा को नये ढ़ंग से भारत की मूल श्रमण संस्कृति और ब्रह्मआर्यों की बार्हस्पत्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित किया है।

उनके शोध-प्रबंध ''The Most Ancient Aryan Society'' का प्रकाशन सन् 1964 में हुआ। इस ग्रंथ में उन्होंने वेदों के आधार पर आर्यों की संस्कृति को उजागर किया है।

"The Ethnology of Ancient Bharat" उनके शोध-कार्यों का शिखर बिन्दु है। इसमें उन्होंने आर्यों के आगमन से पूर्व के भारत की तस्वीर खींची है। पाश्चात्य इतिहासकारों एवं फारसी लेखकों के हवाले से तत्कालीन भारत के मूल निवासियों का इतिहास उकेरा है। "The Great Revolution" नामक शोध-प्रबंध में उन्होंने ईसा-पूर्व 4000 वर्ष से मानव जाति के विकास-क्रम को मार्क्सवादी दृष्टि से विश्लेषित किया है। गाँधी और श्रमण-संस्कृति की रोशनी में मनुष्य के भावी विकास पथ का अनुसंधान किया है।

शोध-पत्र ''Light Through the Long Darkness'' में उन्होंने आर्यों के मध्य एशिया से भारत में आने का इतिहास दर्ज किया है। ईसा पूर्व 1100 में मध्य एशिया के पर्वतीय इलाकों से उठे ब्रह्मआर्यन् हमलावारों के समूह ने उत्तरी भारत में अपने पाँव जमा लिए थे। उन्होंने आर्यावर्त्त की नींव रखी। ये भौतिक सम्पदा के लोलुपी थे। उनका जीवन लक्ष्य उपभोग तक सीमित था। भारत के मूल निवासी आर्हत संस्कृति के पोषक थे। मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में उसी श्रमण संस्कृति के साक्ष्य उजागर हुए हैं। वे लोग या तो दक्षिण की पहाड़ियों

के उस पार खदेड़ दिए गये या उन्हें आर्य संस्कृति में समाहित कर लिया गया। ऋषि दर्घतमस पहले द्रविड़ मूल के नायक थे, जिन्होंने आर्यों को भारतीय मूल की आध्यात्मिकता का उद्‌बोधन दिया। ऋग्वेद में उनके नाम की पचीस ऋचाएँ हैं।

उक्त शोध-ग्रंथों के अलावा श्री रामचन्द्र जैन ने युनानी लेखक McCryndle के प्राचीन तम यात्रा संस्मरणों ''Ancient India'' का शोधपूर्ण टिप्पणियों के साथ अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किया। उनके अनेक शोध-प्रबंध अप्रकाशित भी रहे।

आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रणीत अणुवत आंदोलन से सक्रिय जुड़ाव रखने और उसमें उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को दृष्टि में रखते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने एडवोकेट रामचन्द्र जैन को 'लौह पुरुष' के सम्बोधन से सम्मानित किया।

जैन साहब की हार्दिक अभिलाषा थी कि इतिहास, धर्म, अध्यात्म, वेद और दर्शन विषयों की उनके द्वारा संग्रहित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें किसी ऐसे संस्थान को दे दी जाएँ जो संस्कृति और धर्म की शोध एवं प्रभावना को समर्पित हो। उनकी मृत्योपरांत उनके परिवार ने उनका वृहद् ग्रंथ संग्रह ''जैन विश्वभारती'' लाडनूँ को प्रदान कर दिया। पुस्तकों के प्रति उनके अनूठे अनुराग का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 81 वर्ष की वृद्धावस्था में भी वे प्रतिदिन 12 घंटे नियमित अध्ययन व लेखन कार्य में संलग्न रहते थे।

27 अप्रैल, 1995 को इस कर्मयोगी का नश्वर शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया। जीवन के अंतिम वर्षों में सचमुच ही उन्होंने एक वीतरागी फकीर का सा जीवन यापन किया। आडम्बरों और अंधविश्वासों को उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। अपने आत्मीय जनों को भी मृत्योपरांत किसीभी तरह का परम्परागत रूढ़िजन्य आडम्बर न करने की हिदायत दी।

65. लाला सुन्दरलाल जैन (1900–1978)

जन्म : लाहौर, 1900

पिताश्री : मोतीलाल जैन (गधैया)

दिवंगति : 1978

ओसवाल कुल के गधैया गोत्र की उत्पत्ति चन्देरी के राठौड़ वंशीय राजा खरहत्थसिंह के परिवार से विक्रम की 12वीं शताब्दी में जैन धर्म अंगीकार कर लेने से मानी जाती है। उनके पुत्र गद्दा शाह के वंशज गधैया कहलाए। इस खानदान के लाला बूटे शाह लाहौर के प्रसिद्ध जौहरी थे। वे महाराजा रणजीतसिंह के कोर्ट ज्वेलर थे। आप लाहौर म्यूनिसिपलिटी के मेम्बर थे। इनके कनिष्ठ पुत्र महाराज शाह हुए। महाराज शाह के ज्येष्ठ पुत्र गंगाराम हुए। इनके पुत्र लाला मोतीलाल हुए। वे संस्कृत एवं अंग्रेजी–दोनों भाषाओं में निष्णात थे। उन्होंने पुश्तैनी जवाहरात के व्यवसाय से हटकर कुछ नया करने का संकल्प लिया।

बीसवीं शताब्दी के शुरु में लाला मोतीलाल ने अपनी धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने के लिए एक 'संस्कृत' पुस्तकों की दूकान करने की ठानी। सन् 1903 में उन्होंने अपनी सहधर्मिणी से ''ऊन की बुनाई'' से अर्जित निजी आय में से सत्ताईस रुपए उधार लिए और एक छोटी-सी दूकान स्थापित की। उनका विश्वास था कि सभी भारतीय भाषाओं की जननी 'संस्कृत' को जिन्दा रखना उनका कर्त्तव्य है। शनैः-शनैः यह छोटी-सी दूकान बड़ी होती गई एवं उन्होंने धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन शुरु कर दिया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र बनारसीदास के सहयोग से 'मोतीलाल बनारसीदास' के नाम से लाहौर में प्रेस स्थापित की। कठिनाइयों के बावजूद अपने-अध्यवसाय, संघर्ष एवं दूर-दर्शिता से उन्होंने पुस्तक व्यवसाय में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। आप आत्माराम जैन सभा के गुजरानवाला अधिवेशन के सभापति चुने गए। आपका स्वर्गवास सन् 1929 में हुआ।

मोतीलाल जी के कनिष्ठ सुपुत्र श्री सुन्दरलाल का जन्म सन् 1900 में हुआ। मात्र 15 वर्ष की वय में दूकान एवं प्रकाशन व्यवसाय का कार्यभार उनके किशोर कंधों पर आ पड़ा। आपको कर्म-कुशलता एवं धर्म परायणता अपने पिता से वरदान रूप में मिली। आप संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी एवं गुजराती भाषाओं के अच्छे जानकार थे। सुन्दरलालजी बड़े प्रतिभाशाली विद्वान् एवं जैन धर्म में निष्ठा रखने वाले श्रावक थे। तांत्रिक अनुसंधान में भी आपकी गहरी रुचि थी। आपने प्राचीन भारतीय दर्शन, वाङ्मय एवं इतिहास ग्रंथों का प्रकाशन चालू रखा। धीरे-धीरे उनकी साख विदेशों में भी जमने लगी।

सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लाला सुन्दरलाल लाहौर (पाकिस्तान) से विस्थापित होकर भारत आए। उस समय वे खाली हाथ थे। लाहौर की सम्पत्ति खोने का कोई मलाल नहीं था। कहते हैं घर की भैंसे भी उन्होंने अपनी जमादारिन (मेहतर) के सुपुर्द कर दी। लालाजी ने बनारस आकर अपनी गृहस्थी फिर से जमाई। कहते हैं लालाजी ने बनारस के बाज़ार में लकड़ी के पट्टे पर किताबें रखकर दूकान का काम शुरु किया था। इसमें सहयोगी हुए उनके सुपुत्र श्री शांतिलाल। धीरे-धीरे प्रकाशन कार्य शुरु हुआ एवं पटना एवं दिल्ली में विस्तारित हुआ। भारतीय दर्शन, धर्म, योग एवं संस्कृति के अलभ्य ग्रंथों का प्रकाशन कर 'मोतीलाल बनारसीदास' फर्म पूरे विश्व में विख्यात हो गयी। फर्म की कुल बिक्री का आधा तो विदेशों को निर्यात होता है। पुस्तक प्रकाशन ने अब एक उद्योग का रूप ले लिया है। भारत से हर वर्ष करीब 60,000 नामांकित ग्रंथ विश्व की 18 भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैण्ड, जापान, ऑस्ट्रेलिया एवं अन्य यूरोपीय देशों में इनकी अच्छी खपत है। प्राचीन भारतीय संस्कृति, धर्म एवं योग के प्रति विदेशों में ज्ञान-पिपासा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ी है। अब इस फर्म से अध्यात्म, इन्डोलॉजी एवं अन्य विषयों की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होती हैं।

लाला सुन्दरलाल के धार्मिक संस्कार बहुत प्रबल थे। सत्य की खोज की लगन उनमें बहुत पुरानी थी। जैन धर्म एवं महावीर के सन्देश को संसार के सम्मुख प्रस्तुत करने का उनका आन्तरिक संकल्प था। उन्होंने अनेक

द्वार खटखटाए पर सन्तोष न हुआ। महावीर का मार्ग काल की धूल से धूमिल हो रहा था। अन्ततः सत्य संकल्प फलवान हुआ। आचार्य रजनीश की प्रवचन रश्मियों से वह पथ फिर आलोकित हुआ। लाला जी की प्रेरणा एवं आग्रह से सन् 1969 में श्री रजनीश ने कश्मीर में श्रीनगर स्थित डल झील के किनारे चश्मेशाही पर गिने-चुने लोगों के मध्य भगवान महावीर की देशना और जीवन पर 26 प्रवचन दिए। इन प्रवचनों का संकल्प 1971 में ''महावीर : मेरी दृष्टि में'' नाम से प्रकाशित हुआ।

भारत के स्वदेशी पुस्तक-प्रकाशन-गृहों में मोतीलाल बनारसीदास सर्वाधिक पुराना कहा जा सकता है। सन् 2003 में इस संस्थान ने अपनी 100वीं वर्षगांठ (शताब्दी वर्ष) मनाई है। इस संस्थान की मिल्कियत एवं देख-रेख इस समय लाला सुन्दरलाल के भतीजे शांतिलाल जी के पाँच पुत्रों के संयुक्त हाथों में है। अग्रज श्री एन.पी. जैन ने समस्त प्रतिष्ठान एवं संयुक्त परिवार की कमान संभाल रखी है।

सन् 1978 में लाला सुन्दरलाल का देहावसान हुआ। उनकी प्रथम वर्शी पर श्री शांतिलाल ने जैन आगम ग्रंथों के प्रकाशन एवं जैन-विद्या के

मोतीलाल बनारसीदास के वर्तमान मालिक श्री जे.पी. जैन, एन.पी. जैन एवं उनका परिवार

प्रचार-प्रसार हितार्थ एक लाख रुपए के ट्रस्ट की घोषणा की थी। सन् 1992 में भारत सरकार ने पुस्तक-प्रकाशन में कीर्तिमान स्थापित करने के उपलक्ष में उन्हें ''पद्मश्री'' के अलंकरण से विभूषित किया।

प्रतिष्ठान के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में समूचे देश में नए युवा लेखकों के हितार्थ अनेक तरह की सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित ग्रंथों में अनेक ग्रंथ ऐसे हैं जिनका समूचे विश्व में अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। पुरी के शंकराचार्य भारती कृष्ण तीर्थ द्वारा लिखित Vedic Mathematics ऐसा ही एक अनुपम ग्रंथ है। संत तुलीदासकृत 'रामचरितमानस' के हिन्दी एवं अंग्रेजी संस्करण भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की दो प्रवृत्तियों का संयोजन इस प्रतिष्ठान द्वारा दिसम्बर 2003 में हो रहा है—''भारत-विद्या के लिए प्रकाशन गृहों का योगदान'' एवं ''सातवीं शदी वैयाकरण-कवि भर्त्तिहरि पर सेमिनार''।

66. श्री विजयसिंह नाहर (1906-1997)

जन्म : अजीमगंज, 1906
पिताश्री : पूर्णचन्द्र नाहर
माताश्री : इन्द्रकुमारी
पद : पश्चिम बंगाल के उपमुख्य मंत्री
दिवंगति : कलकत्ता, 1997

इतिहास पुरुष श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर के सुपुत्र श्री विजयसिंह जी नाहर ने बंगाल की राजनीति में ओसवाल समाज के वर्चस्व को पुनर्स्थापित किया। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में जब बंगाल मुगलिया सल्तनत का ही अंग था, जगत सेठ माणकचन्द एवं फतहचन्द्र गेहलड़ा के खानदान ने बंगाल का दीवान बनकर एवं अजीमगंज स्थित अपनी टकसाल के जरिये बंगाल की राजनीति, राजस्व एवं व्यापार को प्रभावित किया था। जगत सेठ खानदान का सितारा अस्त होने के बाद बीसवीं शदी में नाहर खानदान ने बंगाल के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवेश को अपनी सेवा से संपुष्ट किया।

विजयसिंह जी का जन्म अजीमगंज में सन् 1906 में हुआ। पिता श्री पूर्णचन्द्रजी एवं माता इन्द्रकुमारी ने हर्षोल्लास से संतान का पालन-पोषण किया। आपकी शिक्षा कलकत्ता में ही पूर्ण हुई।

वे मात्र 11 वर्ष की वय में राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य बने। सन् 1920 में श्री मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में हुए कांग्रेस अधिवेशन में वे स्वयं सेवक थे। वे बंगाल के मशहूर क्रांतिकारी विपिन बिहारी गांगुली के दल से जुड़े। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में कई वर्षों तक काँग्रेस स्वयंसेवक दल में रहे। सन् 1928 में आप अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के डेलीगेट चुने गये एवं 1977 तक आप डेलीगेट रहे। इस दीर्घ समय में देश के अनेक बड़े-बड़े नेताओं से आपका सम्पर्क

हुआ जिनमें महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, मोतीलाल नेहरू, मौलाना अब्दूल कलाम आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सी.आर. दास, सरदार पटेल इत्यादि प्रमुख थे। श्री नाहर ने 1930 में अपनी लॉ परीक्षाओं का असहयोग आन्दोलन के दौरान बहिष्कार किया। आपने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया एवं इस दौरान भूमिगत भी हुए। भूमिगत रहकर आप आन्दोलन का सफलतापूर्वक संचालन करते रहे।

आजादी के पूर्व जब काँग्रेस के नेताओं को कलकत्ता नगर में अपनी बैठक इत्यादि करने के लिए कोई समुचित स्थान उपलब्ध नहीं होता था तो आपने अपने निजी भवन 'कुमार सिंह हॉल' के द्वार खोल दिए, जिसमें काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठकें एवं अन्यान्य आयोजन अनेक वर्षों तक होते रहे।

सन् 1942 में जब अखिल भारतीय काँग्रेस ने अपने ऐतिहासिक बम्बई अधिवेशन में ''अंग्रेजों भारत छोड़ो'' प्रस्ताव पास किया तब जालिम अंग्रेज सरकार ने भारत के तमाम बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया था। श्री नाहर भी बंदी बनकार जेल भेज दिये गये। आपके साथ आपके दो परम मित्र श्री भँवरमल सिंघी एवं सिद्धराज ढड्ढा भी गिरफ्तार कर लिए गये। सरकार ने तीनों साथियों को अलग-अलग तीन जेलों में रखा। द्वितीय महायुद्ध के बाद जब अंग्रेज सरकार के पैर लड़खड़ाने लगे तब काँग्रेस के सभी नेताओं को छोड़ दिया गया। श्री नाहर भी छोड़ दिये गये। नाहरजी ने पुनः राष्ट्रीय आन्दोलन में जोर-शोर से भाग लिया।

आप पश्चिम बंगाल प्रदेश कांग्रेस के 1950 से 1958 तक जनरल सैक्रेटरी, 1958 से 1960 तक कोषाध्यक्ष एवं 1969 से 1971 तक सभापति रहे।

नगर के स्वायत्त शासन संस्थान कलकत्ता कॉरपोरेशन के आप 1933 से 1644 तक काउन्सिलर एवं 1918 से 1962 तक एल्डरमैन

रहे। आप बंगाल लेंजिस्लेटिव कोंसिल के 1946-47 में सदस्य रहे। आप पश्चिम बंगाल विधानसभा के 1957 से 1976 तक वरिष्ठ सदस्य रहे। आप पश्चिम बंगाल की कांग्रेस सरकार में 1962 से 1967 तक लेवर एवं इन्फोर्मेशन मिनिस्टर रहे। इस दौरान जिनेवा में हुई इन्टरनेशनल लेवर ऑरगेनाईजेशन की कॉन्फ्रेंस में आप भारतीय दल के नेता बने। आप 1971 में पश्चिम बंगाल सरकार के डिपुटी चीफ मिनिस्टर नियुक्त हुए।

आपने अपने मन्त्रित्व काल में श्रम कल्याण की कई योजनाएँ बनाई एवं व्यवसायिक कर्मचारियों के कल्याण हेतु शॉप इस्टेवलीशमेन्ट एक्ट को प्रभावशाली बनया। 1967 से 1969 के दौरान जब प्रथम युक्त फ्रंस्ट मोर्चे की सरकार बनी उस समय काफी श्रमिक अशांति हो गई थी तब आपने अपनी निजी सूझबूझ से कई मालिक व श्रमिक समझौते करवाए।

व्यक्तिवाद एवं फासिस्टवाद के नाहर जी कट्टर विरोधी रहे हैं। 1975-1976 के दौरान जब इमरजैंसी लगाई गयी तो श्री नाहर ने उसका डटकर विरोध किया। बिहार छात्र आन्दोलन के प्रश्न पर श्री नाहर ने लोकनायक जयप्रकाश नारायण से बातचीत कर मसला हल करने का सुझाव श्रीमती इन्दिरा गाँधी को दिया। इस प्रश्न पर श्रीमती गाँधी एवं सिद्धार्थ शंकर राय से मतभेद होने के कारण आपको काँग्रेस छोड़ देनी पड़ी। आप लोकनायक जयप्रकाश नारायण एवं मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी जनता पार्टी में शामिल हुए। 1977 में हुए चुनाव में आप भारतीय लोकसभा के सांसद चुने गये एवं जनता पार्टी के महामंत्री बने। चुनाव के दौरान शहीद मीनार, जकरिया स्ट्रीट एवं सत्यनारायण पार्क में हुई चुनाव सभाओं में एकत्रित हुई नर मोदिनी श्री नाहर की लोकप्रियता का प्रतीक थी।

श्री नाहरजी मानव एकता के कट्टर समर्थक थे एवं हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख ईसाई, बौद्ध, जैन सर्व धर्मों के समन्वय में विश्वास रखते थे।

आपके चुनाव क्षेत्र में मुस्लिम, ईसाई आदि का बाहुल्य था जो आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। आप भारतीय इसाई समाज द्वारा संचालित कालीन्स इन्स्टीट्यूट के वर्षों प्रेसिडेंट रहे। 1946 से 47 के दौरान साम्प्रदायिक दंगों में आपने शान्ति का संदेश दिया एवं दंगा पीड़ितों के सहायतार्थ शिविर लगा कर दंगा पीड़ितों की मदद की।

श्री नाहर सामाजिक क्षेत्र में एक प्रसिद्ध समाज सेवी एवं क्रांतिकारी नेता रहे हैं। आप रचनात्मक कामों में बहुत रुचि रखते थे। आप गिरिन्द्र बालिका विद्यालय के 1936 में सेक्रेटरी बने। आप कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज के संस्थापकों में थे। आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी सिनेट के लम्बे समय तक सदस्य रहे। आप मौलाना आजाद की अध्यक्षता में बनी सिविल प्रोटेक्शन कमेटी के 1940 से 1942 तक सेक्रेटरी रहे। आप हरिजन एवं पिछड़ी जन-जातियों के परम मित्र थे।

आपने मारवाड़ी समाज में व्याप्त कुरीतियों का मारवाड़ी सम्मेलन के मंच से जबरदस्त विरोध किया। आपने सर्वप्रथम सन् 1932 में अपने घर से पर्दा प्रथा को विदाई दी। 1941 में अपनी प्रथम पुत्री का विवाह जैन पद्धति से किया। आपने सन् 1932 में अपने पिता श्री पूर्णचन्दजी नाहर की अध्यक्षता में अजमेर में आयोजित अखिल भारतीय प्रथम ओसवाल महासम्मेलन में भाग लिया। सन् 1937 में श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा की अध्यक्षता में कलकता में आयोजित अखिल भारतीय चतुर्थ ओसवाल महासम्मेलन में आप प्रधानमंत्री चुने गए। आप ओसवाल नवयुवक समिति द्वारा संचालित ओसवाल पत्र का संपादन भी भँवरमल सिंघी के साथ बड़े दक्षता से करते रहे। बाद में यह पत्र तरूण जैन के नाम से निकाला जाने लगा तथा आप एवं सिंघीजी उसके सम्पादक रहे। आप आशुतोष म्यूजिमय एवं Numismetic सोसाइटी आप इण्डिया, पूर्णचन्द नाहर इन्स्टीट्यूट ऑफ जैनोलाजी एवं गुलाब कुंवर लाइब्रेरी के आजीवन सदस्य एवं चेयरमैन रहे। आप तालतल्ला पब्लिक लाइब्रेरी के प्रेसिडेंट रहे। आप बंगाल बुद्धिष्ट ऐशोसियेशन के चैयरमेन रहे एवं भारत-जापान बुद्धिष्ट संघ के भी चेयरमैन रहे।

श्री नाहर खेल-कूद में भी काफी रूचि रखते थे। आप 1952 में हेलसिंकी में हुई ओलम्पिक प्रतियोगिताओं में भारतीय बोक्सिंग दल के मैनेजर बने। आप राजस्थान स्पोर्टिंग क्लब, युनियन क्लब एवं जिमनेजियम क्लब कलकत्ता के प्रेसिडेन्ट रहे।

आपने धार्मिक तीर्थों के प्रबंध एवं विवाद सुलझाने में मदद दी। आप पावापुरी तीर्थ के प्रबन्ध ट्रस्टी रहे। श्री नाहर सन् 1977 में बिहार स्टेट बोर्ड ऑफ रिलीजियस ट्रस्ट के प्रेसिडेन्ट बने। आप कलकत्ता जैन सभा के वर्षों तक प्रेसिडेन्ट रहे।

आप जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर ट्रस्ट, कलकत्ता के भी ट्रस्टी रहे। कलकत्ता जैन समाज के आप प्रमुख नेता थे। आपने वर्ल्ड वैजिटेरियन काँग्रेस एवं सर्व धर्म सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशनों में प्रमुखता से भाग लिया। आप नाहर फैमेली ट्रस्ट के आजीवन ट्रस्टी थे। श्री नाहर ने भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव का बंगाल एवं बिहार में सफल संयोजन किया। आपकी धर्मप्रियता एवं श्रावक चरित्र देखकर राष्ट्रसंत मुनि नगराज जी ने आपको 'श्रावक रत्न' सम्बोधन दिया।

67. श्री मोहनलाल बांठिया (1908-1976

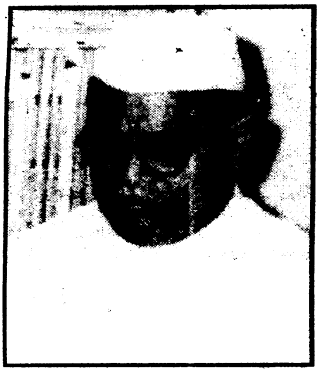

जन्म : 1908

पिताश्री : छोटूलाल बांठिया

सृजन : लेश्या कोष, क्रिया कोष, वर्धमान जीवन कोष, योग कोष, पुद्गल कोष

दिवंगति : कलकत्ता, 1976

जैन दर्शन के उद्भट विद्वान् एवं ऊर्जाशील कर्मयोगी श्री मोहनलालजी बांठिया के जीवन प्रसंग प्रेरणास्पद हैं। उन्होंने जैनागमों एवं वाङ्मय का तलस्पर्शी अध्ययन कर जो नवनीत प्रस्तुत किया वह अभूतपूर्व है। आधुनिक दशमलव प्रणाली के आधार पर जैन-दर्शन एवं चारित्रिक विषयों का वर्गीकरण एवं प्रस्तुतीकरण उनकी मौलिक परिकल्पना का मूर्त्तरूप है, जिसने भारतीय दर्शन के सभी विद्वानों की भूरि-भूरि प्रशंसा अर्जित की है। उनके रूपायित कोशों की श्रृंखला की ज्ञान-रश्मियाँ मिथ्यात्व एवं अज्ञान का अंधकार दूर करने में सक्षम है।

बांठिया गोत्र का प्रमुख केन्द्र बीकानेर रहा। वहाँ ''बांठिया चौक'' नाम से एक स्वतंत्र मौहल्ला है। यहीं के श्री जयपालजी बांठिया चूरू ब्याहे गये। वे चूरू जाकर वहीं बस गये। चूरू के वर्तमान बांठिया परिवार उन्हीं के वंशज हैं। वे सभी प्रारम्भ में मंदिर मार्गी ओसवाल जैन थे। पायचन्दगच्छीय आराधना के लिए उन्होंने वहाँ उपासरा भी बनवाया जो अब भी मौजूद है। चूरू में बांठिया घरों की संख्या संवत् 1884 में मात्र 12 थी। वर्तमान में बांठिया परिवार के चूरू में करीब 70 घर हैं। सभी ने कालांतर में तेरापंथी सम्प्रदाय की आस्था अंगीकार की।

इन्हीं के वंशज श्री छोटूलाल जी बांठिया की सहधर्मिणी की कुक्षि से सन् 1908 में एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया। नामकरण हुआ- मोहनलाल। जैन संस्कार उन्हें विरासत में मिले। शैशवावस्था में ही

पिता का देहांत हो गया। बड़े भाई युवावस्था में काल-कवलित हो गए। मोहनलालजी मेधावी थे। उन्होंने स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण की एवं संस्कृत में डिप्लोमा हासिल किया। उनका विवाह जियागंज के श्री बुधसिंहजी बोथरा की कन्या से हुआ। बड़े होकर मोहनलालजी ने कुछ समय तक पाट व्यवसाय में नौकरी की। तदनन्तर स्वयं विदेशों से आयात शुरु किया। विदेशी 'ताश' की सोल एजेंसी ली। उससे स्थाई आमदनी होने लगी। फिर छाता बनाने की स्टिक का जापान से आयात शुरु किया।

आप परिश्रमी, मिष्टभाषी, मिलनसार, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी थे। अत: जीवन में समझौता करने से सदैव इन्कार करते रहे। पर किसी का विरोध भी नहीं किया। वे अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों से जुड़े। जैन सभा, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ओसवाल नवयुवक समिति आदि सार्वजनिक संस्थानों के महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। आपको प्राचीन पांडुलिपियों के संकलन का शौक था। कुछ समय तक ओसवाल नवयुवक समिति के मुख-पत्र 'ओसवाल नवयुवक' का सम्पादन भार संभाला। आप समिति की व्यायामशाला के उत्साही सदस्य थे। जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता के चुनाव में आप युवकों द्वारा मंत्री पद के प्रत्याशी रूप में खड़े किए गए। मुख्य श्रावकों द्वारा प्रत्याशी पद के लिए नाम वापिस लेने के अनुरोध एवं विरोध के बावजूद आप 'मंत्री' चुने गये। यह आपके प्रति युवकों की श्रद्धा और आस्था का प्रतीक था।

जैनधर्म की प्रभावना के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। सन् 1931 में अहमदाबाद एवं बड़ौदा में 'बाल दीक्षा निरोधक प्रस्ताव' आया तो आप उसका विरोध करने वालों में अग्रणी थे। अन्तत: प्रस्ताव पारित नहीं हुआ। सन् 1970 में आचार्य तुलसी के रायपुर चातुर्मास के समय जब उनके ग्रंथ 'अग्नि परीक्षा' को लेकर विवाद उठा एवं मध्यप्रदेश सरकार ने ग्रंथ प्रतिबंधित घोषित कर दिया तो मोहनलालजी उसे न्यस्त करवाने में सतत् प्रयत्नशील रहे। अन्तत: वे सफल भी हुए। कलकत्ता में आचार्य तुलसी के चातुर्मास के दौरान जब मलमूत्र प्रकरण उठा तब भी मोहनलालजी ने समस्या का समाधान निकालने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तेरापंथ सम्प्रदाय में आचारिक नवोन्मेष को उनका पूर्ण समर्थन प्राप्त था। वे जीवनभर आगमों के शोधकार्य में संलग्न रहे। उन्होंने इस हेतु 'जैन दर्शन समिति' की स्थापना की। आगमों में वर्णित विषयों का दशमलव प्रणाली से वर्गीकरण कर उनका कोश निर्माण उनकी मौलिक परिकल्पना का अंग था। उन्होंने लेश्या कोष, क्रिया कोष, वर्धमान जीवन कोष, योग कोष, पुद्गल कोष तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके इस शोध यज्ञ में सहायक बने श्री श्रीचन्दजी चोरड़िया। इन ग्रंथों में से कुछ उनकी मृत्योपरांत ही प्रकाशित हो सके। उन्होंने जैन तत्त्व ज्ञान की परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार किए। तत्त्वज्ञान की सर्वप्रथम परीक्षाएँ चालू करने का श्रेय भी मोहनलालजी को है। आचार्य तुलसी ने उनके शोध-अवदान का सम्मान करते हुए उन्हें 'तत्त्वज्ञ श्रावक' विरुद से विभूषित किया।

जब तेरापंथी महासभा द्वारा आगम शोध का प्रकाशन कार्य आरम्भ हुआ तो इसके प्रणेता 'महादेव कुमार सरावगी ट्रस्ट' की ओर से यह दायित्व मोहनलालजी को ही सौंपा गया। उन्होंने ग्रंथों के कई फर्मे तैयार भी कर लिए। पर आचार्य तुलसी उनकी निष्पक्ष दृष्टि से संतुष्ट नहीं हुए। उनके आदेश से आगम सम्पादन व प्रकाशन का कार्य उनसे लेकर अन्य विद्वानों के सुपुर्द कर दिया गया। यह मोहनलालजी के सतत श्रम व अध्यवसाय का अपमान था। पर मोहनलालजी की आचार्य तुलसी के प्रति श्रद्धा लेशमात्र न डिगी। प्रणेता सरावगी बंधु आचार्यश्री से उस आदेश पर पुनर्विचार का भी अनुरोध करना चाहते थे। वे इस बदलाव के लिए तैयार न थे। परन्तु मोहनलालजी ने मना कर दिया एवं वे सदैव प्रकाशन कार्य में सहयोग करते रहे।

मोहनलालजी प्रज्ञाशील कर्मयोगी थे। वे गृहस्थ की भूमिका में अवस्थित रहते हुए भी फलासक्ति से सर्वथा अलिप्त रहे।

सन् 1976 में मोहनलालजी स्वर्गस्थ हुए।

68. डॉ. कामता प्रसाद जैन (1901-1964)

जन्म : केम्पवेलपुर (सिंध), 1901
पिताश्री : लाला प्रागदास जैन
माताश्री : भगवती देवी
उपाधियाँ : डॉक्टर ऑफ लॉ (करांची), पी-एच.डी. (कनाडा), साहित्य मनीषी (बनारस), सिद्धांताचार्य (आरा)
दिवंगति : अलीगंज, 1964

महान समाजसेवी प्रसिद्ध जैन विद्वान एवं विश्व जैन मिशन के संस्थापक डॉ. कामता प्रसाद का समग्र जीवन धर्म एवं समाज की सेवा करने एवं अखिल विश्व में अहिंसा धर्म का प्रचार करने में समर्पित रहा। कुछ लोग बड़े कुल में जन्म लेकर बड़े बन जाते हैं। कुछ लोग बड़ों का सान्निध्य पाकर बड़े बना करते हैं और कुछ-एक हैं जो अपनी सूझ-बूझ और श्रम सातत्य से बड़ों की परिधि को स्पर्श कर लेते हैं। बाबू कामता प्रसाद जैन के बड़े होने में उक्त तीन बातों का बेजोड़ संगम और सुयोग प्राप्त था।

अपने समय के बड़े साहूकार तथा अंग्रेजी तोपखानों में कमीशन एजेन्ट लाला प्रागदास जैन के घर कैम्पवेलपुर सिन्ध, हैदराबाद (पाकिस्तान) में प्रथम मई सन् 1901 के दिन कामता प्रसाद जी का जन्म हुआ। माता भगवती देवी से बालक को धर्म के संस्कार एवं उत्तम शिक्षण प्राप्त हुआ। उनकी प्राइमरी शिक्षा हैदराबाद (सिंध) में हुई। अल्प वय में ही उनका विवाह हो गया। परन्तु प्रथम पत्नि के जल्द देहांत हो जाने से पिता के अत्यंत आग्रह के कारण 23 वर्ष की वय में उनका दूसरा विवाह हुआ। लालाजी फोज के लिए रसद देने एवं बेंकर कन्ट्राक्टर रूप में व्यवसाय करते थे। पेशावर, रावलपिंडी, हैदराबाद (सिंध) आदि

शहरों में उनकी पेढ़ियाँ थी। सन् 1920 में कामता प्रसाद भी इन व्यवसायों से जुड़े। सन् 1930 में लश्कर विभाग ने भारतीय साहूकारों से नाता तोड़ लिया। तब से लाला प्रागदास ने जमींदारी शुरु की। उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। सन् 1948 में उनका देहावसान हो गया। परिवार की जिम्मेदारी कामता प्रसाद के कंधों पर आ पड़ी। कामता प्रसाद सन् 1931 में अलीगंज के आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। वे अलीगंज रहने लगे। सन् 1949 तक वे उस पद पर रहे। सन् 1943 से 1948 तक उन्होंने कलेक्टर का पद भार भी संभाला। सर्व-साधारण ने उनके सेवाभाव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

आपने विद्यालयी नौवीं कक्षा तक शिक्षार्जन कर, घर पर ही प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, उर्दू, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा का गम्भीर अध्ययन/अनुशीलन किया। आपने अपने जीवन में खूब पढ़ा, विचारा और स्वान्त: सुखाय और पर-जन-हिताय खूब लिखा। बाबूजी बोले बहुत कम, लेकिन अपने जीवन के आखिरी दशक में वह अखिल विश्व जैन मिशन के बड़े-बड़े अधिवेशनों और अहिंसा सम्मेलनों में प्रभावपूर्ण शैली में बोले और देश के उत्तम वक्ताओं की पंक्ति में समादृत हो गए।

बाबूजी ने अनेक रूपों में लिखा है। वे हिन्दी-अंग्रेजी-ट्रैक्ट-लेखन के जनक माने जाते हैं। गवेषणात्मक आलेखन में आपको महारत हासिल थी। 'गिरनार गौरव', 'उड़ीसा में जैन धर्म', 'कम्पिल कीर्ति', 'भगवान् ऋषभदेव', 'भगवान पार्श्वनाथ', 'भगवान महावीर', 'महावीर तथा बुद्ध', 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि', 'आचार्य कुन्दकुन्द की सूक्तियाँ' और 'तीर्थंकर एण्ड दियर टीचिंग' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ आज भी मील के पत्थर माने जाते हैं। जैन साहित्य तथा इतिहास पर आपका लेखन प्रामाणिक तथा मार्गदर्शक के रूप में समादृत रहा है। बाबूजी ने जैन साहित्य, संस्कृति और इतिहास पर सैकड़ों ट्रैक्ट्स और ग्रन्थों का यशस्वी लेखन किया है। जैन जाति का इतिहास, जैन वीरों का इतिहास, संक्षिप्त जैन इतिहास एवं प्राचीन जैन लेख संग्रह आपके मुख्य ग्रंथ है। इतिहास और साहित्य की शोध-पत्रिकाओं और जर्नल्स में आपके अनेक आलेख

चर्चित रहे हैं। अपने जीवन काल में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में जो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे वे बहुत लोकप्रिय हुए, जैसे–महाराणी चेलणा, सत्यमार्ग, जैन वीरांगनाएँ, दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि, पतितोद्धारक जैन धर्म, Religion of Tirthankers, Some historical Jain Kings and Heroes आदि। सन् 1964 में प्रकाशित Religion of Tirthankers नामक 514 पृष्ठों का विशाल ग्रंथ बाबूजी की अंतिम मूल्यवान भेंट थी जैन समाज को।

सन् 1923 से लगातार 30 वर्ष तक कामताप्रसादजी ने ''वीर'' पत्रिका का सम्पादन किया। बाबूजी ''सुदर्शन'' (एटा) से लेकर ''जैन सिद्धान्त भास्कर'' (आरा, बिहार) तक अनेक साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक तथा त्रैमासिक पत्रिकाओं के मानद सम्पादक भी रहे हैं। आपने 'अहिंसावाणी' तथा 'दी वॉइस ऑफ अहिंसा' (मासिक) के संस्थापक सम्पादक के रूप में अनेक विशेषांक निकाल कर देश-विदेश में ख्याति अर्जित की है। ये सभी विशेषांक आज भी सन्दर्भ गन्थों के रूप में अपना महत्त्व रखते हैं। सम्पादक के रूप में आपने अनेक भाई-बहिनों को लेखक बना दिया है। इन सभी लेखकों ने अहिंसा, शाकाहार तथा सदाचार पर प्रभूत लेखन कर समाज में धार्मिक वातावरण बनाया है। बाबूजी ने अखिल विश्व जैन मिशन की स्थापना कर देश-विदेश में जैन धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में पहल की। आपके लेखकीय प्रभाव से अनेक विदेशी बन्धुओं ने जैनधर्म स्वीकार किया। मिशन की विभिन्न प्रवृत्तियों के संचालन हेतु कामताप्रसादजी ने हजारों रुपए खर्च किये। निर्धन एवं अनाथ विद्यार्थियों की सहायता की।

आप अपनी न्यायप्रियता तथा प्रशासन पटुता के लिए अनेक बार प्रशंसित और पुरस्कृत भी हुए हैं। बाबूजी ने अनेक पुरस्कार एवं स्वर्ण तथा रजत पदक प्राप्त किये। आपको करांची (पाकिस्तान में) में बेरिस्टर सम्पतराय द्वारा स्थापित ''जैन एकेडमी'' से सन् 1942 में डॉक्टर ऑफ लॉ, कनाडा से ईसाई अंतर्राष्ट्रीय शिक्षण संस्थान द्वारा सर्वे धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पी-एच.डी., बनारस से संस्कृत साहित्य

परिषद द्वारा 'साहित्य मनीषी' तथा आरा (बिहार) से 'सिद्धान्ताचार्य' जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया। आप रॉयल एशियाटिक सोसायटी लंदन एवं जर्मन केसरलिंग सोसाईटी के सदस्य रहे हैं। देश और विदेश की अनेक संस्थाओं और संगठनों के आप सम्माननीय सदस्य रहे हैं। दिल्ली में आयोजित विश्व शाकाहार सम्मेलन के आप स्वागत मंत्री थे।

विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य रजनीश, महापण्डित अगरचन्द नाहटा, डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी, श्री आदीश्वर प्रसाद जैन, केन्द्रीय मंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी तथा देश के अनेक विद्वान, साहित्यकार तथा समाजसेवी अलीगंज पधारकर आपके द्वारा आयोजित 'वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव' में सम्मिलित हुए तथा महोत्सव के सभी सत्रों में सत्य, अहिंसा तथा धर्म पर उल्लेखनीय प्रवचन हुए। हजारों श्रोताओं ने मुक्तकंठ से अनुशंसा कर धर्म लाभ लिया। 17 मई, 1964 को आप णमोकार महामंत्र का उच्चारण करते हुए महायात्रा पर चले गए। व्यक्तित्व और कृतित्व के सार्थक अवदान के लिए समग्र जैन समाज बाबू कामता प्रसाद का चिर ऋणी रहेगा।

69. श्री ऋषभदास रांका (1903-1977)

जन्म : फतेपुर (खानदेश), 1903

पिताश्री : प्रतापमलजी रांका

दिवंगति : मुम्बई, 1977

समस्त जैन समाज के श्रद्धाभाजन ओसवाल कुल दीपक श्री ऋषभदास रांका सौजन्य की प्रतिमूर्ति थे।

रांकाजी का जन्म महाराष्ट्र के खानदेश जिले में फतेहपुर ग्राम में सन् 1903 में हुआ। उनके पूर्वजों का मूल रहवास राजस्थान था। रांका गौत्र की उत्पत्ति गौड़ क्षत्रियों से मानी जाती है। इनके पूर्वजों में रांका और बांका दो भाई हुए। रांका के वंशज 'रांका' गोत्र नाम से चिह्नित हुए। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार इनके पूर्वज पंजाब में रांका जाति की भेड़ों की ऊन का व्यवसाय करते थे अत: 'रांका' कहलाए। मात्र 14 वर्ष की उम्र में ऋषभदास ने कपड़ा-व्यवसाय में अपने पिता प्रतापमल की सहायत करने लगे थे। कुछ वर्ष तक ''बच्छराज खेती लिमिटेड'' कम्पनी में भागीदार रहकर खेती की एवं एक डेयरी स्थापित की। तदुपरांत वे बीमा व्यवसाय से जुड़े। यही उनके अर्थोपार्जन का प्रमुख जरिया रहा। सन् 1971 में वे सम्पूर्णत: व्यवसाय से निवृत्त होकर समाज-सेवा को समर्पित हो गए।

जब वे मात्र 20 वर्ष के थे तभी से उन पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ने लगा था। वे महात्मा गाँधी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित होकर खादी के प्रचार-प्रसार एवं वितरण व्यवस्था के कार्य में लगे। सन् 1931 में नमक-सत्यागह में सक्रिय भाग लेने से साढ़े चार मास जेल भुगती। सन् 1932 में भी जेल गए। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में तेरह महीने जेल काटी। राष्ट्रीय संग्राम में उनका अवदान जैन समाज के लिए फख्र की बात थी। प्रारम्भ में वर्धा, जलगाँव, पूना उनके राष्ट्रीय कार्यकलापों का क्षेत्र रहा।

वे महात्म गाँधी, सेठ जमनालाल बजाज, बाल गंगाधर तिलक, बालकृष्ण गोखले आदि उच्च कोटि के नेताओं के निकट सम्पर्क में रहे। सेवा, स्वार्थ त्याग, समाज कल्याण की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी। रचनात्मक कार्यों में रुचि के कारण सभी से उनके आत्मीय सम्बन्ध रहे। हरिजनोद्धार, गौ-सेवा के विभिन्न कार्यक्रमों से वे सर्वदा जुड़े रहे।

उनके पुत्र राजेन्द्र की अल्पवय में मृत्यु हो गई थी, जिससे उनके हृदय पर वज्राघात हुआ। पर स्वतंत्रता संघर्ष के सेनानी ने यह आघात सहकर भी अपनी प्रवृत्तियाँ चालू रखी। बिहार, गुजरात एवं राजस्थान के दुष्काल एवं भूकम्प पीड़ितों की सहायतार्थ बड़ी तत्परता से उन्होंने सेवा कार्यों को अन्जाम दिया। मुम्बई में महावीर कल्याण-केन्द्र की स्थापना का श्रेय आपको ही था। इस संस्था द्वारा लाखों लोगों तक अनाज व कपड़ा पहुँचाया गया। उनके रहवास की व्यवस्था कर इस संस्था ने ऐतिहासिक महत्त्व का काम किया।

सन् 1946 से वे ''भारत जैन महामण्डल'' की प्रवृत्तियों से जुड़े। वे समस्त जैन समाज की एकता के प्रबल समर्थक थे एवं सदैव इस हेतु प्रयत्नशील रहे। सन् 1948 में आपने संस्था के मुखपत्र ''जैन जगत'' का सम्पादन भार संभाला। थोड़े ही समय बाद वे संस्था के प्रधानमंत्री मनोनीत हुए। सन् 1949 में मण्डल के मद्रास अधिवेशन के वे सभापति चुने गए। चन्द वर्षों में ही वे समस्त जैन समाज में लोकप्रिय हो गए। सन् 1958 से मुम्बई को उन्होंने अपना स्थायी निवास बना लिया। सन् 1971-72 में भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव समिति के वे महामंत्री चुने गए। इस समिति द्वारा साहित्य, शिक्षण, सेवा, तीर्थोद्धार, स्मारकों की रचना, नये चाँदी के सिक्कों का भारत सरकार द्वारा निर्माण एवं वितरण, कलात्मक चित्रों की प्रदर्शनी, सत्साहित्य का प्रकाशन एवं देश-विदेश में भगवान के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार आदि विविध कार्यों का सफलता से संचालन किया गया।

सन् 1968 में वे अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के उपाध्यक्ष चुने गए। आपने कुछ समय तक 'अणुव्रत' पत्र का सम्पादन भार भी संभाला। समाज की एक सूत्रता एवं सर्वमान्य जैन दर्शन संहिता के निर्माणार्थ एक

राष्ट्रीय समिति का गठन हुआ। श्री विनोबा भावे के सान्निध्य में जैन समाज को ''समण सुत्त'' नामक सर्वमान्य ग्रंथ की ऐतिहासिक भेंट आप ही के सद्प्रयासों का सुफल था।

तेजस्वी जैन छात्रों के शिक्षण की व्यवस्था एवं निराधार गरीब महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि से रांकाजी के प्रयास से ''जैन गृह उद्योग'' नामक संस्था की स्थापना हुई। इस हेतु उन्होंने पूना के पास चिचंवड़ में एवं अहमदनगर के पास चांदवड़ में ''जैन विद्या प्रचारक मण्डल'' की स्थापना की। इन संस्थाओं से विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप दी जाती है।

इस तरह सतत राष्ट्र एवं समाज की सेवा करते हुए सन् 1977 में रांकाजी ने देह त्याग किया।

70. श्री कस्तूरचन्द ललवानी (1921–1983)

जन्म : राजशाही, बंगलादेश, 1921

पिताश्री : रावतमल ललवानी

माताश्री : भृतु बाई

उपलब्धियाँ : आंग्ल अनुवाद : उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, कल्पसूत्र, जैन कहानियाँ

कृतियाँ : Burden of the Past, Meddeval Muddle, Sunset in India, General theory

दिवंगति : 1983

सरस्वती मन्दिर के मौन जैन साधकों में श्री कस्तूरचन्द ललवानी उल्लेखनीय है। प्रख्यात अर्थशास्त्री, दार्शनिक, इतिहासवेत्ता एवं अधिकारी जैन विद्वान् कस्तूरचन्दजी का जन्म राजशाही (बंगला देश) में सन् 1921 की 21 जनवरी के दिन हुआ था। आपके पिताश्री व्यापारी होते हुए भी पक्के व्यवसायी नहीं थे। वे सामान्य मुनाफा रखते थे। हृदय इतना दयालु था कि यदि कोई याचक आ जाता तो परिवार की चिन्ता किए बिना उसको दान देकर तृप्त कर देते थे। उदारता के चलते एक बार उन्हें पाँच वर्ष तक निरन्तर एकाहारी रहना पड़ा था। वे शिक्षा प्रेमी थे। अपने पुत्रों को पढ़ाने में किसी भी प्रकार की मानसिक संकुचितता को स्थान नहीं दिया। उनकी यह भावना सार्थक हुई। कस्तूरचन्द मेधावी छात्र थे। उन्होंने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हें दो छात्रवृत्ति भी मिली जिसमें एक संस्कृत के लिए थी। इण्टरमीडियट परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण आपने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्वर्णपदक व राजशाही कॉलेज से रजत पदक प्राप्त किया। आपने बी.ए. अर्थशास्त्र में ऑनर्स लेकर प्रथम श्रेणी से पास किया। सन् 1943 में आपने एम.ए. में भी कलकत्ता विश्वविद्यालय से फर्स्ट क्लास प्राप्त किया।

आपका अध्यापक जीवन उसी वर्ष फरीदपुर राजेन्द्र कॉलेज से प्रारम्भ हुआ। 1944 में आप पूना कॉलेज ऑफ कॉमर्स से जुड़े एवं 1946 तक वहीं रहे। तत्पश्चात् आप कलकत्ता में जयपुरिया कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। कुछ समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी प्रशिक्षण किया।

सन् 1945 में आपका विवाह कमला सामसुखा से हुआ।

सन् 1949 में आपने इन्स्टिट्यूट ऑफ बैंकिंग एण्ड इकानामिक्स की स्थापना की जो आगे जाकर अर्थ वाणिज्य गवेषणा मन्दिर के रूप में विकसित हुआ। यहीं से आपने वर्तमान अर्थनीति की समस्याओं पर सैकड़ों परिपत्र निकाले जिनकी छात्रों एवं शिक्षकों में काफी माँग रही।

सन् 1951 में आपने दिल्ली पोलिटेकनीक में योग दिया। दिल्ली में आप तीन वर्ष से अधिक नहीं रहे। सन् 1954 में आप इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी के तत्कालीन डाइरेक्टर डॉ. ज्ञानचन्द्र घोष के आग्रह पर खड़गपुर आए और वहीं अपना सम्पूर्ण जीवन बिताया। जब आप खड़गपुर में थे 1960-61 में टी.सी.एम. प्रोग्राम में अमेरिका गएं और नौ महीने तक वहीं अवस्थित रहकर वहाँ के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भाषण दिए। लौटते समय आपने लन्दन, पेरिस, बर्लिन, जेनेवा, रोम, एथेन्स आदि स्थानों का भ्रमण किया। सन् 1980 में ''द्वितीय अन्तर्जातीय कांग्रेस ऑफ लीगल साइन्स'' का अधिवेशन नीदरलैण्ड के अमस्टारडम शहर में हुआ था। वहाँ भी आप आमंत्रित होकर गए एवं अपने विचार व्यक्त किये।

सन् 1982 में आपने आई.आई.टी. के ह्युमनिटिज डिपार्टमेन्ट के अध्यक्ष के रूप में अवकाश प्राप्त किया। आपने अवकाश प्राप्त समय के लिए भी एक प्रोग्राम बनाया था—अपने असमाप्त ग्रन्थों एवं नये ग्रन्थों के सृजन के लिए। किन्तु भवितव्यता कुछ और ही थी। पूर्णत: स्वस्थ एवं कर्मठ व्यक्ति जिन्होंने जीवन में कभी दवाई खायी ही नहीं, अचानक फरवरी, 1983 में करोनरी थ्रम्बोसिस से आक्रान्त हुए। फिर आश्चर्यजनक रूप से स्वस्थ भी हो गए पर वह स्वस्थता स्वल्पकालीन

थी। अगस्त में जब पुनः कैरोनरी थ्रम्बोसिस का आक्रमण हुआ उसके साथ जूझते हुए अन्ततः 10 दिसम्बर, 1983 को आप स्वर्गवासी हो गए।

त्रेसठ साल की अल्पायु में ही आपने विपुल मात्रा में ग्रन्थ, निबन्ध, समीक्षाएँ लिख डाली थीं। आपने भगवान महावीर की जो जीवनी लिखी वह अपने ढंग की निराली थी। इसमें उन्होंने महावीर को देव के रूप में नहीं, एक महामानव के रूप में चित्रित किया है।

आपने भगवती सूत्र जैसे विशाल ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद किया। यह ग्रन्थ भगवान महावीर और उनके शिष्य इन्द्रभूति गौतम के कथोपकथन के रूप में संयोजित हैं। दुर्भाग्य से आप इस ग्रन्थ के मात्र तीन भाग ही प्रकाशित कर सके।

आपने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प सूत्र आदि का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया है। दशवैकालिक व कल्पसूत्र तो 'मोतीलाल बनारसीदास' द्वारा प्रकाशित हुए हैं। दशवैकालिक सूत्र में सम्यक् चारित्र–विधि का व कल्पसूत्र में जिन चरित्र और समाचारी आदि का वर्णन है। उत्तराध्ययन सूत्र का आपने कविता में अनुवाद किया है और इसे आपने भगवान महावीर की अन्तिम देशना कहा है। कारण इसके 36वें अध्याय की देशना करते-करते ही महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

इन आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी प्रथम की जैन कहानियों को अंग्रेजी में तीन खण्डों में अनुवाद किया है। इन कहानियों के अनुवाद के पीछे आकर्षण था–इन कथानकों के जैन तत्त्वों का। जैन दर्शन का मुख्य तत्त्व हैं कर्मवाद जो अन्य दर्शनों से कुछ भिन्न हैं। मनुष्य के कर्म उसे जन्म-जन्म में परिभ्रमण कराते हैं। अन्ततः शुभ संयोग से वह साधु धर्म की ओर आकृष्ट होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

दर्शन उनके अध्ययन, मनन का प्रिय विषय था। जब भी उन्हें समय मिलता वे दार्शनिक किताबें पढ़ते। अरअयेल, स्पेंगलर, टायनवी का अध्ययन करने के पश्चात् जब उनकी दृष्टि भारतीय इतिहास पर पड़ी तो उन्हें लगा कि हमारे इतिहासकारों ने हमें जो इतिहास दिया है वह सही नहीं है। अतः उन्होंने दार्शनिक पृष्ठभूमि की सहायता से उसे नवीन

रूप में लिखा। उन्होंने भारतीय इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया। पहले खण्ड का नाम दिया "Burden of the Past". इसमें उन्होंने दिखाया कि उस समय आर्य व अनार्य संस्कृति का जो सम्मिश्रण हुआ उसमें आर्य ही अधिक अनार्यीकृत हुए। दूसरे भाग का नाम Medieval Muddle। उस समय हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति परस्पर सम्मुखीन हुई किन्तु मिली नहीं, परस्पर विरोधी ही रही। तीसरे भाग का नाम दिया Sunset in India। इसमें उन्होंने दिखाया कि पाश्चात्य सभ्यता का विरोध हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति ने किया। परिणाम हुआ अराजकता। हमने पश्चिमी सभ्यता की अच्छाई को तो ग्रहण नहीं किया उसके विकृत रूप को पकड़ लिया। इस ग्रन्थ के पहले दो भाग तो प्रकाशित हुए पर तीसरा अप्रकाशित रहा।

आप ने जे.एम. केइन्स की General Theory का बंगला में अनुवाद किया, जिसे कि 1982 में वेस्ट बेंगाल बुक बोर्ड ने प्रकाशित किया। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता को भी बंगला पद्य में अनुदित किया है। वे कवि तो नहीं थे, फिर भी उन्होंने जो अनुवाद किया है वह सरल व सुललित है। अर्थशास्त्र एवं भारतीय अर्थतंत्र से संबंधित कुल 28 ग्रंथ उन्होंने लिखे। समस्त जैन समाज एवं अर्थशास्त्र की विद्वत् मण्डली में कस्तूरचन्दजी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

71. पं. दलसुख भाई मालवणिया (1910-1994)

जन्म : सायला (गुजरात), 1910

उपाधि : पद्मविभूषण

दिवंगति : 1994

जैन विद्या के उन्नायक सुप्रसिद्ध दार्शनिक पद्मविभूषण पं. दलसुख भाई मालवणिया का जीवन एक सशक्त स्वाध्यायी विद्वान् के रूप में बीता। उनका जन्म गुजरात के सुरेन्द्र नगर जिले में सायला ग्राम में सन् 1910 में हुआ। बचपन से उन्हें आध्यात्म और साहित्य से प्रेम था। सन् 1931 में वे 'न्यायतीर्थ' की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

उन्होंने 1934 ई. में मुम्बई में 40 रुपये मासिक पर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस के मुखपत्र 'जैनप्रकाश' के सम्पादन से अपना जीवन प्रारम्भ किया। इतनी ही राशि उन्हें प्राइवेट ट्यूशन से मिल जाती थी। सन् 1936 में आप मात्र 35 रुपये मासिक पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी संघवी के रीडर नियुक्त हुए। धीरे-धीरे पण्डित जी के साथ आपका सम्बन्ध एक शिष्य और बाद में पिता-पुत्र जैसा हो गया। सन् 1944 में आप पं. सुखलाल जी के अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1959 में मुनि पुण्यविजय जी की प्रेरणा से अहमदाबाद में श्रेष्ठी श्री कस्तूरभाई द्वारा स्थापित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर के निर्देशक बनकर अहमदाबाद आ गये। वहाँ से 1976 में सेवानिवृत्त हुए।

अपने वाराणसी प्रवास के समय पण्डित जी ने प्राकृत ग्रन्थ परिषद् और जैन संस्कृति संशोधन मण्डल की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। संशोधन मण्डल का तो अब

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में विलय हो गया है, परन्तु प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, अहमदाबाद में अब भी कार्यरत है।

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर का जैन विद्या के अध्ययन, संशोधन, प्रकाशन आदि के क्षेत्र में आज जो गौरवशाली स्थान है उसके मूल में पण्डित दलसुखभाई का अविस्मरणीय योगदान है।

पण्डित जी ने न केवल भारत अपितु विदेशों में भी अध्यापन कार्य किया। सन् 1966-67 में उन्हें एक वर्ष के लिए टोरन्टो विश्वविद्यालय, कनाडा में भारतीय दर्शन के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया।

पं. दलसुखभाई की उल्लेखनीय साहित्य सेवा के उपलक्ष्य में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा सर्टीफकेट ऑ ऑनर एवं भारत सरकार द्वारा पद्मविभूषण से सम्मानित किया गया।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की स्थापना के समय से ही आप इससे जुड़े रहे और इसे समय-समय पर अपनी नि:स्वार्थ सेवाएँ उपलब्ध कराते रंहे। प्रो. सागरमल जैन को संस्थान के निर्देशक पद पर लाने में इन्हीं का सहयोग रहा है।

उनके द्वारा सम्पादित ग्रंथों में उल्लेखनीय हैं – History of Jain Literatures, न्यायवर्त्तिका, धर्मोत्तराप्रदीप, प्रमाणवार्तिक आदि। उनका मौलिक चिंतन बड़ा प्रभावी था। समाज व साहित्य को अपने विचारों से उन्होंने नई दिशा दी। जैन दर्शन में आगम काल, ज्ञान बिन्दु नंदी और अनुभोग प्रज्ञापना आदि उनके लिखे ग्रंथों का गुजराती अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ। आप सन् 1957 में All India Oriental Conference के जैनिज्म विभाग के अध्यक्ष चुने गये। सन् 1977 में आपने भारत के प्रतिनिधि के रूप में पेरिस में आयोजित वर्ल्ड संस्कृत कॉन्फ्रेंस में भाग लिया। सन् 1983 में आपने जर्मनी के स्ट्रेस बर्ग शहर में आयोजित ''जैन Canonical Seminar'' को भी अपना उद्‌बोधन दिया।

सन् 1994 में एक लम्बी बिमारी के बाद आपका देहावसान हुआ। *आपके निधन से जैन विद्या की अपूरणीय क्षति हुई।*

72. श्री माणकचन्द रामपुरिया (1934-2003)

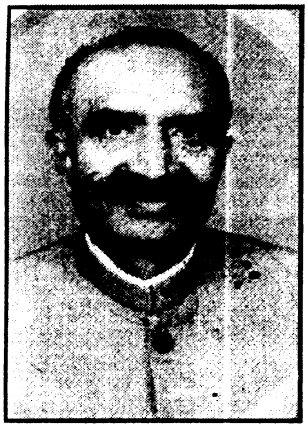

जन्म : बीकानेर, 1934
पिताश्री : सौभागमल रामपुरिया
शिक्षा : साहित्यरत्न, आयुर्वेद रत्न, साहित्याचार्य, महामहोपाध्याय (1986)
सर्जन : 30 महाकाव्य, 3 खण्ड काव्य, 33 काव्य संकलन
दिवंगति : 2003

20वीं शदी के जैन समाज को अपनी काव्य धारा से आप्लावित करने वाले महाकवि माणकचन्दजी रामपुरिया ओसवाल समाज के उज्वल नक्षत्र थे। उनमें कबीर की सी मस्ती और अल्हड़ता, मीरां जैसी तन्मयता, तुलसी-सी साधना और सूर-सी अलौकिक दृष्टि थी। वे कविता में जीते रहे, महाकाव्य लिखते-लिखते उनका जीवन ही एक महाकाव्य बन गया।

उनका जन्म बीकानेर के ओसवाल श्रेष्ठि श्री सौभागमलजी रामपुरिया के घर सन् 1934 में हुआ। उनकी शिक्षा बीकानेर में ही हुई। हिन्दी साहित्य में उनकी रुचि बचपन से थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की साहित्य रत्न, आयुर्वेद रत्न एवं साहित्याचार्य परीक्षा सफलताओं तक ही उनका अध्ययन सीमित नहीं रहा, सम्मेलन की सर्वोच्च उपाधि ''महामहोपाध्याय'' के लिए 'संत कबीर की काव्य साधना और सिद्धांत' विषय पर शोध-प्रबंध लिखा एवं सन् 1986 में सम्मेलन द्वारा उन्हें यह उपाधि प्रदान की गई।

काव्य सृजन उनकी रगों में था। साहित्य-जगत में प्रशंसित होकर उनका काव्य-संसार क्रमशः प्रसार पाता गया। फलतः अपने 88 वर्षीय जीवन काल में उन्होंने 69 कृतियों का सृजन किया, जिनमें 30 महाकाव्य, 3 खण्ड-काव्य एवं 33 अन्य काव्य संकलन हैं। सन् 1956 में प्रकाशित 'मधुज्वाला' का प्राक्कथन लिखते समय हिन्दी साहित्य जगत के पुरोधा श्री जयशंकर प्रसाद ने कृति को 'दीप स्तम्भ' की संज्ञा दी थी। सन् 1965 में

प्रकाशित 'स्वरालोक' के छंदों की मृदुल लय और गति सभी की स्मृति में बस गई। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार ''ये रचनाएँ एक संगीत हैं, जो शब्दों की परिधि के पार हृदय में गूँजता रहता है।'' सन् 1968 में प्रकाशित ''श्रम वंदन'' काव्य पर सम्मति देते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उस शक्ति पुंज के अधिकाधिक विकसित होने की कामना व्यक्त की।

वस्तुत: अधिकांश कृतियाँ सन् 1970 के बाद ही लिखी गई। यह समय उनके संताप-सृजन का था। एकमात्र युवा पुत्र का निधन, पत्नी का दु:खद वियोग, दामाद की मृत्यु, कण्ठ-व्याधि के कारण वाणी का विलोप, शारीरिक विकलता, विवशता एवं आंशिक पक्षाघात जैसी दुर्दमनीय विभीषिकाओं से वे त्रस्त रहे। इन यातनाओं से भी यह महामानव घबराया नहीं। ''जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये'' – उनके जीवन का मूल मंत्र था। शब्द का सहारा लेकर उन्होंने अपनी एकान्तता को महागाथा के रूप में परिवर्तित कर दिया। तभी तो सन् 1983 से 2000 के 18वर्षों की अवधि में उन्होंने 30 महाकाव्य, 22 स्फुट काव्य एवं एक शोध-प्रबंध, कुल 53 कृतियाँ हिन्दी संसार को भेंट की। कविता को उन्होंने जीवन का एक अनिवार्य कर्म माना।

उनकी काव्यधारा में सम्पूर्ण मानवता के दर्शन होते हैं। वे किसी विचारधारा विशेष से सम्बद्ध नहीं हुए। उन्होंने हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई धर्म-चरित्र नायकों के चरित्र को अपना रचना-विषय बनाया। जहाँ उनकी महाकाव्य श्रृंखला में मीराँ और कबीर भक्त मनीषी हैं, वहाँ कपिल एवं धन्वन्तरि जैसे योगी भी हैं। उन्होंने अपने नौ गेय-गीतों के कैसेट 'अनुगूंज' नाम से प्रकाशित किये। ये गीत विलक्षण लयबद्धता एवं आत्मा को अभिसिंचित करने वाले माधुर्य से ओत-प्रोत हैं।

इतिहास को काव्य और लय में सम्प्रेषित करने वाले इस महामानव को राजस्थान साहित्य अकादमी ने 25 मार्च, 2000 के दिन विशिष्ट साहित्यकार सम्मान से अलंकृत किया। पाचांल शोध संस्थान, कानपुर ने उन्हें 'साहित्य वारिधि' के विरुद से सम्मानित किया। जन्मभूमि बीकानेर एवं कर्मभूमि कोलकाता ने उनका समुचित अभिनन्दन किया।

वे विश्व मानव थे। उन्होंने अनेक देशों की यात्राएँ की एवं उनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक धरोहर का जायजा लिया। जापान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्वीट्जरलैण्ड, हांककांग के साहित्यकारों पर उन्होंने अपने सरल व्यक्तित्व की छाप छोड़ी।

जैन साहित्य में नवोन्मेष करने वाले मौलिक ग्रंथाकारों को सम्मानित करने के लिए एवं अपने स्वर्गीय पुत्र की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंने 'श्री प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति पुरस्कार' की घोषणा की, जिसमें हर वर्ष इक्यावन हजार रुपयों की राशि भेंट स्वरूप दी जाती है। इसी क्रम में बीकानेर नगर के साहित्यकारों के सम्मानार्थ उन्होंने ग्यारह हजार रुपयों के 'शब्दर्षि सम्मान' की घोषणा की। वे अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों एवं खेल-संस्थानों के सक्रिय सदस्य थे।

9 जनवरी, 2 003 की रात उन्होंने अपनी देह यात्रा सम्पन्न की।

जैन विभूतियाँ

उद्योगपति/श्रेष्ठि/धर्म प्रभावक

73. सेठ प्रेमचन्द रायचन्द (1831-1905)

जन्म : सूरत, 1831

पिताश्री : रायचन्द दीपचन्द

दिवंगति : मुंबई, 1905

सूरत के दसा ओसवाल (बनिया) श्रेष्ठि श्री प्रेमचन्द भाई का जन्म सन् 1831 में अत्यंत गरीब परिवार में हुआ। वे अपने अध्यवसाय से उन्नति कर सम्पूर्ण देश में रूई की व्यापारिक दुनिया के 'बादशाह' नाम से विख्यात हुए। बाजार में भावों पर आपका नियंत्रण इतना जबरदस्त था कि लोग कहते आज का भाव तो यह है, कल की बात प्रेमचन्द भाई जाने। यह स्थिति पूरे बम्बई इलाके में चालीस वर्ष तक रही।

आपके पिता सेठ रायचन्द दीपचन्द सूरत में दलाली करते थे। प्रेमचन्द भाई अल्पवय में मुंबई आए। उन्होंने रूई व अफीम का व्यवसाय शुरु किया। आपने सन् 1863 में मुंबई रीक्लेमेसन कम्पनी का कोलाबा से बालकेश्वर तक समुद्र पूरने का ठेका लिया। इससे उन्होंने खूब लाभ कमाया। जब अमरीका में गृह युद्ध छिड़ा तो भारत में रूई के बाजार में भयंकर तेजी आई। प्रेमचन्द भाई ने इसका भरपूर लाभ उठाया। शेयरों के भाव अनाप-शनाप बढ़ गए। नई कम्पनियाँ उनकी देखरेख में बनने लगी। आपकी जिस कम्पनी के शेयर लोगों ने पाँच हजार में खरीदे थे उसके भाव बढ़कर छत्तीस हजार हो गए। इस तरह प्रेमचन्द भाई ने अपार सम्पत्ति अर्जित की। अमरीका की सिविल वार जल्द ही खत्म हो गई। जिससे उन्हें घाटा भी सहना पड़ा।

कोट्याधीश होकर आप अपने धर्म, कौम और जाति को नहीं भूले। समृद्धि के साथ ही आपकी दान भावना विस्तार पाती गई। सन् 1864 में आपने बम्बई यूनिवर्सिटी में सवा छः लाख रुपयों के अभूतपूर्व दान से ''प्रेमचन्द रायचन्द फेलोशिप'' की स्थापना की। उसी समय कलकत्ता यूनिवर्सिटी को भी सवा चार लाख रुपये प्रदान कर वहाँ ''प्रेमचन्द रायचन्द फेलोशिप'' स्थापित की। ये दोनों फेलोशिप आज करीब 120 वर्षों से निरन्तर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्त्ताओं के लिए आर्थिक सम्बल बनी हुई है। इसी तरह आपने अन्य अनेक स्थानों पर कन्या शालाओं, कॉलेजों व अनाथालयों को लाखों रुपए उदारता पूर्वक प्रदान किए। धार्मिक तीर्थों एवं धर्मशालाओं के निर्माण एवं पुनरूद्धार के लिए भी आपने लाखों रूपयों का अवदान दिया। आपकी मातुश्री के नाम पर बना बम्बई यूनिवर्सिटी का सर्वोच्च 'राज बाई टावर' आपका कीर्ति स्तम्भ कहा जा सकता है।

दान के बारे में आप कहा करते थे–''जिनकी प्रेरणा से मैं दान देने को प्रेरित होता हूँ वे ही मेरे सच्चे मित्र हैं। जो मैंने दिया वही मेरा था। जो मेरे पास है उसका मालिक मैं नहीं।'' इस तरह गाँधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को आकार देने वाले वे सच्चे दानवीर थे। ऐसे उदार चेता कुशल व्यापारी का देहांत सन् 1905 की भाद्र शुक्ला 12 को हुआ। गुजरात के ओसवाल श्रेष्ठियों में आपकी यशगाथा अद्वितीय है।

74. सेठ खेतसी खींवसी दुल्ला (1854-1921)

जन्म : सुथरी (कच्छ), 1854
पिताश्री : खींवसी करमण दुल्ला
दिवंगति : लिंबड़ी, 1921

प्रेम से 'दुल्ला राजा' नाम से जनप्रिय सेठ खेतसी का जन्म सन् 1854 में जैन तीर्थ सुथरी में कच्छी दसा ओसवाल मूल लोडाया गोत्रीय धुल्ला शाखा के खींवसी करमण के घर माता गंगाबाई की कुक्षि से हुआ। सरनेम 'धुल्ला' या 'दुल्ला' दिल के दिलावर या दौलत अधिक होने से व्युत्पन्न लगता है। ये अपने को उदयपुर के सूर्यवंशी राणा वंश के राजपूतों से निस्सृत मानते हैं, जैनधर्म अंगीकार कर लेने से ओसवाल कुल में शामिल किए गये। खींवसी जी के चारों पुत्र सुथरी से बम्बई आ बसे। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद वे माधवजी धरमसी की पेढ़ी पर रुई का काम सीखने लगे। जल्दी ही पारंगत होकर उन्होंने अपना स्वतंत्र रुई व्यवसाय स्थापित किया और सफल हुए।

खेतसी का प्रथम विवाह सं. 1932 में हुआ। वधू की अकाल मृत्योपरांत द्वितीय विवाह सं. 1937 में वीरबाई से हुआ। वीरबाई के सहवास से गृह स्वर्ग तुल्य हो गया। सं. 1944 में पुत्र हीरजी का जन्म हुआ। उस वर्ष अकल्पनीय मुनाफा हुआ। हीरजी खेतसी कम्पनी स्थापित की। जल्द ही उनकी गिनती कोट्याधीशों में होने लगी। खेतसी रुई के तलस्पर्शी ज्ञान के कारण सम्पूर्ण बाजार में 'मास्टर ग्रेजुएट' नाम से जाने जाते थे। अनेक प्रतिष्ठानों, बैंकों एवं एक्सचेंजों ने उन्हें अपना डाइरेक्टर मनोनीत किया। खेतसी ने भी अनेक शहरों में शाखाएँ खोलीं। प्रमुख उद्योगपतियों एवं राजा-महाराजाओं से उनके घनिष्ठ संबंध थे।

समाज का हर क्षेत्र उनके दान से लाभान्वित हुआ। सं. 1956 के अकाल में उन्होंने त्रस्त जनता की बड़ी सहायता की एवं द्वितीय जगडू शाह कहे जाने लगे। सं. 1972 तक अकालों की श्रृंखला निरन्तर

छाई रही। सेठ खेतसी ने बिना किसी भेदभाव के खुले हाथों दान दिया। बम्बई के दसा ओसवाल जाति कोर्ट के लिए लाखों रुपये खर्च किये एवं महाजन वाड़ी को कर्ज से मुक्ति दिलाई। सं. 1974 में समाज की ओर से सर पुरुषोत्तम ठाकुरदास की अध्यक्षता में उन्हें मान-पत्र भेंट कर 'जातिभूषण' के विरुद से विभूषित किया गया। सुथरी में साधु-साध्वियों के चातुर्मासों, जिनालयों एवं बिम्ब प्रतिष्ठानों पर लाखों रुपये खर्च किए। सं. 1963 में खेतसी ने 52 ग्रामों के संघ सुथरी में निमंत्रित कर जाति मेले का आयोजन किया जो अभूतपूर्व था। सं. 1972 में हालार में भी लाखों रुपये खर्च कर ऐसे ही जाति मेले का आयोजन किया। सं. 1969 में शत्रुंजय तीर्थ के लिए विशाल संघ समायोजित किया। खेतसी ने अनेक तीर्थों पर धर्मशालाएँ बनवाईं, हालार के अनेक गाँवों में पाठशालाएँ और जिनालय बनवाए। पं. मदनमोहन मालवीय को बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के लिए एक लाख रुपये प्रदान कर वहाँ जैन चेयर की स्थापना की। खेतसी ने अनेक शैक्षणिक संस्थाओं एवं अनाथालयों को लाखों रुपये दान दिये।

सं. 1973 में कलकत्ता में हुई जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस में खेतसीजी का सम्मान किया गया। सरकार ने उन्हें 'जस्टिस ऑफ पीस' चुना। जनता प्रेम से उन्हें 'दुल्ला राजा' कहने लगी। उन दिनों किसी सरकारी संस्थान को दो लाख रुपये प्रदान कर 'सर' की उपाधि ली जा सकती थी किन्तु दुल्ला सेठ ने इसे अस्वीकार कर गरीबों का सरताज कहलाना पसन्द किया।

सेठाणी वीरबाई ने समय-समय पर संघ समायोजन किया एवं लिंबडी में जिनालय बनवाया। खेतसी के पुत्र हीरजी भी प्रतापी पुरुष थे। उन्होंने पूना की भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट आदि अनेक संस्थानों को मुक्तहस्त अवदान दिये। सं. 1977 में पेरिस में अचानक हीरजी भाई चल बसे। सेठ खेतसी पुत्र शोक से विह्वल हो उठे और अधिक तीव्रता से जनता की सेवा में जुट गए। सं. 1978 में लिंबडी में उनका देहांत हुआ। ओसवाल समाज ऐसे औघड़ दानी को पाकर गौरवान्वित हुआ।

75. रा. ब. बद्रीदास मुकीम (1832-1917)

जन्म	:	लखनऊ, 1832
पिताश्री	:	लाला कालकादास
माताश्री	:	खुशाल कुँवर
उपाधि	:	राय बाहदुर, 1877
दिवंगति	:	कलकत्ता, 1917

श्रीमाल-सिंघड़ (सिंहधण) गोत्रीय राय बहादुर बद्रीदास कोलकाता के समस्त जैन समाज में बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। सिंहधण गोत्र की उत्पत्ति खरतर गच्छीय आ. जिनचन्द्र सूरि (अकबर प्रतिबोधक) द्वारा मानी जाती है। इनके परदादा देवीसिंह जी दिल्ली में रहते थे। दादा विजयसिंह जी अवध के नवाब के आग्रह पर लखनऊ आकर बसे। इनके पिता लाला कालकादास जी लखनऊ के नवाब के राज जौहरी थे। बद्रीदास जी का जन्म सन् 1832 में हुआ। वे युवा होकर व्यवसाय देखने लगे। जल्द ही लखनऊ के नवाबजादों से उनकी अच्छी जान पहचान हो गई।

सन् 1852 में अंग्रेज सरकार लखनऊ के नवाब वाजिदअली साह को गिरफ्तार कर कोलकाता लाई तभी आप उसके साथ कोलकाता आए। मौके का फायदा उठाकर आपने जवाहरात का व्यवसाय प्रारंभ कर दिया। आपके पास बेशकीमती जवाहरातों का संग्रह था। ब्रिटेन के बादशाह एडवर्ड सप्तम जब भारत पधारे तो यह बेशकीमती संग्रह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। आपके संग्रह में एक ऐतिहासिक रत्न ''छत्रपति माणिक'' भी था जो 1 इंच लम्बा और पौन इंच चौड़ा तथा 24 रत्तीवजन का था। कहते हैं कभी यह माणिक भारत सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के मुकुट की शोभा था – फिर किसी दक्षिण के तानाशाह के खजाने में रहा, वहाँ से बादशाह औरंगजेब और फिर जगतसेठ घराने के हाथ में आया जिनसे राय बद्रीदास जी के पास आया। सन् 1963 में एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में आपने वह संग्रह प्रदर्शित किया एवं मुक्तकंठ से विदेशी जौहरियों की प्रशंसा प्राप्त की।

सन् 1869 में लार्ड लारेंस के शासनकाल में आपको सरकारी जौहरी बनाया गया। सन् 1871 में भारत के तात्कालीन वाइसराय लार्ड मेयो ने ''मुकीम'' की पदवी देकर न्यायिक मान्यता प्राप्त जौहरी नियुक्त किया। लार्ड नार्थब्रुक आदि अन्य वायसरायों ने भी आपके इस पद को मान्यता दी। तभी से आपके वंशज मुकीम कहलाते हैं। सन् 1877 के दिल्ली दरबार में तात्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने आपको ''राय बहादुर'' के खिताब से सम्मानित किया एवं 'एम्प्रेस ऑफ इंडिया' मेडल प्रदान किया।

आपने सन् 1867 में कोलकाता हाल्सीबगान क्षेत्र में विश्वप्रसिद्ध दादाबाड़ी एवं एक भव्य जैन मन्दिर का निर्माण करवाया। यहाँ आपने 10वें तीर्थंकर शीतलनाथ की भव्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित की। मंदिर तो तैयार हो गया था पर जैसी भव्य आकर्षक जिन प्रतिमा चाहते थे उसके लिए कई नगरों व तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते हुए आप आगरा आये। आपके मन में एक ही चिन्ता थी जिन प्रतिमा की प्राप्ति कैसे हो। गुरुदेव की कृपा से अनायास एक दिव्य महापुरुष से साक्षात्कार हुआ और उन्होंने रोशन मोहल्ला स्थित ऐतिहासिक

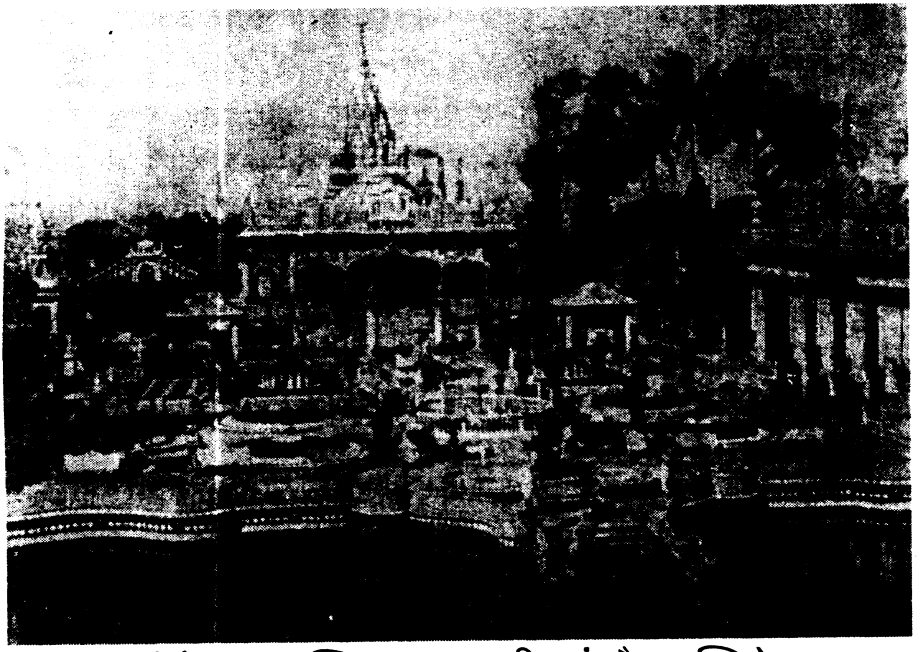

(कोलकाता स्थित दादा बाड़ी एवं जैन मन्दिर)

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर जिनालय में आकर एक भूमि गृह को खुलवाया और अन्दर ले गये। वहाँ पर श्री शीतलनाथ भगवान की सर्वांग सुन्दर दिव्य प्रतिमा दृष्टिगोचर हुई, जिसके सामने दीपक जल रहा था। बद्रीदासजी प्रभु प्रतिमा के दर्शन कर प्रफुल्लित हो गये और हर्ष पूर्वक प्रतिमा को उठाकर बाहर ले आये। इस मनोभिलाषित कार्यसिद्धि के लिए उन महापुरुष का आभार मानने के लिए प्रस्तुत हुए तो वे महापुरुष अदृश्य हो गये। श्री शीतलनाथ भगवान की इस दिव्य मूर्ति की सन् 1868 में माघ सुदी 5 को शुभ मुहूर्त में श्री पूज्यजी श्री जिनचन्द्र सूरिजी के कर-कमलों द्वारा कोलकात्ता दादा बाड़ी में नव निर्मित जैन मन्दिर में प्रतिष्ठा करवाई। इस चमत्कारिक प्रतिमा के आगे अखण्ड दीपक से काजल न उतरकर आज भी कैसर उतरती है। मन्दिर एवं सभा मण्डप में मीनाकारी व कांच का काम अद्‌भुत कलापूर्ण है। सभा मण्डप में पंचकल्याणक तथा जयपुरी कलम के विशाल चित्र सामने के कक्षों में चतुर्दिश सुशोभित हैं। इनमें 16 महासतियों के, श्रीपाल जी दादा साहब के जीवनगत चित्र, कार्तिक महोत्सव की ऐतिहासिक सवारी आदि के विशाल नयाभिराम चित्र हैं, जो कला की अमूल्य निधि हैं। इनके निर्माण में करीब 15-20 वर्ष चित्रकारों को लगे थे।

जिनालय के सम्मुख मन्दिर निर्माता रायबद्रीदास जी की सुन्दर प्रतिमा वन्दन करती हुई विराजमान हैं। मन्दिर के आगे नीचे हाथी निर्मित हैं। दाहिनी ओर रायसाहब के गुरु श्री जिनकल्याण सूरि जी, पिता श्री कालकादासजी, पितामह श्री विजयसिंह जी व उनके लघु भ्राता श्री बुधसिंह जी की मूर्तियाँ एक कक्ष में हैं।

ब्रिटेन के बादशाह पंचमज़ार्ज के शासन के रजत जयंती समारोह के अवसर पर इस भव्य मंदिर का चित्रांकित डाक टिकट जारी किया गया था। विश्व के अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी सोवेनियरों में इस मन्दिर की आकर्षक छवि प्रदर्शित की जाती है। पान-अमरीकन वर्ल्ड एअरवेज दो बार अपने कलेण्डरों को इस नयनाभिराम छवि से मंडित कर चुकी है। इस मन्दिर में अनेक रत्न जटित मूर्तियों का अमूल्य संग्रह है। मन्दिर से संलग्न म्यूजियम में तमिल एवं तेलगू के ताड़पत्रीय ग्रंथ एवं नागरी लिपि के प्राचीन ग्रंथ भरे पड़े हैं जिनकी शोध अपेक्षित है।

राय साहब ने बड़ी हसरत से भादियलपुर तीर्थ को पुन: स्थापित करने के लिए वहाँ की पहाड़ी खरीद ली थी परन्तु अपने जीवन में वे इस तीर्थ की स्थापना का स्वप्न साकार न कर सके। आपने सम्मेद शिखर पर एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया जो 18 सालों में बनकर तैयार हुआ। सन् 1885 में सिद्धांचल तीर्थ पर से यात्री टेक्स उठवाकर सालाना रकम नियत कराने में आप सफल हुए।

सन् 1891 में आपने सपत्नीक श्रावक के 12 व्रत ग्रहण किए।

आप ब्रिटिश इंडियन एसोशियेसन, हिन्दू युनिवर्सिटी, इम्पीरियल लीग आदि प्रभावशाली संस्थाओं के सदस्य थे। बंगाल के सुप्रसिद्ध नेशनल चेम्बर ऑफ कॉमर्स के प्रथम सभापति होने का श्रेय आप ही को प्राप्त हुआ। सम्मेद शिखर पहाड़ी पर जब सरकार ने निजी व सरकारी बंगले बनाने सम्बंधी बिल पास कर दिया तो आपने अथक प्रयास कर उसे रद्द करवाया। विभिन्न देशी नरेशों की ओर से आपको अनेक सम्मान बख्शे गए। अलवर नरेश ने आपको हाथी, गांव एवं पालकी से सम्मानित किया। हाड़ोती नरेश ने पांव में सोना इनायत किया। जैन श्वेताम्बर समाज में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। तीर्थराज सम्मेद शिखर एवं पालीताणा के क्षेत्रीय विवादों को बड़ी कुशलता से आपने सुलझाया। मुम्बई में सन् 1903 में हुई द्वितीय श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेंस के आप सभापति चुने गए। सन् 1917 में आपका देहावसान हुआ। आपके सुपुत्र रायकुमारसिंह और राजकुमारसिंह ने आपकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखा। प्रतिवर्ष कोलकाता का समस्त जैन समाज कार्तिक महोत्सव के अवसर पर बड़ा बाजार से दर्शनीय जलसा बनाकर इस भव्य मन्दिर की अभ्यर्थना करने जाता है।

76. सर वशनजी त्रीकमजी (1865-1925)

जन्म : बम्बई, 1865

पिताश्री : त्रीकमजी मूलजी लोडाया

माताश्री : लाख बाई

पद/उपाधि : राय साहब (1898), सर (1911)

दिवंगति : 1925

समस्त जैन समाज में 'सर' व 'नाईट' (Knight) की पदवियों से सम्मानित होने वाले प्रथम ओसवाल श्रेष्ठि वशन जी ही थे। सुथरी के दशा लोडाया गोत्रीय श्रेष्ठि त्रीकमजी मूलजी की पत्नी लाख बाई की कुक्षि से बम्बई में सन् 1865 में वशनजी का जन्म हुआ। माँ का सूतिका गृह में ही छठे दिन देहांत हो गया। वशन जी पितामह के धार्मिक संस्कारों में ही पले, बड़े हुए। सन् 1867 में पितामह ने केसरिया जी तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया। सन् 1873 में पिता की एवं सन् 1875 में पितामह की मृत्यु हो जाने से परिवार का सारा भार वशनजी के बाल कंधों पर आ पड़ा।

आपने हजारों रुपये खर्च कर जिनालय बनवाए, पाठशालाएँ खोलीं एवं धर्मशालाओं का निर्माण कराया। भयंकर दुष्काल के समय आपने सुथरी एवं अन्य अनेक जगहों पर दानशालाएँ खोली एवं त्रस्त जनता की सेवा की। इन लोकोपयोगी कार्यों के लिए सन् 1895 में सरकार ने उन्हें जे.पी. की पदवी दी। सन् 1898 में वे राय साहब की उपाधि से सम्मानित किये गये। सन् 1908 में सरकार ने उन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया। आपने रायल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स को सवा दो लाख रुपये प्रदान किये। सन्1911 में सरकार ने आपके सेवा कार्यों से प्रभावित होकर आपको 'सर' का सर्वोच्च सम्मान (Knighthood) प्रदान किया। वे अनेक सार्वजनिक लोकहितकारी संस्थाओं के संस्थापक और ट्रस्टी रहे। आपके अवदानों की सूची बहुत विस्तृत है। सन् 1925 में आपकी मृत्यु हुई।

77. श्री छोगमल चोपड़ा (1884-1960)

जन्म : देराजसर (बीकानेर), 1884

पिताश्री : फूसराज चोपड़ा

उपाधि : समाज भूषण

दिवंगति : 1960

समाजभूषण श्री छोगमल चोपड़ा असाधारण साधु पुरुष थे। उनमें ज्ञान और आचरण का अद्‌भुत संयोग था। सहजता और सरलता की तो वे प्रतिमूर्त्ति थे। आपका जन्म सन् 1884 में देराजसर (बीकानेर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री फूसराज जी था। फूसराजजी मुर्शिदाबाद के सेठ गुलाबचन्द नाहटा की रंगपुर (बंगलादेश) गद्दी में मुनीम थे। छोगमलजी की प्रारम्भिक शिक्षा रंगपुर में ही हुई। वहाँ प्रसिद्ध विचारपति जस्टिस रणधीरसिंह बछावत के पिता उनके सहपाठी थे। विद्यार्थी जीवन के अंतिम सात वर्ष कोलकाता में बीते। वहां जगत सेठ की कोठी में रहते हुए उनका परिचय लाडनूँ के मेघराजी जी सरावगी से हुआ। मेघराजजी धार्मिक रुचि के सत्योन्मुखी व्यक्ति थे। उन्होंने मुसलमानों की कुरान-शरीफ भी पढ़ी थी। छोगमलजी के धर्म-विषयक संस्कार उन्हीं के सत्संग में विकसित हुए।

आपने कोलकाता विश्वविद्यालय से कानून की स्नातक उपाधि ली। आप बहुभाषाविद् थे—बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी एवं हिन्दी पर पूरा अधिकार था एवं गुजराती, उर्दू, अर्धमागधी का अच्छा ज्ञान था। विधि वक्ता के रूप में आपका बड़ा सम्मान था। कोलकाता के स्माल काज कोर्ट बार एसोसियेसन के आप सभापति एवं कोषाध्यक्ष रहे। झूठे मुकदमें लेने से आप इन्कार कर देते थे। आपके निजी ग्रंथागार में बहुमूल्य धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों का संग्रह था।

आपके पिता फूसराजजी पर राष्ट्रीय आन्दोलन का रंग चढ़ा था। उन्होंने विदेशी माल का बहिष्कार किया एवं खद्दर पहननी शुरु की।

छोगमलजी भी स्वदेशी आन्दोलन से अछूते न रह सके। उन्होंने वकालत करते हुए भी खद्दर की पोशाक पहनी। उनके विदेशी वस्त्र वर्जन में द्वेष या हिंसा का भाव न था। बीकानेर काँग्रेस कमेटी ने तो उन्हें एडहाक कमेटी में नामजद किया।

कोलकाता में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की स्थापना में आप सहभागी रहे। आप लगातार 20 वर्ष तक उसके सभापति रहे। देश के अनेक भागों में उसकी शाखाऐं खुलवाई। तेरापंथी समाज ने आपकी सेवाओं का सही आकलन कर आपका अभिनन्दन किया एवं आपको 'समाजभूषण' की उपाधि से विभूषित किया। आपको समाज ने एक लाख रूपये की राशि भेंट की जिसे आपने तत्काल महासभा को समर्पित कर दिया। तेरापंथ में जब पारमार्थिक शिक्षण संस्था का अविर्भाव हुआ तो आप उसके प्रथम सभापति चुने गए। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी ने जब अणुव्रत अभियान छेड़ा तो आप अणुव्रती संघ के प्रथम सभापति निर्वाचित हुए। आप सत्यशोध एवं निष्पक्ष चिंतन के हामी थे। आप सदैव कहते—उक्त मत की बात ठीक नहीं—ऐसा उपदेश कभी नहीं देना चाहिए।

कोलकाता में ओसवाल समाज की सार्वजनिक प्रवृत्तियों के संचालनार्थ एकमात्र संस्थान ओसवाल नवयुवक समिति की स्थापना हुई तो आप उसके सभापति चुने गए। आप अनेक आध्यात्मिक जनहितकारी एवं शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे—एशियाटिक सोसाइटी, महाबोधि सोसाइटी, संस्कृति परिषद्, मारवाड़ी छात्रावास, मारवाड़ी सम्मेलन, भारत चेम्बर ऑफ कॉमर्स आदि संस्थाओं में आपने सक्रिय योगदान दिया।

आप सदैव समाज के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे। दहेज के विरोध एवं नारी जागृति के लिए आप सदैव सक्रिय रहते थे। दो ईसाई बालिकाओं के ओसवाल युवकों से विवाह का आपने पुरजोर समर्थन किया था। श्रीसंघ विलायती विवाद में विलायतियों के एक साथ पंगत में बैठकर खाना खाने के अपराध में मारवाड़ी धड़े की पंचायत ने आपके परिवार से बिरादरी व्यवहार बन्द कर दिया था। पर आप ऐसे अवरोधों के सामने झुके नहीं। सन् 1960 में आप दिवंगत हुए।

78. श्री बहादुरसिंह सिंघी (1885-)

जन्म : 1885

पिताश्री : डालचन्दजी सिंघी

उपलब्धि : सिंघी जैन ग्रंथमाला

श्री बहादुरसिंह जी सिंघी भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं हर संवर्धन के लिए हमेशा याद किए जाएँगे। आपका जन्म सन् 1885 में हुआ। दयालुता और मिलन सारिता आपमें कूट-कूट कर भरी थी। करोड़पति तो वे थे ही। परिवार की जमींदारी चौबीस परगना, पूर्णिया, मालदा एवं मुर्शिदाबाद जिलों में फैली हुई थी। आपका विवाह सन् 1897 में मुर्शिदाबाद के राय लखमीपतसिंह बहादुर की पौत्री से हुआ। आपकी फर्म हरिसिंह निहालचन्द में कलकत्ता सरसाबाड़ी सिराजगंज, अजीमगंज, फारबीसगंज आदि स्थानों पर पाट का व्यवसाय होता था।

सर्वाधिक श्लाघनीय था इनका विद्याप्रेम। अनेक विद्वानों के वे आश्रयदाता थे। जैन संस्कृति से उन्हें बहुत लगाव था। खोज-खोज कर अलभ्य और अमूल्य पुरातन ऐतिहासिक वस्तुओं का आपने संग्रह किया। ऐसे अरेबियन और परसियन हस्तलिखित ग्रंथ जो कभी दिल्ली के बादशाहों के पास थे और विश्व में बेमिसाल थे, आपके संग्रह की शोभा बढ़ाने लगे। कई पर तो स्वयं बादशाह के हस्ताक्षर थे। प्राचीन कुशान, गुप्त और हिन्दू राजाओं तथा मुसलमान बादशाहों के सिक्कों का अपूर्व संग्रह सिंघी जी ने किया। जैन संस्कृति, विज्ञान, स्थापत्य व भाषा के उन्नयन एवं प्राचीन धर्म ग्रंथों के शोध सम्पादन व प्रकाशन हेतु मुनि जिन विजयजी के आचार्यत्व में बोलपुर स्थित रविन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन में सिंघवी जैन विद्यापीठ

की स्थापना का श्रेय आपको ही है। इस संस्थान से ''सिंघी जैन ग्रंथ माला'' के अन्तर्गत मुनिजी ने जैन आगम, जैन कथा साहित्य, भाषा, लिपि, स्थापत्य, धर्म सम्बंधी जैन वाङ्मय के अनेक दुर्लभ ग्रंथ विश्व-साहित्य को भेंट किए।

जर्मनी के प्रसिद्ध भारत विद्याविद् एवं जैनदर्शन के उद्भट विद्वान डॉ. हर्मन जैकोबी, जिन्होंने कल्पसूत्र का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, श्री बहादुरसिंहजी सिंघी एवं अन्य जैन श्रेष्ठियों के साथ।

सन् 1929 में सिंघीजी को बम्बई में हुई जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस का सभापति चुना गया। पंजाब के गुजरानवाला स्थित जैन गुरुकुल के छठे अधिवेशन के भी आप सभापति निर्वाचित हुए।

79. श्री भैरोंदान सेठिया (1866-1961)

जन्म : कस्तूरिया, 1866

पिताश्री : धर्मचन्दजी सेठिया

उपाधि : समाज भूषण

दिवंगति : 1961

अदम्य साहस/अनुपम बुद्धि-कौशल एवं औदार्य के प्रतीक, समाजभूषण विरुद से सम्मानित सेठ भैरोंदानजी सेठिया से समग्र जैन समाज गौरवान्वित हुआ है। मरूधरा में शिक्षा-प्रसार, नैतिक/धार्मिक प्रकाशन एवं बहुआयामी सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित कर आपने अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया। उद्योग-व्यवसाय, लोकोपकारी कार्यों एवं संस्कार चेतना के क्षेत्रों में ऐतिहासिक कीर्तिमानों का सृजन भी किया। साधारण परिस्थितियों में जन्म लेकर आपने श्रमनिष्ठता, लगन, बुद्धि-कौशल से सफलता की बुलन्दियाँ प्राप्त की, कल्पनातीत अर्थोपार्जन किया और मुक्त हस्त से समाज सेवा में इसका सदुपयोग कर समय की शिला पर सशक्त हस्ताक्षर किये।

सेठ श्री भैरोंदानजी का जन्म विक्रम सन् 1866 विजयादशमी के दिन बीकानेर जिलान्तर्गत कस्तूरिया ग्राम में श्रीमान् सेठ धर्मचन्दजी के घर हुआ। अपने पिताश्री से धर्म परायणता, स्वधर्मी सहयोग एवं समाज सेवा के संस्कार विरासत में प्राप्त कर आपने इन्हें सदैव वृद्धिगत रखा। दो वर्ष की आयु में ही आपके पिताश्री का देहावसान हो जाने से आपकी शिक्षा में व्यवधान उपस्थित हो गया और आप नौ वर्ष की आयु में कलकत्ते पधारे। वहाँ से लौटकर शिवबाड़ी रहने लगे और तदनन्तर अपने अग्रज श्रीमान्

अगरचन्दजी के पास बम्बई में रहकर व्यावसायिक ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाएँ भी सीखी। सन् 1891 में आप कलकत्ते चले गये और वहाँ मनिहारी तथा रंग की दुकान खोली एवं गोली सूता का कारखाना प्रारम्भ किया। अपने अध्यवसाय, परिश्रमशीलता, नम्रता, वचन की दृढ़ता, स्वभाव माधुर्य, सूझ-बूझ एवं व्यापारिक ज्ञान की बदौलत आपका व्यापार चमक उठा। क्रमश: आपने प्रयास करके बोल्जियम, स्विट्जरलैंड, बर्लिन आदि के रंग के कारखानों की तथा गॉब्लॉज आस्ट्रिया के मनिहारी कारखानों की सोल एजेंसियाँ प्राप्त कर लीं। फलत: आपका कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया। आपने 'ए.सी.बी. सेठिया एण्ड कम्पनी' नामक फर्म स्थापित की। दक्ष तथा योग्य कर्मचारियों एवं अपनी प्रतिभा से व्यवसाय निरन्तर वृद्धिगत रहा।

अपने व्यवसाय को नवीन आयाम देने हेतु आपने रंग व रसायन क्षेत्र में प्रवेश किया और हावड़ा में 'दी सेठिया कलर एण्ड केमिकल वर्क्स लिमिटेड' नामक रंग का कारखाना खोला, जो भारतवर्ष में रंग का सर्वप्रथम कारखाना था। आप इसके मैनेजिंग डायरेक्टर थे। कारखाने में निर्मित माल की खपत के लिए आपने भारत के प्रमुख नगरों—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, करांची, कानपुर, दिल्ली, अमृतसर, अहमदाबाद में अपनी फर्म की शाखाएँ खोलीं। साथ ही जापान के औसाका नगर में भी आपने ऑफिस खोला और अनेक ट्रैवलिंग एजेन्ट नियुक्त किये, जिससे अधिकाधिक ऑर्डर मिल सकें।

सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भावों में आशातीत वृद्धि हो जाने से आपने रंग के कारखाने में अप्रत्याशित लाभ हुआ। चूँकि आपने श्रावक व्रतों को धारण कर चल-अचल सम्पत्ति की मर्यादा कर रखी थी अत: निर्धारित सीमा से वृद्धि होने पर आपने व्यवसाय से निवृत्त होना प्रारम्भ कर दिया।

प्रभूत अर्थोपार्जन के पश्चात् आपने समाज-सेवा क्षेत्र में प्रवेश किया। आपने बीकानेर में सन् 1913 में धार्मिक पाठशाला, कन्या पाठशाला, सेठिया प्रिन्टिंग प्रेस, सेठिया जैन ग्रन्थालय आदि खोलकर शिक्षा-प्रसार, नैतिक संस्कार जागरण एवं समाज सेवा का सूत्रपात किया। समाज में शिक्षा

एवं धर्म प्रचार के लिए ''अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था'' स्थापित करने का निर्णय लिया।

आज से करीब 91 वर्ष पहले उन्होंने बीकानेर में कन्या पाठशाला स्थापित की और कामकाजी लोगों की दक्षता और अध्ययन के लिए पहला रात्रि कॉलेज खोला। बीकानेर को ऊन मण्डी के रूप में विकसित करने में उनकी ही पहल और प्रेरणा थी। बीकानेर में पहला छापा खाना उन्होंने स्थापित किया। पहली बार रोजगार देने के लिए खादी का धागा बनाना शुरु किया और इसके लिए 'हुनरशाला' स्थापित की। उन्होंने बीकानेर में पहला होम्योपैथिक अस्पताल खोला। जनता को कानून का ज्ञान करवाने के लिए संक्षिप्त कानून संग्रह प्रकाशित किया। ऐसे विलक्षण और दूरदर्शी थे श्री भैरोंदान सेठिया।

उन्होंने पारमार्थिक संस्था के नाम कलकत्ता में अचल सम्पत्ति दान में दी, जिसके किराये व संचित राशि के ब्याज से संस्था निरन्तर गतिमान है। संस्था ने पाठशाला, छात्रावास, महिलाश्रम, सेठिया नाईट कॉलेज, ग्रन्थालय आदि द्वारा ज्ञान-प्रसार की अलख जगाई है। सम्प्रति इसकी नैतिक, धार्मिक साहित्य प्रकाशन, होमियोपैथिक औषधालय, ग्रन्थालय, सिद्धान्त शाला, स्वधर्मी सहयोग आदि प्रवृत्तियों द्वारा सेवा, शिक्षण एवं ज्ञान-प्रसार की भागीरथी सतत् प्रवाहमान है।

श्री सेठिया लक्ष्मी के वरद् पुत्र थे फिर भी आपने सरस्वती की सदैव उपासना की। साहित्य में आपकी गहरी रूचि थी। महादेवी वर्मा आपसे मिलने बीकानेर आई थी और कई दिन तक आपका आतिथ्य ग्रहण किया था। वे आपकी बड़ी प्रशंसक थी। श्री इलाचन्द्र जोशी आपके यहाँ कई बार आए और महीनों रहे। उनकी पुस्तक 'विजयासन' का आपने प्रकाशन भी किया। श्री किशोरलाल वाजपेयी भी आपके साथ कुछ वर्ष तक रहे। बीकानेर के साहित्य जगत से आपके आत्मीय सम्बंध थे।

आपने अपनी संस्थापित संस्थाओं में योग्य एवं विद्वान् कर्मचारियों की नियुक्ति कर शिक्षा-प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सेठिया जैन ग्रन्थालय में

नैतिक, धार्मिक व जैन साहित्य के दुर्लभ, महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संकलन हैं। यह ग्रन्थालय एक ज्ञान तीर्थ है। आप स्वयं धर्म परायण थे और नियमित रूप से सामाजिक, स्वाध्याय व अन्य धर्मानुष्ठानों में संलग्न रहते थे। आपने सैकड़ों थोकड़े, बोल, स्तवन-सज्झाय संग्रहित कर उनका प्रकाशन कराया। आपने ज्ञानोपदेश इकावनी, आत्म हित शिक्षा आदि स्वाध्याय सहायक ग्रंथों की रचना की। आपकी जैनागमों एवं तात्विक ग्रन्थों में विशेष रुचि थी। पुस्तक प्रकाशन समिति गठित कर अपने निर्देशन में आपने श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह नामक विश्वकोश (आठ भाग) प्रकाशित कराया, जो जैन साधकों, सामान्य पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए अनुपम ग्रन्थ है। ऐसे सन्दर्भ ग्रन्थ के लिए जैन समाज ही नहीं, साहित्यिक/साधक जगत भी आपका ऋणी है और रहेगा।

आपकी करुण भावना अत्यन्त श्लाघनीय थी। समाज का कोई व्यक्ति अभावग्रस्त छात्र या निर्धन उनके पास अपनी समस्या लेकर पहुँच जाता तो कभी निराश नहीं होता।

आपकी दानवीरता, समाज और धर्म सेवा आदि का सम्मान कर श्री अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस ने सन् 1926 में आपको बम्बई में होने वाले सप्तम अधिवेशन का सभापति चुना। आपके नेतृत्व में सम्पन्न यह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण व सफल सिद्ध हुआ। अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में आपने जैन धर्म को विश्वधर्म रूप में प्रतिष्ठित करने की अपील की, जो समयोचित थी और आज भी प्रासांगिक है। अधिवेशन में लिये गये उल्लेखनीय निर्णयों में प्रमुख थे – श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के हित के लिए अपना जीवन समर्पण करने वाले सज्जनों का एक 'वीर संघ' स्थापित करना, स्थानकवासी जैन शिक्षा प्रचार विभाग की स्थापना, जैन डायरेक्ट्री बनाना एवं तीनों जैन सम्प्रदायों की एक संयुक्त कॉन्फ्रेंस बुलाना।

सेठिया जी ने जन-कल्याण कार्यों, यथा – प्रिन्स विजयसिंह मेमोरियल हॉस्पिटल निर्माण, अकाल सहायता एवं पशुधन बचाने हेतु आर्थिक सहयोग प्रदान क़िया और स्वयं अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया। समाज

और धर्म की सेवा के साथ आपने बीकानेर नगर और राज्य की भी उल्लेखनीय सेवाएँ कीं। लगभग एक दशक तक बीकानेर म्युनिसिपल बोर्ड के कमिश्नर रहने के अनन्तर सन् 1926 में आप सर्वप्रथम जनता की ओर से सर्वसम्मति से बोर्ड के वाइस-प्रेसिडेन्ट चुने गये।

सन् 1931 में बीकानेर राज्य सरकार ने आपको ऑनरेरी मजिस्ट्रेट निर्युक्त किया। आप लगभग सवा दो वर्ष तक बेंच ऑफ आनरेरी मजिस्ट्रेट्स (Bench of Honorary Magistrates) में कार्य करते रहे। उल्लेखनीय है कि आपके फैसले किये हुए मामलों की प्राय: अपीलें ही नहीं हुई। इससे आपकी नीर-क्षीर विवेकिनी न्यायबुद्धि स्वत: प्रमाणित होती है। सन् 1938 तक आप म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से बीकानेर लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सदस्य चुने गये। आपने नि:स्वार्थ भाव से जनता की सेवा की।

सन् 1930 में सेठिया जी को पुन: औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ा। बीकानेर में बिजली की शक्ति से चलने वाला ऊन की गाँठें बाँधने का एक प्रेस योग्य टैक्नीशियनों के अभाव में बन्द पड़ा था। आपने इसे खरीदकर बीकानेर में ऊन व्यवसाय का सूत्रपात किया। जहाँ कच्चा माल सीधा विलायत निर्यात होता था अब वह बीकानेर में ही प्रोसेस होने लगा। सन् 1934 में आपने वूलन फैक्टरी स्थापित की और यहां बना माल अमेरिका और लीवरपूल जाने लगा।

बीकानेर के शासक महाराजा श्री गंगासिंहजी ने आपको विशिष्ट सेवाओं, स्वामिभक्ति, जन-कल्याणक कार्यों हेतु सम्मानित किया। दिनांक 6 अक्टूबर, 1927 को उन्हें हस्ताक्षरित मुंहर अंकित कर 'खास रुक्के' का सम्मान बख्शा गया। 30 सितम्बर, 1941 को महाराजा की तरफ से उन्हें कैफियत का सम्मान व छडी/चपरास इनायत हुए।

नगरों की सामाजिक संस्थाओं बीकानेर, ब्यावर, कलकत्ता आदि द्वारा उन्हें धर्म भूषण, समाज रत्न, समाज भूषण आदि उपाधियों से विभूषित और अभिनन्दित किया गया। आप लोकैषणा से दूर सादगीपूर्ण जीवन में विश्वास करते हुए स्वयं को समाज का सेवक मानते रहे।

ओसवाल जाति का इतिहास, भारतीय व्यापारियों का इतिहास, भारत के व्यापारी, साधु सम्मेलन का इतिहास, जैन कॉन्फ्रेंस का इतिहास, कॉन्फ्रेंस गौरव ग्रन्थ, बीकानेर राज्य में मारवाड़ी वर्ग की भूमिका, रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट बीकानेर की सन् 1932 की रिपोर्ट, कार्यवाही राज्यसभा राज्य श्री बीकानेर आदि में समाविष्ट आपकी जीवन-गाथा प्रेरणास्पद व अनुकरणीय है।

सन् 1961 में बीकानेर में आपका देहावसान हुआ।

80. सेठ चेनरूप सम्पतराम दूगड़

(सेठ सम्पतरामजी दूगड़)

सेठ सम्परामजी दूगड़

जन्म : सरदारशहर, 1866

पिताश्री : चैनरूपजी दूगड़

दिवंगति : 1928

सरदार शहर का चैनरूप सम्पतराम दूगड़ का खानदान ओसवाल समाज में नैतिक मूल्यों का प्रतिस्थापक माना जाता है। वहाँ से 40 किलोमीटर दूर तोल्यासर नामक गाँव का एक बालक ''चैना'' सरदारशहर आकर मजदूरी करने लगा। एक दिन विलम्ब से आने पर मिस्त्री ने क्रोध में बालक के सर पर करणी दे मारी। स्वाभिमानी बालक ने अपना ही व्यवसाय करने का संकल्प लिया। सन् 1814 में साढ़े तीन मास की कठिन यात्रा कर चैनरूपजी कलकत्ता गए। अपने अध्यवसाय से कपड़े का व्यापार स्थापित किया एवं चन्द वर्षों में प्रमुख व्यापारियों की कोटि में गिने जाने लगे। विदेशों से कपड़ा आयात करने वाले वे पहले व्यापारी थे। सन् 1893 में आपका स्वर्गवास हुआ।

इनके पुत्र सेठ सम्परामजी अपनी बात के धनी एवं बड़े ईमानदार व्यक्ति थे। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी की उन पर विशेष कृपा थी। ये राजघराने के प्रमुख साहूकार थे। गंग नहर परियोजना एवं रतनगढ़ से सरदारशहर तक रेलवे लाईन बिछाने के लिए सेठ सम्पतरामजी ने विशाल धनराशि ब्याज मुक्त ऋण के रूप में राज्य को दी। राज्य की तरफ से उन्हें अनेक सुविधाएँ व बख्शीशें प्राप्त हुईं। महारजा शार्दूलसिंह ने भी उन्हें अनेक सम्मान बख्शे – सिरोपांव, सिंहासन के निकट बैठने का अधिकार, रुक्के, ताजीम (आभूषण), अदालतों में हाजिर होने से मुआफी, जकात-तलाशी-

टैक्स आदि की मुआफी, चपरास, हाथी की सवारी, स्वर्ण-रजत-दण्ड आदि। जैन मतावलम्बी होते हुए भी विभिन्न धर्मों के साधु सन्यासी आपकी सत्संग में आते थे। आप धार्मिक परम्परा के विरुद्ध संगीत के शौकीन थे।

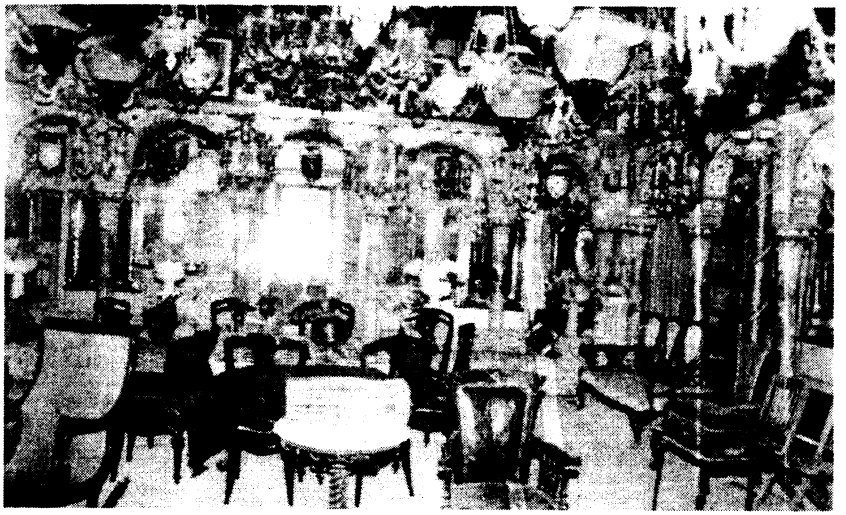

(सरदारशहर स्थित दूगड़ निवास की महफिल)

यही संस्कार उनके पुत्र एवं पौत्रों में विकसित हुआ। अपने पुत्र सुमेरलालजी के विवाह के अवसर पर आपने 'महफिल' का निर्माण कराया, जिसके विदेशी झाड़-फानूसों की शानदार सजावट देखने अब भी दूर-दूर से लोग आते हैं।

(सेठ सुमेरमलजी)

सेठ सम्पतरामजी के पुत्र सेठ सुमेरमलजी (जन्म सन् 1893) बड़े निरभिमानी, विचारशील एवं व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। इनकी ईमानदारी की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। अधिकारी को भूल बताकर अतिरिक्त कर चुकाना उनकी सदाशयता का द्योतक था। चीनी के कन्ट्रोल के समय किसी भी कीमत पर ब्लेक से चीनी न खरीदना, यहाँ तक कि विशेष परमिट भी न लेना, अनुकरणीय उदाहरण था। विवाहों में सरकारी नियमों का उल्लंघन कर

कभी अधिक व्यक्ति आमंत्रित नहीं किए। एक बार पौत्र मिलापचन्द को डिप्थेरिया हो गया। उसके इंजेक्शन चोर बाजारों से ही उपलब्ध थे। आपने इजाजत न दी। कहते हैं कराधिकारी उनके हिसाब किताब को शत-प्रतिशत सही मानकर असेसमेंट करते थे। सन् 1968 में पुरानी हवेली की मरम्मत् के समय सोने की छड़ें एवं चांदी की सिल्लियाँ बड़ी मात्रा में दिवालों में गड़ी हुई बरामद हुई। सेठजी ने तुरन्त उसकी सूचना अधिकारियों को दी। गहरी छान-बीन हुई। अन्ततः उनकी मिल्कियत साबित हुई और सोना-चाँदी उन्हें लौटा दिया गया। उन्हें आयुर्वेद का गहरा ज्ञान था। वे कवि हृदय थे। दोहों, सोरठों एवं छन्दों के प्रयोग वाली उनकी रचनाओं में आत्मोत्थान के प्रेरक तत्त्व समाहित थे। वे संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे। सन् 1974 में वे स्वर्गस्थ हुए।

श्री भंवरलालजी दूगड़

जन्म : 1918

पिताश्री : सम्पतरामजी दूगड़

दिवंगति : 1961

सरदारशहर के चैनरूप सम्पतराम दूगड़ खानदान के सेठ सुमेरमल जी के दो पुत्र हुए—भंवरलाल जी और कन्हैयालालजी दोनों ही पुत्रों से ओसवाल समाज गौरवान्वित है। सेठ भंवरलाल जी का जन्म सन् 1918 में हुआ। कहते हैं, मां (राजलदेसर के श्री जयचन्दलाल जी बैद की पुत्री) इचरज देवी ने पुत्रों के जन्म से पूर्व दो सिंह शावकों का स्वप्न देखा था। बड़े होकर दोनों भाई समाज सेवा के क्षेत्र में अग्रणी बने। सन् 1948 में सेठ भंवरलालजी ने सरदार शहर में सेठ सम्पतराम दूगड़ विद्यालय की स्थापना की। कालान्तर में इन्होंने ही सेठ बुधमल दूगड़ डिग्री कॉलेज की स्थापना की।

आप बड़े आदर्शवादी और स्वप्नदर्शी थे। समाज हित की अनेक योजनाएं आपने क्रियान्वित की। गांधी विद्या मन्दिर के अन्तर्गत बालवाड़ी, बेसिक रीसर्च ट्रेनिंग कॉलेज, महिला विद्यापीठ, गोशाला, पशु चिकित्सालय,

अनुसंधान केन्द्र आदि अनेक प्रवृत्तियं विकसित की। सन् 1954 में ''ग्राम ज्योति केन्द्र'' और ''आयुर्वेद विश्व भारती'' की स्थापना की एवं दो लाख रुपयों का अवदान दिया। आयुर्वेद का गहरा ज्ञान उन्हें पिता से विरासत में मिला था। रोगियों की नि:स्वार्थ सेवा को उन्होंने जीवन का ध्येय बना लिया था। बापा सेवा सदन की स्थापना इसी की एक कड़ी थी। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को उन्होंने नये आयाम दिए। कहते हैं, वे रोगी की व्यथा से द्रवित हो उसे अपने ऊपर ले लेने से भी नहीं चूकते थे। एक बार मोहनलाल जी जैन की लड़की के ज्वर ग्रस्त होने पर वे इतने द्रवित हुए कि बच्ची की नाड़ी धरे बैठे ही रहे–फलत: लड़की तो अच्छी हो गई पर उन्हें कई दिन ज्वर पकड़े रहा।

सन् 1960 के जल प्रलय के समय सरदार शहर क्षेत्र में अनेक मकान धराशायी हो गए। लाखों लोग बेघर हो गए। उस समय उन्होंने जी-जान लगाकर सेवाकार्य का नियोजन किया। इस तरह शिक्षा, चिकित्सा और सेवा की त्रिवेणी के वे सूत्रधार थे। सरदार शहर में इण्डस्ट्रियल इस्टेट की स्थापना उनका अंतिम स्वप्न था जिसके लिए जयपुर जाते हुए सन् 1961 में एक कार दुर्घटना में इस कर्मवीर का असमय निधन होने से समाज की अपूरणीय क्षति हुई।

श्री कन्हैयालालजी दूगड़

जन्म : सरदारशहर, 1920

पिताश्री : सुमेरमलजी दूगड़

सन्यास : वृन्दावन, 1985

सरदारशहर के सुप्रसिद्ध चैनरूप सम्पतराम दूगड़ परिवार में जन्मे श्री कन्हैयालालजी को धार्मिक संस्कार विरासत में मिले। आपकी शिक्षा पारिवारिक पाठशाला में ही हुई। सन् 1948 में महात्मा गाँधी की नृशंस हत्या ने पूरे राष्ट्र को झकझोर दिया था। तरुण कन्हैयालाल की आँखों में बापू का दिखाया ग्रामांचल के आदर्श शिक्षण संस्थान का स्वप्न साकार होने को

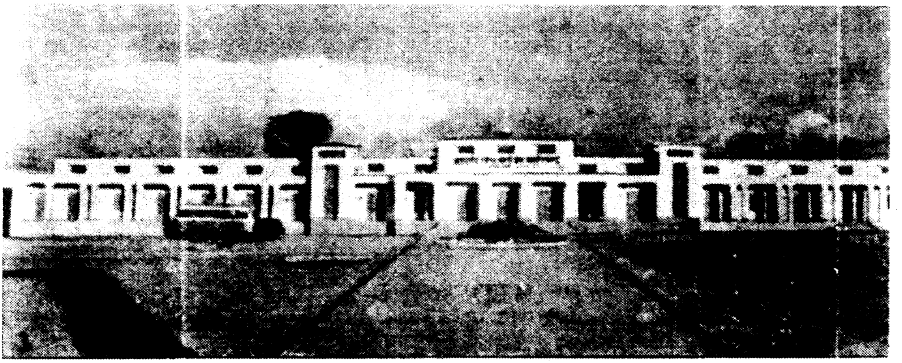

(सरदारशहर स्थित गाँधी विद्या मन्दिर)

मचलने लगा। उन्होंने सन् 1950 में पाँच लाख रुपये एवं जीवन के अमूल्य दस वर्ष की प्रथमाहुति प्रदान कर गाँधी विद्या मन्दिर की नींव रखी। श्रम एवं निष्ठा से 35 वर्षों के सतत प्रयास एवं 50 लाख रुपये से अधिक की समर्पित राशि से यह पौधा लहलहा कर वटवृक्ष बन गया। आज 1200 एकड़ भूमि पर हजारों विद्यार्थियों के लिए प्री-प्राइमरी से पोस्ट ग्रेजुएट एवं पी-एच.डी. की शिक्षा, छात्रावास, गौ-सेवा सदन, अनाथाश्रम, आयुर्वेद विश्वभारती आदि के माध्यम से शिक्षा, चिकित्सा एवं ग्रामोत्थान की विभिन्न प्रवृत्तियाँ वहाँ संचालित होती हैं। उदारचेता श्रेष्ठियों, केन्द्र एवं राज्य सरकार ने करोड़ों रुपए वहाँ लगाए हैं।

कन्हैालालजी ने साहित्यिक अभिरुचि से प्रेरित हो अनेक मौलिक नाट्य कृतियों, लोकगीतों एवं आध्यात्मिक काव्य का सृजन किया। उनके रचित सरस भक्तिगीत वे स्वयं अपने मधुर कंठ से सत्संग कार्यक्रमों में प्रस्तुत करते हैं। इस बीच सन् 1979 में वे कैंसर की भयंकर व्याणि से ग्रसित हो गए। प्रभु की कृपा से उन्हें जीवनदान मिला। सन् 1985 में वृन्दावन में स्वामी शारदानन्दजी से उन्होंने पूर्ण सन्यास का वरण किया एवं 'स्वामी रामशरण' नाम से संबोधित हुए। पुष्कर के निकट उनका मझोवला आश्रम आज त्याग और तपस्या की पुण्य धरा बनकर अपनी सुवास से महक रहा है।

81. श्री चाँदमल ढ़ढ़ा (1869-1933)

जन्म : 1869

पिताश्री : उदयमलजी ढ़ढ़ा

पद/उपाधि : सितारे हिन्द

दिवंगति : 1933

बीकानेर के ओसवाल वंश के ढ़ढ़ा गोत्रीय श्रेष्ठि तिलोकसी के तीसरे पुत्र सेठ अमरसी नै हैदराबाद (दक्षिण) में 'अमरसी सुजानमल' नाम से व्यावसायिक फर्म स्थापित की। थोड़े समय में ही इस फर्म ने बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की। निजाम हैदराबाद के जवाहरातों का क्रय-विक्रय आपकी ही मार्फत होता था। सुरक्षा के लिए निजाम की ओर से आपके रहवास एवं विभिन्न प्रतिष्ठानों पर एक सौ जवान तैनात रहते थे। राज्य में आपके दावे बिना स्टाम्प फीस और बिना अवधि सीमा से सुने जाते थे। आपके दावों-मुकदमों के लिए निजाम सरकार ने एक स्पेशल कोर्ट ''मजलिसे साहुबान'' नियत कर रखा था। आपके पुत्र न था। दत्तक पुत्र नथमल के पुत्र सुजानमल हुए। उनके तीन पुत्रों की नि:संतान मृत्यु हो गई। चौथे पुत्र समीरमल भी नि:संतान थे। उन्होंने उदयमल को गोद लिया। उदयमलजी के पुत्र चांदमल जी हुए।

इनका जन्म सं. 1869 में हुआ। चांदमलजी ने मद्रास, कलकत्ता, सिलहट एवं पंजाब के अनेकों शहरों में साहूकारी व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थापित किए। जावरा राज्य के आप खजांची मनोनीत हुए। हैदराबाद के निजाम एवं अन्य रियासतों के नरेश आपका बहुत सम्मान करते थे। निजाम ने आपको दरबार में कुर्सी एवं चार घोड़ों की बग्घी में बैठने का सम्मान दिया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सी.आई.ई. (सितारे हिन्द) की

उपाधि से विभूषित किया। आपने साढ़े तीन लाख रुपयों की लागत से देशनोक के करणी माता के मन्दिर का अभूतपूर्व कलात्मक तोरण द्वार बनवाया जो अद्वितीय है। वे बड़े समृद्ध और उदार हृदय थे। सन् 1902 में बीकानेर नरेश ने आपके घर जाकर आपको सम्मानित किया। आपको विभिन्न राज्यों की ओर से प्रशस्ति-पत्र मिले। सन् 1933 में आपका स्वर्गवास हुआ।

82. सेठ माणिकचन्द जे.पी. (1851-1914)

जन्म : सन् 1851
पिताश्री : हीराचन्द जौहरी (हूमड़)
माताश्री : बिजली बाई
उपाधि : जैन कुल भूषण (1961)
दिवंगति : सन् 1914, मुम्बई

इस शताब्दी में अनेक जैन श्रेष्ठि हुए हैं, जिन्होंने अपनी धन-सम्पदा का उपयोग मुक्त हस्त समाज की उन्नति एवं संस्कृति को श्रेष्ठतम बनाने में खर्च किया। ऐसा ही अनुकरणीय जीवन जीने वाले थे श्री माणिकचन्द हीराचन्द जौहरी। सेठ माणिकचन्द जैसे निराभिमानी, उदार, निर्व्यसनी, कर्मयोगी एवं धर्मप्रेमी विरल होते हैं। बहुधा लोग धन सम्पदा को अपना एवं अपने पुरखों का पुण्य फल मानकर उसे अपने एवं अपने परिवार की स्वार्थ-सिद्धि, विलासितापूर्ण संसाधन जुटाने एवं उनका अतिशय उपभोग करने में ही खर्च करते हैं।

सेठ माणकचन्द के पितामह गुमानजी राजस्थान के उदयपुर संभाग के भींडर ग्राम के निवासी थे। अपने व्यापार के विकासार्थ संवत् 1840 (सन् 1783) में वे सूरत आ बसे। उनका सितारा चमका। उन्हें आर्थिक सुदृढ़ता मिली। बीसा हूमड़ जाति के मंत्रेश्वर गोत्रधारी गुमानजी को पुत्र लाभ हुआ। सुपुत्र हीराचन्द बड़े होकर व्यवसाय में पिता के सहयोगी बने। संवत् 1908 हीराचन्द जी की धर्मपत्नि बीजल बाई की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। बालक की जन्म पत्रिका में बालक के ऐश्वर्यशाली एवं यशस्वी बनने की घोषणा थी। बालक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक था, नामकरण हुआ – माणिकचन्द। पिता उन्हें मन्दिर ले जाते। धर्म शिक्षा उनके विकास का सोपान बनी। जब वे मात्र आठ वर्ष के थे माता का देहांत हो गया। संवत् 1920 में हीराचन्दजी मुंबई आ गए। तब माणिकचन्दजी मात्र 12 वर्ष के थे। वे एक सराफ की दूकान पर हिसाब किताब सीखने लगे। उनके अन्य

भाई एक जौहरी के यहाँ जवाहरात का काम सीख रहे थे। शनैः-शनैः उन्हें मोतियों की परख होने लगी। माणिकचन्द जिज्ञासुवृत्ति के थे। वे जल्दी ही इस विद्या में निष्णात हो गये। वे ईमानदार और सत्यवादी थे। बाजार में इन भाइयों की साख जमने लगी। उनकी उद्यमशीलता रंग लाई। अर्थोपार्जन के साथ ही वे सबके विश्वास-पात्र भी बन गए। संवत् 1924 में उन्होंने अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारम्भ किया। संवत् 1927 में माणिकचन्द पानाचन्द जवेरी नाम से मुंबई पेढ़ी स्थापित की। प्रामाणिकता उनका मूलमंत्र था। पारिवारिक एक्य एवं परिश्रम से पुण्योदय हुआ। चन्द वर्षो में उनका व्यापार समस्त भारत में अग्रगण्य माना जाने लगा। विदेशों में भी उनके माल की खपत बढ़ी। उनके सत्य निष्ठ व्यवहार के कारण व्यापार चौगुना बढ़ा एवं विपुल धन लाभ भी हुआ।

संवत् 1932 में इंग्लैण्ड और यूरोप में उन्होंने शाखाएँ स्थापित की। चन्द वर्षों में लाखों रुपए के हीरा मोती विदेश भेजने लगे। उनके माल की सुन्दरता एवं चमक अद्वितीय मानी जाती थी।

जैसे-जैसे माणिकचन्द जी का वैभव बढ़ा, उनकी दानवृत्ति जागृत हुई। वे विनय एवं सादगी की प्रतिमूर्त तो थे ही, सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति भी सजग थे। अपने सजातीय जैनी भाइयों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहने लगे। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए उन्होंने मुक्त हस्त दान दिया। समूचा जैन समाज इससे लाभान्वित हुआ। संवत् 1937 में हीराचन्दजी स्वर्गवासी हुए। उनकी स्मृति में माणिकचन्दजी ने संकल्पपूर्वक धर्मार्थ विशेष प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की। उन्होंने 'जुबली बाग' नाम की आलिशान ईमारत समाज को समर्पित की। हीरा बाग में 'सेठ हीराचन्द गुमानचन्द धर्मशाला' बनवाई। पालीताणा में मंदिर एवं धर्मशालार्थ हजारों रुपयों का दान दिया। इलाहाबाद एवं अहमदाबाद में जैन बोर्डिंग एवं औषधालय के लिए अवदान दिए। सम्मेद शिखर में तीर्थोद्धार के लिए, कोल्हापुर में विद्यामंदिर के लिए, सूरत में कन्याशाला के लिए, रतलाम में बोर्डिंग के लिए, आगरा, जबलपुर व हुबली में बोर्डिंग के लिए दान दिया। संवत् 1956 के छपनिया दुष्काल में पीड़ा ग्रस्त परिवारों के संकट निवारे।

सेठ माणिकचन्द का प्रथम विवाह संवत् 1930 में हुआ जिससे उन्हें दो पुत्री रत्न प्राप्त हुए। द्वितीय विवाह से एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। विधि का विधान इस कौटुम्बिक सुख के प्रतिकूल बना तो संवत् 1937 में पिता की मृत्यु के बाद एक पुत्री को वैधव्य देखना पड़ा और कुछ समय बाद ही प्रथम पत्नि का स्वर्गवास हो गया। सेठ माणकचन्द इन विपदाओं से रंच मात्र भी न डिगे। उन्होंने अपने लौकिक उत्तरदायित्व निभाने में किंचित मुख नहीं मोड़ा। अपने परिग्रह परिमाण को भी व्रताधीन रखा।

आर्थिक अनुदानों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उनकी व्यक्तिगत सेवा थी, जिसके फलस्वरूप सामाजिक उन्नति की अनेक योजनाएँ क्रियान्वित हो सकी। संवत् 1945 में पंडित गोपालदास बरैया की प्रेरणा से मुंबई में ''जैन सभा'' की स्थापना की। इस सभा के अन्तर्गत अनेक धार्मिक एवं सामाजिक हित की योजनाएँ संचालित हुई। जैन पाठशालाएँ खोली, उनमें धार्मिक शिक्षा व परीक्षा चालू की, विविध मंदिरों में शास्त्र भंडार खोले, प्राचीन एवं हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह हुआ, तेजस्वी छात्रों को स्कॉलरशिप दी जाने लगी, आयुर्वेदिक औषधालय खुले, तीर्थों के जिर्णोद्धार हुए। संवत् 1956 में संस्था के अधिवेशन में प्रांतीय शाखाएँ खोलने का निर्णय हुआ।

संवत् 1956 में सेठजी ने पं. गोपालदास बरैया के सम्पादकत्व में ''जैन मित्र'' नामक जैन सभा का मासिक मुख पत्र निकालना शुरु किया।

संवत् 1959 में आप ही की प्रेरणा से मथुरा में संयोजित भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अधिवेशन में तीर्थ क्षेत्र कमिटी की स्थापना हुई, जिसके महामंत्री पद पर सेठजी ने वर्षों अपनी सेवाएँ दी।

संवत् 1962 में बनारस में स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना हुई। इसके प्रेरणास्रोत ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद थे। सेठजी के वरदहस्त से इस विद्यालय का उद्घाटन हुआ। यह विद्यालय जैन जगत के हजारों विद्यार्थियों एवं उच्च कोटि के विद्वानों का निर्माण स्थल सिद्ध हुआ।

पं. नाथूरामजी प्रेमी की प्रेरणा एवं निर्देशन में जैन शास्त्रों के सम्पादन का कार्य सेठजी ने संचालित करवाया। प्रकाशित ग्रंथों की प्रतियाँ देश के

विभिन्न जैन मंदिरों एवं ग्रंथागारों में भिजवाई, चेत्यालयों में धार्मिक पुस्तकालयों का निर्माण कराया, जैन विद्या में अग्रगण्य विद्वानों को पुरस्कृत कर धर्म की प्रभावना की। भारत के विभिन्न नगरों में छात्रालयों (बोर्डिंग हाउस) की श्रृंखला निर्मित कर दी।

सेठजी सामाजिक क्रांति के सूत्रधार बने। उन्होंने बालविवाह, कन्या विक्रय, जातीय संकीर्णता आदि रूढ़ियों पर प्रहार कर परम्परावादी लोगों की आलोचना सही। इस तरह समाज की बिखरी शक्ति को एकत्रित कर उसे रचनात्मक दिशा प्रदान की।

सेठ मणिकचन्द ने अपने चौपाटी स्थित भव्य 'रत्नाकर पैलेस' में एक चेत्यालय का निर्माण कराया। ब्रिटिश सरकार ने उनकी दानवीरता का समुचित सम्मान कर संवत् 1963 में उन्हें जे.पी. की मानद पदवी से विभूषित किया। संवत् 1967 में जैन समाज ने उन्हें ''जैन कुलभूषण'' की उपाधि से सम्मानित किया।

संवत् 1971 में मुंबई की प्रसिद्ध स्पेशी बैंक दिवालिया घोषित हुई। इसके परिणामस्वरूप सेठजी की आर्थिक रीढ़ टूट गई। उनके लिए यह प्राण घातक ही सिद्ध हुई। एक रात वे असह्य पीड़ा से छटपटा उठे। डॉक्टरों के पहुँचने से पूर्व ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

83. राजा विजयसिंह दूधोड़िया (1881–1933)

जन्म : अजीमगंज, 1881

पिताश्री : विशनचन्द दूधोड़िया

पद/उपाधि : लार्ड इरविन द्वारा 'काउंसिल ऑफ स्टेट' के सदस्य मनोनीत (1929), राजा (1908)

दिवंगति : 1933

मुर्शिदाबाद (अजीमगंज) का दूधोरिया घराना किसी समय बुलन्दी पर था। सन् 1918 में सुप्रसिद्ध प्रकाशक 'ठक्कर स्पिंक द्वारा प्रकाशित मोनोग्राफ पुस्तिका 'दी दूधोरिया राज फेमिली ऑफ अजीमगंज' के अनुसार क्षत्रियों की चौहान वंश परम्परा की 13वीं पीढ़ी में दूधोराव हुए। वे शैव मतावलम्बी थे। सम्वत् 222 में उनके जैन धर्म अंगीकार कर लेने के उपरान्त उनके वंशज 'दूधोरिया' कहलाने लगे। सन् 1774 में इस खानदान के हजारीमलजी दूधोरिया राजलदेसर से अजीमगंज आकर बसे। इनके वंशज हरकचन्दजी ने खूब समृद्धि हासिल की। इन्होंने अनेक शहरों में अपनी गद्दियाँ स्थापित की। सन् 1862 में उनकी मृत्यु हुई। उनके दो पुत्र थे–बुद्धसिंह एवं विशनचन्द। दोनों ही मेधावी थे। उन्होंने महाजनी व्यापार बंगाल प्रदेश में खूब फैलाया। धार्मिक एवं सामाजिक सत्कार्यों में उन्होंने प्रचुर धन अर्पित कर यश कमाया। राय बुद्धसिंहजी सन् 1904 में बड़ौदा में होने वाली अखिल भारतवर्षीय जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस के

(राय बुद्धसिंहजी दूधोड़िया)

सभापति चुने गए। आपने अनेक स्थानों पर जैन मन्दिर एवं धर्मशालाएँ बनाने के लिए अवदान दिये। सरकार ने उन्हें राय बहादुर की उपाधि से सम्मानित किया। इस घराने के राय विशनचन्दजी प्रतिष्ठित जमींदार थे। उनके पुत्र विजयसिंह जी ओसवाल समाज ही नहीं समस्त जन-साधारण एवं ब्रिटिश सरकार के चहेते व्यक्तियों में से थे। उनका जन्म अजीमगंज में सन् 1881 में हुआ। सन् 1906 से 1921 तक लगातार वे अजीमगंज म्युनिसिपालिटी के चेयनमैन रहे। सन् 1908 में सरकार ने उन्हें 'राजा' के खिताब से सम्मानित किया। आपने शिक्षण संस्थाओं को लाखों रुपए दान दिए। बालूचर, पाली, जोधपुर आदि स्थानों पर आपने धर्मशालाओं एवं स्कूलों का निर्माण करवाया। सार्वजनिक कार्यों एवं संस्थाओं को आपका सहयोग हर समय उपलब्ध रहता था। सन् 1911 में बम्बई एवं सन् 1929 में सूरत में आयोजित अखिल भारतीय जैन परिषद् के आप सभापति निर्वाचित हुए। सन् 1919 में तूफान पीड़ितों की भरपूर सहायता करने के उपलक्ष में सरकार ने आपको सनद देकर सम्मानित किया। इनके पुत्र श्री इन्द्रचन्द अंग्रेजी भाषा में पारंगत हो सन् 1889 में विलायत गए। इस कारण उन्हें जाति बहिष्कृत कर दिया गया। देशी-विलायती विवाद से तात्कालीन ओसवाल समाज को बड़ी त्रासदी झेलनी पड़ी।

आप आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी के मान्य सदस्य थे। सम्मेद शिखर तीर्थ के विवाद में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों की पटना में हुई कॉन्फ्रेंस के आप प्रेसिडेंट निर्वाचित हुए थे।

इम्पीरियल लीग, कलकत्ता लेंड होल्डर्स (जमींदार) एसोशियेसन, भरत जैन महामण्डल आदि अनेक संस्थाओं के आप सदस्य थे। सन् 1929 में लार्ड ईरविन द्वारा काउन्सिल ऑफ स्टेट के सदस्य नामजद होने वाले वे प्रथम ओसवाल श्रेष्ठि थे। सन् 1933 में आपका 52 वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ।

84. सेठ सोहनलाल दूगड़ (1895-1968)

जन्म : फतहपुर (शेखावाटी), 1895

पिताश्री : जोहरीमलजी दूगड़

दिवंगति : 1968

आधुनिक भारत के जिस इतिहास पुरुष ने सर्वाधिक यश कमाया, वे थे श्री सोहनलाल दूगड़। इस औढरदानी का जन्म सन् 1895 में शेखावाटी (राजस्थान) के फतेहपुर नगर में हुआ। आपके पूर्वज सूरजमल जी मारवाड़ से उठकर फतेहपुर आये। यहाँ के नवाब ने उन्हें कुशल योद्धा और दीवान की प्रतिष्ठा दी। आपके पिता श्री जौहरीमल जी नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। सोहनलाल जी के कोई अपनी संतान न थी। उन्होंने दो पुत्रों को गोद लिया। मुख्य व्यवसाय क्षेत्र कोलकाता रहा। व्यवसाय के नाम पर सट्टा प्रमुख था – कुछ ही क्षणों में लाखों की खोई-कमाई! बम्बई, दिल्ली एवं कलकत्ता के रूई, चांदी एवं जूट के सट्टा बाजारों पर वे हावी रहे। परन्तु पैसा बटोरना उनके जीवन का लक्ष्य कदापि नहीं रहा, उनका रस तो उसे बाँटने में था।

दानी तो विश्व-इतिहास में और भी हुए हैं, जिन्होंने बिना हिचक अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, पर सेठ सोहनलाल अद्‌भुत एवं बेजोड़ थे। जहाँ जरूरत समझते, बिना बुलाए ही स्वयं थैलों में नोट भरकर पहुँच जाते। भारत का हर कोना विशेषत: शेखावाटी एवं थली प्रान्त की स्कूलों, सामाजिक संस्थाएँ, हरिजन परिवार एवं जरूरतमन्द विधवाएँ – सभी उनके दान से अनुग्रहित हुए। उन्होंने जितना दिया उसका लेखा-जोखा तक करना असम्भव है। ऐसे दिया कि दाहिनी हाथ से देते हुए बाँए हाथ को खबर तक न होने दी। ऐसे निस्पृह दानी थे दूगड़जी। जब आचार्य रजनीश ने कहा – 'अभी आवश्यकता नहीं है जरूरत होगी तब मंगा लेंगे' तो फौरन जवाब मिला – 'कौन भरोसा, उस समय मेरे पास हो न हो। यह तो रख ही लीजिए।

आप नहीं रखेंगे तो मुझे पीड़ा होगी।' रजनीश जी ने पूछा–'क्या मतलब'। सोहनलालजी बोले–'बहुत गरीब आदमी हूँ, सिवाय रुपये के मेरे पास कुछ भी नहीं।' उस दिन प्रवचन में रजनीशजी ने कहा–''दानी तो बहुत हुए हैं, पर ऐसे कीमती शब्द कहने वाला कोई नहीं मिला।'

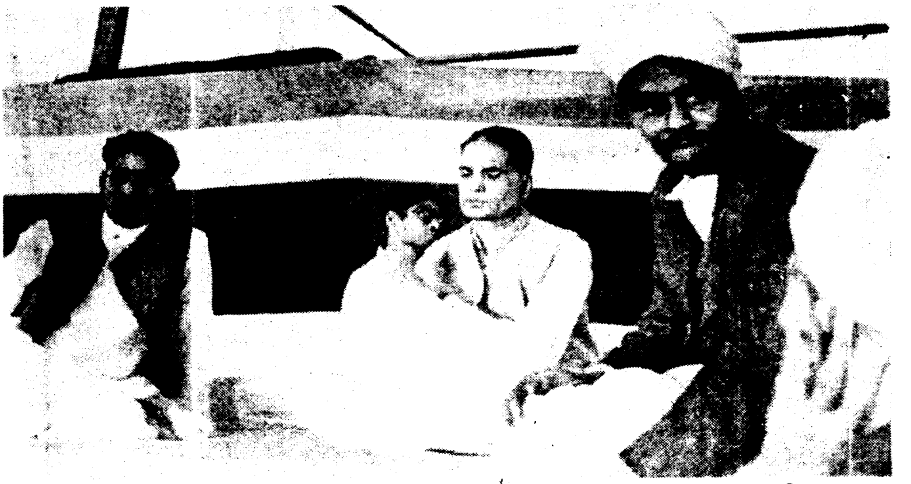

(एक जनसभा में श्री जयप्रकाश नारायण के साथ दूगड़जी)

दूगड़जी पढ़े-लिखे न थे, पर विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। गाँधी, जयप्रकाश नारायण और विनोबा के बड़े भक्त थे। सम्प्रदाय, जाति या धर्म उनके कार्यकलाप में कभी बाधक नहीं बने। गोरक्षा आन्दोलन में तन-मन-धन से अग्रणी रहे, जेल गये। सरल हृदय इतने थे कि हर किसी के दुःख से

(जैन मुनियों की धर्मसभा को संबोधित करते दूगड़जी)

कातर हो उठते थे और सर्वस्व लुटाने को तत्पर रहते। जैन थे परन्तु धर्माचार्यों को भी खरी-खरी सुनाने से नहीं चूके। लाडनूँ में आयोजित धार्मिक क्रान्ति सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के नाते 30 जनवरी, 1961 को उन्होंने दो टूक बात कही कि, 'आज धर्म के नाम पर आचार्य, साधु-संत, मठाधीश, पंडे-पुजारी इत्यादि अपनी पूजा और सेवा कराने में लगे हैं। इससे समाज और राष्ट्र के जीवन में निर्बलता आयी है। समय आ गया है कि अब सबका विघटन किया जाय। हम पुराने धर्म से निकलकर नये धर्म को धारण करने के लिए परिश्रम और सेवा करें। देश का साधु समाज जागे और समाज में आकर सेवा के जरिये राष्ट्र को नवीन ज्योति से जगमगा दे।''

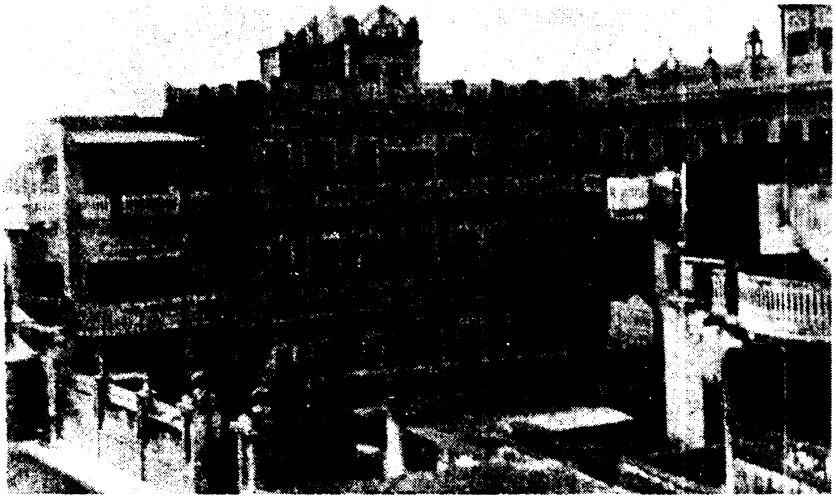

(फतहपुर स्थित आजाद भवन)

संवत् 1998 में उन्होंने अपना फतहपुर स्थित विशाल 'आजाद भवन' लोकार्पित कर दिया, जो कालांतर में नगर की शैक्षणिक, सामाजिक एवं राजनतिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बना। थली के विभिन्न नगरों में बाल मन्दिरों की श्रृंखला ही खड़ी कर दी। अकाल से विपन्न या अग्निकांड से त्रस्त लोगों के लिए बिना भूख-प्यास की परवाह किये नोट बाँटते फिरे। संवत् 2021 में भारत जैन महामण्डल के सांगली अधिवेशन का अध्यक्ष चुनकर समाज ने उनका समुचित सम्मान किया।

संवत् 2025 में वे दिवंगत हुए। आचार्य तुलसी ने उन्हें 'निष्काम कर्मयोगी' एवं अमर मुनि ने 'सूखी धरती का मेघ' कहकर श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री कन्हैयालालजी सेठिया ने दूगड़ जी की 'कालजयी' विशेषण से अभ्यर्थना की। कलकत्ता में ओसवालों की प्रतिनिधि संस्था 'ओसवाल नवयुवक समिति' के भवन निर्माण के लिए वे कभी स्वयं चन्दा माँगने निकले थे। समिति ने संवत् 2042 में उनकी संगमरमर की वक्ष-प्रतिमा अपने प्रांगण में स्थापित कर अपने को धन्य माना। संवत् 2036 में अखिल भारतवर्षीय अभिनन्दन समिति की ओर से आपकी स्मृति में एक वृहद् स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जिसमें सभी प्रेमियों के श्रद्धा सुमन ही नहीं, आपके क्रिया-कलापों का सही आकलन एवं दान-वर्षा का अनोखा किन्तु अपूर्व लेखा जोखा दर्ज है।

85. सेठ कस्तूर भाई लाल भाई (1894-1980)

जन्म	:	अहमदाबाद, 1894
पिताश्री	:	सेठ ललभाई
माताश्री	:	मोहिनी बाई
पद/उपाधि	:	पद्मभूषण (1969)
दिवंगति	:	अहमदाबाद, 1980

आधुनिक भारत के उद्योगपतियों में गुजरात के ओसवाल श्रेष्ठि कस्तूर भाई लालभाई अग्रगण्य थे। आपके पूर्वज श्री शांतिदास जौहरी की मुगल दरबार में बड़ी आवभगत थी। बादशाह जहाँगीर ने उन्हें नगरसेठ की पदवी बख्शी एवं हमेशा ''मामा'' कहकर बुलाते थे। बादशाह शाहजहाँ के 'मयूरासन' के निर्माण में धन एवं रत्न मुहैया कराने का श्रेय सेठ शांतिदास को ही था।

इनके प्रपौत्र सेठ लालभाई प्रसिद्ध उद्योगपति थे। उन्होंने सन् 1896 में रायपुर मिल की स्थापना की। सेठ लालभाई समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे एवं सरदार कहलाते थे। उनकी धर्मपरायणा पत्नि मोहिनी बाई की कुक्षि से अहमदाबाद में 19 दिसम्बर, 1894 के दिन कस्तूरभाई का जन्म हुआ। हाई स्कूल की मैट्रिक परीक्षा सन् 1911 में पास की। बचपन से उनमें राष्ट्रप्रेम के संस्कार पड़े। अचानक जब वे मात्र 18 वर्ष के थे तो आपके पिता दिवंगत हो गये। तभी से आपने कारोबार सम्भाला एवं जल्द ही उन्नति के शिखर पर पहुँच गये।

आपने टाईम कीपर व स्टोर कीपर के पदों से कार्य की शुरुआत की एवं अपनी मेहनत के बल पर उद्योग के सभी आयामों का प्रत्यक्ष अनुभव लिया। जिलों में भ्रमण कर कपड़ा उद्योग के सभी पहलुओं एवं बारीकियों का अनुभव हासिल किया। सन् 1914 में विश्वयुद्ध छिड़ जाने से कपड़े उद्योग में खूब उत्तेजना आई। रायपुर मिल भारत की श्रेष्ठ मिलों में गिनी जाने लगी।

सन् 1915 में आपका विवाह अहमदाबाद के अग्रगण्य जौहरी श्री चिमनलाल की सुपुत्री शारदा बहन से हुआ। सन् 1921 के काँग्रेस

अधिवेशन में आपका परिचय राष्ट्रीय नेताओं से हुआ। वे सभी इस 27 वर्षीय युवा उद्योगपति की कार्यदक्षता से प्रभावित हुए। कस्तूरभाई ने समय की माँग समझ कर कपड़ा मिलों की एक श्रृंखला ही खड़ी कर दी। रायपुर, अशोक, सरसपुर, अरविन्द, नूतन एवं न्यूकाटन मिल्स आपके अध्यवसाय एवं सूझबूझ की कहानी हैं। 1926 में आप जैनियों की प्रमुख संस्था आनन्दजी कल्याणजी ट्रस्ट के ट्रस्टी मनोनीत हुए। पालीताना शत्रुंजय तीर्थ को आपकी महती सेवाएँ प्राप्त हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कस्तूरभाई रासायनिक उद्योग की ओर मुड़े एवं 18 करोड़ की पूँजी और अमरीका के सहयोग से बहुत बड़ा साम्रज्य खड़ा कर दिया।

सन् 1948 में अतुल प्रोडक्टस नामक संस्थान की नींव पड़ी। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इसका उद्घाटन किया। सन् 1956 में भारत सरकार के तीन करोड़ रुपए के सहयोग से इस उद्योग का खूब विकास हुआ। विदेशों में संस्थान के माल की खपत से उद्योग चमक उठा।

गांधीजी का आप पर बहुत प्रभाव था। पालीताना के राजा से शत्रुंजय तीर्थ के विवाद पर आपने सत्याग्रह का सहारा लिया। सन् 1923 में आप राष्ट्रीय एसेम्बली के सदस्य बने। आप अनेक जन-हितकारी कार्यों से जुड़े– शान्तिनिकेतन, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी आदि राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाओं को लाखों रुपए दान में दिए। सन् 1937 से 1949 एवं 1957 से 1960 के बीच आप रिजर्व बैंक के निर्देशक भी रहे। गवर्नर के पद पर श्री सी.डी. देशमुख की नि युक्ति आपके ही सद्प्रयत्नों का फल थी। राष्ट्रीय उद्योगों को बढ़ाने की दृष्टि से आपने विदेशों की यात्राएँ की। सन् 1954 में रूस जाने वाले उद्योग और कृषि सम्बंधी भारतीय शिष्टमण्डल के आप नेता चुने गए। कांडला के नये बन्दरगाह की निर्मिति में आप प्रमुख प्रेरणास्रोत रहे। तदर्थ 1948 में भारत सरकार द्वारा निर्मित विकास समिति के आप चैयरमेन बनाए गए। प्रशासन की खामियाँ ढूँढ़ने के लिए सरकार द्वारा बनाई गई कमेटी के आप अध्यक्ष रहे। गाँधी स्मारक निधि के लिए आपकी अध्यक्षता में पाँच करोड़ रुपए इकट्ठे किए गए थे। आप द्वारा संस्थापित अहमदाबाद एजुकेशनल सोसाईटी अनेक कॉलेजों का संचालन करती है। गुजरात

यूनिवर्सिटी की स्थापना में भी आपका प्रमुख हाथ था। अनेकों शोध संस्थानों के आप जन्मदाता थे। आप आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी के अध्यक्ष रहे हैं। गिरनार, रणकपुर, आबू आदि तीर्थों एवं मन्दिरों के पुनरूद्धार में आपका सहयोग स्तुत्य रहा। आपके सद्प्रयत्नों से जैन मन्दिरों के दरवाजे हरिजनों एवं अछूतों के लिए खोल दिये गये। आपने समाज हितकारी कार्यों के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। सन् 1955 में आपने मुनि श्री पुण्य विजयजी के सहयोग से भारतीय प्राच्य विद्याओं के विकासार्थ एवं जैन शास्त्रों के प्रकाशनार्थ ''लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर'' की स्थापना की। इस संस्थान के संग्रहालय में 45000 हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों का अभूतपूर्व संग्रह है। सन् 1985 में गुजरात यूनिवर्सिटी परिसर के सामने इसके नये भवन का उद्घाटन हुआ। यहाँ अनेक शोधार्थी डॉ. दलसुखभाई मालवणिया के निर्देशन में शोधकार्य में संलग्न रहने लगे। पी-एच.डी. की उपाधि के लिए यूनिवर्सिटी ने इस संस्थान को मान्यता दी।

सन् 1969 में भारत सरकार ने अपको ''पद्मभूषण'' की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। 20 जनवरी, 1980 को अहमदाबाद में हृदय गति रूक जाने से आपका देहावसान हुआ। आपके सुपुत्र श्री श्रेणिक भाई के कुशल निर्देशन में परिवार द्वारा संस्थापित सभी औद्योगिक शैक्षणिक एवं धार्मिक संस्थान सुचारू संचालित हो रहे हैं।

86. सेठ बालचन्द हीराचन्द शाह (-1953)

जन्म :

पिताश्री : हीराचन्द

दिवंगति : 1953

सेठ हीराचन्द जैन समाज के प्रमुख श्रेष्ठि थे। बम्बई के सेठ मानेकचन्द पन्नालाल के साथ मिलकर उन्होंने अखिल भारतीय जैन कान्फ्रेंस की नींव डाली। ये शोलापुर में सरकार द्वारा मानद मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। उन्हीं सेठ हीराचन्द के सुपुत्र बालचन्द थे। बालचन्द की प्रारम्भिक शिक्षा सोलापुर में हुई। वे अध्यवसायी एवं संकल्पवान थे।

सन् 1906 में राष्ट्रीय काँग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। तरुण बालचन्द ने उस अधिवेशन में भाग लिया। दादाभाई नौदोजी ने भारत की आर्थिक दरिद्रता के लिए अंग्रेजों को तो कोसा ही, उन्होने देश के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए भारतीयों को आगे आने की अपील की। बालचन्द भाई ने तभी से इस आर्थिक असहायता को दूर करने का संकल्प लिया। उन्होंने कांग्रेस को विविध कार्यकलापों हेतु लाखों रुपयों का अवदान दिया।

उन्होंने निर्माण के काम में बहुत उन्नति की और रेल्वे के लिए बड़े-बड़े ब्रिज बनाने के ठेकों से प्रथम विश्वयुद्ध के समय अपार सम्पत्ति अर्जित की। युद्ध समाप्त होने पर ''सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी'' के संस्थापन में सेठ बालचन्द का प्रमुख हाथ था। इस कम्पनी ने जहाजरानी उद्योग में नये कीर्तिमान स्थापित किये। अन्ततः सरकार ने इस संस्थान का अधिग्रहण कर लिया। सन् 1924 में आपने ''इण्डियन ह्यूम पाईप कम्पनी'' की स्थापना की जो सीमेंट क्रांक्रीट के भारी पाईप बनाती है। पूरे भारत में इस

कम्पनी की साठ से अधिक शाखाएँ हैं। विदेशों में भी इस कम्पनी की बड़ी साख है।

सेठ बालचन्द बहुत दयालु और मिलनसार थे। समाज हितकारी प्रवृत्तियों के लिए उन्होंने अनेक आर्थिक अवदान दिए। इण्डियन चेम्बर ऑफ कॉमर्स के आप सभापति रहे। सन् 1953 में आपका देहावसान हुआ।

87. श्री गुलाबचन्द ढ़ढ़ा (1867-1952)

जन्म	:	जयपुर, 1867
पिताश्री	:	सागरचन्दजी ढ़ढ़ा
पद/उपाधि	:	दीवान (झाबुआ), मुख्यमंत्री (खेतड़ी)
दिवंगति	:	1952

सुधार युग के अग्रणी श्री गुलाबचन्द ढ़ढ़ा का जन्म जयपुर में सन् 1867 में हुआ। आपके पिता श्री सागरचन्दजी का जल्द ही देहान्त हो गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जयपुर में हुई। सन् 1889 में उन्होंने अंग्रेजी में बी.ए. ऑनर्स किया एवं 1890 में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम.ए. की डिग्री ली। वे ओसवाल समाज में प्रथम स्नातकोत्तर डिग्री धारी थे। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू एवं फारसी भाषाओं पर आपको समान अधिकार प्राप्त था। वे जयपुर रियासत में मुंसिफ नियुक्त हुए। उन्होंने विभिन्न पदों पर रियासत की सेवा की। अन्ततः माउंट आबू में महामान्य गवर्नर जनरल के राजपूताना स्थित एजेंट के यहाँ जयपुर दरबार के प्रतिनिधि की हैसितय से कार्यरत रहे। इस बीच कुछ समय तक खेतड़ी राज्य के मुख्यमंत्री का पद भी संभाला। वे बीकानेर राज्य के लेखाधिकारी, जामनगर महाराजा के निजी सचिव, झाबुआ राज्य के दीवान आदि विभिन्न पदों पर भी कार्यतर रहे।

उस समय जैन समाज निरक्षरता के चंगुल में फंसा हुआ था। समाज को इस कमजोरी से छुटकारा दिलाने के लिए सन् 1902 में फलौदी में जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस की स्थापना हुई। कॉन्फ्रेंस के पिता रूप संस्थापक होने का श्रेय गुलाबचन्दजी को ही है। सन् 1907 में वे अखिल भारतवर्षीय जैन युवक एसोशियेसन के अध्यक्ष चुने गए। वे श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन बालाश्रम के व्यवस्थापक थे। वे सन् 1933 में महाराष्ट्रीय जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस, अहमदनगर के अध्यक्ष चुने गए। सन् 1935 में वे आत्मानन्द जैन

गुरुकुल गुजरानवाला के भी अध्यक्ष चुने गए। सन् 1938 में मंडोली में आयोजित मारवाड़ प्रांतीय जैन कॉन्फ्रेंस की आपने ही अध्यक्षता की।

आपने व्यापार के क्षेत्र में बैंकों का सफल संचालन किया। मुंबई मर्चेंट बैंक की रंगून बांच में आप एजेन्ट की हैसियत से एवं पूना बैंक की मुम्बई शाखा में मैनेजर की हैसियत से कार्यरत रहे। आप ग्वालियर राज्य के कोर्ट ऑफ वार्ड्स के सदस्य रहे। बांसदा (गुजरात) में आप राज्य के स्पेशल ऑफिसर नियुक्त हुए।

सन् 1937 में चतुर्थ अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन के आप अध्यक्ष मनोनीत हुए। इस सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से आए प्रतिनिधियों के अलावा अन्य जातियों एवं राष्ट्र के शीर्षस्थ नेताओं को आमंत्रित किया गया था। महाराजा भावनगर, महाराजा त्रिपुरा, लक्ष्मी निवासजी बिड़ला, भागीरथजी कानोड़िया प्रभृति सज्जनों का मार्गदर्शन भी समाज को मिला। इसी सम्मेलन में समाजभूषण छोगमलजी चोपड़ा आदि सज्जनों ने ''जैन धर्म की संस्कृति एवं आदर्श'' को ओसवाल जाति की मूल प्रेरणा एवं आदर्श रूप में मान्यता दिए जाने सम्बन्धी प्रस्ताव रखा था जो सम्मेलन ने अस्वीकार कर लिया। इसी सम्मेलन में एक क्रांतिकारी प्रस्ताव भी पारित हुआ—जाति बहिष्कार की विघटनकारी प्रथा के विरुद्ध। श्रीसंघ-विलायती विवाद की अमंगलकारी प्रथा की पुरजोर शब्दों में भर्त्सना की गई।

सन् 1931 में राज्य सेवाओं से निवृत्ति के बाद आपने अपनी जन्म-भूमि मारवाड़ में विद्या प्रसार को अपना मिशन बना लिया। उन्होंने उम्मेदपुर एवं फालना में एक आवासीय स्कूल की बुनियाद रखी जिसने बाद में कॉलेज स्तरीय सक्षमता हासिल कर ली।

सन् 1952 में श्री गुलाबचन्दजी ढढ्ढा का पार्थिव शरीर पंच तत्त्व में विलीन हो गया। उनके सुपुत्र प्रसिद्ध सर्वोदयी नेता श्री सिद्धराजजी ढढ्ढा राष्ट्र सेवा में संलग्न हैं।

88. श्री लालचन्द ढ़ढ़ा (1898-1968)

जन्म : फलौदी, 1898

पिताश्री : सुगनमल ढ़ढ़ा

दिवंगति : 1968

अरब देशों में एक कहावत है–एक आदमी को समुद्र में डुबा दो तब भी भाग्य ने सहारा दिया तो वह बच निकलेगा और वह भी ढ़ेरों मछलियाँ लेकर। करामात पूर्व जन्मों में अर्जित किए पुण्य फल की है। श्री लालचन्दजी ढ़ढ़ा की कहानी भी ''कुछ नहीं'' से ''सब कुछ''–अपने अध्यवसाय एवं सौभाग्य से अर्जित करने की कहानी है।

'ढ़ढ़ा' गौत्र मूलत: सोलंकी राजपूतों से नि:सृत है। वे बहादुर और कार्यकुशल होते थे। इनके पूर्वज सारंगदासजी जैसलमेर छोड़कर फलौदी आ बसे। अपने शरीर की मजबूती के कारण सिंध के अमीर से उन्होंने 'ढ़ढ़' का विरुद पाया। इसी कारण उनके वंशज कालान्तर में 'ढ़ढ़ा' कहलाये। सन् 1660 में लुंका गच्छीय श्री भागचन्दजी स्वामी के उपदेश से उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय की आस्था ग्रहण की।

इन्हीं सारंगदासजी के पुत्र रघुनाथदास हुए। उन्हीं के वंशजों में शाह सुगनमल ढ़ढ़ा हुए। सन् 1900 में वे व्यापार के निमित्त मद्रास आए और यहाँ महाजनी कारोबार करने लगे। उनके तीन पुत्र हुए–लक्ष्मीचन्द सौभागमल और लालचन्द। बच्चों की शिक्षा नाम मात्र की हुई। दोनों बड़े भाइयों ने मद्रास में 'केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट' की एक दूकान पर नौकरी कर ली। उस समय तक परिवार बहुत साधारण स्थिति में था। लालचन्द जब पैतृक निवास फलौदी से मद्रास आए तो भाइयों की सिफारिश पर दूकान मालिक ने लालचन्द को भी रहने, खाने एवं काम करने की इजाजत दे दी। साल के अंत में जब सेलेरी देने का अवसर आया तो दूकान मालिक उन्हें सेलेरी देने

से साफ इन्कार हो गया। तीनों भाइयों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने तुरंत नौकरी छोड़ दी और निजी व्यवसाय करने का संकल्प किया।

सन् 1914 में मात्र एक सौ रुपये की पूँजी से ''ढ़ढ़ा एण्ड कम्पनी'' नाम का अपना ड्रग स्टोर खोला। दूकान चल निकली। सन् 1920 तक उसकी दैनिक बिक्री आठ हजार तक होने लगी। जल्दी ही उन्हें विदेशी कम्पनियों की दवाइयों की एजेन्सी भी मिल गई।

कुछ समय बाद ही लालचन्द के दोनों भाई काल-कवलित हो गए। परिवार एवं व्यवसाय का सारा भार तरुण लालचन्द के कंधों पर आ पड़ा। सन् 1930 में लालचन्द ने एकाकी हो जाने एवं कार्यभार कम करने के ख्याल से दूकान एक छोटी जगह पर स्थानान्तरित कर ली। यही उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ। 'प्रामाणिक दवा और वाजिब कीमत' का उनका मूल मंत्र कारगर साबित हुआ। उनका कारोबार दिन दूना, रात चौगुना बढ़ा। दूकान की शाखाएँ, प्रशाखाएँ खुली। द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय जर्मनी को मित्र राष्ट्रों का दुश्मन घोषित कर दिया गया था। मद्रास में दवाइयों के सर्वप्रमुख विक्रेता जर्मनी की Bayer & Company थे। लालचन्दजी ने कोड़ियों के मोल Bayer का सारा स्टॉक खरीद लिया। युद्ध के समय Vital drugs की कमी हो जाने से ढ़ढ़ा एण्ड कम्पनी का कारोबार बहुत बढ़ गया।

मद्रास में 'अखिल भारतवर्षीय केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट फेडरेशन' स्थापित करने का श्रेय लालचन्दजी को है। सन् 1922 में ढ़ढ़ा एण्ड कम्पनी ने आवश्यक दवाओं के भारत में निर्माण की शुरुआत की। बड़ी-बड़ी विदेशी कम्पनियों के साथ अनुबंध कर वे इस क्षेत्र में अग्रगण्य हो गये। सन् 1968 में उन्होंने अस्पतालों में काम आने वाली अन्य सामग्रियों का निर्माण शुरु कर दिया।

सम्पत्ति अर्जन के साथ-साथ लालचन्दजी में सामाजिक सहकार की भावना भी विकसित हुई। उन्होंने अपनी फर्म के स्वर्ण जयंती अवसर पर एक ट्रस्ट की स्थापना की। इस ट्रस्ट की आय से अनेक जन-हितकारी प्रवृत्तियों का संचालन होता है। मद्रास की प्रसिद्ध सेवाभावी संस्था ''जैन मेडिकल रिलीफ सोसाईटी'' की स्थापना का श्रेय लालचन्दजी को ही है। यह संस्था नगर में अनेक दवा-वितरक केन्द्रों का संचालन करती है।

सन् 1968 में लालचन्दजी का देहावसान हुआ। उनके सुपुत्र श्री मोहनचन्दजी ढढ़ा ने सम्पूर्ण कारोबार की डोर सम्भाल रखी है। उनके प्रयत्नों और सूझबूझ से 1972 में राज्य सरकार के सहयोग से ''तामिलनाड ढढ़ा फार्मास्यूटिकल'' की नींव पड़ी। सन् 1977 में ट्रस्ट के फंड से ''लालचन्द मिलापचन्द ढढ़ा स्कूल'' की स्थापना हुई।

89. सेठ आनन्दराज सुराणा (1891-1980)

जन्म : जोधपुर, 1891
पिताश्री : चांदमल सुराणा
पद/उपाधि : प्राणीमित्र (1970), पद्मश्री (1971), समाज भूषण, (1972)
दिवंगति : 1980

आपका जन्म जोधपुर में सन् 1891 में हुआ। आपको अहिंसा एवं आध्यात्म से लगाव पैतृक विरासत में मिला। आपके पिता सेठ श्री चांदमल सुराणा सार्वजनिक हित के कामों में सदैव तत्पर रहते थे। वे जोधपुर पिंजरापोल के संरक्षक थे। श्री आनन्दराजजी जब 32 वर्ष के थे तभी राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। बीकानेर महाराज ने आपको राज्य से निर्वासित कर दिया। जोधपुर का सामन्ती शासन भी उन्हें बर्दास्त न कर सका। आपने लोक परिषद् की स्थापना एवं सन् 42 के भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। अनेक बार जेल की यातनाएं सही। आप दिल्ली धारा सभा के सन् 1952-57 तक सदस्य रहे।

आपने निजी कारोबार शुरु किया। छापेखाने की मशीनों के आयात एवं निर्माण का बहुत बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान आपके ही अध्यवसाय का फल था। साथ ही, रासायनिक उद्योग में भी आपने भाग्य आजमाया एवं समृद्धि हासिल की। आप देश की अनेक समाजसेवी संस्थाओं से जुड़े रहे, जिनमें मुख्य हैं—बम्बई की ह्यूमेनीटेरियन लीग, गीता शिशु विहार, भारतीय शाकाहार कॉन्फ्रेंस, भारत गो-सेवक संघ, विश्व अहिंसा संघ आदि। सुराणा विश्वबंधु ट्रस्ट के आप संस्थापक ट्रस्टी थे। आपके हृदय में जानवरों एवं प्रकृति के प्रति बहुत प्रेम था। लोगों का जानवरों के प्रति क्रूर व्यवहार देखकर आपका मन सदा दुःखी रहता था। आपने उनके विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया। जोधपुर राजमहल में लाखों पशुओं को कत्ल से बचाने के लिए सत्याग्रह किया।

हिसार में अकाल की विभीषिका से पशुओं को बचाने के लिए कैम्प लगाए। बिहार व राजस्थान के अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ घर-घर जाकर धन एकत्रित किया।

भगवान् महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव के समय उन्होंने 2500 गायों को कत्ल घर से बचाकर गौ सदनों के हवाले किया। आप अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के 25 वर्ष तक महामंत्री एवं ट्रस्टी रहे। सम्मानित एकता और नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए उन्होंने कॉन्फ्रेंस की गतिविधियों को नया आयाम दिया। दिल्ली में भगतसिंह मार्ग पर निर्मित विशाल 'जैन भवन' आप ही की सूझ-बूझ का फल है। भारत-पाकिस्तान के बँटवारे के साथ विस्थापित हुई बहनों के पुनर्वास हेतु आपका सहयोग चिर-स्मरणीय रहेगा। आप दिल्ली की अनेक संस्थाओं के सभापति रहे। भारत के राष्ट्रपति ने सन् 1970 में उन्हें ''प्राणीमित्र'' की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1971 में उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। जैन समाज ने सन् 1970 में उन्हें 'समाज रत्न' एवं सन् 1972 में समाज भूषण के विरुद से विभूषित कया। वे सन् 1980 में स्वर्गस्थ हुए।

90. सेठ अचलसिंह (1895-1983)

जन्म : आगरा, 1895

पिताश्री : पीतमल चोरड़िया (सेठ सवाईराम बोहरा के दत्तक आये)

दिवंगति : 1983

जन्म उनका सार्थक होता है, जिनका जीवन अर्थवान हो। सेठ अचलसिंह के व्यक्तित्व में एक महापुरुष की कल्पना चरितार्थ हुई। अत्यंत सज्जनता, सहृदयता, निरभिमानता, विनम्रता, पर-दुःख-कातरता, कर्त्तव्य परायणता, अनुशासन प्रियता, मित भाषिता आदि गुणों का संगम उनके व्यक्तित्व को भव्यता प्रदान करता था। विशाल देहयष्टि, शिशु सरीखी भोली आकृति, शुभस्मिति उनकी शख्सियत के अभिन्न अंग थे। बीसवीं शदी के लोकप्रिय राष्ट्रीय एवं आंचलिक जैन कर्णधारों में वे अग्रगण्य थे। उन्होंने यह लोकप्रियता अपनी भाषण-पटुता के बल पर नहीं, अपितु कार्यक्षमता एवं कर्मठता के बल पर अर्जित की थी। आज के युग में जब राजनीति सत्ता की अनुगामिनी और कुर्सियों की उठा-पटक का पर्याय बन चुकी है सेठजी इस दलदल से कोसों दूर रहे। आगरा की जनता ने उन्हें बेहद प्यार एवं सम्मान दिया एवं बार-बार धारा सभा एवं लोकसभा के लिए चुना। आज ऐसे महाजन दुर्लभ हैं जिनमें धर्म के सभी तत्त्वों का समावेश हो। सेठजी के व्यक्तित्व में मन, वचन और कर्म की एकरूपता थी। वे आर्थिक दृष्टि से ही महाजन नहीं थे, अपितु धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से भी असल में महाजन थे।

सेठ अचलसिंह का जन्म 5 मई, सन् 1895 के दिन आगरा नगर के एक समृद्ध एवं प्रतिष्ठित जैन ओसवाल बोहरा गोत्रीय धर्म प्रेमी परिवार में हुआ। आगरा के सेठ सवाईरामजी बोहरा की समाज में प्रतिष्ठा थी पर उनके कोई पुत्र न था। उन्होंने आगरा के ही पीतमल चोरड़िया को दत्तक लिया।

पीतमलजी ने अपने अध्यवसाय से खूब सम्पत्ति अर्जित की। आपको धौलपुर महाराज ने 'सेठ' की पदवी से सम्मानित किया। आपके तीन पुत्रों में अचलसिंह सबसे छोटे थे। आगरा में मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अचलसिंह ने नैनी एवं कानपुर के कृषि विद्यालयों में अध्ययन किया।

वे 1916 में प्रथम बार अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के लखनऊ अधिवेशन में सम्मिलित हुए और उसी समय से देश सेवा तथा जन सेवा के कार्य में जीवन अर्पण कर दिया। आपने सन् 1917 में श्रीमती ऐनी बेसेंट द्वारा संचालित 'होमरूल' आंदोलन में भाग लिया। सन् 1918 में 'रोलेट एक्ट' का बहिष्कार किया। इस प्रकार सार्वजनिक जीवन का समारम्भ हुआ। वे राष्ट्र के स्वतंत्रता आन्दोलन को समर्पित हो गये।

सन् 1928 में 'अचल ग्राम सेवा संघ' नामक संस्था की स्थापना कर ग्रामों में शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए कार्य प्रारम्भ किया तथा सन् 1932 तक 300 रुपए प्रति माह इस कार्य के लिए व्यय किया। उनके इस सेवा कार्य ने गाँवों में क्रांति कर दी। गाँवों के उत्थान में आपकी सेवा अविस्मरणीय रहेगी।

सन् 1930 में 'नमक सत्याग्रह' में पहली बार 6 माह के लिए जेल गए। इसके पश्चात् 1932 में सत्याग्रह आंदोलन में अठारह माह, सन् 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में एक वर्ष एवं 1942 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में ढ़ाई वर्ष के लिए जेल यात्रा की।

सन् 1934 में आप बिहार की केन्द्रीय भूकम्प सहायता समिति के सदस्य चुने गए। इसी वर्ष आप लखनऊ में भारत जैन महामण्डल तथा अजमेर में होने वाले अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन नवयुवक सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए। इसी वर्ष अजमेर में ही होने वाले अखिल भारतवर्षीय द्वितीय ओसवाल महासम्मेलन के अधयक्ष निर्वाचित हुए। सन् 1935 में एक लाख रुपए दान से 'अचल ट्रस्ट' की स्थापना की। संप्रति इस संस्था से संबद्ध अचल भवन में पुस्तकालय एवं वाचनालय चल रहे हैं। सन् 1953 में आगरा में होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष चुने गए थे।

वे आगरा नगरपालिका के उपसभापति चुने गए। आगरा नगर काँग्रेस एवं प्रांतीय काँग्रेस के वे सन् 1930 से 1948 तक लगातार अध्यक्ष रहे। सन् 1952 में आप प्रथम बार लोकसभा के सदस्य चुने गए।

सन् 1953 में आप दिल्ली के अखिल भारतवर्षीय महावीर जयंती कमेटी के अध्यक्ष बने। सन् 1957 में दिल्ली में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन के आप प्रधानमंत्री चुने गए। सन् 1958 से 1966, 1970 व 1974 से 1977 तक आप अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य रहे।

नारी शिक्षा के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सेठजी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवी जैन को प्रोत्साहित किया। श्रीमती भगवती देवी ने अपनी समस्त चल-अचल संपत्ति दान कर कन्या विद्यालय की स्थापना की। सेठ जी इस संस्था के अध्यक्ष रहे। आजकल इस शिक्षा संस्थान के चार स्तर हैं—महाविद्यालय, हाईस्कूल, प्राइमरी स्कूल एवं बाल मंदिर।

आगरा शहर की अनेक विकास मूलक प्रवृत्तियों का उन्होंने सफल संचालन किया। सन् 1936 से ओसवाल महा-सम्मेलन के मुख पत्र 'ओसवाल सुधारक' का प्रकाशन आप ही की देख-रेख में होता था। भगवान महावीर के 2500वें परिनिर्वाण महोत्सव समिति के आप सदस्य थे।

सन् 1974 में आपके 80वें जन्म-दिवस पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ने आपका अभिनन्दन किया। सन् 1983 में सेठ अचलसिंह का निधन हुआ।

91. सर सेठ हुकमचन्द (1874-1959)

जन्म : 1874, इन्दौर
पिताश्री : सेठ सरूपचन्द कासलीवाद
माताश्री : जबरीबाई
उपाधि : रायबहादुर, सर, जैन सम्राट
दिवंगति : 1959

अनुपम साहस विशिष्ट बुद्धिमत्ता एवं प्रबल पुरुषार्थ से देश के औद्योगिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों को समृद्ध करने वाले सेठ हुकमचन्द बीसवीं शदी के जैन कीर्तिआकाश के उज्वल नक्षत्र थे। उन्होंने अपार भौतिक सम्पदा अर्जित की एवं उसे धर्म एवं समाजोद्धारक कार्यों में लगाया। अपनी अविचल सहिष्णुता, उदारत, निरभिमानिता, परोपकारिता एवं विद्वत्-प्रेम के लिए वे मशहूर थे।

पिता सेठ सरूपचन्द कासलीवाल के घर माता जबरीबाई की कुक्षि से सन् 1874 में एक बालक ने जन्म लिया। बालक के आगमन के बाद से ही परिवार पर लक्ष्मी की कृपा होने लगी। सेठ सरूपचन्द अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। हुकमचन्द को यह सौभाग्य विरासत में मिला। पाँच वर्ष के नन्हे बालक के लिए घर ही पर विद्यार्जनार्थ एक गुरू का प्रबंध कर दिया गया। वे 15 वर्ष के हुए तब अपने परिवार के व्यापार में हाथ बँटाने लगे थे। सन् 1886 में सेठजी का प्रथम विवाह हुआ जब वे मात्र 12 वर्ष के थे। विधि की ऐसी लीला बनी कि सेठजी ने चार विवाह किए—दूसरा सन् 1899 में, तीसरा 1906 में एवं अंतिम 1915 में। उनकी अंतिम सहधर्मिणी श्रीमती कंचन बहन साक्षात लक्ष्मी का अवतार थी। वे परोपकारी एवं विदुषी थीं।

उस वक्त मध्यप्रदेश एवं गुजरात में अफीम बहुतायत से पैदा की जाती थी। इन्दौर अफीम के सट्टे के लिए प्रसिद्ध था। सेठ हुकमचन्द सट्टे के सर्वोच्च खिलाड़ी थे। उन्होंने इस धंधे से करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित की।

टाईम्स ऑफ इण्डिया ने उन्हें 'Merchant Prince of Malwa' घोषित किया। वे यह जानते थे कि सट्टे की आय अस्थिर होती है। उन्होंने अपने बच्चों को सदैव सट्टा न करने की सीख दी। सन् 1925 में सेठजी ने मुम्बई में आत्म प्रेरणा से कुछ काल तक सट्टा खेलना बन्द कर दिया।

उन्होंने अपनी समझ-बूझ, समृद्धि एवं साहस के बल पर अनेक बार अकेले ही बेधड़क भारत के समस्त बाजारों को कॉर्नर किया था। उनके एक लक्षी सौदों से विदेशों तक में सनसनी फैल जाती थी। वे सौदे इतने एकान्तिक होते थे कि लोगों को उनके असफल हो जाने की आशंकाएँ होने लगती थी। जीवन-मरण की सी उत्तेजनाओं की उन घड़ियों में भी सेठ साहब हमेशा प्रसन्न मुख रहते। वे आधी-आधी रात स्थिर मन से आगामी कल का प्रोग्राम बनाते। रातों-रात किसी को खबर लगे बिना दूसरे दिन उनके निर्देश बाजारों में पहुँचते। बाजार का सारा संतुलन उलट-पुलट हो जाता। आश्चर्य यह था कि हर ऐसे मौकों पर विजय श्री उन्हीं के हाथ लगती एवं करोड़ों की सम्पदा उनके भण्डार में प्रवेश करती।

उन्होंने 22 लाख रुपयों का एक धार्मिक ट्रस्ट बना दिया। उनके दत्तक पुत्र सेठ हीरालालजी कासलीवाल के अनुसार सेठ साहब की इस तेजस्विता एवं यशस्वी जीवन-महल की नींव रखने का श्रेय उनकी प्रथम धर्मपत्नि को था, जिनके अल्पवयसीय संसर्ग ने सेठ साहब की जीवन सरणी को आलोकित कर दिया था।

सर सेठ के रेशमी कुरते या अंगरखे पर गले में मोटे पन्नों का बहुमूल्य हरा कंठा, सर पर महाराजाओं की सी किश्तीनुका लाल पगड़ी सदा शोभायमान रहती। अंतिम वर्षों में उनकी जीवन शैली आमूलचूल बदल गई। उनको नंगे पावों, खुला सिर, देह पर मात्र एक धोती बाँधे और ओढे सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते देखकर लोग दाँतों तले अंगुली दबा लेते थे– क्या यही सेठ हुकमचन्द हैं जो कभी झल्लेदार सामन्ती जरी की पगड़ी और मलमली अचकन, गले में हीरों-पन्नों के गलहार और हाथों में अमूल्य हीरों की झलमलाती अंगूठियाँ पहने सबसे मुखातिब होते थे। निराली आन, बान, शान और साहूकारों का बेताज बादशाह कहलाते थे। सारे वैभव विलास को

उच्छिष्ट मानकर वे नितांत सादगी और साधु-संतों के सम्पर्क में जीवन बीताने लगे।

सेठ हुकमचन्द क्रांतदर्शी थे। उन्होंने अर्जित सम्पत्ति को उद्योग स्थापित करने में लगाया। बंगाल की प्रसिद्ध टैक्सटाईल एवं स्टील मिल स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को है। वे खादी और सूती कपड़े के उद्योग को महत्त्व देने के पक्षधर थे। विदेशी कपड़े की खपत को रोकने एवं भारतीय मुद्रा बचाने के उद्देश्य से उन्होंने इन्दौर में मोटे कपड़े का निर्माण शुरु किया। इन कारखानों के लगने से करीब 15000 तकनीशियनों एवं मजदूरों को रोजगार मिला।

सेठ साहब व्यापार में नफे एवं नुक्शान में सदैव समान रहते। उन्होंने बहुत उतार-चढ़ाव देखे। वे भाग्य के प्रति आशावादी रहते थे। देश-विदेश के बाजारों के उतार-चढ़ाव पर वे नजर रखते। उनका विश्लेषण अधिकांश सही रहता। उनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण था –साहस। बड़ा से बड़ा दांव खेलने की क्षमता। इसी क्षमता ने उन्हें ''मर्चेंट किंग'' बना दिया। स्वदेशी उद्योग धंधों में वे अग्रणी थे।

सेठ साहब की औद्योगिक सफलता ने उनकी उदारता और परोपकारी वृत्तियों को पंख दे दिए। माता से विरासत में मिले धार्मिक संस्कार उजागर हुए। उन्होंने शीशमहल, इन्द्रभवन, ईतिवारिया नूं मंदिर आदि भव्य ईमारतों का निर्माण करवा कर समाज को समर्पित कर दिया। विश्रांति भवन, महाविद्यालय, बोर्डिंग हाउस, कंचनबाई श्राविकाश्रम, औषधशाला, प्रसूति गृह, भोजनशाला आदि अनेक संस्थानों का निर्माण उनकी दानशीलता के ज्वलंत उदाहरण हैं।

बचपन से ही उन्हें धर्मचर्या में रूचि थी। वे धर्मप्रेमी बंधुओं के साथ *हर रोज पूजन, स्वाध्याय करते। त्यागी एवं विद्वान् व्यक्तियों का सत्संग उन्हें रुचिकर था। सन् 1942 में इन्दौर में शांतिमंगल विधान एवं अष्टानिका पर्व* के दरम्यान उन्हें मानपत्र भेंट किया गया। सोनगढ़ के दिगम्बर जैन यात्राधाम की उन्होंने तीन बार यात्रा की। वे पूज्य कानजी स्वामी की आध्यात्मिक संहिताओं से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने वहाँ जैन मन्दिर निर्माण के लिए एक

लाख रुपये का अवदान दिया। जब सम्मेद शिखर तीर्थ पर संकट के बादल मंडराए और अंग्रेज सरकार ने वहाँ विदेशी शासकों के लिए कोठियाँ निर्माण करने का हुक्म निकाला तब सेठजी ने जैन समाज का नेतृत्व कर पुरजोर विरोध किया एवं सम्मोद शिखर को विदेशी हाथों में जाने से बचाया।

सन् 1902 में उन्होंने इन्दौर के पास ही श्री पार्श्वनाथ के भव्य जिनालय का निर्माण करवाया। इसमें रंग-बिरंगे काँच की पच्ची कारी सृजन के लिए ईरान से कारीगर बुलाए थे। इन्दौर में जब प्लेग की महामारी ने पाँव पसारे तो सेठ साहब ने अहसाय जैन भाइयों की सहायता के लिए हर सम्भव प्रयास किये। सन् 1913 में श्री दिगम्बर जैन महसभा के पालीताणा अधिवेशन में सेठ साहब अध्यक्ष मनोनीत हुए। तीर्थ की सुरक्षा के लिए उन्होंने चार लाख का अवदान दिया। सन् 1917 में दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल हॉस्पिटल के लिए उन्होंने चार लाख रुपए अवदान दिये। देश के कौने-कौने में ऐसे अवदानों की झड़ी लग गई थी।

जैन-जागरण के अग्रदूत के लेखक श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीम के अनुसार–''यदि कतिपय पण्डित आपको रूढ़िवादी विचारों में न फँसाये रहते तो जो स्थान आज बौद्ध धर्म में अशोक को, जैनधर्म में सम्प्रति और खारवेल को प्राप्त है, वहीं ऐतिहासिक स्थान सर सेठ को मिला होता।''

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने सर सेठ के व्यक्तित्व की विशिष्टता उकेरते हुए कहा था, ''सर सेठ की कर्मनीति चाणक्य वाली है, सफलता और विजय अवश्य मिले, चाहे जैसे भी मिले। जरूरत हो तो तीरछी बाँकी व्यूह रचना भी कर सकते हैं। इसमें कुटिल होकर भी वे जीवन में सरल हैं। अपनी युद्ध नीति में वे विरोधी को फुसलाना भी जानते हैं–भ्रम में डालना भी, झपट्टा मारना भी। वे विरोधियों को परास्त करने में ही कुशल नहीं, अपनों को आश्वस्त करने में भी प्रवीण हैं।''

दिगम्बर जैन महासभा ने 1952 में उन्हें अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट कर समाज की कृतज्ञता ज्ञापित की। इसी ग्रंथ में उनके कुल 80 लाख रुपयों के दान की सूचि भी है।

ब्रितानिया सरकार की ओर से उन्हें 'राय बहादुर' एवं K.T.I. (Sir) के खिताब बख्शे गए। प्रथम विश्व महायुद्ध के समय उन्होंने ब्रिटिश सरकार को एक करोड़ रुपए का Warloan दिया था। जैन समाज ने समय-समय पर 'दानवीर', तीर्थभक्त शिरोमणी, जैन धर्म भूषण, जैन दिवाकर, जैन सम्राट, राज्यभूषण, राव राजा, श्रीमंत सेठ आदि विरुदों से उन्हें विभूषित किया।

सन् 1959 में 85 वर्ष की वय में भारत के औद्योगिक एवं व्यावसायिक गगनमण्डल का यह प्रतापी नक्षत्र अस्त हुआ।

92. सेठ अम्बालाल साराभाई (1890-1967)

जन्म : 1890, अहमदाबाद

पिताश्री : मगनभाई करमचन्द साराभाई

पद/उपाधि : कैसरे-हिन्द

दिवंगति : 1967

दसा-श्रीमाल खानदान के सेठ अम्बालाल साराभाई का जन्म सन् 1890 में हुआ। आपके पिता सेठ साराभाई मगनभाई करमचन्द 30 वर्ष की अल्पायु में स्वर्ग सिधारे। उस समय अम्बालाल मात्र 5 वर्ष के बालक थे। चाचा चिमन भाई नगीनदास की देखरेख में आपकी शिक्षा अहमदाबाद में हुई। 17 वर्ष की आयु में आपने पारिवारिक कारोबार देखना आरम्भ कर दिया। बीस वर्ष की वय में आपका विवाह राजकोट के श्री हरिलाल गोसालिया की पुत्री सरला देवी से हुआ।

आपने विलायत में कपड़ा उद्योग का गहरा अध्ययन किया। सन् 1915 में आप गांधीजी के सम्पर्क में आए। अहमदाबाद में मिल मजदूरों की माँगों को लेकर हुए संघर्ष में आपने मजदूरों का पक्ष लिया। आपकी सूझ-बूझ एवं अध्यवसाय से कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में आपका प्रतिष्ठान शीर्षस्थ प्रतिष्ठानों में गिना जाने लगा। केलिकों मिल्स की प्रबंधक ''कर्मचन्द्र प्रेमचन्द कम्पनी'' के आप वरिष्ठ डाईरेक्टर थे। रासायनिक दवाओं के मुख्य निर्माता बड़ोदा के साराभांई केमिकल्स, सुहृद गीगी, साराभाई मर्क सीनोबायोटिक्स आदि कम्पनियों की मालिक यही कम्पनी थी। स्टेप्टोमायसीन एवं पेनसलीन के निर्माता स्टेंडर्ड फार्मास्यूटिकल्स भी उसी समूह में शामिल हैं। जल्द ही अपने बुद्धि-कौशल से आप भारत के प्रमुख उद्योगपतियों में गिने जाने लगे। आप अहमदाबाद मिल मालिक संगठन के अध्यक्ष चुने गये।

ब्रिटिश सरकार ने आपको कैसरे हिन्द स्वर्ण पदक से सम्मानित किया। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के समय यह पदक आपने

सरकार को लौटा दिया। आपने समाज की अनेक शैक्षणिक और हितकारी संस्थाओं एवं प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन किया। राष्ट्रीय काँग्रेस को दिल खोलकर राष्ट्रीय समृद्धि के लिए धन दिया। कवि गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर, सी.एफ. एन्ड्रूज, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, प्रसिद्ध चित्रकार गगनेन्द्रनाथ एवं अवनीन्द्रनाथ टैगोर, नन्दनलाल बोस, प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु एवं प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार से आपके अच्छे व्यक्तिगत सम्पर्क रहे। आपकी धर्मपत्नि श्रीमती सरलाबेन भी विदेशी वस्त्रों एवं शराब की दुकानों पर धरना देते हुए जेल गई। सन् 1967 में आप दिवंगत हुए।

93. सुश्री चन्दाबाई आरा (1889-1977)

जन्म : वृन्दावन, 1889
पिताश्री : नारायणदास अग्रवाल (वैष्णव)
माताश्री : राधिका देवी
दिवंगति : आरा, 1977

बीसवीं शदी का प्रारम्भ भारत के सांस्कृतिक महाकाश का कृष्ण पक्ष था। निरक्षरता एवं अंधविश्वासों की तमिस्रा से समाज-विकास अवरुद्ध हो रहा था। समस्त नारी समाज रूढ़िग्रस्त था, कन्या माँ-बाप के लिए एक बोझ थी, एक निरीह पशु की तरह उसका शोषण हो रहा था और तभी राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और रामकृष्ण परमहंस जैसे ज्ञान सूर्यों का उदय हुआ। ऐसे ही समय एक महिमामयी नारी की मूक साधना एवं लोक-कल्याणकारी सेवा से समाज धन्य हुआ। वह विभूति थीं ब्रह्मचारिणी पंडिता चन्दाबाई।

चन्दाबाई का जन्म वृन्दावन के एक सम्भ्रान्त अग्रवाल वैष्णव परिवार में सन् 1887 में हुआ। पिताश्री नारायणदास एवं माता श्रीमती राधिका देवी की लाडली पुत्री का बचपन राधाकृष्ण की रसमयी भक्तिधारा में अवगाहन करते बीता। सौन्दर्य और दिव्य ओज तो वह भगवान से लेकर पैदा हुई थी। माँ से श्रद्धा और पिता से कर्मठता बच्ची को उपहार में मिले थे। तत्कालीन सामाजिक रीत्यानुसार मात्र 11 वर्ष की उम्र में उसका विवाह सुप्रसिद्ध गोयल गोत्रीय रईस खानदान में पण्डित प्रभुदासजी के पौत्र एवं चन्द्रकुमारजी के कनिष्ठ पुत्र श्री धर्मकुमार से हुआ। वे जैन धर्मावलम्बी थे। सभी खुश थे। पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। एक वर्ष बाद ही धर्मकुमार का स्वर्गवास हो गया और मात्र 12 वर्ष की उम्र में चन्दा बाई सौभाग्य सुख से सदा के लिए वंचित हो गई।

धर्मकुमार के अग्रज श्री देवकुमार, छोटे भाई की अकाल मृत्यु से चन्दाबाई पर आई इस विपत्ति से अत्यंत व्यथित थे। देवकुमारजी धर्मनिष्ठ,

परोपकारी जीव थे। साहित्य, शिक्षा और दर्शन शास्त्र में उनकी विशेष रुचि थी। उनके प्रोत्साहन से चन्दाबाई ने ज्ञानार्जन का संकल्प किया। दासत्व की जंजीरों में जकड़ी घूंघट की गलफांस में बंधी अज्ञान की कुरीतियों से पीड़ित नारी के समस्त सामाजिक रोगों की एकमात्र रामबाण औषधि शिक्षण ही तो है। शिक्षण ही उसे स्वतंत्र आजीविका एवं प्रतिष्ठा प्रदान कर सकता है। नारी की अस्मिता और आत्म गौरव की रक्षा के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। देवकुमारजी के निर्देशन में अनेकानेक मुश्किलों का सामना करते हुए चन्दाबाई ने काशी की 'पंडिता' परीक्षा उत्तीर्ण की।

कन्या शिक्षा के प्रचार-प्रसार को उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया। सन् 1907 में आरा (बिहार) शहर में उन्होंने एक कन्या पाठशाला का शुभारम्भ किया। शांतिनाथ भगवान के मंदिर की एक ओरड़ी (कमरा) में दो अध्यापिकाओं की सहायता से शिक्षण क्रम चालू हुआ। समय के साथ नाना अन्य नारी-उपयोगी प्रवृत्तियाँ संचालित की गई। सन् 1921 में धर्मपुरा (बिहार) में ''जैन बालाश्रम'' की नींव पड़ी। तरुण तपस्विनी चन्दाबाई की सतत सेवा एवं सद्प्रयासों से यह संस्था देश की विशिष्ट संस्थाओं में गिनी जाने लगी। यह उनकी लोक-कल्याण की साधना का मूर्तिमंत स्वरूप था। इस बनिता विश्राम के प्रांगण में पधार कर महात्मा गाँधी बहुत आनन्दित हुए थे। जैन समाज की शिक्षण-संस्थाओं में यह अद्वितीय है। यहाँ न्यायतीर्थ साहित्यरत्न, शास्त्री आदि की परीक्षा पाठ्यक्रम के अध्यापन का सुचारू प्रबन्ध है।

चन्दा बाई की धार्मिकता अपूर्व थी। उन्होंने अनेक धर्म प्रभावक-सृजन करवाये। राजगृह के रत्नगिरि पर्वत पर जमीन खरीद कर एक दिव्य जिनालय का निर्माण बड़े उत्साह व धूमधाम से कराया। बालाश्रम के रम्य उद्यान में सन् 1937 में श्रवण बेलगोला स्थित गोम्मट्ट स्वामी की प्रतिकृति 13 फीट ऊँची मनोहारी प्रतिमा बनवाकर एक कृत्रिम पहाड़ पर प्रतिष्ठित करवाई।

साहित्य के क्षेत्र में उनका अनुपम योगदान स्मरणीय है। वे एक सफल लेखिका और सम्पादिका थी। सन् 1921 में ''जैन महिलोदय'' नामक

पत्रिका प्रकाशित की एवं वर्षों इसका कुशल सम्पादन किया। महिलोपयोगी अनेक पुस्तकों का सृजन किया। वे जैन धर्म के उज्ज्वल प्रकाश से विश्व को आलोकित करने के लिए सदा तत्पर रहती थी। सन् 1948 में ''सर्चलाईट'' नामक पत्र में जॉर्ज बर्नार्डशा की जैन धर्म रुचि विषयक संवाद छपा। वे जैनमत के सिद्धांतों एवं गांधीजी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के विवेचन के प्रति उत्सुक थे। उन्होंने गाँधीजी के पुत्र श्री देवदास गाँधी से इस कार्य हेतु सम्पर्क किया था। जैसे ही चंदाबाई ने यह संवाद पढ़ा, उन्होंने सेठ सर हुकमचन्द, सेठ भागचन्द सोनी एवं साहू शांतिप्रसाद को खत लिखकर एक जैन विद्वान् जॉर्ज बर्नार्डशा के निर्देशन हेतु विदेश भेजने की प्रेरणा दी।

तपःपूत चंदाबाई का मानस करुणा से ओत-प्रोत था। वनिता आश्रम के विद्यार्थियों पर उनका अपार प्रेम था। वे उनके रोग-शोक में 'माँ' की भाँति सदा शरीक रहती थी। अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना वे सदा उनकी सेवा में तत्पर रहती। सन् 1942 में त्रिकाल सामायिक, पूजन के साथ संस्थाओं के कार्यभार एवं अत्यधिक परिश्रम करने से वे स्वयं रुग्ण रहने लगी। डॉक्टरों ने बलवर्धक इंजेक्शन तजबीज किए। पर वे किसी भी तरह राजी नहीं हुई। उनकी आत्मशक्ति एवं जागृति अभूतपूर्व थी। जैन संस्कृति की वे मूर्तिमंत प्रतीक थी। राजभोगों से महाभिनिष्क्रमण कर त्याग का कंटकाकीर्ण पथ उन्होंने स्वयं चुना था। अहिंसा और सत्य की साधना करते हुए उन्होंने वृद्धावस्था में प्रवेश किया एवं सन् 1977 में एक दिन शांतिपूर्वक स्वर्गारोहण किया।

94. सेठ रामलाल गोलछा (1900-1983)

जन्म : नवाबगंज (बंगलादश), 1900

पिताश्री : तनसुखदसजी गोलछा

पद/उपाधि : प्रवाल गोरखा दक्षिण बाहु, 1963

दिवंगति : 1983

अपने अध्यवसाय से समृद्धि हासिल कर ओसवाल समाज को गौरवान्वित करने वाले सेठ रामलालजी गोलछा का जन्म सन् 1900 में नवाबगंज (बंगलादेश) के साधारण व्यापारी परिवार में हुआ। शिक्षा भी अधिक नहीं पाई। आपके पिता तनसुखलालजी ने अलबत्ता महाजनी में पुत्र को दक्ष क़र दिया। पन्द्रह वर्ष की अल्पवय में आपका विवाह हो गया। दो वर्ष बाद ही माता-पिता का देहांत हो गया। यहीं से उनके जीवन ने अलग मोड़ लिया। घर की जिम्मेदारी आपके कंधों पर आ पड़ी। आप नवाबगंज छोड़ सुन्दरगंज आ गये एवं वहाँ जूट का कारोबार शुरु किया। थोड़े समय बाद फारबीसगंज में भी शाखा खोल दी। सन् 1926 में उन्होंने विराटनगर में प्रवेश किया, तभी से भाग्यश्री उन पर मुस्कराने लगी। तत्कालीन विराटनगर एक जंगल एवं पिछड़ा प्रदेश था। वहाँ जूट खरीद कर कलकत्ता की मिलों में देना शुरू किया। उन्हें सफलता तो मिली ही पूरा प्रदेश इस व्यापार से लाभान्वित हुआ। सन् 1935 में उन्होंने सेठ राधाकिशन चमड़िया को विराटनगर में जूट मिल स्थापित करने के लिए राजी कर लिया। नि:स्वार्थ सेवाएँ देकर उन्होंने जूट मिल को नेपाल का शीर्षस्थ उद्योग बना दिया।

गोलछा जी ने सन् 1942 में विराटनगर में नेपाल राजघराने के सहयोग से रघुपति जूट मिल की स्थापना की। लाखों रुपये का घाटा स्वयं बर्दास्त कर उन्होंने इसे चोटी के लाभप्रद उद्योग में बदल दिया। सन् 1959 में उन्होंने हिमालय जूट प्रेस की स्थापना की। जूट निर्यात के व्यवसाय में

उन्हें खूब सफलता मिली और सरकार को विदेशी मुद्रा। वे पहले उद्योगपति थे जिन्होंने नेपाल से जूट का निर्यात शुरु किया। वे ''नेपाल के जूट किंग'' नाम से प्रसिद्ध थे। सन् 1962 में उन्होंने विराटनगर में स्वयंचालित चावल मिल की स्थापना की जो पूरे नेपाल में अपनी तरह की एक ही है। सन् 1963 में उन्होंने स्टेनलेस स्टील के बर्तनों का कारखाना लगाया जो देश ही नहीं विदेशों की माँग सम्पूर्ति भी करता है। आज इस उद्योग-समूह द्वारा ऑटोमोबाईल, कागज, एलोकट्रॉनिक्स, चीनी, वनस्पति आदि के अनेक उद्योग संचालित होते हैं एवं लगभग 17000 व्यक्ति काम करते हैं।

उनकी सत्प्रेरणा से नेपाल तराई क्षेत्र में उच्च शिक्षा का सूत्रपात हुआ। महाविद्यालय हेतु उन्होंने वृहत भू-खण्ड दान देकर छात्रों की सुविधा हेतु एक दुमंजिले छात्रावास का निर्माण कराया। नेपाल के अनेक अन्य क्षेत्र उनके शिक्षा अनुदानों से लाभान्वित हुए। अपने पुश्तैनी नगर रतनगढ़ में एक विशाल भू-खण्ड पर ''गोलछा ज्ञान मन्दिर'' के नाम का एक भव्य उपासना केन्द्र बनवाकर उसे लोक-कल्याणार्थ समर्पित किया। लाडनूँ विश्व विश्रुत धार्मिक केन्द्र ''जैन विश्व भारती'' की स्थापनार्थ प्रथम आर्थिक अनुदान

उन्हीं का था। सन् 1982 में सर्वजन हितार्थ ''नेत्र चिकित्सालय'' का निर्माण करवाकर वे विराटनगर की जनता के लोकप्रिय नायक बन गए।

नेपाल के राधाधिराज महेन्द्र ने नेपाल के विकास में सहयोग देने के लिए उन्हें सन् 1963 में ''प्रवाल गोरखा दक्षिण बाहू'' की उपाधि से सम्मानित कया। जैन सूत्रों के प्रकाशन के लिए गोलच्छा जी ने लाखों रुपयों का अनुदान दिया। सन् 1983 में आप स्वर्गस्थ हुए। नेपाल सरकार के शिक्षा विभाग ने उनकी जीवनी स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में एक अंतर्राष्ट्रीय विभूति के बतौर सम्मिलित कर उन्हें सम्मानित किया। आचार्य तुलसी ने श्री रामलालजी गोलछा के धार्मिक अवदान का सम्मान कर मृत्योपरांत उन्हें 'शासन-भक्त' के विरुद से विभूषित किया। आपके सुपुत्र श्री हंसराज जी गोलछा भी सन् 1985 में नेपाल सरकार द्वारा उक्त उपाधि से सम्मानित किये गए। द्वितीय पुत्र श्री हुलासचन्द जी गोलछा जन-कल्याणकारी कार्यों में योगदान हेतु सदा तत्पर रहते हैं।

95. श्री हरखचन्द नाहटा (1936-1999)

जन्म	:	बीकानेर, 1936
पिताश्री	:	भैरूदानजी नाहटा
माताश्री	:	दुर्गादेवी
उपाधि	:	उद्योग रत्न
दिवंगति	:	1999

जीवन के प्रत्येक मोड़ को सहजता से स्वीकार कर तदनुरूप अपने आपको ढालना और प्रत्येक क्षण को पूर्ण अन्तरंगता एवं जीवन्तता से जीना ही उनकी जीवन यात्रा की कथा है।

मरुधरा राजस्थान की शान, ऐतिहासिक नगर बीकानेर के सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत नाहटा परिवार की यशस्वी परम्परा में इस कुलदीपक का जन्म 18 जुलाई, 1936 को सेठ भैरूंदानजी नाहटा के घर श्रीमती दुर्गादेवी की रत्नकुक्षि से हुआ। जीवट, स्वाभिमानयुक्त ओज एवं विद्या प्रेम की समृद्ध परम्परा इन्हें विरासत में मिली। प्रबल पुरुषार्थी पुरखों की अदम्य इच्छाशक्ति एवं जीवट का प्रतिफल था कि 175 वर्षों पूर्व सुदूर आसाम के ग्वालपाड़ा, सिलचर, सिलहट (वर्तमान बांग्लादेश), करीमगंज, अगरतल्ला, कोलकाता, कानपुर आदि स्थानों में अपना व्यावसायिक साम्राज्य स्थापित किया। इन्हें अपने पितामह सेठ शंकरदानजी से दानशीलता तथा पिताश्री भैरूंदानजी से विनम्रता, सहिष्णुता एवं सेवाभाव विरासत में मिले। मातुश्री दुर्गादेवी द्वारा संम्प्रेषित धार्मिक व सदाचार के संस्कार की छाप इनके जीवन में स्पष्ट परिलक्षित होती थी। इनके चाचा स्व. अगरचन्दजी नाहटा एवं अग्रज 'साहित्य वाचस्पति' श्री भंवरलाल नाहटा प्राकृत भाषा, साहित्य, जैन आगम साहित्य, कला तथा अन्य धर्मग्रन्थों के ख्याति प्राप्त अधिकारी विद्वान थे। नाहटा परिवार के इतिहास व कला प्रेम की अक्षय कीर्ति पताका फहरा रहा है बीकानेर स्थित संग्रहालय 'अभय जैन ग्रंथागार', जिसमें 85,000 से अधिक अमूल्य ग्रंथों, दुर्लभ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों तथा कला चित्रों के

अद्वितीय संकलन ने भारत ही नहीं, सुदूर इटली, रूस आदि के मनीषी विद्वानों को मुग्ध तथा स्तंभित किया है।

संकल्पशील एवं कर्मवीर नाहटाजी ने बीकानेर में शिक्षा पूर्ण करने के उपरांत कोलकाता में कॉलेज शिक्षाकाल के दौरान ही अपना व्यापारिक जीवन प्रारम्भ किया। एक दूरदर्शी युवा उद्योगकर्मी, जो लीक से हटकर कुछ नया करने के सपने संजाए हुए था, ने सुदूर त्रिपुरा के दुर्गम क्षेत्रों में सड़क परिवहन का व्यवसाय प्रारम्भ किया। त्रिपुरा की सबसे बड़ी रेलवे ऑउट एजेन्सी–त्रिपुरा टाउन ऑउट एजेन्सी का संचालन करते हुए अपने व्यय एवं जोखिम पर परिवहन हेतु सड़कों का निर्माण कराया, जिससे उस दुर्गम व जनजाति बहुल क्षेत्र एवं उसके निवासियों के आर्थिक विकास को गति मिली। अपने पैतृक व्यवसाय से परे इन्होंने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी कदम रखा एवं कोलकाता में टैक्नीशियन स्टूडियो के माध्यम से पूर्वी भारत में फिल्म निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सत्यजित राय, ऋत्विक घटक, बासु भट्टाचार्य जैसे विश्व विख्यात निर्देशक इनके स्टूडियो से जुड़े हुए थे, जिनके निकट संपर्क से इनकी कलात्मक अभिरुचि, उदारवादी दृष्टिकोण तथा सर्वधर्म समभाव वाले संस्कारों ने अभिव्यक्ति का नया माध्यम पाया। अपनी सृजनात्मक आकुलता तथा कला प्रेम की अभिव्यंजना को रूपान्तरित किया उन्होंने 'युग मानव कबीर' का निर्माण कर। कालान्तर में उन्होंने दिल्ली को अपनी कर्मस्थली बनाया तथा फिल्म फाइनेंस एवं भूमि व्यवसाय में पदार्पण कर अपनी दूरदर्शिता, व्यावसायिक चातुर्य एवं स्पष्ट व्यवहार के कारण आशातीत सफलता प्राप्त की। उद्योग व व्यवसाय क्षेत्रों में उनकी बहुआयामी सेवाओं की स्वीकृति स्वरूप भारत के उपराष्ट्रपति द्वारा उन्हें 'उद्योग रत्न' अलंकरण से विभूषित किया तथा दिल्ली के उपराज्यपाल ने भी उन्हें सम्मानित किया।

गौरवर्ण, लम्बे, सुदर्शन व सौम्य स्वभाव के श्री नाहटा जी जहाँ एक कुशल जननायक थे, वहीं अडिग संघर्षशील नेता थे, जो मानवीय अस्मिता, समानता तथा सम्मान की रक्षा हेतु सतत् तत्पर रहते थे। वे समाज व इसके विभिन्न घटकों के विरुद्ध होने वाले अन्याय, विभेद, अत्याचार, असमानता, वैमनस्य का प्रतिकार करने के लिए सदैव जागरूक व सचेष्ट रहते थे।

देश के अग्रणी समाजनेता, निष्काम सेवाभावी व दानवीर श्री नाहटाजी 60 से भी अधिक शीर्ष सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं से विभिन्न स्तरों पर, विभिन्न रूपों से जुड़े हुए थे। आर्थिक सुसम्पन्नता का अहंभाव उनमें लेशमात्र भी नहीं था तथा समाज व संस्थाओं के अकिंचन व्यक्ति से भी वे जिस आत्मीयता, सहृदयता से मिलते थे, व्यवहार रखते थे, वही निराभिमानिता एवं सहजता उनकी सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में अमिट पहचान का कारण बनी। जाति, सम्प्रदाय, धर्म की सीमाओं से परे उनकी दानवृत्ति कोई विभेद नहीं रखती थी। भारतवर्ष के लाखों जैनों की प्रतिनिधि राष्ट्रीय संस्था–अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ के वे 1990 से अध्यक्ष थे, वहीं उन्होंने सेठ कल्याणजी आनंदजी पेढ़ी, प्राकृत भारती, श्री श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट, वीरायतन, भारत जैन महामण्डल, विश्व जैन परिषद्, ऋषभदेव फाउन्डेशन, हार्ट केयर फाउन्डेशन ऑफ इण्डिया, शांति मन्दिर–बीठड़ी श्री अंबिका निकेतन ट्रस्ट, मिमझर, अहिंसा इन्टरनेशनल, जैन महासभा, पारस परमार्थ प्रतिष्ठान आदि अनेकों संस्थाओं के माध्यम से लोक-मंगल के विभिन्न प्रकल्पों तथा सामाजिक धार्मिक समरसता के लिए अनुकरणीय काम किया। 'सर्वधर्म समभाव' के अदम्य पक्षधर वे धार्मिक वैमनस्य व उन्माद व इससे जनित रुग्ण मानसिकता तथा ईर्षावृत्ति के प्रखर विरोधी थे। वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में क्रांति या प्रतिक्रांति नहीं अपितु उत्क्रांति का आह्वान करने वाले श्री नाहटाजी एक स्वप्नदृष्टा, दूरदर्शी नायक थे, जो युवा वर्ग की अपरिमित ऊर्जा, उत्साह एवं नारी शक्ति के व्यावहारिक ज्ञान के रचनात्मक उपयोग हेतु विभिन्न सामाजिक, धार्मिक प्रकल्पों में उनकी सहभागिता एवं अग्रणी भूमिका के मुखर समर्थक थे। अपनी व्यावहारिक कुशलता, विलक्षण स्मृति, प्रतिभा, सस्मिता, मुस्कान एवं आत्मीय सहजता के कारण छोटे से छोटे कार्यकर्त्ता से लेकर शीर्ष समाज व राजनेता उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर सके।

श्री नाहटाजी कला एवं साहित्य प्रेमी थे, व्यक्ति की अन्तर्निहित प्रतिभाओं को पहचानने में पारंगत थे। उन्होंने अपनी परिपक्व सलाह, संरक्षण

एवं सहायता द्वारा फिल्म, नाट्य तथा साहित्य क्षेत्र की उभरती हुई विभिन्न प्रतिभाओं को प्रश्रय, प्रोत्साहन व संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने अनेकों साहित्यकारों की रचनाओं का निजी व्यय पर प्रकाशन किया, प्रोत्साहित किया। वे एक मेधावी विश्लेषणात्मक मस्तिष्क के धनी, सहृदय पाठक व लेखक थे, जिन्होंने विविध विषयों पर आलेख लिखे, जिसमें उनका तलस्पर्शी ज्ञान परिलक्षित होता है। वे एक कुशल वक्ता भी थे, जिनका अपने विषयों पर आधिपत्य एवं वक्तृत्व शैली श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी तथा उन्हें चिंतन, मनन करने के लिए अनुप्ररित भी।

वे जन्मजात जैन थे, परन्तु 'सर्वधर्म समभाव' की जीवन्त मूर्ति थे। सभी धर्मों व धर्मावलम्बियों को समान आदर देना एवं सहिष्णु व्यवहार उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था। स्व श्रमोपार्जित धन का सदुपयोग उन्होंने विभिन्न धार्मिक व सामाजिक कार्यों, संस्थाओं को मुक्तहस्त से दान देने में किया। बिना भेदभाव के जात-पात अथवा धर्म की सीमाओं से परे वे विभिन्न धर्मों के धार्मिक स्थलों के लिए सहृदयता से सहायता किया करते थे। वे इस सिद्धान्त के कट्टर प्रतिपादी थे कि धर्म व्यक्तियों को आपस में जोड़ने वाला होना चाहिये, न कि विभेदकारी। उनका मानना था कि सभी धार्मिक प्रसंगों में सहृदयता, सहनशीलता, समानता, सम्मान तथा आपसी सदाशयता ही व्यवहार का आधार होना चाहिये एवं इसी उद्देश्य पूर्ति के लिए वे सतत *प्रयत्नशील रहे। आत्मज्ञान प्राप्ति की चिरंतन जिज्ञासा ने उन्हें मनीषी संतों* से साक्षात्कार के लिए सदैव प्रेरित किया। उनकी जिज्ञासावृत्ति, विनय, श्रद्धा भाव तथा अंत: प्रस्फुटित ऊर्जा को पहचानकर विभिन्न संत आचार्यों ने ज्ञान व धर्म से संबंधित उनकी अनेकों जिज्ञासाओं का समाधान किया तथा मार्गदर्शन प्रदान किया।

वस्तुत: श्री नाहटा जी लक्ष्मी के वरद् पुत्र थे, तो सरस्वती के मानस पुत्र। वे स्वप्नद्रष्टा थे, तो कर्मवीर भी। जीवन में ऐसा अद्भुत सामंजस्य विरला ही दिखाई देता है। रचनात्मक क्रियाशीलता उदात्त हृदय एवं समदृष्टि ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया। इस बहुआयामी व्यक्तित्व के जीवन का प्रत्येक क्षण सृजनात्मकता का इतिहास है।

जीवन के सभी पहलुओं को समग्रता से एवं सन्तुष्टिपूर्वक जीते हुए अल्पकाल की व्याधि के उपरान्त 21 फरवरी, 1999 को यह दैदीप्यमान नक्षत्र तिरोहित हो गया। स्तब्ध रह गये सभी परिजन, अन्तेवासी, अनुयायी एवं प्रशंसक, जिनके लिए कल्पनातीत था उस सौम्य, प्रसन्नचित आत्मीय का बिछोह, जो पोषक था, आश्रयदाता था विभिन्न प्रतिभाओं का, संस्थाओं का एवं प्रकल्पों का। वस्तुत: व्यक्ति रूप में वे एक संस्था ही थे।

96. शेठ शांतिलाल वनमाली दास (1911-2000)

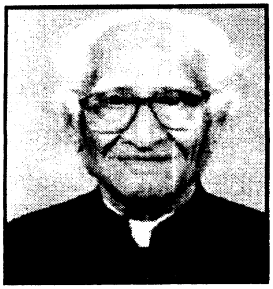

जन्म : जेतपुर (सौराष्ट्र), 1911

पिताश्री : वनमालीदास शेठ

दिवंगति : 2000

श्री शांतिलाल शेठ का जन्म 21 मई, 1911 को सौराष्ट्र के जेतपुर गाँव में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद मुनिश्री चैतन्यजी की प्रेरणा से उन्होंने 1927 में जयपुर से ''जैन-विशारद'' की परीक्षा पास की। 1930 में कलकत्ता से ''न्यायतीर्थ'' की उपाधि प्राप्त की एवं 1934 में विद्याभवन, विद्याभारती, शांति-निकेतन से एक 'रिसर्च स्कॉलर' के रूप में 'विद्या-भूषण' की उपाधि प्राप्त की।

जैन आगम और प्राकृत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पं. बेचरदासजी दोशी एवं पंडित सुखलालजी के निर्देशन में रहे। इस अध्ययन में जैनधर्म के एक और प्रकाण्ड पंडित 'पद्मभूषण' पं. दलसुखभाई मालवणिया उनके साथ थे। यह साथ जीवन-पर्यंत अटूट बना रहा। अपने जैनधर्म के ज्ञान और दृष्टि को और विस्तार देने के लिए श्री शांतिलाल शेठ 'शांति-निकेतन' गये और वहाँ पर उन्होंने जैन एवं बौद्ध धर्म, संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन किया।

बुद्ध-धर्म के ग्रंथों के अवलोकन के लिए उन्होंने 'पाली' भाषा भी सीखी। पाली भाषा का ज्ञान उन्होंने पं. श्री विदुशेखर एवं पं. श्री क्षितिमोहन सेन से प्राप्त किया। शांति-निकेतन में वे 1931 से 1935 तक रहे। उन्होंने 'धम्म-सुत्तम' का संयोजन किया जिसमें भगवान महावीर की वाणी व शिक्षाएँ एक अनूठे ढंग से पेश की। इस संयोजन में भगवान महावीर की शिक्षाओं की तुलना एक तरफ बौद्ध विचारों के साथ एवं दूसरी तरफ *'सनातन धर्म' के विचारों के साथ की। यहीं श्रद्धेय श्री 'गुरुदेव'* रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्वभारती एवं विश्व-कुंटुंबकम् की भावना से वे प्रेरित हुए। पण्डित सुखलालजी के सम्पर्क से यह भावना और ज्यादा विकसित हुई।

वही भावना पू. काकासाहेब कालेलकर की प्रेरणा से विश्व-समन्वय के रूप में जीवन में परिणत हुई।

सन् 1935 से करीब दस साल तक वे लेखन एवं साहित्यिक प्रवृत्ति से जुड़े रहे। इस बीच उन्होंने कई किताबें लिखी, कुछेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया और बहुत से धार्मिक लेखों/पुस्तकों का अनुवाद भी किया। वे करीब छः महीने तक जैसलमेर भी रहे। वहाँ उन्होंने जैन-भण्डार में स्थित ताड़-पत्र पर लिखित पांडुलिपियों का गहन अध्ययन किया। तभी बिहार में भयंकर भूकंप हुआ। उनकी समाज-सेवी आत्मा को भूकंप पीड़ितों की सहायता करने का मौका मिला। उनकी सेवा भावना की कद्र करके बिहार में उन्हें 'समाज-सेवी' के विरुद से विभूषित किया गया।

1934-35 में अजमेर साधु-सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने अपनी तन-मन-धन से सहायता की। इसी सम्मेलन के लिए सौराष्ट्र में परिभ्रमण किया। गिरनारजी की यात्रा के दौरान जुनागढ़ के दीक्षोत्सव में 'शिक्षा और दीक्षा' – विषय पर व्याख्यान दिया। 1934 में दया कुमारी के साथ खादी-परिधानों में आपका लग्न सम्पन्न हुआ। ईश्वर ने मानो उन्हीं की विचार-धारा को प्रोत्साहन देने वाली पत्नी और धार्मिक विचारों-शास्त्रों एवं जैन-धर्म का दृढ़ता से पालन करने वाली सहचारिणी को खास उन्हीं के लिए इस पृथ्वी पर मेल कराया हो।

सौराष्ट्र की यात्रा समय दामनगर में आध्यात्मिक संत कानजी-स्वामी के प्रथम दर्शन से ही वे बहुत प्रभावित हुए। उनके प्रभाव से ही श्री शांतिलाल शेठ के विचारों में परिवर्तन हुआ और वे धीरे-धीरे पू. गुरुदेव के प्रवचनों और शास्त्रों में रुचि लेने लगे। अब उनके जीवन की क्रियाएँ आध्यात्मिकता की ओर ढ़लने लगी। श्रीमद् राजचन्द्रजी की विचारधारा से भी वे विशेष प्रभावित हुए। अब वे स्वाध्याय और चिन्तन पर ज्यादा समय देने लगे। नियमित स्वाध्याय और मनन अब उनके जीवन का ध्येय बन गया। अपने जीवन के उत्तरार्ध में अध्यात्म-अभ्यास के लिए सोनगढ़, जयपुर एवं देवलाली में ज्यादा दिन रहने लगे।

1934 में उनकी संसार-यात्रा शुरु हुई। इसके लिए उन्होंने ब्यावर (राजस्थान) में गुरुकुल का कार्यभार संभाला। यहाँ के छात्रालय की व्यवस्था देखी और तीन वर्ष पर्यंत शिक्षण-कार्य किया। वहाँ जैन-शिक्षण संदेश एवं साहित्य का प्रकाशन कार्य किया। 1937 से 1944 के बीच बंबई, मोरबी, राजकोट, जामनगर आदि स्थानों पर रहकर ग्रंथों का संपादन कार्य किया। अपने बड़े भाई के साथ रंगून गये वहाँ भी अपने व्याख्यानों द्वारा लोगों को प्रभावित किया। बौद्ध धर्म के 'महायान' मत के साधुओं से धर्म-चर्चा की।

पुन: ब्यावर-गुरुकुल में सपरिवार आए। यहाँ मानव-सेवा एवं धर्मप्रचार का कार्यारम्भ हुआ। पू. गाँधीजी की सत्प्रेरणा से सर्वोदय के कार्य में रुचि हुई और मानवसेवा के कार्य में जुट गये। जैसलमेर में प्राचीन हस्तलिखित-ज्ञानभण्डारों के दुर्लभ-ग्रंथों की प्रतिलिपि-लेखन तथा संशोधन कार्य के ज्ञानायज्ञ का आरम्भ हुआ। जैसलमेर जैसे रेतीप्रधान उद्यान में छ: मास रहकर ज्ञान-पुष्पों की सौरभ से अपना जीवन सुवासित किया। जैसलमेर के 'अमरसर' और 'लोद्रवा' तीर्थ के दर्शन किए। यहाँ महारावजी की अध्यक्षता में महावीर-जयन्ती में व्याख्यान और ज्ञानचर्चा का लाभ मिला।

सन् 1945 से 1950 तक वे पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस में संचालक रहे। उनके संचालन काल में संस्था ने बहुत उन्नति की। यहाँ उन्होंने 'जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी' की स्थापना की एवं गरीबों के लिए 'जयहिंद को-ऑपरेटीव सोसायटी' की स्थापना की। भारतीय अखबारों एवं पत्रिकाओं की एक प्रदर्शनी आयोजित की। अनेक जैन-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। 1951 से 53 के बीच बनारस से अपनी शिक्षण-यात्रा पूर्ण करके बंबई व्यापार करने आए। यहाँ उन्हें हताशा ही मिली। इस स्थिति में उनकी पत्नी के धैर्य एवं नैतिकबल के कारण ही विषम वातावरण और आर्थिक चिंता में भी अपने आपको संभाला। 'स्वर्ग में से नरक में क्यों आये?' पत्नी के इस उपालंभ को सुनकर वे विभ्रांत हो गये। जैसे ईश्वर ने उनके हृदय की व्यथा को सुन लिया हो, वैसे पुन: उन्हें ब्यावर प्रेस में काम करने का आमंत्रण मिला और वे सपरिवार तुरन्त ही बम्बई छोड़कर ब्यावर आ गये।

यहाँ भी उनकी आशाएँ और परिश्रम व्यर्थ गया। ब्यावर से श्री शांतिलाल सेठ, दिल्ली आकर पुन: समन्वयसेवी बन गये। क्योंकि दिल्ली में उनके आशीर्वाद से ही उनके सुपुत्रों ने व्यावसायिक क्षेत्र में, देश-परदेश में बहुत प्रसिद्धि पाई। अपने पूज्य पिताजी श्री शांतिलाल सेठ को भी उन्होंने देश-विदेशों में बहुत यात्राएँ करवाईं। उनके परिवार के सभी सदस्य ऐसे नि:स्वार्थी शास्त्रज्ञ माता-पिता को पाकर स्वयं को धन्य समझते हैं और तन-मन-धन से उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में स्वयं को कृत-कृत्य मानते हैं। दिल्ली में श्री शांतिलालजी को अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होती गई, जिससे उनका उत्साह दुगुना बढ़ता गया। दिल्ली में अखिल-भारतीय जैन कॉन्फ्रेंस के मुखपत्र 'जैन-प्रकाश' साप्ताहिक हिन्दी-पत्र का उन्होंने 20 वर्ष तक संपादन कार्य सँभाला।

गाँधी-स्मारक निधि, गाँधी अध्ययन केन्द्र एवं काकासाहेब की संस्थाओं के संचालन से जीवन में नया ही मोड़ आ गया। काकासाहेब की स्वतंत्र समन्वय-विचारधारा, पूज्य बापूजी और विनोबाजी की सर्वोदय धारा और मानवता के महर्षि श्री जैनेन्द्रजी की आत्मीय-अमृतधारा की पवित्र त्रिवेणी में स्नान कर वास्तव में ''मैं 'स्नातक' बन गया'' – ऐसा उन्हें अहसास हुआ। उन्हें अपने धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन एवं सर्वधर्म समभाव को जीवन में उतारने का यहाँ 'स्वर्णावसर' मिला। पू. काकासाहेब की और समन्वय की साक्षात् मूर्ति रैहाना बहिनजी की जीवनस्पर्शी 'पारसमणि' ने जैसे उन्हें स्वर्णिम बना दिया। इंदौर में 'जैन-कॉन्फ्रेंस' के हीरक-जयन्ति समारोह में पू. शांतिलाल शेठ को 'समाज-गौरव' की उपाधि से विभूषित किया गया।

1956 से 1967 के उनके दिल्ली के स्थायी निवास में वे बहुत सी सर्वोदयी संस्थाओं, जैसे – 'गाँधी-हिन्दुस्तानी साहित्य सभा', 'मंगल-प्रभात', 'विश्व समन्वय संघ' से जुड़े रहे। यहाँ उन्होंने 'हिन्दी-जापानी सभा' द्वारा जापानी बच्चों को हिन्दी संस्कृति एवं भाषा का ज्ञान दिया। हिन्दू एवं बौद्ध-धर्म की समानता जागृत करके, हिन्दी-जापानी समन्वयता स्थापित की। उनके कार्यकाल के दरम्यान उनके विचारों में भाषावाद, धर्मवाद या

साम्प्रदायिकता की जड़ता की गंध कहीं भी नहीं थी, वह उनके हृदय की विशालता का बहुत बड़ा प्रमाण है। आचार्य साहेब के उत्कृष्ट निर्देशन में श्री शांतिलाल शेठ ने राजघाट के पास एवं विशेषत: हरिजन-बस्ती में लोकसेवा-केन्द्र, हरिजन बालवाड़ी, अंबर-चरखा केन्द्र, बापू-बुनियादी शिक्षा निकेतन, विश्व-समन्वय केन्द्र, गांधी-विचार केन्द्र, गांधी-साहित्य भण्डार आदि अनेक प्रवृत्तियाँ संचालित की। Kingsway Camp में प्रिंटिंग-प्रेस की स्थापना करके वहाँ के हरिजन-बच्चों के लिए उद्योग-केन्द्र खोलकर उनके Lodging और Boarding के संचालन का कार्य उन्होंने खुद संभाला।

बापू-बुनियादी शिक्षा निकेतन, श्रम साधना-केन्द्र एवं जैन-कॉन्फ्रेंस के मंत्री, 'जैन-प्रकाश' के मंत्री, भगवान महावीर 25वीं निर्वाण शताब्दी, राष्ट्रीय समिति के एक मंत्री, मोस्को में विश्व-शांति-परिषद् के जैन-प्रतिनिधि आदि राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक-सेवा कार्यों के समुच्चय ने ही उन्हें इस सन्मान के योग्य बनाया। 1967 में मास्को में आयोजित अंन्तर्राष्ट्रीय विश्व-शांति-परिषद् में, जैन-प्रतिनिधि के रूप में गये और जैन-सिद्धांतों के अनुरूप 'युनिवर्सल को-एक्जिसटेंस' पर जो निबंध पढ़ा वह बहुत सराहा गया। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के विभिन्न कार्यक्रमों में आपकी अहम् भूमिका रही एवं तब उन्हें 'विशिष्ट-समाज-सेवी' की पदवी दी गई।

1986 में उनकी यात्रा दक्षिण-भारत की ओर बढ़ी। बेंगलौर में स्थिरवास करने का निर्णय होते ही उन्होंने अपने जैनधर्म के प्रचार और शिक्षण का कार्यक्षेत्र वहाँ फैला दिया। बैंगलोर में उन्होंने 'सन्मति-स्वाध्याय पीठ' की स्थापना की। वहाँ भी उन्होंने मद्रास, मैसूर, धर्मस्थल, मूडबिद्री, बिजापुर, श्रवणबेलगोला आदि छोटे-छोटे गाँवों की बहुत यात्राएँ की, वहाँ भी अपने सचोट मंतव्यों से लोगों को प्रभावित किया। उनकी प्रेरणा से मैसूर जैन संघ ने प्राकृत व जैनोलोजी पर एक सम्मेलन का आयोजन किया। उनकी अंतर्भावना थी कि जिन संस्था ने उनके जीवन में ''जैनत्व'' के संस्कारों का सिंचन किया, ऐसी कोई जैन प्रशिक्षण देने वाली 'प्राकृत-विद्यापीठ' की स्थापना हो और सर्वहितंकर सर्वोपयोगी सन्मति साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन हो।

1985 में उनके जीवन के 75 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में दिल्ली में आयोजित समारोह में उनके परिवारजनों और उनके हितेच्छुओं ने उनकी दीर्घायु की कामना की। उनके जीवन का संक्षिप्त-परिचय संकलन उनकी 'स्मारिका' में प्रकाशित किया गया। दिल्ली में आयोजित समारोह में उन्होंने एक लाख रुपये की राशि 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान' में 'सन्मति साहित्य श्रृंखला' के लिए अर्पण की।

1993 में शिकागो में हुई 'विश्व धार्मिक संसद' में उन्होंने जैन प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया एवं 'विश्वशांति एवं जैन सिद्धांत' पर जो उत्कृष्ट भाषण दिया उसकी सर्वत्र सराहना की गई। 82 वर्ष की उम्र में भी उनकी वाणी के जोश एवं शास्त्रों के श्लोकों की स्मृति से वहाँ के धर्मानुयायी आश्चर्यचकित हुए थे।

90 वर्ष की उम्र में भी उनके मन में जैन-धर्म के 2600वें जन्म-कल्याणक के बारे में चिंता थी। अपने अंतिम समय तक वे सक्रिय रहे। एक आदर्श जीवन कैसे जिया जाये, उसके वे अनुकरणीय उदाहरण थे। जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया, वह उनकी बुद्धिमत्ता, पाण्डित्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। ऐसे में भी उनका सरल व सादा जीवन बहुतों के लिए प्रेरणास्रोत रहा है और रहेगा।

जैन-धर्म के मर्मज्ञ श्री शांतिलाल वनमाठी शेठ का 11 जुलाई 2000 को शाम 7 बजे स्वर्गवास हो गया। ''अब अंतिम समय में अपने एक-एक पल का सदुपयोग कर लूँ और अंत तक महावीर-स्मरण करते-करते संस्थारा करके प्राण त्याग दूँ—यही उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था। मानो उन्हें अपने अंतिम समय का साक्षात्कार हो गया हो—दोपहर दो बजे स्नान कर, नए कपड़े पहनकर 'मृत्यु-महोत्सव' का स्मरण और पठन शुरु कर दिया था। सायं 7 बजे, सूर्यास्त समय ऐसी महान-आत्मा ने हमारे बीच से विदा ली। उनके द्वारा किये हुए सामाजिक-कार्य और देश-विदेश में की हुई जैन-धर्म की प्रसिद्धि एक यादगार है। उनके जैसा विशाल हृदयी शास्त्राध्यायी और स्पष्ट-वक्ता पाना मुश्किल है।

97. सेठ चम्पालाल बांठिया (1902-1987)

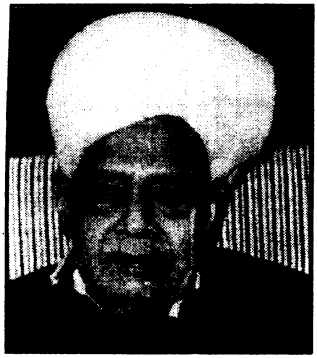

जन्म : भीनासर, 1902

पिताश्री : हमीरमल बांठिया

माताश्री : जवाहर बाई

दिवंगति : 1987

अद्वितीय क्षमता और बेजोड़ प्रतिभा के धनी श्री चम्पालालजी बांठिया ने धर्म और समाज की जो अप्रतिम सेवा की उससे उत्प्रेरित होकर समाज ने उन्हें समाज-भूषण के विरुद से विभूषित किया।

श्री चम्पालालजी का जन्म भीनासर (बीकानेर) के ओसवाल श्रेष्ठि श्री हमीरमलजी बांठिया की धर्मपत्नि जवाहर बाई की कुक्षि से सन् 1902 में हुआ। बचपन से ही उन्हें धार्मिक संस्कार मिले। मात्र 12 वर्ष की वय में उनका प्रथम विवाह हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भीनासर में ही हुई पर वह माध्यमिक स्तर से आगे नहीं जा सकी। उन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय को खूब विकसित किया। वे बैंकिंग व्यवसाय के अतिरिक्त जूट, मिनरल, कपड़ा, लकड़ी, बिजली एवं मशीनरी व्यापार में भी संलग्न रहे।

वे आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। मध्यम कद काठी, सुघड़नाक-नक्श, घनी मूछें, बन्द गले का कोट, सर पर राजस्थानी पगड़ी, चेहरे पर गाम्भीर्य, मुस्कान एवं ओज की त्रिवेणी। वे लक्ष्मी के वरद पुत्र तो थे ही, सरस्वती के भी उपासक थे। परम्परागत रूढ़ियों एवं धार्मिक असहिष्णुता से वे सदैव संघर्ष करते रहे। स्पष्टवादिता और साम्प्रदायातीत धर्मानुराग उनकी रगों में कूट-कूट कर भरा था। वे सेवा और सौजन्य की प्रतिमूर्ति थे।

व्यवसाय की बहुमुखी व्यस्तता के बावजूद साहित्य संरक्षण, शिक्षा प्रसार, संस्कार निर्माण, समाज सेवा, महिला स्वावलम्बन एवं अन्यान्य जनोपयोगी प्रवृत्तियों के लिए उन्होंने तन-मन-धन से सहायता दी। गुरुवर्य

आचार्य जवाहरलालजी (स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय) की प्रेरणा से उन्होंने भीनासर में जवाहर विद्यापीठ की स्थापना की। उसके बहुमुखी उन्नयन एवं विकास के लिए निष्ठा एवं समर्पण से वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। आचार्यश्री के प्रवचनों को 35 खण्डों में 'जवाहर किरणावली' नाम से प्रकाशित कर उन्होंने जैन धर्म की प्रभावना की। विद्यापीठ के अलावा उन्होंने जैन पौषधशाला का निर्माण कराया, मीठे पानी के दो कुएँ खुदवाए, विद्यापीठ के छात्रों के लिए अनेक सुविधाओं का निर्माण कराया।

वे सन् 1952 में अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस के सादड़ी अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। भीनासर नगरपालिका के वर्षों अध्यक्ष रहे। बीकानेर राज्य उद्योग संघ के भी अध्यक्ष चुने गए। उनके सामाजिक अवदानों का सम्मान कर बीकानेर के महाराजा गंगासिंह जी ने उन्हें विशिष्ट सेवा मेडल एवं स्वर्ण जयंती समारोह के रजत पदक से

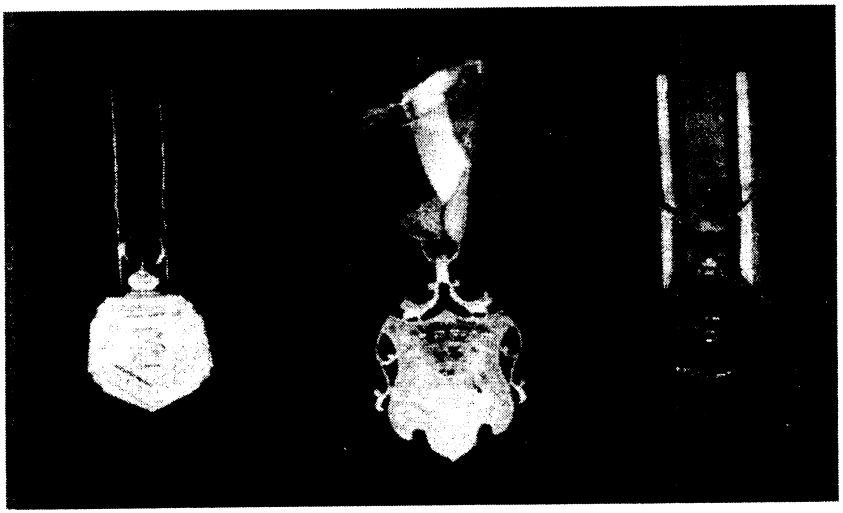

सम्मानित किया। सन् 1944 में उन्होंने सेठ हमीरमल बांठिया कन्या उच्च प्राथमिक विद्यालय की नींव रखी। सन् 1947 में उन्होंने जवाहर-हाई-स्कूल की स्थापना की। वे बीकानेर न्यायालय के अनेक वर्षों तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। वे लगातार चार वर्षों तक बीकानेर राज्य विधानसभा के सदस्य मनोनीत हुए।

वे अंधविश्वासों एवं कुंठित मान्यताओं के कभी पक्षधर नहीं रहे। उनका चिंतन क्रांतिदर्शी था। अबोध बच्चों को धार्मिक सम्प्रदायों में दीक्षित करने के प्रश्न पर उन्होंने 'बाल दीक्षा' का पुरजोर विरोध किया। सन् 1943 में बांठिया जी ने राज्य सभा में इस हेतु एक बिल भी प्रस्तुत किया। सेठ सोहनलालजी दूगड़ (फतेहपुर निवासी) पं. सुखलालजी संघवी, मुनि जिन विजयजी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, प्रो. श्यामाप्रसाद मुखर्जी *प्रभृति अनेक विद्वानों के समर्थन के बावजूद बिल पास न हो सका। इस प्रश्न* पर उन्हें माननीय डॉ. गौरीशंकर ओझा, सर सी.बी. रमन, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, सर मिर्जा इस्माईल, सर सिरेमल बाफना प्रभृति सज्जनों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। भूतपूर्व सालीसीटर जनरल, बम्बई राज्य श्री चीमनलाल चाकूभाई शाह ने तो बाल-दीक्षा को समाज का महान् कलंक बताया था।

समय की शिला पर अपने सशक्त हस्ताक्षर कर सन् 1987 में चम्पालालजी समाधिमरण को प्राप्त हुए।

98. श्री मेघराज पेथराज शाह (1904-1964)

जन्म : दबा संग (कच्छ), 1904

पिताश्री : पेथराज शाह

पद : राज्य सभा सदस्य, 1955

दिवंगति : 1964

गलियों की गर्द से उठ अपने अध्यवसाय से ऐश्वर्य के महल खड़े कर सम्पत्ति का जन-कल्याण के लिए सही उपयोग करने वाले श्रेष्ठि की यह अनुपम यश गाथा है।

कच्छ से प्रवसित होकर संवत् 1597 के करीब जामनगर (काठियावाड) के हलारी तालुक में बसने वाले बीसा ओसवालों में शाह घराना भी था। दबा संग ग्राम में बसे पेथराज मामूली खेती बाड़ी कर दिन गुजार रहे थे। संवत् 1961 में मेघजी भाई का जन्म हुआ। उनका बचपन अभावों में बीता। पांचवी कक्षा तक शिक्षा पाकर वे गांव के ही स्कूल में आठ रुपए माहवार पर अध्यापक बन गए। संवत् 1975 में उनका विवाह जैसिंह शाह की सुपुत्री मांगी बाई से हो गया। प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते-होते सौराष्ट्र के अनेक बीसा ओसवाल पूर्वी अफ्रीका जाकर बसने लगे थे। किशोर मेघजी भाई में भी ललक जगी। माँ के जेवर गिरवी रखकर किसी तरह पैसों का जुगाड़ किया और संवत् 1976 में मेघजी भाई मोम्बासा आए।

वहाँ ''कानजी मेपा कम्पनी'' में तीन सौ रुपए सालाना पगार पर खाता बही लिखने के काम पर लग गए। तब पूर्वी अफ्रीका में हिन्दुस्तानी रुपये का ही चलन था। तीन वर्ष बाद मालिकों ने मेघजी की ईमानदारी एवं कार्य कुशलता से प्रसन्न होकर पगार पन्द्रह सौ रुपए सालान कर दी। कुछ वर्षों बाद फर्म बन्द हो गई। मेघजी नैरोबी चले गए एवं मोम्बासा से फुटकर सामान ले जाकर नैरोबी में बेचना शुरु किया। संवत् 1979 में उनके दो भाई

श्री शाह के सुपुत्र श्री विपिन केनिया के प्रेसिडेंट जोमो केनियाटा के साथ

भी अफ्रीका आ गए एवं रायचन्द ब्रादर्स नाम से स्वतंत्र फर्म कायम की। संवत् 1987 में मेघजी भाई की पत्नि का देहांत हो गया। उनका दूसरा विवाह नाथूभाई शाह की सुपुत्री मनी बेन से हुआ। पिता एवं प्रथम पुत्री की मृत्यु का मानसिक आघात झेलने के बाद मेघजी भाई के दिन फिरे। व्यवसाय दिन दूना रात चौगुना बढ़ा। कई उद्योग स्थापित किए एवं पूर्वी अफ्रीका के समृद्ध श्रेष्ठियों में गिने जाने लगे।

संवत् 2000 में जब भारत में बंगाल का अकाल पड़ा, मेघजी भाई रीलीफ फंड के कोषाध्यक्ष मनोनीत हुए। तभी पुत्र विपिन का जन्म हुआ। मेघजी भाई ने उसे अकाल के लिए किये सेवा कार्य का पुरस्कार माना। तभी से शिक्षा एवं असहायों की सहायात करने को मेघजी भाई ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। ज्यों-ज्यों सम्पत्ति बढ़ी, मेघजी भाई के सेवा-अवदानों की रकम भी बढ़ती गई। संवत् 2010 में उन्होंने व्यवसाय से सन्यास ले लिया। उस समय उनकी कुल सम्पत्ति 25 लाख पाउंड यानि 7 करोड़ 50 लाख रुपये थी। उनके अवदान 3 करोड़ रुपयों से कहीं अधिक थे।

LIST OF DONATIONS

Ahmedabad		
M P Shah Cancer Hospital, Ahmedabad	3,75,000	
Sarvodya Medical Society	Rupees	60,000
Jamnagar District		
M P Shah Medical College	Rupees	1,500,000
M P Shah TB Hospital	Rupees	400,000
M P Shah Municipal College of Commerce and Law	Rupees	176,000
Kasturba Stri Vikas Griha	Rupees	162,000
Visa Oshwal Boarding	Rupess	125,000
Kunverbai Jain Dharmashala	Rupees	100,000
Topagooch Upashraya	Rupees	65,000
Oshwal Shikshan & Rahatsangh	Rupees	101,000
Indian Conference of Social Works (Vradhashram-Old Peoples Home)	Rupess	40,000
Jain Hitwardhak Mandal	Rupees	25,000
Dabasang Mitra Mandal (Giral School)	Rupees	19,200
Gramya Jivan Vikas Mandal	Rupees	75,000
Gau Seva Samaj	Rupees	50,000
Shri H.V.O. Sarvajanik Panjarapole	Rupees	125,000
Jilla Sankat Nivaran Samiti	Rupees	100,000
Surendranagar District		
Vikas Vidyalaya, Wadhwan	Rupees	551,000
M P Shah Technical Training Centre	Rupees	300,000
M P Shah College of Arts and Science	Rupees	250,000
M P Shah College of Commerce, Wadhwan	Rupees	100,000
Smt. M M Shah Mahila College, Wadhwan	Rupees	100,000
Saurashtra Medical Centre (Eye Hospital)	Rupees	100,000
Surendranagar Education Society	Rupees	56,000
Orphanage	Rupees	55,000
Limbdi Kelvani Mandal, Limbdi	Rupees	55,000
Manav Seve Sangh	Rupees	31,000
Mansukhbhai Doshi Lok Vidyalaya	Rupees	35,000

Bhavnagar District		
M P Shah Leprosy Sanatorium	Rupees	400,000
Maniben M P Sha Kanya Vidyalaya, Palitana	Rupees	100,000
Oshwal Charities, Palitana	Rupees	51,000
Junagadh District		
Institution for the Blind, Junagadh	Rupees	150,000
Shishu Mangal Trust (Kindergarten)	Rupees	100,000
Rajkot District		
Government of Gujarat Health Department (for glucose saline Plant	Rupees	600,000
Mahsana District		
M P Shah Education Society, Kadi	Rupees	125,000
Bombay		
M P Shah All India Talking Book Centre	Rupees	1,800,000
Bhagini Seva Mandir Kumarika Stree Mandal Vile-Parle	Rupees	511,000
Shrimati Maniben M P Shah Women's College of Arts and Commerce and M P Shah Junior College of Arts and Commerce for Women	Rupees	700,00
Bhagwan Mahavir Kalyan Kendra	Rupees	127,000
Bharatiya Vidya Bhavan	Rupees	35,000
Shushrusha Hospital	Rupees	25,000
Oshwal Shikshan and Rahat Sangh for Bhiwandi	Rupees	75,000
Allahabad		
Kamla Nehru Smarak Hospital	Rupees	100,000
In Addition		
Schools and Chhatralayas (Boarding Schools) in various places in Saurashtra, nursing centre in Rajkot, Balkan-Ji-Bari in Jamnagar, Scholarships and for medical relief	Rupees	2,500,000
800 Village libraries in Saurashtra	Rupees	400,000
Vaghodia Yuvak Mandal Education Trust	Rupees	452,000

Delhi Gujarati Samaj for MP&CU Shah Auditorium	Rupees	250,000
Scholarships to 20 Oshwal Students per annum for 1962 to 1987	Rupees	260,000
Central Relief Fund	Rupees	51,000
Janmabhoomi Patrorahat Nadhi	Rupees	25,000

DONATIONS IN KENYA

M P Shah Hospital, Nairobi incoroporating :		
The Maniben M P Shah Premature Baby Unit		
The Maniben M P Shah Block	shs.	1,500,000
Royal Technical College	shs.	200,000
Sonapuri Rath (3), Cutchi Gujarati Hindu Union, Nairobi		shs. 125,000
Halari Visa Oshwal Mahajanwadi, Nairobi	shs.	125,000
Health Centres	shs.	2,000,000
M P Shah Wing, Nurses Home Kenyatta National Hospital	shs.	200,000
Murang'a College of Technology	shs.	50,000
M P Shah High School, Thika (including Boys Hostel and Primary School)	shs.	300,000
M M Shah School, Kisumu	shs.	200,000
M P Shah Dispensary, Mombasa	shs.	200,000
M M Shah Primary School, Mombasa	shs.	250,000

DONATIONS IN THE UNITED KINGDOM

Meghraj Lecture Theatre, Consulting Rooms and Basic Research Cardiovascular Laboratories. Hammersmith Hospital, London	£100,000
Bharatiya Vidya Bhavan, London	£40,000
Oshwal Association of the UK, London	£60,000
Jain Centre, Leicester, Maniben M.P. Shah Hall	£50,000

DONATIONS IN JERSEY

M P Shah Geological Room, Jersey Museum	£2,500
La Preference Vegetarian Home	£3,000

उक्त सूचि से यह साफ परिलक्षित होता है कि ऐसे दान दाता विश्व के इतिहास में गिने चुने ही हुए हैं। संवत् 2005 में उन्होंने अपनी समस्त भारतीय सम्पत्ति को एक ट्रस्ट के सुपुर्द कर दिया। यह मेघजी पेथराज चैरिटेबल ट्रस्ट निरन्तर शैक्षणिक अवदान देता रहता है। इससे मेघजी भाई की स्मृति सर्वदा अक्षुण्ण रहेगी।

मेघजी भाई पण्डित नेहरू, जामनगर की महारानी एवं महाराज के साथ

संवत् 2012 में उन्हें भारत की राज्यसभा का सदस्य मनोनीत कर उनका समुचित सम्मान किया गया। संवत् 2021 में अचानक हृदय गति अवरोध से इस नर पुंगव का देहावसान हो गया। आप दो पुत्रों एवं पाँच पुत्रियों से भरा-पूरा परिवार छोड़कर स्वर्गस्थ हुए।

99. श्री मोहनमल चोरड़िया (1902-1985)

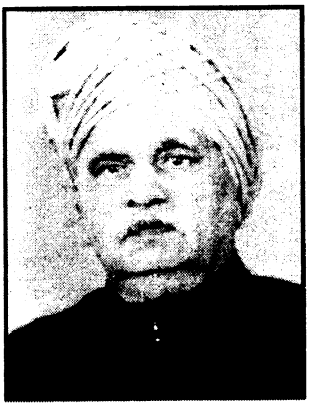

जन्म : नोखा, 1902

पिताश्री : सिरेमल चौरड़िया (दत्तक-सोहनलाल चोरड़िया)

माताश्री : सायर कंवर

उपाधि : पद्मश्री (1972)

दिवंगति : 1985

सेवा, साधना और समर्पण की मूर्ति पद्मश्री मोहनमलजी चौरड़िया स्थानकवासी जैन समाज के अनमोल रत्न थे। शिक्षा, धर्म और समाज की सेवा के साथ-साथ व्यक्ति-निष्ठता और सिद्धांत-प्रियता चौरड़िया जी के महनीय गुण थे। अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस के उपाध्यक्ष एवं अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने स्थानकवासी समाज के लिए अनेकानेक कार्य किये। आपके सद्प्रयास से कई संस्थाओं को जन्म, पोषण एवं अभिवृद्धि प्राप्त हुई।

श्री मोहनमल चौरड़िया का जन्म 28 अगस्त सन् 1902 को जोधपुर जिले के नोखा नामक ग्राम के निवासी श्री सीरेमल चौरड़िया के सामान्य परिवार में उनकी धर्मपत्नि सायरकंवर की कुक्षि से हुआ था। सन् 1917 में हरसोलाव ग्राम के निवासी श्री बालचन्द शाह की सुपुत्री नेनीबाई से उनका विवाह हुआ। विवाह के तुरन्त पश्चात् वे मद्रास आ गये। उनकी सदाचारी तथा धार्मिक भावना को लक्ष्य करते हुए सन् 1918 में श्री सोहनलाल चौरड़िया ने उन्हें गोद ले लिया। इस प्रकार वे एक धनी परिवार में आ गए। आपकी व्यावहारिक दृष्टि, कार्य-कुशलता एवं सूझ-बूझ से व्यापार की खूब अभिवृद्धि हुई।

श्री चौरड़िया ने सन् 1926 में श्री स्थानकवासी जैन पाठशाला को जन्म दिया, जिससे कालान्तर में श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन

एज्यूकेशन सोसायटी (जिला मद्रास) की नींव पड़ी। आप वर्षों तक इस संस्था के अध्यक्ष रहे। आपने एस.एस. जैन बोर्डिंग हाउस, मद्रास तथा ए.जी. जैन हाई स्कूल, मद्रास की भी स्थापना की। वे बड़े कर्त्तव्यनिष्ठ एवं धर्मपरायण थे। विभिन्न जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों के लिए सन् 1939 में जोधपुर महाराजा ने उन्हें पालकी एवं सिरोपाव बख्श कर सम्मानित किया।

सन् 1947 में श्री चौरड़िया ने ''श्री अमरचंद मानमल सेंटेंनरी ट्रस्ट'' बनाया। सन् 1942 में उन्होंने अगरचंद मानमल जैन कॉलेज की स्थापना की, जो आज मद्रास के चोटी के कॉलेजों में गिना जाता है। वे भगवान महावीर अहिंसा प्रचार संघ एवं रीसर्च फाउन्डेशन फॉर जैनोलोजी संस्थानों के अध्यक्ष रहे।

राजस्थान के कुचेरा नामक ग्राम से चौरड़िया जी को सदा विशेष प्रेम रहा। वहाँ उन्होंने सन् 1927 में एक नि:शुल्क आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की। उन्हीं दिनों अपनी जन्मभूमि नोखा में भी उन्होंने एक आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की, जो कालान्तर में सरकारी अस्पताल बन गया और आज ''सेठ श्री सोहनलाल चौरड़िया सरकारी अस्पताल'' के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् 1950 में अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस के मद्रास अधिवेशन के अवसर पर श्री मोहनमल चौरड़िया स्वागताध्यक्ष रहे। सन् 1971 और पुन: सन् 1981 से 1984 तक चौरड़िया जी कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष पद पर रहे। जैन भवन, नई दिल्ली में उन्होंने चौरड़िया ब्लॉक बनवाया जो सदा उनकी यादगार रहेगा।

श्री चौरड़िया की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक सेवाओं तथा भारतीय उद्योग में उनके द्वारा एक कीर्तिमान स्थापित करने के कारण भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें 26 जनवरी, 1972 को ''पद्मश्री'' के अलंकरण से सम्मानित किया। 5 फरवरी, सन् 1985 को चौरड़िया जी का देहावसान हो गया। कोट्याधीश होते हुए भी आप निरभिमानी कर्मयोगी थे।

100. श्री नवलमल फिरोदिया (1910-1997)

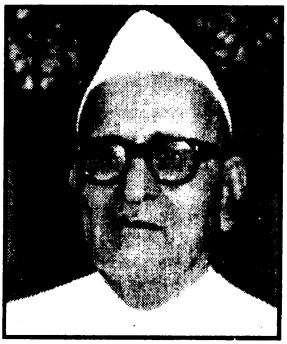

जन्म : पूना, 1910

पिताश्री : कुन्दनमल फिरोदिया

दिवंगति : 1997, पूना

श्री कुन्दनमलजी के मन्झले सुपुत्र नवलमलजी भारतीय प्रौद्योगिकी के क्षितिज पर एक नक्षत्र बनकर उभरे। उनका जन्म सन् 1910 में हुआ। पिताश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया की राष्ट्रीय भावनाओं के अनुरूप वे गांधियन आदर्शों के ढ़ाँचे में ढले। अपने स्कूली जीवन से ही उन्होंने खादी अपना ली। सन् 1932 के असहयोग आन्दोलन में वे एक छात्र नेता बनकर उभरे एवं जेल गये। स्वतन्त्रता यज्ञ में आहुति देने की प्रबल आकांक्षा के कारण ही उन्होंने अपने सुनहरे भविष्य को दांव पर लगा दिया एवं इंग्लैण्ड के 'फ़ैराडे हाउस इन्स्टीट्यूट' के एलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग के स्नातकीय कोर्स में सफल प्रवेश के बावजूद भारत में रहकर विधि स्नातक बने एवं वकालत का पेशा चुना।

नवलमल जी सामाजिक क्राति के सूत्रधार थे। जब रूढ़िग्रस्त ओसवाल पंचायत ने एक विधवा का विवाह संयोजित करने पर समाज सुधारक श्री कनकमलजी मुणोत को 'समाज-बहिष्कृति' का फ़तवा दिया तो नवल मलजी ने पूरे मनोयोग से उसका विरोध किया। सन् 1942 में वे गाँधीजी के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में शरीक हुए एवं जेल गये। जेल से मुक्त हुए तो उनकी आँखों में भारत के स्वर्णिम औद्योगिक भविष्य का सपना लहरा रहा था। उन्होंने वकालत एवं राजनीति से विदा ली एवं सम्पूर्णत: भारत के औद्योगिक विकास को समर्पित हो गये। तभी महाराष्ट्र विधि मण्डल में उठे 'मानवीय हाथों' से खींचे जाने वाले रिक्शा चालकों की त्रासदी से सम्बन्धित विवाद ने नवलमल जी की विचारधारा को नई दिशा दी। उनकी

सोच चालित वाहनों (Auto Rikshaw) के उत्पाद एवं विकास पर केन्द्रित हो गई। इस हेतु उन्होंने इटली की एक कम्पनी से अनुबन्ध किया एवं भारत में ही दो एवं तीन पहिये के वाहनों के निर्माण में लग गए, वे सफ़ल हुए। प्रथमत: इनकी निर्मिति बजाज ग्रुप की साझेदारी में शुरु हुई। सन् 1958 एवं 1960 में क्रमश: बजाज टेम्पो एवं बजाज ऑटो प्रतिष्ठान स्थापित हुए। सारे भारत में उनके श्रृंखलाबद्ध वितरण केन्द्र स्थापित करने का श्रेय नवलमलजी को ही है।

वे वास्तव में मौलिक सूझ-बूझ वाले क्रांतद्रष्टा थे। सन् 1975 में उद्योग से निवृत्त होकर वे सम्पूर्णत: सामाज़िक एवं शैक्षणिक सेवा कार्यों में लग गये। सन् 1985 में वे अन्ना साहब हजारे के सेवा कार्यों से जुड़े। वे हिन्द स्वराज्य ट्रस्ट की स्थापना में सहयोगी बने। जैन दर्शन एवं प्राकृत भाषा के सन्वर्धनार्थ 'सन्मति तीर्थ' की स्थापना की। महाराष्ट्र में ओसवाल जाति की हजारों महिलाएँ इस संस्थान से उपकृत हुई है। जैनोलोजी में शोधार्थ उन्होंने मुक्त हस्त अवदान दिये। पुने के भन्डारकर ओरिएन्ट्ल रिसर्च संस्थान के प्राकृत-आंग्ल भाषा शब्दकोश के निर्माणार्थ सहयोग गत 15 वर्षों से चल रहा है। इस हेतु दस शोधार्थियों के निरन्तर सत्-प्रयास के लिए अर्थ सौजन्य की व्यवस्था कर वे समस्त जैन समाज के अजस्र साधुवाद के पात्र बने।

वे उपाध्याय अमर मुनि महाराज के क्रांतिकारी विचारों के प्रशंसक एवं सक्रिय सन्योजक थे। उस स्वप्नद्रष्टा मुनि के आध्यात्मिक अनुष्ठान राजगृह में 'वीरायतन' की स्थापना और विकास में उनका दो शताब्दियों का सक्रिय सहयोग स्तुत्य था। मुनिजी की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए नवलमलजी ने पूना के खेड़ स्थल के समीप 25 एकड़ जमीन दान देकर 'अमर प्रेरणा ट्रस्ट' की स्थापना की। यहीं उन्होंने जे. कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन के ऋषि वेली स्कूल की आदर्श संरचना से प्रभावित होकर 70 एकड़ का एक भूखण्ड फाउन्डेशन को उसी तरह के एक नये स्कूल की स्थापनार्थ प्रदान किया।

सन् 1997 में यह चमकता सितारा सदा-सदा के लिए अस्त हो गया। वे संयुक्त परिवार की टूटती परम्परा से त्रस्त समाज के महिला वर्ग की

सहायतार्थ मूल्यपरक शिक्षा के पक्षधर थे। उनकी मृत्योपरान्त उनके इस स्वप्न को साकार करने के लिए उनके सुपुत्र श्री अभय फिरोदिया ने आचार्य चन्दनाजी के निर्देशन में 'नवरत्न वीरायतन' नामक संस्थान स्थापित कर

(श्री नवल वीरायतन पूना)

अपने पिता की स्मृति को अक्षुण्ण कर दिया है। श्री नवलमलजी द्वारा स्थापित 'फिरोदिया टेक्नोलोजी ट्रस्ट' राष्ट्र की प्रौद्योगिक और वैज्ञानिक शोध एवं विकास की अजस्त्र धारा को प्रवाहमान रखने में सार्थक भूमिका निभा रहा है।

101. लाला लाभचन्द जैन (1909-2002)

जन्म : गुजरानवाला, 1909
पिताश्री : लाला चुन्नीलाल मुन्हानी
माताश्री : रल्ला देवी
उपाधि : समाज रत्न, 1993
दिवंगति : 2002

सर्वधर्म समभाव के पोषक लाला लाभचन्दजी जैन (मुन्हानी) ने जीवन पर्यंत 'सेवा' के महामंत्र की आराधना की। आपका जन्म सन् 1909 में गुजरानवाला (पाकिस्तान) निवासी लाला चुन्नीलाल जी मुन्हानी की धर्मपरायण पत्नि रल्लादेवी की कुक्षि से हुआ। पंजाब के भावड़ा ओसवालों में भुन्हानी गोत्रीय श्रेष्ठियों की बड़ी धाक थी। इसी गोत्र में झगडू शाह हुए, जिनके पौत्र जौहरी शाह बड़े नामांकित व्यक्ति थे। उन्हीं के प्रपौत्र लाला लाभचंन्द थे। मात्र सत्तरह वर्ष की आयु में आपका विवाह कसूर नगर के लाला पन्नालाल जी की सुपुत्री लाल देवी से हुआ। आप अल्पायु में ही अपने पारिवारिक व्यवसास सर्राफा में निष्णात हो गए। सन् 1947 में विभाजन होने के परिणाम स्वरूप आपको गुजरानवाला छोड़ना पड़ा। सर्वप्रथम आपका परिवार अम्बाला आया, कुछ समय बाद आगरा आकर बस गया। यहीं 'चुन्नीलाल लाभचन्द' नामक फर्म की स्थापना की। अपने परिश्रम व ईमानदारी से अल्पावधि में ही आपकी फर्म ने सर्राफा बाजार में यश अर्जित कर लिया। तैंतीस वर्ष के अध्यवसाय में विश्वसनीयता एवं सद्भावना की छाप छोड़ आपका परिवार सन् 1980 में फरीदाबाद आकर बस गया। आगरा के ऐतिहासिक श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर एवं जैन तीर्थ शौरीपुर में आपका अवदान सराहनीय रहा। जैन पंजाबी संघ, आगरा के आप चवदह वर्षों तक कोषाध्यक्ष रहे।

फरीदाबाद आवासित होने के बाद आपको वहाँ जिन-मन्दिर का अभाव सदैव अखरता था। सन् 1991 में आचार्य विजयेन्द्र दिन्न सूरिजी के

आशीर्वाद से श्री संघ द्वारा जिन मन्दिर बनाने की योजना बनी। लालाजी ने हरियाणा सरकार को भू-खण्ड मूल्य देकर मन्दिर हेतु मुख्य शिला स्थापित कर गर्भ-गृह निर्माण का पुण्य लाभ अर्जित किया। लालाजी ने पालीताना, पावागढ़ शौरीपुर, आगरा, कोबा आदि तीर्थ स्थलों एवं गुरुधाम (लहरा), श्री वल्लभ स्मारक (दिल्ली) एवं आचार्यश्री समुद्र सूरि समाधि मन्दिर (मुरादाबाद) के निर्माणार्थ अवदान देकर पुण्यार्जन किया। उन्होंने फरीदाबाद में अनेक बार नि:शुल्क कैंसर जाँच शिविर आयोजित करवाए। महान तपस्वी, उपाध्याय मुनि बसंत विजयजी की प्रेरणा से हस्तिनापुर में साधना हेतु एक गुफा का निर्माण करवाया। श्री वल्लभ स्मारक स्थाई निधि में पाँच लाख रुपए की राशि प्रदान की। पदमावती चैरिटेबल ट्रस्ट को सवा लाख रुपये अवदान देकर उसे दृढ़तर बनाया।

लालाजी लक्ष्मी की महती कृपा के बावजूद सादा जीवन, उच्च विचार के हामी थे। सन् 1941 से 1960 तक प्रतिवर्ष उन्होंने स्वयं अठाई तप किया। सन् 1987 में आचार्य श्री विजयचन्द्र दिन्न सूरि के सान्निध्य में उपधान तप सम्पन्न कराया। सन् 1976 में आपने तीर्थराज सिद्धांचल की यात्रार्थ संघ समायोजन किया। सन् 1997 में आपकी धर्मपत्नि श्रीमती लालदेवी का स्वर्गवास हो गया। तब से आप निरन्तर साधना आराधना को ही समर्पित रहे। सन् 1997 में शौरीपुर तीर्थन्यास एवं श्री जैन श्वेताम्बर नवयुवक मण्डल आगरा द्वारा उन्हें 'समाज रत्न' के विरुद के सम्मानित किया गया।

सन् 2002 की 24 जनवरी को उन्होंने 'श्वेताम्बर जैन' पत्रिका के माध्यम से समस्त आचार्यों, श्रमण श्रमणी वृन्द एवं आत्मीय स्वजनों से क्षमा याचना की। तब वे अपनी आयुष के 93 वर्ष पूर्ण होने के नजदीक ही थे। सुपुत्रों, बहुओं, पुत्रियों, पौत्र, प्रपौत्र आदि परिवारजनों की परिपूर्णता में 11 मार्च, 2002 को उन्होंने अंतिम साँस लेकर प्रभु स्मरण करते हुए स्वर्ग गमन किया।

उनके सुपुत्रों ने पच्चीस लाख रुपयों की राशि से धर्म एवं समाज हितार्थ श्री लालदेवी लाभचन्द जैन मेमोरियल ट्रस्ट की स्थापना की। सन् 1967 में उनके सुपुत्र श्री राजकुमार एवं श्री शांतिलाल द्वारा फरीदाबाद में स्थापित फर्म 'ओसवाल इलैक्ट्रीकल्स'' ने दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की है।

102. श्री राजरूप टांक (1905-)

जन्म : चिड़ावा, 1905

पिताश्री : माणकचन्दजी ओसवाल
(दत्तक–छगनलालजी टाक, श्रीमाल)

दिवंगति :

जयपुर के प्रसिद्ध रत्न पारखी श्रीमाल श्रेष्ठि श्री राजरूप जी टांक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों में से थे। लोगों में 'चा साब' के नाम से लोकप्रिय श्री टांक रत्न व्यवसाय में अग्रणी थे।

आपका जन्म संवत् 1962 में चिड़ावा ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री मानकचन्दजी का ओसवाल समाज में प्रमुख स्थान था। छः वर्ष की उम्र में राजरूप जी श्री छगनमलजी टांक के गोद गए। आपके पूर्वज श्री सावंतराम जी ने झुंझुनूं में दादाबाड़ी एवं शेखावटी प्रदेश में प्यास बुझाने के लिए अनेक कुओं का निर्माण कराया था। राजरूप जी ने जवाहरात के पुश्तैनी व्यवसाय को खूब चमकाया। आपने जयपुर में हीरे एवं अन्य कीमती जवाहरात तराशने की फैक्ट्री स्थापित की। रंगीन पत्थरों–माणक एवं पन्ने के आप विशेषज्ञ माने जाते थे। अनेक जवाहरात कर्मियों को आपने प्रोत्साहन देकर व्यवसाय दक्ष बनाया। सन् 1970 में उनके शिष्यों द्वारा उन्हें चौसठ हजार रूपए का पर्स (थैली) भेंट कर सम्मानित किया गया। आपने जवाहरात पर 'इंडियन जेमोलोजी' (अंग्रेजी) व 'रत्न प्रकाश' (हिन्दी) ग्रंथों की रचना की। उनके संग्रह में अनेक प्रकार के प्राचीन अर्वाचीन विशिष्ट रत्न संग्रहित है। आप संस्कृत एवं आयुर्वेद के ज्ञाता थे।

'चा साब' में अपने देश के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। स्वतंत्रता संग्राम में उनका विशेष अवदान रहा। स्वभाव से सरल एवं मिलनसार तो थे ही, उनका पहनावा खादी का कुर्त्ता और धोती उन्हें जन-साधारण के और निकट ला देता था। आप संवत् 1995-96 में राज्य प्रजामंडल के

कोषाध्यक्ष रहे। संवत् 2005 में कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन के वे संयोजक मनोनीत हुए। राज्यों के एकीकरण के बाद संयुक्त राजस्थान में लोकप्रिय सरकार का गठन हुआ तो वे राज्य एसेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। आप गांधीजी के हरिजन सेवक संघ से हमेशा जुड़े रहे। अनेक अन्य लोक हितकारी प्रवृत्तियों एवं संस्थाओं को उनका सहयोग एवं वरद हस्त प्राप्त था। संवत् 1982 में उन्होंने हिन्दू अनाथाश्रम की स्थापना की। भारत जैन महामंडल की जयपुर शाखा के आप सभापति रहे। संवत् 2011 से ही आप राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कोषाध्यक्ष रहे।

श्री टांक राजस्थान पींजरापोल गोशाला संघ, जयपुर चेम्बर ऑफ कॉमर्स, जयपुर ज्वैलर्स एसोशियेसन आदि महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के अध्यक्ष चुने गए। आप हरिभद्र सूरि मेमोरियल के कोषाध्यक्ष, राजस्थान स्टेट इन्डस्ट्रियल को-ऑपरेटिव बैंक के कोषाध्यक्ष एवं राजस्थान ज्योतिष मण्डल, राजस्थान हेंडीक्राफ्ट बोर्ड, आल इण्डिया खरतर गच्छ आदि संस्थानों के सदस्य रहे।

सन् 1925 में श्रीमाल संघ की संस्थापना आपही की प्रेरणा से सम्पन्न हुई। सन् 1927 में साध्वी स्वर्णश्री जी की प्रेरणा से श्री टांक ने जयपुर में श्री वीर बालिका विद्यालय की स्थापना की। यह अब डिग्री कॉलेज बन गया है एवं 3000 से ऊपर बालिकाएँ यहाँ शिक्षा पाती हैं। आपने जयपुर शहर में एक धर्मशाला का निर्माण करवाया।

103. सेठ राजमल ललवानी (1894-)

जन्म : आऊ (फलोदी), 1894
पिताश्री : रामलाल ललवानी (दत्तक: लक्खीचन्द ललवानी), सन् 1906
माताश्री : भागीरथी बाई
दिवंगति :

व्यक्ति के चरित्र का विकास परिस्थितियों के घात-प्रतिघात, विपत्ति और सम्पत्ति के परिवर्तनशील चक्र के संदर्भ में ही होता है। एक अनूठा सत्य यह है कि इन सभी अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में भी मनुष्य के नैसर्गिक गुण उजागर हो उठते हैं। यह मनुष्य का साहस और संकल्प ही है जो उसे उन्नति पथ पर अग्रसर करता है। सेठ राजमलजी ललवानी के जीवन प्रसंग इस तथ्य के मूर्त्त गवाह हैं।

आपका जन्म राजस्थान के फलौदी जिला अन्तर्गत आऊ ग्राम में श्रीरामलालजी ललवानी की सहधर्मिणी की कुक्षि से संवत् 1951 (सन् 1894) में हुआ। खेती बाड़ी का काम था। जब वे 8 वर्ष के थे तभी पिता जीविकोपार्जन के लिए परिवार सहित खानदेश के मुड़ी ग्राम आ गए। वहाँ मराठी भाषा में राजमल दूसरी कक्षा तक पढ़े। तभी एक आकस्मिक घटना के कारण उन्हें घर छोड़ना पड़ा। उनका एक सहपाठी लड़कों से पैसे ठगने के लिए देवता को शरीर में लाने का ढ़ोंग किया करता था। राजमलजी उसके चक्कर में फँस गए। घर से पैसे लाकर उसे देने लगे। देवयोग से यह बात बड़े भाई को मालूम हो गई। उन्होंने खूब मारा। राजमल वहाँ से भागे और 15 कोस पैदल चलकर वरुल भटाना ग्राम पहुँचे। वहाँ नीमाजी पटेल के आश्रय में दूकान कर ली। शनैः-शनैः कमाई होने लगी। इस वक्त उनकी उम्र 11 वर्ष थी। पिता को जब मालूम पड़ा तो वे भी भटाना आकर उसी धंधे में लग गये।

इस बीच जामनेर के धनपति सेठ लक्खीचन्दजी ललवानी गोद लेने के लिए एक बच्चे की तलाश में थे। बारह अन्य उम्मीदवार भी थे। लक्खीचन्द जी को जब राजमल की खबर लगी तो वे मिलने आए। लक्खीचन्द जी उनके प्रतिभा से आकर्षित हुए। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से राजमल को सन् 1906 में गोद ले लिया। इसके बाद ही उनका भाग्य चमक उठा।

राजमल ऐश्वर्य के बीच भी कर्मवीर बने रहे। अहंकार ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया। बल्कि विनयशीलता एवं जागृति दिनों-दिन विकसित हुई। सन् 1907 में सेठ लक्खीचन्द का स्वर्गवास हो गया। मात्र 13 वर्ष की वय में राजमल ने पूरी जिम्मेदारी से जमींदारी संभाली। दूरदर्शिता और बुद्धिमानी से उन्होंने व्यावसायिक प्रवृत्तियों का संचालन कर थोड़े ही दिनों में ख्याति अर्जित कर ली। सन् 1914 में हैदराबाद के मशहूर धनपति दीवान बहादुर सेठ थानमलजी लूणिया की सुपुत्री से उनका विवाह हुआ।

प्रथम महायुद्ध में महात्मा गाँधी की अपील पर सेठ राजमल ने पचास हजार रुपए सरकार को 'वार लोन' रूप में प्रदान किए। सरकार ने प्रसन्न होकर उनके तत्कालीन निवास जलगाँव में उनका एक Statue बनवाकर स्थापित करवाया। जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ा तो आप तन-मन-धन से उसमें कूद पड़े। सन् 1921 में महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन छेड़ा तो आपने उत्साह से उसमें भाग लिया। फलस्वरूप सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। आपके परिवार के सभी निजी हथियार जब्त कर लिए गए। सन् 1922 में जलगाँव में बम्बई प्रांतीय काँग्रेस कमिटी का अधिवेशन हुआ तो आप उसके अध्यक्ष मनोनीत हुए। लोकमान्य तिलक जब काले पानी से लौट कर महाराष्ट्र आए तो आप स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। दो वर्ष पूर्व 'स्वदेशी प्रदर्शनी' आयोजित हुई तब भी आप ही स्वागताध्यक्ष थे। सन् 1922 में ही आप बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गए। खादी के वस्त्र पहनने का व्रत था। सन् 1936 में वे काँगेस की तरफ से प्रांतीय एसेम्बली के सदस्य चुने गए। इसी से उनकी लोकप्रियता उजागर होती है।

आपने सामाजिक स्तर पर ओसवाल जाति में सुधार की लहर पैदा कर दी। खानदेशीय ओसवाल सभा की स्थापना का श्रेय आपको ही है। मुनि

पदमानन्दजी के सहयोग से उन्होंने अखिल भारतीय मुनि-मण्डल बनाया एवं ''मुनि'' नाम से एक मासिक पत्र का शुभारम्भ किया। अखिल भारतीय ओसवाल सभा की स्थापना में आपका प्रमुख हाथ था। सन् 1934 में अजमेर में आयोजित अखिल भारतीय ओसवाल सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के आप स्वागताध्यक्ष चुने गए थे। मालेगाँव में हुई सभा की कार्यकारिणी की बैठक में एक हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। जलगाँव में आपने जैन बोर्डिंग की स्थापना की। खानदेश एजुकेशन सोसायटी' नामक शिक्षण संस्थान का प्रारम्भ आप ही के बीस हजार रुपयों के अवदान से हुआ। इस संस्थान ने हजारों रुपए जरूरतमंद ओसवाल छात्रों में वितरित किये। जामनेर में अपनी माता श्रीमती भागीरथी बाई की स्मृति में एक ग्रंथागार बनवाया। चादंवड़ के ''नेमिनाथ ब्रह्मचर्याश्रम के आप अध्यक्ष रहे।

सन् 1916 में जब अनाज बहुत महँगा हो गया और अकाल की स्थिति बन गई, जामनेर की गरीब प्रजा जब तबाही से ग्रस्त थी, उस समय आपने लगातार बारह महीने तक जनता को सस्ते दामों में अनाज सप्लाई करने का बीड़ा उठाया और जनता की प्रशंसा के हकदार बने। इसी तरह प्लेग और इनफ्लूएंजा महामारियों के समय भी आपने गरीब जनता की सेवा की। पंचायतों की समस्याएँ सुलझाने के लिए जैन एवं इतर समाज के लोग भी आपकी गुहार लगाते थे। आपने जामनेर में एग्रीकलचर फार्म एवं केटल ब्रीडिंग फार्म खोले।

आपके पूर्वज जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय को मानने वाले थे। आपने सर्वप्रथम सभी धर्मों की मान्यताओं एवं सिद्धांतों का भली प्रकार अध्ययन किया। जैन दर्शन के अलावा वेदान्त, पातंजलि दर्शन, मुस्लिम व ईसाई धर्म ग्रंथों, आर्य समाज की मान्यताओं की बारीकीयों को समझा। अपने बगीचे में एक योगशाला का निर्माण कराया। आपने अनुभव किया कि इस जगत में तीन प्रकार के धर्म प्रचलित हैं—ईश्वरीय धर्म, प्राकृतिक धर्म एवं मनुष्यकृत धर्म। सत्य, अहिंसा और निर्बैर शांति भावना ईश्वरीय धर्म है, भूख और प्यास मिटाना प्राकृतिक धर्म है। परन्तु मनुष्यकृत धर्मों की भित्ति स्वार्थ और भेदभाव पर स्थित है। अत: सभी मनुष्यकृत धर्म विकृत हो जाते हैं।

104. श्री शांतिप्रसाद साहू (1911–1977)

जन्म : नजीबाबाद (यू.पी.), 1911
पिताश्री : दीवानसिंह साहू
माताश्री : मूर्ति देवी
दिवंगति : दिल्ली, 1977

20वीं सदी के सद्गृहस्थ जैन धर्म-प्रभावकों में सर्वोपरि श्रावक शिरोमणि सेठ शांतिप्रसाद साहू माने जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की समन्वित साधना को समर्पित साहूजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं दूरंदेशी से सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक–सभी स्तरों को अपने सत्कार्यों से सुवासित किया।

उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में हिमालय की तलहटी में बसें ग्राम नजीबाबाद में सन् 1911 में साहू दीवानसिंह के घर उनकी सहधर्मिणी मूर्तिदेवी की कुक्षि से एक बालक का जन्म हुआ। नाम रखा गया–शांति प्रसाद। पितामह सलेखचन्द्र उस प्रदेश के विख्यात समाज-सेवक थे। बालक की प्रारम्भिक शिक्षा नजीबाबाद में हुई, तदुपरांत बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय एवं आगरा यूनिवर्सिटी से स्नातकीय परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। धार्मिक संस्कार उन्हें माता-पिता से विरासत में मिले। उनका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रामकृष्ण डालमिया की पुत्री रमा रानीसे हुआ। अल्पायु में ही मातृ वियोग होने से रमारानी का लालन-पालन महात्मा गाँधी के परम भक्त सेठ जमनालाल बजाज के सान्निध्य में हुआ। देश प्रेम, आत्म-विश्वास एवं सर्वधर्म समभाव के संस्कार उन्हें बचपन से मिले। साहू परिवार इस मणि-कांचन संयोग से थोड़े ही समय में भारत के समाज सेवी कुटुम्बों में अग्रगण्य हो गया। अपनी कुशाग्र बुद्धि, सही सहायकों की परख एवं उदार नीति के कारण साहूजी ने विविध व्यवसायों एवं उद्योगों में अभूतपूर्व सफलता अर्जित की।

साहूजी ने उद्योगों में शोधपरक आधुनिक टेक्नोलोजी का इस्तेमाल किया। सन् 1936 से 1954 के दौरान उन्होंने डच ईस्ट इन्डीज, आस्ट्रेलिया, रूस, अमरीका, जर्मनी, इंग्लैण्ड एवं यूरोप के विभिन्न प्रदेशों का दौरा किया एवं बारीकी से वहाँ के उद्योगों का निरीक्षण करने के बाद देश में सिमेंट, कागज, वनस्पति तेल, चीनी, एसबेस्टोस, जूट, रासायनिक पदार्थों, खाद, प्लाईवुड, कोयला खदानों के विभिन्न उद्योग स्थापित किये। पण्डित नेहरू ने उनकी योग्यता एवं दूरदर्शिता का सम्मान कर उन्हें राष्ट्रीय प्लानिंग कमीशन का सदस्य मनोनीत किया। वे इण्डियन चेम्बर ऑफ कामर्स, इंडियन सूगर मिल एसोसिएशन, इंडियन पेपर मिल्स एसोशिएसन, बिहार चैम्बर ऑफ कॉमर्स, राजस्थान चेम्बर ऑफ कॉमर्स आदि संस्थानों के अध्यक्ष चुने गए। वे साहू जैन लि. रोहतास इन्डस्ट्रीज लि., देहरी रोहतास लाईट रेलवे लि. आदि कॉरपोरेट संस्थानों के चेयरमैन थे।

सर्वप्रथम सन् 1929 में हस्तिनापुर में हुए अखिल भारतीय दिगम्बर जैन युवक सम्मेलन में साहूजी एक साधारण सदस्य की तरह शामिल हुए। फिर सन् 1940 के लखनऊ में संयोजित दिगम्बर जैन परिषद् के वार्षिक अधिवेशन में वे सपत्नीक शामिल हुए। उस वक्त तक जैन समाज उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानने लगा था। समाज की तात्कालीन समस्याओं, यथा–विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, दहेज निवारण आदि के समाधान खोजने में साहूजी ने समाज का मार्गदर्शन किया। समस्त जैन सम्प्रदायों की एकता के लिए प्रयासरत भारत जैन महामण्डल जैसी सर्वमान्य संस्था के भी वे कर्णधार बन गए। शैक्षणिक संस्थानों, अस्पतालों एवं जनहितकारिणी प्रवृत्तियों के लिए उन्होंने मुक्त हस्त अवदान दिये।

साहूजी द्वारा संस्थापित जन-हितकारी संस्थाओं एवं प्रवृत्तियों की सूची बहुत लम्बी है। इनकी शुरुआत साहूजी के बचपन में ही सन् 1921 में परिवार द्वारा संस्थापित नजीबाबाद के मूर्तिदेवी कन्या विद्यालय से हुई। सन् 1944 में भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना हुई एवं मूर्तिदेवी ग्रंथमाला का प्रारम्भ हुआ। श्रीमती रमा रानी इस संस्थान की ट्रस्टी थी। इन संस्थानों से उच्च कोटि का प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत,

अंग्रेजी, तमिल, कन्नड़ आदि विविध भाषाओं में विपुल मात्रा में प्रकाशित हुआ। भारत के संविधान द्वारा मान्य सभी भाषाओं में प्रकाशित मानवीय मूल्यों एवं संस्कारों की संवर्धना में सहायक सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृति को इस संस्थान की ओर से हर वर्ष 'ज्ञनपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया जाता है। पुरस्कार की राशि शुरु में डेढ़ लाख रुपए थे। भारत के इतिहास में राष्ट्रीय स्तर का यह सर्वोच्च साहित्य सम्मान है। 'साहू जैन ट्रस्ट' के अन्तर्गत एम.ए., पी-एच.डी. आदि उच्चतम शिक्षण के लिए मूर्तिदेवी छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। इनके परिणामस्वरूप देश-विदेश में भारतीय दर्शन के प्रचार-प्रसार को गति मिली है।

विशाल औद्योगिक प्रसार के लिए साहूजी ने प्रेस की महत्ता को पहचान कर सन् 1945 में दिल्ली से 'नवभारत टाईम्स' का प्रकाशन शुरु करवाया। सन् 1955 में बम्बई स्थित उनके कारपोरेट संस्थान 'बेनेट कालमेन कम्पनी' के अन्तर्गत 'टाईम्स ऑफ इण्डिया' का प्रकाशन शुरु हुआ। इन दोनों ही समाचार पत्रों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इन संस्थानों से अनेक मासिक, पाक्षिक मेगजीनों का प्रकाशन हुआ। धर्मयुग दिनमान, पराग, Economic Times, Youth Times एवं फिल्मफेयर पत्रिकाएँ इसी प्रकाशन समूह की देन थी।

सन् 1968 में बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा संयोजित आल इण्डिया ओरियंटल कॉन्फ्रेंस में साहूजी के संप्रयत्नों से जैन विद्या पर विशिष्ट संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें देश के मूर्धन्य विद्वानों ने सहकार किया। अनेकानेक धार्मिक व सांस्कृतिक संस्थान उनके अवदान से संस्थापित व संचालित होती रही उनमें मुख्य हैं–वैशाली स्थित प्राकृत शोध संस्थान, बनारस स्थित स्याद्वाद महाविद्यालय, ससाराम स्थित S.P. Jain College, मैसूर युनिवर्सिटी में जैन विद्या के अध्ययनार्थ स्थापित ''साहू जैन चेयर'', कलकत्ता स्थित अहिंसा प्रचार समिति, सागर स्थित वर्णी संस्कृत विद्यालय, देवगढ़ स्थित साहू पुरातत्त्व म्यूजियम, नजीराबाद स्थित साहू जैन कॉलेज, मूडविद्री स्थित भारतीय कला विद्या जैन शोध संस्थान।

भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव में राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तरों पर साहूजी का सक्रिय सहयोग अभूतपूर्व था। राष्ट्र के मुख्य राजनेता इन उत्सवों में सम्मिलित हुए। भगवान महावीर के राष्ट्रीय स्मारक हेतु दिल्ली में सरकार द्वारा जमीन उपलब्ध करवाने का श्रेय साहूजी को ही है। इन महोत्सवों में साहूजी अदम्य उत्साह से सम्मिलित होते रहे। जैन समाज ने उन्हें दानवीर, समाज शिरोमणि एवं श्रावक शिरोमणि विरुदों से अभिनन्दित किया। सन् 1975 में उनकी सहधर्मिणी रमारानी का वियोग हुआ। इससे उन्हें मानसिक आघात लगा। सन् 1977 में वे स्वयं इस पार्थिव देह को छोड़कर स्वर्गवासी हो गए। समाज विशेषत: दिगम्बर सम्प्रदाय नेतृत्वहीन हो गया। उनके भ्राता श्रेयांस प्रसादजी सुपुत्र अशोककुमार एवं सुपुत्री अलका ने उनके पद चिह्नों पर चलकर समाज को अपनी सेवाएँ अर्पित की।

105. सर सेठ भागचन्द सोनी (1904-1983)

जन्म : 1904

पिताश्री : रा.ब. टीकमचन्द सोनी

पद/उपाधि : राय बहादुर (1935), OBE (1941), Knight (1944), Hon-Leutinant (1945)

दिवंगति : 1983

अजमेर का सोनी परिवार भारतवर्ष के समृद्ध जैन परिवारों में अग्रगण्य माना जाता है। इस परिवार के पूर्वज 180 वर्ष पूर्व किशनगढ़ से आकर अजमेर में बसे। सेठ जवाहरमलजी ने फर्म 'जवाहरमल गम्भीरमल' की स्थापना की। उन्होंने सन् 1855 में अपने निवास स्थान के सामने महापूत जैन मन्दिर का निर्माण कराया। इस मन्दिर में भगवान की समवशरण रचना स्वर्ण रंग से रचित है। उन्होंने सन् 1847 में सम्मेद शिखर जैन तीर्थ के लिए एक हजार श्रावकों का संघ समायोजन किया, जिसे अपनी यात्रा पूरी करने में सात माह लगे एवं लाखों रुपए खर्च हुए।

इसी परिवार के सेठ मूलचन्द सोनी ने बहुत प्रसिद्धि पाई। उन्होंने अपने व्यवसाय विकास हेतु कलकत्ता, मुम्बई आदि बड़े शहरों में अपनी कोठियाँ निर्मित की। वे जैन विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। शास्त्र प्रवचन एवं जैन पाठशालाओं के लिए उन्होंने मुक्तहस्त दान दिया। ब्रिटिश सरकार ने उनके सामाजिक अवदानों के लिए उन्हें राय-बहादुर की उपाधि से सम्मानित किया। उन्होंने सन् 1865 में अजमेर जैन नशियाँ का निर्माण कराया जो अब भी एक दार्शनिक स्थान बना हुआ है। इसकी स्वर्ण चित्रकारी सम्पूर्ण करने में देश के प्रसिद्ध चित्रकारों को 25 वर्ष का समय लगा था। उन्होंने अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की स्थापना की। सन्

1867 में उन्होंने गिरनार तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया एवं राह में आए जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए मुक्त हस्त दान दिया। उनके सुपुत्र सेठ टीकमचन्द उदार हृदय व्यक्ति थे। उन्होंने नशियाँजी में एक 82 फीट ऊँचे मान-स्तम्भ का निर्माण कराया। सन् 1927 में उन्होंने सम्मेद शिखर तीर्थ के लिए संघ समायोजन किया। उन्होंने पावापुरी एवं मन्दार गिरि तीर्थों पर यात्रियों के ठहरने के लिए कोठियों का निर्माण कराया। वे दिगम्बर जैन महासभा के दो बार अध्यक्ष चुने गए। जयपुर महाराजा एवं जोधपुर दरबार ने उन्हें राजकीय सम्मान बख्शे।

सेठ टीकमचन्दजी के सुपुत्र भागचन्दजी का जन्म सन् 1904 में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अजमेर में ही हुई। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। उनका प्रथम विवाह इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्द की सुपुत्री तारादेवी से हुआ। सेठ भागचन्द का द्वितीय विवाह बुरहानपुर के सेठ केशरीमल लुहाड़िया की पुत्री से हुआ, जिनसे दो सन्तानें – श्री निर्मलचन्द एवं श्रीसुशीलचन्द हुई। सेठ भागचन्द ने अपने बैंकिंग व्यापार के अतिरिक्त टैक्सटाईल मिल और जीनिंग फैक्टरी स्थापित की। उन्होंने खनिज एवं जवाहरात उत्पादन के क्षेत्र में भी पहल की। देश के विभिन्न नगरों में अपनी फर्म की शाखाएँ खोलकर उन्होंने समृद्धि एवं प्रसिद्धि हासिल की।

वे तात्कालीन रेल्वे संस्थानों एवं अनेक रियासती राज्यों के खजांची नियुक्त हुए। धोलपुर, भरतपुर, शाहपुरा, ग्वालियर, जोधपुर महाराजाओं से उन्हें बड़ा सम्मान मिला। सन् 1935 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें राय बहादुर की पदवी से सम्मानित किया। वे सन् 1941 में OBE एवं 1944 में Knighthood की उपाधियों से अलंकृत हुए। सन् 1935 से 45 तक वे केन्द्रीय विधानसभा के सदस्य मनोनीत हुए। सन् 1953 में उन्हें भारतीय स्थल सेना का मानद 'कैप्टिन' मनोनीत किया गया।

सेठ भागचन्द राजस्थान के अनेक शैक्षणिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों के सभापति या उपसभापति रहे। दिगम्बर जैन महासभा के तो वे संरक्षक ही थे। उन्होंने समाज में कला और खेलों के विकास हेतु मुक्त हस्त

अवदान दिए। अजमेर संगीत कॉलेज के वे वर्षों तक अध्यक्ष रहे। समाज ने उनका समुचित सम्मान करते हुए उन्हें समय-समय पर दानवीर, जाति शिरोमणि, धर्मवीर आदि विरुदों से अलंकृत किया।

वे सन् 1983 में स्वर्गस्थ हुए।

106. श्री कंवरलाल सुराणा (1928-1996)

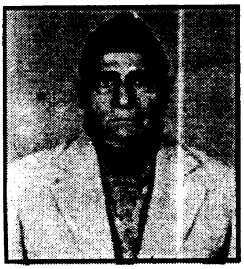

जन्म : 1928

दिवंगति : आगरा, 1996

सुराणा वंश ओसवाल जाति का गौरवशाली वंश है। जैन धर्म के अभ्युदय एवं प्रभावना में सुराणा श्रेष्ठियों का महत्त्पूर्ण योगदान रहा है। इस वंश की उत्पत्ति सिद्धपुर पाटण के महाराज सिद्धराज जयसिंह के रक्षक जगदेव पंवार के संवत् 1205 में जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि के प्रबोधन से जैन धर्म अंगीकार कर लेने से हुई।

आगरा के श्री कंवरलालजी सुराणा ने इस शदी में अपने अध्यवसाय से बहुत नाम कमाया। उनका जन्म सन् 1928 में हुआ। सामान्य शिक्षा पाने पर भी उनके तरुण मन ने अनेक सपने संजोये थे। वे स्थानीय इम्पीरियल बैंक के कैशियर नियुक्त हुए। कालांतर में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में केशियर रहे एवं अपनी लगन व ईमानदरी के बल पर पदोन्नति पाकर अनेक वर्षों तक हेड केशियर के पद पर कार्यरत रहे।

वे सदा कुछ नया करने की सोचा करते थे। अपने पुत्रों श्री अशोक कुमार एवं दिलीप कुमार के लिए वे समृद्ध व्यापार विरासत में छोड़ जाना चाहते थे। उनके सुयोग्य पुत्र अशोक कुमार के मन में भी ऐसा ही एक सपना आकार ले रहा था। कंवरलालजी ने पुत्रों के उज्वल भविष्य की कामना से बैंक के हेड केशियर के पद से त्याग-पत्र दे दिया एवं सन् 1972 में आगरा में 'ओसवाल इम्पोरियम' की नींव रखी। अपनी स्वस्थ छवि, ईमानदारी एवं परिश्रम से इम्पोरियम ने जल्दी ही अपनी साख जमा ली। यह इम्पोरियम अब भारत का नम्बर एक इम्पोरियम माना जाता है।

उन्हें सरकार द्वारा इस क्षेत्र के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्रशंसा-पुरस्कार तो हर साल मिलते रहे हैं। ओसवाल इम्पोरियम से

भारत के हस्तशिल्प एवं लोक कला की वस्तुएँ विदेशों को निर्यात की जाती है। विदेशी पर्यटकों के लिए इम्पोरियम के एक कक्ष में ताजमहल का 6 फुट ऊँचा मॉडल निर्माण करवाकर ध्वनि एवं प्रकाश के माध्यम से चाँदनी रात में वास्तविक ताजमहल दर्शन का सा आनन्द उपलब्ध करवाया गया है। अमरीका के तात्कालीन राष्ट्रपति श्री बिल क्लींटन अपनी पुत्री एवं पत्नि के साथ इम्पोरियम परिदर्शन कर आह्लादित हुए थे। यू.पी. के उद्योग विभाग ने श्री अशोक सुराणा को 'गोल्र्ड कार्ड' से सम्मानित किया है।

श्री कंवरलालजी ने सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों को उल्लेखनीय अवदान दिए। वे राजगृह में उपाध्याय अमरमुनि की प्रेरणा से संस्थापित विश्व के अभूतपूर्व धार्मिक संस्थान 'वीरायतन' के वर्षों उपाध्यक्ष रहे। वे दीन-दु:खियों की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। सन् 1996 में श्री कंवरलालजी स्वर्गस्थ हुए।

श्री कंवरलालजी की धर्मपत्नि श्रीमती विमला देवी धर्मनिष्ठ महिला हैं। उन्होंने आगरा में ''बालिका विद्यालय'' की स्थापना कर श्री कँवरलालजी की स्मृति को अक्षुण्ण बना दिया है।

सन् 1950 में जन्मे उनके सुपुत्र श्री अशोक कुमार सुराणा ने अपनी लगन एवं अध्यवसाय से इम्पोरियम की श्रीवृद्धि करने में कोई असर नहीं छोड़ी। उन्होंने बेतवा नदी के किनारे 'ओरछा रिजोर्ट्स' निर्माण कर होटल उद्योग का प्रारम्भ किया। सन् 1989-90 एवं 1990-91 में स्टेट एक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल द्वारा उन्हें सर्वोच्च पुरस्कारों से नवाजा गया। वे राजगृह स्थित धार्मिक संस्थान 'वीरायतन' के उपाध्यक्ष हैं। श्री सुराणा अनेक अन्य सामाजिक प्रवृत्तियों एवं जन-हितकारी कार्यों में संलग्न हैं।

107. श्री वल्लभराज कुम्भट (1922-2002)

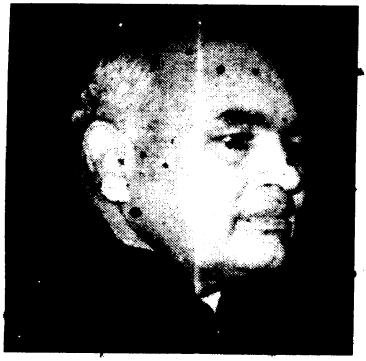

जन्म : जोधपुर, 1922

पिताश्री : बिशनराज कुम्भट

दिवंगति : जोधपुर, 2002

जोधपुर राज्य के गाँव दईकड़ा से केदारदास जी कुम्भट के पुत्र माईदासजी जी जोधपुर आये। माईदास के वंशज प्रेमराजजी के बड़े पुत्र बिसनराज थे। श्री प्रेमराज का जवाहरात का व्यापार था। पूरा परिवार सरल, सुहृदय, ईमानदार तथा धार्मिक प्रवृत्ति का था। श्री प्रेमराज की व्यवहर कुशलता, लगन और ईमानदारी के कारण जोधपुर राज्य परिवार से इन्हें 'पालकी सिरोपाव' से सम्मानित किया गया। यह एक ऐसा राजकीय सम्मान था, जिसमें परिवार में लड़कों के विवाह पर सूचित करने पर राजकीय पालकी भेजी जाती थी, विवाह के पश्चात् वर-वधू को पालकी में बैठकर वर के घर लाया जाता था।

श्री बिसनराज धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। श्री बिसनराज के सबसे छोटे पुत्र बल्लभ राज का जन्म 20 जुलाई, 1922 को हुआ। बल्लभराज प्रारम्भ से मेधावी थे। उन्होंने सन् 1938 में दसवीं परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी मेहनत एवं लग्नशीलता से 1940 में कॉमर्स में इन्टर की परीक्षा पास की। वल्लभराज ने उच्च अध्ययन के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। जहाँ से 1942 में बी.कॉम., 1944 में एम.कॉम. तथा 1945 में एल.एल.बी. की परिक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

सन् 1945 में अध्ययन पूरा करने के पश्चात् जोधपुर में जागीर सेटलमेन्ट विभाग, उत्तरी रेलवे तथा राजकीय जसवन्त महाविद्यालय के रिक्त स्थानों का विज्ञापन निकला। आपने तीनों जगह अपने आवेदन-पत्र

भेजे। तीनों स्थानों पर आपका चुनाव हो गया। परन्तु आपको स्वच्छ तथा निर्मल जीवन पसन्द था तथा समाज-सेवा करना चाहते थे अत: अपने स्वभाव एवं रुचि के अनुरूप आपने व्याख्याता का पद चुना और आपकी नियुक्ति जसवन्त कॉलेज में व्याख्याता के पद पर जुलाई, 1947 में हो गई।

सन् 1948 में तत्कालीन जोधपुर नरेश हनवन्तसिंहजी के पुत्र हुआ। इस अवसर पर एक नई कॉलेज ''श्री महाराज कुमार कॉलेज'' स्थापित की गई। परिणामस्वरूप श्री कुम्भट का स्थानान्तरण जुलाई 1948 को महाराज कुमार कॉलेज में कर दिया गया।

श्री महाराज कुमार कॉलेज से आपका स्थानान्तरण महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर हो गया। इस कॉलेज में वाणिज्य विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. आर.के. अग्रवाल के साथ आपने एक पुस्तक 'इन्टरमीडिएट बुक कीपिंग' लिखी। समूचे राजस्थान की कॉलेजों तथा राजस्थान के बाहर भी यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और इसके कई संस्करण छपे। प्रो. एल.आर. शाह के साथ आपने 'बाजार समाचार' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक भी बहुत लोकप्रिय हुई तथा इस पुस्तक के भी बहुत संस्करण छपे।

महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर से आपका स्थानान्तरण महाराणा कॉलेज, जयपुर में हो गया। 1954 में आपका चुनाव आयकर अधिकारी के पद पर हुआ तथा प्रशिक्षण के लिए आपको दिल्ली भेजा गया। प्रशिक्षण के पश्चात् आप चाहते थे कि आपका स्थानान्तरण जोधपुर हो जाए ताकि अपने पिताजी की सेवा में रह सकें। लेकिन ऐसा करना आयकर अधिकारियों के नियमों के विरुद्ध था। अत: आपको जोधपुर नियुक्ति नहीं मिली। इस पर आपने अधिकारियों को लिखकर दे दिया कि अगर उनकी नियुक्ति जोधपुर नहीं की जा सकती है तो आपको पुन: उनके मूल विभाग, राजस्थान के कॉलेज में भेज दिया जाय। आयकर विभाग के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि ऐसा ईमानदार, मेहनती, सरल प्रकृति वाला होशियार व्यक्ति आयकर विभाग छोड़े। फलत: श्री कुम्भट की जोधपुर नियुक्ति के लिए विशेष मामला बनाकर उच्च अधिकारियों से विशेष स्वीकृति प्राप्त की गई तथा आपकी

नियुक्ति जोधपुर में आयकर अधिकारी के पद पर हो गई। यह नियुक्ति एक अपवाद ही रही।

जोधपुर में तीन वर्ष के पश्चात् आपका स्थानान्तरण बीकानेर, दिल्ली, रतलाम आदि कई शहरों में हुआ। सन् 1961 में आपका प्रोमोशन प्रथम श्रेणी के आयकर अधिकारी के पद पर हुआ तथा 1972 में आप सहायक आयकर आयुक्त के पद पर पहुँचे। इस पद पर आपका स्थानान्तरण अजमेर हो गया।

आयकर आयुक्त के रूप में आपको क्षेत्र के आयकर विभागों के निरीक्षण के लिए विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ता था, आपने कहीं भी किसी व्यक्ति का आतिथ्य स्वीकार नहीं किया।

सहायक आयकर आयुक्त के पद पर आपका अन्तिम स्थानान्तरण कानपुर हुआ। यहीं से आपने 1980 में अवकाश ग्रहण किया। कानपुर में आप रच-बस गये थे। यहाँ आपको बहुत सम्मान और लोकप्रियता मिली। कानपुर शहर एवं आस-पास में आपने सार्वजनिक और जनहितार्थ अनेक कार्य किये।

धर्मपत्नि श्रीमती नर्मदा कुम्भट के देहावसान के बाद आप नितान्त अकेले हो गये। घुटने में बहुत दर्द रहता था, चलना-फिरना भी कठिन हो गया था। 17 सितम्बर, 2002 की वह मनहूस संध्या थी, जब आपने सबसे अलविदा कहा तथा अरिहन्त शरण पहुँच गये।

जोधपुर में ओसवाल सिंह सभा के अध्यक्ष पद से आपने जोधपुर जैन समाज की बहुत सेवा की। इसके अतिरिक्त आपने जोधपुर के अन्य सार्वजनिक संस्थानों का अध्यक्ष या सचिव पद सुशोभित किया, जिनमें मुख्य थी—गवर्निंग काउन्सिल, सरदार कॉलेज, राजस्थान एसोशियेसन, श्री पार्श्वनाथ मित्र मण्डल, रतलाम, श्री बीशन-सुगन कुम्भट ट्रस्ट, जोधपुर, कुम्भट बन्धु संघ, पशु क्रूरता निवारण संघ, जोधपुर, सेवा मण्डल, जोधपुर, राजस्थान जैन परिषद्, जोधपुर।

उन्होंने श्री जैन श्वेताम्बर महासभा, यू.पी., हस्तिनापुर एवं श्री वर्धमान जैन सार्वजनिक चिकित्सालय, कम्पिल (यू.पी.) को भी अपना निर्देशन दिया।

श्रीमती नर्मदा देवी की स्मृति में आपने सन् 2002 में जोधपुर के राजकीय वक्ष-क्षय चिकित्सालय में एक विश्राम-गृह का निर्माण करवाया, जो सभी आधुनिक सुविधाओं से युक्त है।

श्री कुम्भट ने अपने पिताजी तथा माताजी की यादगार को चिरस्थायी बनाने के लिए 'श्री बिशन-सुगन कुम्भट चेरिटेबल ट्रस्ट'' की स्थापना की। आपने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति इस ट्रस्ट को समर्पित कर दी। यह ट्रस्ट कई जरूरतमन्द छात्रों को स्कॉलरशिप तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह ट्रस्ट जोधपुर के गुरों के तालाब क्षेत्र में ''श्री पार्श्वनाथ कल्याण केन्द्र'' के नाम से एक बड़ी सार्वजनिक धर्मशाला का निर्माण करा रहा है।

108. श्री खैरायतीलाल जैन (1902-1996)

जन्म : जेहलम (पाकिस्तान), 1902

पिताश्री : लाला नरपतराय

माताश्री : राधा देवी

दिवंगति : 1996

दिल्ली निवासी लाला खैरायतीलाल जैन बीसवीं शताब्दी के दानवीर धर्मपरायण, कर्मनिष्ठ एवं सेवाभावी श्रावक हुए हैं। वे बारह व्रतधारी श्रावक थे। भगवान महावीर के सच्चे पुजारी तथा पंजाब केसरी जैनाचार्य श्री विजय वल्लभसूरि जी महाराज के परम अनुयायी थे। विनय, विवेक, समता, सहिष्णुता, परोपकार की भावना से ओत-प्रोत थे। राग, द्वेष, ईर्ष्या, अभिमान एवं वैर-विरोध से वे कोसों दूर रहे।

लालाजी प्राणीमात्र के कल्याण की सदैव कामना करते थे। अपने जीवन काल में उन्होंने सद्कार्य ही किये। देव मन्दिरों के भूमिपूजन, शिलान्यास, निर्माण, प्रतिष्ठा एवं औषधालय, विद्यालय तथा धर्मशालाओं की स्थापना में आपके विपुल योगदान से आपकी धर्म भावना स्पष्ट झलकती है। दीन-दु:खियों, साधर्मिक भाइयों तथा सेवा-संस्थाओं में आर्थिक एवं अन्य योगदान देना आप अपना कर्त्तव्य मानते थे। अनेक लोगों को आपने औद्योगिक क्षेत्र में प्रशिक्षित कर उनके उद्योग खुलवाए तथा उन्हें स्वावलम्बी बनाया।

लाला खैरायती लाल का जन्म 15 फरवरी, सन् 1902 में धर्ममूर्ति लाला नरपतराय एवं राधा देवी के परिवार में हुआ था। आप जेहलम (पाकिस्तान) के रहने वाले थे। स्कूली विद्या मिडल कक्षा तक ग्रहण कर आप 12-13 वर्ष की आयु में अपने पिता के सन् 1876 से चल रहे व्यापार में शामिल हो गए। 18 वर्ष की आयु में ही आप गुजरानवाला निवासी सुश्रावक लाला बनारसीदास जी बरड़ की सुपुत्री श्रीमती देवकी (अपर नाम

फूल कौर) के साथ परिणय सूत्र में बंध गए। लालाजी एक कुशल व्यापारी थे। धीरे-धीरे वे जेहलम नगर के शीर्ष व्यापारी बन गए थे। गुजरानवाला में कपड़े का थोक व्यापार भी खूब किया। देश विभाजन के कारण घर, सम्पत्ति-व्यापार आदि से वंचित हो गए। परन्तु देव-गुरु तथा धर्मकृपा से आतताइयों से जान बचाकर परिवार सहित दिल्ली में आ बसे। साधनों की कमी से लाला जी कभी हताश नहीं हुए। पुरुषार्थ तथा परिश्रम करते-करते वे आगे बढ़ते गए। सदर बाजार दिल्ली में पुराने फर्म नाम नरपतराय खैरायती लाला जैन के अन्तर्गत उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री बीरचन्दजी ने सन् 1948 में पुन: व्यापार शुरु कर दिया और स्वयं आपने 1949 में दिल्ली शाहदरा उप नगर में एक रबड़ उद्योग स्थापित किया।

आप एक कुशल उद्योगपति थे। रबड़ तथा खेलों के सामान के उत्पादन में आप अग्रणी रहे हैं। व्यापारिक एवं सामाजिक क्षेत्र में आपका व्यवहार प्रामाणिक था तथा अनेक स्वस्थ परम्पराएँ आपने स्थापित की हैं। उत्पाद की गुणवत्ता आपका परम लक्ष्य रहा है। आप ''एनके इण्डिया रबड़ कम्पनी'' तथा ''कास्को इण्डिया लिमिटेड'' दिल्ली एवं गुड़गाँव के मालिक थे। निर्यात में आपके प्रतिष्ठानों ने अनेक राष्ट्रीय तथा निर्यात संवर्धन पुरुस्कार प्राप्त किये हैं। न्यूजिलैण्ड से लेकर अमरीका, जापान एवं युरोप आदि विकसित देशों में आपके उत्पादन गुणवत्ता तथा दाम के आधार पर सर्वत्र सफल रहे हैं एवं आपके प्रतिष्ठानों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है।

धर्म को आपने आचरण में उतार लिया था। आपने अपने जीवन काल में, अनेक मन्दिरों के भूमिपूजन, शिलान्यास एवं निर्माण तथा धर्मशालाओं हेतु विपुल योगदान दिया। दिल्ली रूपनगर का श्री शान्तिनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर आपकी ही प्रेरणा से बना था। पालीताणा की पंजाबी धर्मशाला के शिलान्यास एवं प्रबन्ध में आप भागीदार थे। सुन्दर नगर लुधियाना में निर्मित जैन मन्दिर तथा श्री बद्रीनाथ, ऋषिकेश, हरिद्वार, शाहदरा एवं फरीदाबाद आदि स्थानों पर अनेक जिन मन्दिरों के शिलान्यास में आपने विशेष भूमिका निभाई है। हस्तिनापुर के पावन श्री पारणा मन्दिर का शिलान्यास तथा प्रतिष्ठान का सम्पूर्ण लाभ आपने ही लिया था। गुड़गाँव के श्री शान्तिनाथ जैन

मन्दिर, माता पद्मावती मन्दिर तथा सेवा सदन भवन निर्माण तथा प्रतिष्ठा में आपका योगदान सर्वोपरि रहा है।

दिल्ली में निर्मित अद्वितीय कलात्मक श्री विजयवल्लभ स्मारक का आप द्वारा शिलान्यास, भगवान वासुपुज्य जैन मन्दिर में मुनि सुव्रत स्वामी जिन बिम्ब प्रतिष्ठा तथा नर्सरी स्कूल का निर्माण स्मरणीय रहेंगे। भगवान श्री ऋषभदेव जी की निर्वाण स्थली अष्टापद की प्रतिकृति का शास्त्रोक्त रीति से आयोजित मन्दिर निर्माण के लिए भूमि पूजन श्री हस्तिनापुर में आपके ही कर-कमलों में हुआ था।

लालाजी वल्लभ स्मारक निधि के आजीवन ट्रस्टी होने के अतिरिक्त श्री आत्मानन्द जैन सभा रूपनगर, दिल्ली, श्री आत्मवल्लभ जैन यात्री भवन पालीताणा आदिके प्रधान रह चुके थे। श्री आत्मानन्द जैन महासभा एवं श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरांवाला की कार्यकारिणी समिति के वे वर्षों तक सदस्य रहे थे।

लालाजी दृढ़ संकल्पयुक्त महापुरुष थे। गुरु आत्माराम और गुरु वल्लभ के परम भक्त थे। उपाध्याय श्री सोहन विजय जी महाराज जब 1923 में जेहलम नगर पधारे तो आपने उनके धर्म उपदेश से प्रभावित होकर सूर्यास्त पश्चात् भोजन सदा के लिए त्याग दिया। जीवन में ''कम खाना, गम खाना और नम जाना'' तो उन्होंने गुरुदेव विजयवल्लभ सूरि जी महाराज से ही सीखा था। उन्हीं के क्रमिक पट्टालंकार आचार्य विजय समुद्र सूरीश्वर जी तथा आचार्य विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी की आप पर अपार कृपा रही है। विजयवल्लभ स्मारक प्रणेता कांगड़ा तीर्थोद्धारिका महत्तरा साध्वी श्री मृगावती जी की प्रेरणा से आपने 20 एकड़ जमीन में अवस्थित विजय वल्लभ स्मारक एवं सम्बन्धित संस्थाओं में लाखों रुपयों का योगदान दिया है। साथ ही अपने एक पुत्र श्री राजकुमार जैन को वल्लभ स्मारक के काम के लिए समर्पित भी कर दिया जिसने अपना व्यवसाय छोड़ दिया तथा तल्लीनता पूर्वक अपनी कार्यकुशलता से स्मारक के कार्य को विश्व स्तरीय संस्थान का रूप देकर गुरू आत्म तथा वल्लभ के नामों को और उज्ज्वल कर दिया है।

लाला खैरायतीलालजी ने अपने जीवनकाल में धर्म, समाज, शिक्षा तथा जीवदया आदि क्षेत्रों में निरन्तर सहयोग देने के लिए निजी योगदान से धर्मार्थ ट्रस्ट स्थापित किये हैं, जिससे अन्य अनेक दानवीरों को भी प्रेरणा मिली है। अपने छ: पुत्रों तथा परिवार को सुसंस्कार देकर धर्मपरायण बनाया है, जिन्होंने लालाजी के नाम को और अधिक चमकाया है। 20 मार्च 1996 के दिन आपका देहावसान हुआ।

22 मार्च, 1996 को आयोजित उनकी विशाल श्रद्धांजलि सभा में गुणानुवाद के लिए, हजारों श्रद्धालुओं ने भाग लिया। उपस्थित जैन समाज ने लाला जी को इस बीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ श्रावक बताया और ''शासन रत्न'' की उपाधि से मरणोपरान्त अलंकृत किया। उनका आदर्श जीवन भावी सन्तानों के लिए अनुकरणीय तथा अनुसरणीय रहेगा।

जैन विभूतियाँ

परिशिष्ट

परम संरक्षक

1. आचार्य पद्म सागर सूरिजी

अनुपम प्रतिभा एवं मधुर वाणी से लाखों श्रोताओं को धर्माभिमुखी बनाने वाले, जिन शासन प्रभावक जैन आचार्य पद्मसागर सूरिजी का जन्म सन् 1935 में मुर्शिदाबाद के अजीमगंज शहर में चौहान जगन्नाथसिंह की भार्या श्रीमती भवानीदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ। बालक की प्रारम्भिक शिक्षा भी अजीमगंज में हुई। उन दिनों अजीमगंज जैनों का प्रसिद्ध धर्म-केन्द्र था। प्रारम्भसे ही बालक को जैन संस्कार मिले। आचार्य कैलास सागर सूरिजी की दिव्य वाणी ने बालक के मन में वैराग्य बीज अंकुरित कर दिया।

अनेक जैन तीर्थों का भ्रमण कर अन्ततः सन् 1955 में दीक्षित होकर वे सूरिजी के शिष्यरत्न कल्याणसागरजी के पट्टधर शिष्य बने। कुशाग्र बुद्धि तो वे थे ही, प्रवचन प्रतिभा भी आप में थी। सन् 1974 में वे गणिपद से अलंकृत हुए। सन् 1976 में पन्यास पदासीन हुए एवं उसी वर्ष 1 दिसम्बर को महेसाणानगर में वे आचार्य पद से विभूषित हुए। आचार्य पद्मसागर जी ने धर्म की सांस्कृतिक विरासत प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में अभूतपूर्व योगदान दिया। लगभग 8000 बहुमूल्य ग्रंथ उन्होंने सेठ कस्तूरभाई के अहमदाबाद स्थित एल.डी. इन्स्टीट्यूट को भेंट किए। इसी हेतु आपने सन् 1980 में अहमदाबाद के निकट कोबा में श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र की स्थापना की। यह केन्द्र विकसित होकर विश्व का प्रमुखतम प्रतिनिधि संस्थान बन गया। यहाँ धर्म दर्शन, साहित्य, संस्कृति कला, शिल्प एवं स्थापत्य संरक्षण एवं संवर्धन के अधुनातन संसाधन उपलब्ध हैं। यह संस्थान अब तीर्थभूमि तुल्य है।

सम्पूर्ण देश आपकी धर्मस्थली है। जैनधर्म की प्रभावना के लिए सतत् प्रत्यशील रहकर आचार्यश्री ने लाखों लोगों में अर्हती ज्योति जगाई है। आपके प्रवचनों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं।

2. मुनि जयानन्दजी

जन्म	:	मुन्द्रा नगर (कच्छ), 1933
पिताश्री	:	दायजी भाई
माताश्री	:	चंचल बेन
दीक्षा	:	भुज, 1959

खरतर गच्छ विभूषण श्री मोहनलालजी महाराज के समुदाय के गणिवर्य श्री बुद्धि मुनि से दीक्षा लेने के उपरान्त भारत के विभिन्न प्रान्तों में चातुर्मास किए। आपने नूतन जिनालयों में बिम्ब प्रतिष्ठाएँ करवाई एवं जिर्णोद्धार करवाए। अनेकानेक नगरों में आपने उपधान तप एवं धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराए। आपकी अन्त:करण स्पर्शी प्रवचर शैली एवं ओजस्वी वाणी धर्मानुरागी लोगों को आकर्षित कर उन्हें आत्म-कल्याण की ओर प्रेरित करती है।

3. स्व. सेठ तखतमल भूतोड़िया, लाडनूँ

लाडनूँ के भूतोड़िया परिवार श्री गंगारामजी के वंशज हैं। सेठ भेरूदानजी के सुपुत्र सेठ तखतमलजी जबरदस्त अध्यवसायी थे। वे बंगाल में व्यवसायोपरांत श्री गंगानगर में व्यवसायरत रहे। वहाँ तात्कालीन व्यवसायीं संघ के वे अध्यक्ष एवं सरपंच रहे। दोनों पक्षों को समझा-बुझाकर विवाद सुलझा देने में उन्हें महारत हासिल थी। कानपुर में नवीन आढ़त व्यवसाय स्थापित कर वे सन् 1976 में स्वर्गस्थ हुए। उनकी धर्मपत्नि श्रीमती सूवटी देवी एवं सुपुत्री सोहनीदेवी धर्मपरायण महिलाएँ थी। सेठ तखतमलजी के द्वितीय पुत्र श्री चम्पालाल कानपुर में एवं तृतीय पुत्र श्री सरोज कुमार दिल्ली में व्यवसायरत हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री मांगीलाल कलकत्ता में अपने सफल वकालत पेशे से रिटायर हो पूर्णत: सांस्कृतिक लेखन को समर्पित हैं। उनके द्वारा लिखित ''ओसवाल जाति का इतिहास'' की दस हजार से भी अधिक प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं। ग्रंथ के प्रकाशनार्थ संस्थापित 'प्रियदर्शी प्रकाशन' अब तक हिन्दी, अंग्रेजी एवं गुजराती भाषा के अनेक ग्रंथ प्रकाशित कर चुका है। पिताश्री की स्मृति में संस्थापित 'श्री तखतमल भूतोड़िया अनुदान ट्रस्ट' से प्रतिवर्ष रजनीश-साहित्य देश के विभिन्न ग्रंथागारों को भेंट किया जाता है। प्रियदर्शी परिवार की रीढ़ श्रीमती किरण की काव्यकृतियाँ ''चेतना के पड़ाव'' एवं The Glimpse supreme को मनीषी काव्य प्रेमियों की प्रशंसा प्राप्त हुई।

4. श्री मोहनलाल खारीवाल

बैंगलोर की प्रसिद्ध चार्टर्ड एकाउन्टेंसी फर्म ''खींचा-खारीवाल'' के पार्टनर श्री मोहनलालजी खारीवाल का जन्म सन् 1927 में राजस्थान के ग्राम देवलीकलाँ में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जैन गुरूकुल, ब्यावर में हुई। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर आप बंगलौर चले गए। चार्टर्ड एकाउन्टेन्सी परीक्षाओं में सफलता हासिल कर सन् 1954 में आप श्री खींचा के चार्टर्ड एकाउन्टेंसी संस्थान में पार्टनर बन गए। आप धर्म, समाज एवं साहित्य की प्रभावना के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। बंगलौर में हिन्दी शिक्षण संघ एवं श्री जैन शिक्षा समिति की स्थापना का श्रेय आपको ही है। भारतीय विद्या भवन के बंगलौर केन्द्र के आप उप चेयरमेन हैं। श्री भगवान महावीर जैन शिक्षण ट्रस्ट के आप अध्यक्ष हैं।

5. श्री अभय कुमार नवलमल फिरोदिया

पूना के फिरोदिया खानदान ने देश के राष्ट्रीय एवं औद्योगिक इतिहास में अपनी अलग पहचान बनाई है। सन् 1944 में जन्मे अभयकुमारजी के पितामह श्री कुन्दनमलजी ने गाँधीजी के ''भारत छोड़ो आन्दोलन'' में सक्रिय सहयोग दिया एवं जेल गए। वे 1946-52 में मुम्बई राज्य धारा सभा के स्पीकर चुने गए। अभयकुमार जी के पिता श्री नवलमलजी स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय रहे एवं जेल गए। औद्योगिक जगत को उनका ''ओटोरिक्शा'' अवदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। धार्मिक परम्परा, राष्ट्रीय विचार एवं औद्योगिक क्षमता को विरासत में पाकर अभयकुमारजी ने उत्तरोत्तर उनका विकास किया। वे 'बजाज टेम्पो लिमिटेड' के चेयरमेन एवं मेनेजिंग डाईरेक्टर हैं। अनेकानेक धार्मिक, औद्योगिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थानों को उनका संरक्षण एवं सहयोग हासिल है। गाँधी नेशनल मेमोरियल सोसाईटी, सन्मति तीर्थ, अमर प्रेरणा ट्रस्ट, श्री फिरोदिया ट्रस्ट आदि संस्थानों के चेयरमेन एवं नवल वीरायतन (पूना), वीरायतन (राजगृह), एजूकेशन सोसाईटी (अहमदनगर) के प्रेसिडेंट हैं। उन्हें अहिंसा कीर्ति न्यास (नई दिल्ली) ओसवाल बंधु समाज (पूना) आदि संस्थानों के ट्रस्टी होने का श्रेय प्राप्त है। सन् 2001 में उनके सांस्कृतिक अवदानों के लिए माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों 'जैन रत्न' एवार्ड से नवाजा गया।

6. श्री भंवरलाल जैन (चोरड़िया)

आधुनिक जलगाँव के निर्माता कहलाने वाले श्री भंवरलालजी जैन ओसवाल वंश के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनके वैभव की कहानी अनूठी है। उनके पिता साधारण कृषक थे। युवक भंवरलाल किरोसिन की टंकी बैलगाड़ी पर रख घर-घर, गली-गली घूमकर तेल बेचा करता था। मेधावी तो वे थे ही। बी.कॉम., एल.एल.बी. होने के बावजूद अफसराना पद ठुकराकर उन्होंने स्वतंत्र व्यवसाय को अहमियत दी। शुरु में वे किसानों को तेल, बीज और उर्वरक सप्लाई करते रहे। सन् 1978 में केले का पाउडर बनाने की एक खस्ताहाल औद्योगिक इकाई खरीद ली एवं मशीनों का नवीनीकरण कर पपैया से पेपीन बनाने का सक्षम उद्योग स्थापित किया। यहीं से भाग्य ने पलटा खाया। जल्दी ही वे पेपीन के एकमात्र निर्माता एवं निर्यातक बन गए। विश्व की बीस प्रतिशत माँग भारत पूरी करने लगा। केन्द्रिय एवं राज्य सरकारों ने आपको इस औद्योगिक क्रांति के लिए पुरस्कृत किया। सन् 1980 में उन्होंने अपनी औद्योगिक रूझान का लक्ष्य पीबीसी पाईप को बनाया, जो कृषकों के सिंचाई का मुख्य साधन है। सिंचाई के संसाधनों में क्रांति लाने का श्रेय भी आपको है। आपने सर्वप्रथम ड्रिपटेनोलॉजी विकसित कर समूचे देश में नाम कमाया। इस पद्धति

ने हरितक्रांति का सूत्रपात किया। आज देश की लाखों एकड़ भूमि इस पद्धति से उपज बढ़ाने एवं देश को हरा-भरा करने में सफल हुई। आपने 400 करोड़ की पूँजी से 1000 एकड़ के फार्म पर संसाधनों से संस्थापित टिश्यू कल्चर एवं ग्रीन हाउस से हरित क्रांति के विकास में भी अहम् भूमिका निभाई। आपके अर्थ-सहयोग से अनेकों मन्दिर, कॉलेज, स्कूल, अस्पताल एवं असहाय नागरिक लाभान्वित हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय क्राफर्ड रीड मेमोरियल एवार्ड (1997) से सम्मानित होने वाले वे प्रथम भारतीय एवं द्वितीय एशियाई हैं।

7. श्री अशोक कुमार जैन (सुराणा)

देश की सांस्कृतिक विरासत से समस्त विश्व को अवगत कराने में आगरा के श्री अशोक कुमार सुराणा का स्तुत्य योगदान है। उनके पिताश्री कँवरलालजी सुराणा द्वारा सन् 1972 में संस्थापित ''ओसवाल इम्पोरियम'' अपनी स्वस्थ छवि एवं अभूतपूर्व संग्रह के लिए एशिया का प्रमुख संस्थान माना जाता है। हस्तशिल्प एवं कलाकृतियों के विदेशों में निर्यात का इस संस्थान ने एक कीर्तिमान बनाया है। आपने संस्थान के एक कक्ष में ताजमहल का 6 फीट ऊँचा मॉडल का निर्माण कर उसे ध्वनि एवं प्रकाश के माध्यम से देशी-विदेशी पर्यटकों को चाँदनी रात, बरसात और धूप में विभिन्न कोणों से ताज कैसा लगता है, समझाने एवं दिखाने का प्रयत्न किया है। अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन अपनी पत्नि एवं पुत्री के साथ इम्पोरियम देखकर दंग रह गये थे। उत्तरप्रदेश सरकार के उद्योग विभाग ने भारतीय शिल्प को विदेशों में लोकप्रिय बनाने में योगदान के लिए श्री सुराणा को 3 स्टार कैटेगरी एवं गोल्ड कार्ड से सम्मानित किया है। सन् 1989-90 से लगातार उन्हें निर्यात संवर्धन परिषद् द्वारा अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया है। श्री सुराणा अनेक संस्थानों के अध्यक्ष एवं सदस्य हैं। वे राजगृह में स्थित धार्मिक संस्थान ''वीरायतन'' के उपाध्यक्ष हैं। उन्होंने बेतवा नदी के किनारे ओरछा रिजोर्ट्स का निर्माण कर होटल उद्योग प्रारम्भ किया है। श्री सुराणा अनेक अन्य सामाजिक प्रवृत्तियों एवं जन-हितकारी कार्यों में संलग्न हैं।

8. श्री राजकुमार जैन

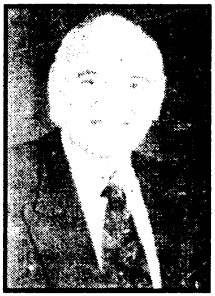

लाला लाभचन्दजी जैन (मुन्हानी) के ज्येष्ठ पुत्र श्री राजकुमार का जन्म माता श्रीमती लालदेवी की कुक्षि से सन् 1936 में गुजरानवाला (पाकिस्तान) में हुआ। सन् 1947 के विभाजन के बाद परिवार आगरा आवासित हुआ। आपने स्नातकीय शिक्षा आगरा में ही सम्पूर्ण की। आपका विवाह लुधियाना के प्रसिद्ध 'ओसवाल वूलन' परिवार में हुआ। आपकी धर्मपत्नि श्रीमती राजरानी सुयोग्य धर्मपरायण महिला हैं। आपके कनिष्ठ भ्राता श्री शांतिलाल एवं तीन पुत्र सुश्री कमल, चाँद एवं राजन व्यवसाय में आपके पूर्ण सहयोगी हैं।

श्री राजकुमार ने सन् 1967 में फरीदाबाद में जिस औद्योगिक प्रतिष्ठान ''ओसवाल एलेक्ट्रिकल्स'' की नींव रखी थी। वह अब पल्लवित पुष्पित होकर क्षेत्र का प्रमुख संस्थान बन गया है। सन् 1987 में इंस्टीट्युट ऑफ ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रियल डेवलपमेंट की ओर से राष्ट्रपति श्री जेलसिंह के कर-कमलों द्वारा आपको उद्योग-एवार्ड से सम्मानित किया गया। आप अनेक ख्याति प्राप्त धार्मिक, औद्योगिक एवं सामाजिक संस्थानों के पदाधिकारी एवं सदस्य हैं। फरीदाबाद में कलायुक्त जिन मन्दिर, उपाश्रय एवं ज्ञान-भण्डार का निर्माझ आपकी देखरेख में हो रहा है। सन् 1999 में आपको आचार्य विजय धर्म धुरंधर सूरि द्वारा 'श्रावक रत्न' के विरुद से नवाजा गया। आप जैन महासभा, दिल्ली एवं महावीर इन्टरनेसनल, फरीदाबाद के संरक्षक, श्री श्वे. मूर्तिपूजक जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं अनेक अन्य जन-कल्याणकारी प्रतिष्ठानों की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य हैं।

9. श्री कन्हैयालाल जैन (पटावरी)

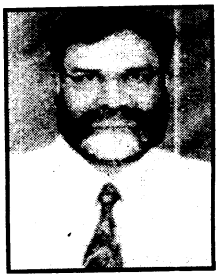

जन्म : 1947

पिताश्री : सुमेरमलजी पटावरी

माताश्री : इन्दिरा बाई

राजस्थान में चूरू जिले के मोमासर ग्राम के श्री कन्हैयालाल जैन (पटावरी) ने समग्र जैन समाज में वैभव एवं प्रतिष्ठा का नया कीर्तिमान स्थापित किया है। अपने अध्यवसाय एवं लगन से दिल्ली में पी.वी.सी. कम्पाउंड का शीर्ष उद्योग स्थापित कर अर्जित सम्पदा का शिक्षण एवं धर्म की जनहितकारी प्रवृत्तियों में सफल सदुपयोग करने का श्रेय आपको है। इनके पितामह श्री जालमचन्द राजलदेसर के सरपंच एवं प्रतिष्ठित सज्जन थे। उनके पौत्र सुमेरमलजी बड़े मिलनसार, सरल एवं निरभिमानी सतयुगी पुरुष थे। उन्हीं के सुपुत्र कन्हैयालालजी ने अपने पुरुषार्थ से सन् 1947 में नया उद्योग स्थापित किया। इन्होंने अपने पिता के नाम पर सन् 1979 में 'श्री सुमेरमल पटावरी ट्रस्ट' की स्थापना की। यह ओसवाल समाज का सबसे बड़ा जन-हितकारी ट्रस्ट है। दिल्ली में स्थापित चक्षु अस्पताल एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय ने दिल्ली की सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं शिक्षण संस्थाओं में अपनी साख बनाई है। कन्हैयालालजी स्वयं प्रगतिशील विचारों के पोषक हैं। उनके आर्थिक अवदानों से जैन समाज ही नहीं, समस्त देशवासी लाभान्वित हुए हैं। उन्हें तेरापंथ धर्मसंघ की ओर से 'युवारत्न' अलंकरण से विभूषित किया गया है। उनकी माताजी 'श्रद्धा की प्रतिमूर्ति' एवं बहन श्रीमती तारा सुराणा 'नारी रत्न' अलंकरण से विभूषित हुई हैं। सन् 1982 में भारत के उपराष्ट्रपति द्वारा उन्हें 'उद्योग पत्र' से सम्मानित किया गया। वे जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, दिल्ली के उपाध्यक्ष एवं दिल्ली की प्लास्टिक मेनु फेक्चरर्स संस्थान के अध्यक्ष रहे हैं। वे अणुव्रत न्यास एवं जैन विश्वभारती के मुख्य ट्रस्टी हैं। उनकी धर्मपत्नि श्रीमती सुशीला अ.भा. तेरापंथी महिला-मण्डल की अध्यक्ष मनोनीत हुई हैं।

10. श्रीमती सुधा रामपुरिया

जन्म	:	कोलकता, 1956
पिताश्री	:	जेठमलजी सुराणा
पतिश्री	:	स्व. प्रदीपकुमार रामपुरिया
शिक्षा	:	साहित्य रत्न

सांस्कृतिक परिवेश में पली सुधाजी ने युवा पति की अकाल मृत्यु के बावजूद हिम्मत न हारी। श्वसुर साहित्य मनीषी श्री माणकचन्दजी रामपुरिया की सत्प्रेरणा से उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की विशारद एवं साहित्यरत्न परीक्षाएँ उत्तीर्ण की एवं काव्य-सृजन जारी रखा। धार्मिक एवं साहित्यिक पुस्तकों के पठन-पाठन एवं महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थलों की यात्राओं को वे जीवन का संबल मानती हैं। परिष्कृत रूचियों की धनी सुधाजी समाज एवं साहित्य सेवा के लिए कृत-संकल्प हैं।

11. डॉ. कान्तीलाल हस्तीमल संचेती

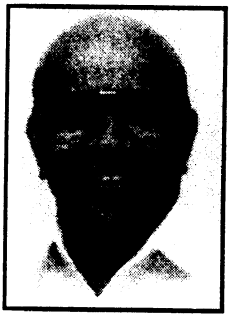

डॉ. के.एच. संचेती एक ऐसी विलक्षण हस्ती हैं, जिनकी गिनती विश्व के औरथोपेडिक्स चिकित्सा क्षेत्र के शिखर पुरुषों में आती है। 24 जुलाई, 1936 में साधारण व्यापारी परिवार में जन्मे डॉ. संचेती में राष्ट्र प्रेम या स्वदेशी की भावना बचपन से ही आप्लावित थी। समाज के साधारण वर्ग के लिए उनके हृदय में अपार करुणा का श्रोत है। अपने कार्य में निष्ठा, समर्पण तथा उत्कर्ष के लिए निरन्तर प्रयत्न इनके चरित्र का स्वाभाविक गुण है।

1961 में यूनिवर्सिटी ऑफ पूना से एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त कर उन्होंने भारत व विश्व के शैक्षणिक उपलब्धियों के कई कीर्तिमान स्थापित किये। 1988 में यूनिवर्सिटी ऑफ पूना ने उनके शोध-प्रबंध 'रिहेबीलीटेसन ऑफ ऑरथोपेडीक्ली हेन्डीकेप्ड चिलर्ड्नस इन रुरल इण्डिया' पर उन्हें पी-एच.डी. की डिग्री देकर सम्मानित किया।

डॉ. संचेती कई शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी व परोपकारी संस्थाओं से सक्रिय रूप से जुड़े हैं। संचेती इन्स्टीट्यूट फॉर ऑरथोपेडिक्स एण्ड रिहेबीलीटेशन, पुणे के आप जनक हैं। घुटने के ट्रान्सप्लेंट की आपकी तकलीक काफी कारगर सिद्ध हुई है। जिससे न केवल भारत बल्कि विदेशों में प्रचलन बढ़ा है। देश-विदेश के कई चिकित्सालयों को आपकी सेवाएँ उपलब्ध रही हैं तथा नये आर्थोपेडिक सर्जनों के लिए आप प्रेरणा श्रोत रहे हैं।

आपकी सेवाओं के सम्मान स्वरूप भारत सरकार ने आपको 'पद्मश्री' उपाधि से अलंकृत किया।

12. श्री बीरचन्द राजकुमार जैन

स्व. लाला खैरायतीलाल जी जैन के सुपुत्र श्री बीरचन्द का जन्म सन् 1925 एवं श्री राजकुमार का जन्म सन् 1927 में झेलम शहर (पाकिस्तान) में हुआ। सन् 1947 के विभाजन के बादउनका परिवार पहले देहरादून, फिर आगरा और अन्ततः दिल्ली में बस गया। लाला जी ने बड़े अध्यवसाय से शहादरा में रबर के नाना पदार्थ निर्माण करने का कारखाना खोला। सन् 1961 में इसकी दूसरी शाखा गुड़गाँव में खोली। सन् 1971 में इस कारोबार के फैलाव को लक्ष्य कर Enkay (India) की स्थापना की गई। दोनों भ्राता इस कम्पनी के स्वयंभूत डाइरेक्टर हैं। इस कम्पनी द्वारा निर्मित वस्तुओं का विदेशों में निर्यात होता है। भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त ये वस्तुएँ विश्व के प्रायः छहों महाद्वीपों में अपनी साख बनाए हुए हैं। रबर के बने खेल सामान एवं जूतों के लिए निर्मित रबर सोल के निर्यात पर कम्पनी का प्रायः एकाधिकार है। फुटबाल के ब्लेडर Latex सम्बंधी पेटेंट की मालिक यही कम्पनी है। श्री राजकुमार अपनी निर्यात सम्बंधी उपलब्धियों के लिए अनेक राष्ट्रीय इनामों से नवाजे गए हैं। सन् 1999 में उन्हें ''स्वतंत्रता स्वर्ण जयंती उद्योग विभूषण'' एवार्ड से सम्मानित किया गया। वे अनेकानेक जन-हितकारी संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। सन् 1996 में उनके शैक्षणिक एवं सामाजिक अवदानों के लिए उन्हें 'समाज-रत्न' विरुद से सम्मानित किया गया।

13. श्री हुलासचन्द गोलछा

श्री रामलालजी गोलछा के सुपुत्र श्री हुलासचन्द गोलछा सन् 1991 से नेपाल में पौलेण्ड के अवैतनिक महावाणिज्यदूत हैं। वे नेपाल के सर्वोच्च चेम्बर ''नेपाल उद्योग वाणिज्य महासंघ'' के संस्थापक एवं 10 वर्षों तक उपाध्यक्ष रहे। नेपाल में अनेकों स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर के व्यापारिक संगठनों के संस्थापक, महासचिव तथा अध्यक्ष आदि पदों पर रहे हैं। नेपाल-ब्रिटेन चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री नामक द्वि-राष्ट्रीय चेम्बर के भी संस्थापक अध्यक्ष रहे। दक्षिण एशिया के व्यापारिक संगठन ''सार्क चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री'' के संस्थापक रहे एवं सन् 2002 से वे उसके उपाध्यक्ष हैं। व्यावसायिक रूप में वे गोलछा ऑर्गनाइजेशन एवं सगरमाथा इन्स्योरेन्स कं. लि. के अध्यक्ष हैं। विश्व के 51 देशों का उन्होंने व्यापारिक एवं व्यावसायिक भ्रमण किया है।

पाँच वार हृदयघात होने के बावजूद अपनी सकारात्मक सोच के बल पर वे दिन में 16 घंटे सक्रिय रहते हैं। उन्होंने जैन धर्म एवं हिन्दुत्व से जुड़े अनेकों धार्मिक संगठनों के संस्थापक की भूमिका निभाई है। वे नेपाली धर्म संसद प्रतिष्ठान के संस्थापक अध्यक्ष हैं, नेपाल में मुख्यालय वाले विश्व हिन्दू महासंघ के संस्थापक सचिव एवं वर्तमान में उसकी अन्तर्राष्ट्रीय कार्यसमिति के

सदस्य हैं। दिल्ली स्थित भगवान महावीर मेमोरियल समिति के चीफ पैट्रोन एवं अखिल भारतीय अणुव्रत न्यास के ट्रस्टी हैं। जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के सर्वोच्च निकाय तेरापंथ विकास परिषद् के निवर्तमान संयोजक एवं वर्तमान में प्रबन्ध मण्डल के सदस्य हैं।

वे जन-कल्याणकारी कार्यों में मुख्यत: गोल्छा ऑर्गेनाइजेशन द्वारा स्थापित एवं संचालित चैरिटी ट्रस्ट, आँखों के अस्पताल एवं गोल्छा ज्ञान मन्दिर के अध्यक्ष की हैसियत से कार्यशील हैं। लॉयन्स एवं रोटरी जैसे क्लबों के अध्यक्ष एवं मल्टीपुल डोनर हैं। नवजीवन अपांग केन्द्र के वे चीफ पैट्रन एवं नियमित मेजर डोनर हैं।

उनकी साहित्यिक अभिरुचि उल्लेखनीय है। अन्य पुस्तकों के अलावा उन्होंने कर्मवीर (अपने पिताश्री) की विस्तृत जीवन गाथा नेपाली भाषा में लिखकर 500-500 पृष्ठों के दो खण्डों में स्वयं संपादित की एवं गोल्छा ज्ञान मन्दिर द्वारा प्रकाशित की। वे कविताएँ एवं गीत भी लिखते हैं।

14. स्व. सेठ सोहनलालजी बांठिया

ओसवाल जाति के सुप्रसिद्ध बांठिया गोत्र की उत्पत्ति रणथम्भौर के परमार क्षत्रियों (राजपूतों) से मानी जाती है। संवत् 1167 में आचार्य जिनवल्लभ सूरि का धर्मोपदेश हृदयंगम कर उन्होंने जैन धर्म अंगीकार किया। इस गोत्र के भीनासर (बीकानेर) निवासी सेठ मौजीरामजी बांठिया ने सन् 1882 में कलकत्ता में अपना व्यवसाय स्थापित किया। उनके पुत्र पन्नालालजी ने फर्म 'मौजीराम पन्नालाल'' को आयात कारोबार में बुलंदी पर उठाया। पन्नालालजी के पुत्र हम्मीरमलजी हुए। सेठ हम्मीरमलजी के पुत्र सोहनलालजी बड़े उद्यमी थे। इस फर्म के 'सिटीजन' ब्रांड फोल्डिंग छाता एवं उसकी रिब्स/ट्यूब आदि का निर्यात होता है। सोहनलालजी के सुपुत्रों सुश्री जेठमलजी एवं सुरेन्द्रकुमारजी के अध्यवसाय से सिटीजन छाता देश भर में लोकप्रिय हो गया है। अब आस-पास के देशों में इसका निर्यात भी होने लगा है। इस फर्म की दिल्ली एवं मुम्बई में भी शाखाएँ हैं। जेठमलजी के सुपुत्र सुश्री सुरेशकुमार, सुनीलकुमार, सुरेन्द्रकुमार एवं सुरेन्द्रकुमार जी के सुपुत्र सुश्री महेन्द्र कुमार, नरेशकुमार एवं जीतेश कुमार फर्म के कारोबार में सहयोगी हैं। श्री सुनील कुमार मुम्बई में जवाहरात निर्यात के कारोबार में संलग्न हैं। यह परिवार धर्म प्रभावक एवं समाज हितकारी कार्यों में सदैव सहयोगी रहा है। सेठ सोहनलालजी की धर्मपत्नि श्रीमती रायकुँवरी देवी धर्म परायण महिला थी। श्री जेठमलजी की धर्मपत्नि श्रीमती माणकदेवी सेवाभावी महिला हैं। रिकी पद्धति से ऊर्जा सम्प्रेषण में उन्हें महारत हासिल है।

15. श्री लक्ष्मीपत मनोत

चुरू के सेठ श्री मानिकचन्द मनोत के सुपुत्र श्री लक्ष्मीपत का जन्म सन् 1946 में हुआ। आपकी शिक्षा अपूर्ण रही पर जिस संघर्षमय जीवन से वे गुजरे उसने उन्हें एक अनुभवी

कानूनी सलाहकार बना दिया। सन् 1978 में अपना पुश्तैनी रसायन उद्योग छोड़कर वे पूर्णत: कानूनी सलाहकार बन गए एवं सन् 1983 में उनहोंने इस हेतु ''एल.पी. मनोत एण्ड कम्पनी'' फर्म की स्थापना की। कालान्तर में अपकी सुपुत्रियाँ सुश्री मंजु, अंजु एवं सुपुत्र बजरंग ने लॉ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर पेशेवर वकील बन गए एवं कलकत्ता हाईकोर्ट में कार्यरत हैं। लक्ष्मीपतजी शुरु से ओसवाल समाज की प्रतिनिधि धार्मिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से संबंधित रहे। जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता एवं विद्यालय के बीच सैंतालीस वर्षों से चले आ रहे विवाद का सर्वमान्य हल निकाल देने का श्रेय भी आपको ही है। सन् 1976 में बंगाल सरकार के समक्ष धार्मिक माईनोरिटी संचालित शिक्षण संस्थाओं में सरकारी दखल का संवैधानिक प्रश्न उठाकर आपने देश के शिक्षण जगत की अभूतपूर्व सेवा की। कलकत्ता हाईकोर्ट के सन् 1981 में दिए ऐतिहासिक निर्णय (AIR 1982, Cal. 101) से धार्मिक माईनोरिटी संचालित शिक्षण संस्थानों के भूल भूजा अधिकारों का प्रथम बार खुलासा हुआ। अब तो अनेक अन्य राज्यों में इन अधिकारों को मान्यता दे दी गई है। श्री मनोत ने सन् 1976 में अपने कानूनी अनुभव का समाज हितार्थ उपयोग करते हुए शिक्षण संस्थाओं के संचालनार्थ 'विशेष नियम' बनाए, जिनका उपयोग अन्य धर्मों की शिक्षा संस्थाएँ भी कर रही हैं। वे अ.भा. मनोत महासभा के उपाध्यक्ष रहे हैं। शिवपुर लायन्स क्लब के प्रेसिडेंट/मंत्री रहकर आपने सन् 1997 का अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार जीता। वे जैन सभा, जैन श्वे. ते. महासभा, मारवाड़ी रीलीफ सोसाईटी, मित्र मन्दिर, चूरू नागरिक परिषद् आदि विभिन्न संस्थाओं के सदस्य हैं। आप ''सेठ सोहनलाल दूगड़ चेरीटेबल ट्रस्ट'' के ट्रस्टी हैं। आपकी माता चम्पादेवी मनोत धर्मपरायण महिला थी। तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उन्हें ''श्रद्धा की प्रतिमूर्ति'' विरुद से सम्मानित किया।

16. स्व. सेठ बुधमलजी भूतोड़िया

लाडनूँ के ही भूतोड़िया परिवार के सेठ श्री बुधमलजी भूतोड़िया (1906-1992) अपनी मिलन सारिता एवं सुलझे हुए विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने बहुत जल्द व्यवसाय से सन्यास ले लिया। धार्मिक क्रांति एवं सामाजिक सुधारों के लिए हुए आन्दोलनों का प्रमुख केन्द्र उनकी हवेली ही थी। वे सत्योन्मुखी साधना के पक्षधर थे। धार्मिक कठमुल्लापन एवं अंधविश्वासों की कारा से मुक्त हुए साधकों के लिए तो वह आश्रय स्थल थी। उनकी धर्मपत्नि श्रीमती मांग कुमारी इन समस्त गतिविधियों की प्रधान संचालिका थी। वे बड़ी जीवट वाली महिला थी। सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार, पर्दा-प्रथा निवारण, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, शिक्षा-प्रसार आदि उनकी आस्था के केन्द्र बिन्दु थे।

उनके सुपुत्र सुश्री चन्दनमल सदैव वैचारिक एवं सांस्कृतिक क्रांति को समर्पित रहे। उनका विवाह पश्चिमी बंगाल के उपमुख्यमंत्री रहे, शहर वाली ओसवाल समाज के अग्रणी श्री विजयसिंह जी नाहर की सुपुत्री से हुआ। तृतीय पुत्र श्री छतरसिंह एवं चतुर्थ पुत्र निर्मलकुमार कलकत्ता में व्यवसायरत हैं। उनकी सुपुत्री सुजानगढ़ के श्री मनोहरमलजी लोढ़ा को ब्याही है। द्वितीय पुत्र श्री मदनचन्द को लाडनूँ के प्रसिद्ध सर्वोदयी नेता महालचन्दजी बोथरा की सुपुत्री कान्ता ब्याही है। उन्होंने 'आल्टरनेटिव मेडीसिन' में एम.डी. की डिग्री हासिल की है। वे नाड़ी विशेषज्ञ हैं। 'ध्यान' की गरिमा से वेष्ठित मदनचन्दजी सम्प्रति एक्यूपंक्चर एवं अन्य पद्धतियों से इलाज करते हैं। उनके पुत्र अरुण एवं अनिल कलकत्ता में ही व्यवसायरत हैं। ज्येष्ठ पुत्रवधू सुचन्द्रा को शास्त्रीय गायन में महारत हासिल है। छोटी पुत्रवधू रेखा ने इतिहास पर शोध कर डाक्टरेट (Ph.D.) की डिग्री ली है।

17. श्री रिखबचन्द जैन

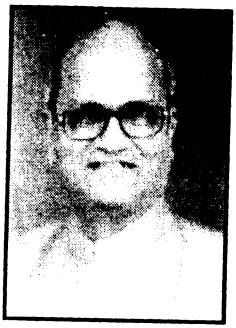

बीकानेर के सुप्रसिद्ध बैद खानदान में जेसराज जी हुए जिनके सुपुत्र रिखबचन्दजी देश के वस्त्र उद्योग में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आपका जन्म बीकानेर में सन् 1944 में हुआ। 1964 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक होकर आपने 1966 में चार्टर्ड सेक्रेटरीशिप एवं 1967 में MBA परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। आपके शोध-पत्र अनेकानेक देशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में पढ़े गए। वेस्ट इन्डीज की बूर्के युनिवर्सिटी ने सन् 2003 में आपको Business Management विषय में मानद Ph.D. उपाधि देकर सम्मानित किया। ''सेक्रेटेरियल प्रेक्टिस' नामक आपका ग्रंथ वर्ल्ड प्रेस ने प्रकाशित किया है। सन् 1985 में आपने ''25 वर्षों की बुनकरी उद्योग'' ग्रंथ प्रकाशित किया, जिसका विमोचन तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. वेंकटरमन ने किया था।

आपने सन् 1964 में सुप्रसिद्ध व्यावसायिक प्रतिष्ठान टी.टी. इन्डस्ट्रीज की नींव रखी। चन्द वर्षों में ही पहनने के वस्त्र निर्माण करने के क्षेत्र में यह संस्थान एवं इसके बनाए वस्त्र देश ही नहीं, विदेशों में भी ख्याति अर्जित कर चुके हैं। अब इस फर्म का सालाना टर्न ओवर 150 करोड़ से भी अधिक है। आपने अपनी व्यावसायिक सफलताओं का लाभ सम्पूर्ण समाज को आवंटित किया है। अनेक जनहितकारी प्रवृत्तियों के संचालन में आपका योगदान रहता है। बंगाल होजियरी एसोसियेशन एवं नई दिल्ली होजियरी मेनुफेक्चरर्स एसोसियेशन ने आपकी उपलब्धियों का समुचित सम्मान किया है। बीकानेर संस्थापित ''सुगनी देवी जेसराज बैद हस्पताल एवं रिसर्च सेंटर'' आपकी यशगाथा का मुखर वाचक है। आप अनेकानेक सर्वजनिक प्रतिष्ठानों के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सक्रिय सदस्य रहे हैं, जिनमें मुख्य हैं – आचार्य नगराज स्प्रीचुअल सेंटर, बीकानेर मातृ मंगल प्रतिष्ठान, जैन विश्वभारती लाडनूँ, महावीर इंटरनेशनल, अहिंसा कीर्तिन्यास आदि।

18. प्रोफेसर डॉ. कांति मर्डिया

जन्म : सिरोही (राजस्थान) 1935
माता : श्रीमती संधारी बेन नथमल सिंघी
पिता : श्री वरदीचन्द माणेकचन्द मर्डिया
उपलब्धि : M.Sc. (statistics & Pure Mathemation) 1957/1961; Ph.d.(New Castle)1967; D.Sc.1973
पद : प्रोफेसर (यूनिवर्सिटी ऑफ लीड्स) 1973-2000
अलंकरण : रजत पदक (रोयल स्टेटिस्टिकल सोसाईटी) 2003

मूर्धन्य ओसवाल मनीषी श्री कांति मर्डिया ने परिगणन विद्या एवं शुद्ध गणित के क्षेत्र में विदेशों में भारत की कीर्ति पताका फहराई है। राजस्थान के सिरोही नगर में सन् 1935 में श्रेष्ठि वरदीचन्द माणेकचन्द मर्डिया की धर्मपत्नि श्रीमती संधारी बेन की रत्न कुक्षि से जन्मे कान्ति भाई ने मुंबई एवं पूना विश्वविद्यालयों से M.Sc. की डिग्रियाँ हासिल की। सन् 1965 में राजस्थान से परिगणन विद्या में डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित हो सन् 1967 में यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू कासल से फिर पी-एच.डी. की उपाधि से सम्मानित किए गए। परिगणन विद्या के क्षेत्र में अपने शोधपूर्ण अवदान के लिए विश्व विद्यालय ने सन् 1973 में उन्हें 'डॉक्टर ऑफ साईन्स' की उपाधि अर्पित की। सन् 1973 में ही यूनिवर्सिटी ऑफ लीड्स के 'प्रयुक्त परिगणन विद्या' विभाग में प्रोफेसर पद पर आपकी नियुक्ति हुई, जहाँ सन् 2000 तक उन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ दी। सेवा निवृत्ति के बाद भी विश्व विद्यालय में उनके लिए विशेषत: निर्मित पद ''वरिष्ठ शोध प्राध्यापक'' पद पर वे अनवरत कार्यशील हैं।

सन् 1993 से 2001 तक कांतिभाई ने विश्व विद्यालय के 'मेडिकल ईमेजिंग रीसर्च केन्द्र' के निर्देशक का पदभार संभाला। आपके 200 से भी अधिक शोध-पत्र विश्व की उच्च स्तरीय शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं, जिनमें तीन गुम्फाक्षरीय प्रबंध तो विश्व विश्रुत हैं। उनकी चिकत्सकीय-प्रतिच्छाया एवं परिमाण-जीविकी सम्बंधी शोधें महत्त्वपूर्ण हैं। सन् 1973 में उन्होंने इस हेतु एक कर्मशाला का आयोजन-निर्देशन भी किया, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता एवं ख्याति मिली। विश्व के मान्य विश्व-विद्यालयों, यथा – प्रिंसटन, हार्वर्ड (अमरीका), रोम (इटली), गेनाडा (स्पेन) आई एस आई, कलकत्ता आदि ने उन्हें अभ्यागत-प्रोफेसर नियुक्त कर उनका समुचित सम्मान किया है। सन् 2003 में 'रोयल स्टेटिस्टीकल सोसाईटी' ने परिगणन-विज्ञान सम्बंधी महत्त्वपूर्ण अवदान के लिए उन्हें रजत-पदक अर्पित किया। सन् 2004 में वणिक संस्थानों की राष्ट्रीय परिषद् द्वारा मर्डिया जी सम्मानित हुए। सन् 2001 में मर्डिया जी ने लीड्स में जैन मन्दिर की स्थापना करवाई। वे ''योर्कशायर जैन फाउंडेशन'' के संस्थापक/चेयरमैन हैं। ''जैन विद्या की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि'' नामक रचना प्रो. मार्डिया के पांडित्य का धर्मालोकित शिखर-बिन्दु है।

ग्रंथ-संरक्षक

1. श्री ईश्वरभाई ललवानी

सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी अखिल भारतवर्षीय ओसवाल महासभा के जनक एवं जलगाँव के प्रसिद्ध जौहरी 'राजमल लखीचन्द' फर्म के मालिक स्व. श्री राजमलजी ललवानी के सुपुत्र श्री ईश्वरभाई ने सर्वधर्म समभाव के संस्कार विरासत में पाए हैं। उनकी देखरेख में फर्म ने व्यावसायिक बुलंदियाँ छुई हैं। सामाजिक सौहार्द एवं सहकारिता को ईश्वर भाई ने जीवन मंत्र बनाया हुआ है।

2. स्व. तारादेवी चम्पालाल बांठिया

भीनासर के सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री चम्पालालजी बांठिया की धर्मपत्नि तारादेवी धर्मपरायण एवं दानशील महिला थी। उनके सुपुत्र श्री धीरजलाल एवं श्री सुमतिलाल कलकत्ता एवं बीकानेर में व्यवसायरत हैं। धीरजलालजी के सुपुत्र श्री आशीष ने जैन कर्म सिद्धांत पर आधारित ग्राफिक्स एवं एनीमेशन विधा से अमरीका में स्नातकोत्तर उपाधि ली। वे सम्प्रति LIN T.V. में कला-निर्देशक हैं।

3. श्री मोहनचन्द ढ़ढ़ा

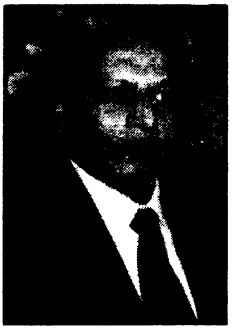

चैन्नई के सुप्रसिद्ध दवा प्रतिष्ठान ढ़ढ़ा एण्ड कम्पनी के अधिनायक श्री मोहनचन्दजी ढ़ढ़ा का जन्म सन् 1936 में फलौदी में हुआ। आपके पिता स्व. लालचन्दजी ढ़ढ़ा के अध्यवसाय से इस फर्म ने अपार सम्पदा अर्जित की। दवा निर्माण एवं विक्रय में यह संस्थान समूचे देश में अग्रणी है। श्री मोहनचन्दजी सदैव जनहितकारी प्रवृत्तियों से जुड़े रहते हैं। आपके द्वारा संस्थापित ट्रस्ट चैन्नई में दो उच्च माध्यमिक विद्यालयों का संचालन करता है। आपके धार्मिक अवदान प्रेरणास्पद हैं। आप अहमदाबाद स्थित सेठ आनन्दजी कल्याणकारी संस्थान के सदस्य हैं।

4. श्री राजकुमार सेठी

डीमापुर के श्री फूलचन्दजी सेठी के सुपुत्र श्री राजकुमार सेठी श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की विभिन्न प्रवृत्तियों से जुड़े हैं। आप केन्द्रीय महासभा के उपाध्यक्ष हैं। आपने अपने पिताश्री की स्मृति में पैतृक ग्राम छबड़ा में चिकित्सालय का निर्माण कराया। तीर्थ क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से सहयोग करने के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं। अपनी माताश्री की स्मृति में संस्थापित ग्रंथमाला में जिनधर्म विषयक 25 पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

5. श्री महेन्द्रकुमार झूमरमल बछावत

स्व. झूमरमलजी बछावत बड़े अध्यवसायी एवं मिलनसार व्यक्तित्व के धनी थे। वे दक्षिण कोलकाता, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा के अध्यक्ष एवं श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी विद्यालय सोसाईटी के मुख्य ट्रस्टी थे। चूरू नागरिक परिषद्, कोलकाता के अध्यक्ष एवं मित्र परिषद् के ट्रस्टी होने का भी श्रेय उन्हें प्राप्त था। जैन विश्वभारती लाडनूँ, ओसवाल नवयुवक समिति, कोलकाता आदि अनेक संस्थाएँ उनके सक्रिय सहयोग से लाभान्वित हुई। चूरू के प्रतिष्ठित बछावत परिवार के स्तम्भ मात्र 62 बसन्त ही देख पाए थे कि एक एक्सीडेंट में उनकी मृत्यु हो गई। उनके सुपुत्र श्री राजेन्द्र, सुरेन्द्र एवं महेन्द्र उनके आदर्शों की मशाल थामे हैं।

6. श्री केशरीचंद सेठिया

बीकानेर के श्री जेठमलजी सेठिया के सुपुत्र श्री केशरीचन्दजी क्षेत्रिय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय अनेक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। मद्रास जैन समाज को एक सूत्र में लाने का आपका प्रयास सराहनीय है। बीकानेर में श्रीअगरचंद भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के आप मंत्री पद पर वर्षों से कार्यरत हैं। भगवान महावीर अहिंसा प्रचारक संघ, मद्रास के आप मंत्री हैं। साथ ही स्थानक वासी साधु मार्गी जैन संघ के अध्यक्ष हैं। आप युग चिन्तामणी द्वारा सन् 2001 में 'समाजरत्न' उपाधि से अलंकृत हुए।

7. श्री बी.आर. बेगवानी

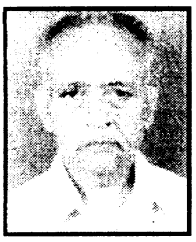

जीवन के 61 वसन्त देख चुके। लाडनूँ (राजस्थान) निवासी श्री बी.आर. बेगवानी ने मैट्रीक की परीक्षा उपरान्त कोलकाता को अपना कार्यस्थल बनाया। एल.एल.बी. कोलकाता में ही पास की। सम्प्रति विभिन्न साहित्यिक एवं समाज हितकारी संस्थाओं एवं प्रवृत्तियों से जुड़े हैं।

8. श्री के.एल. जैन

ग्राम लकड़वास (उदयपुर) निवासी श्री रतनलालजी जैन के सुपुत्र श्री के.एल. जैन स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण कर बैंक-सेवा से जुड़े। सेवाकाल में श्रमिक संगठनों के शीर्ष पदों पर कार्य किया। भारत सरकार के केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित श्रमिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत श्रमिक शिक्षक के रूप में प्रशिक्षण दिया। 1995 में बैंक सेवा निवृत्ति के बाद अखिल भारतीय सेवानिवृत्त बैंक कर्मचारी संघ उदयपुर संभाग के मंत्री पद पर कार्यरत हैं। सम्प्रति समग्र जैन समाज की संस्था श्री महावीर जैन परिषद् उदयपुर के सहसंयोजक एवं कोषाध्यक्ष, महावीर विकलांग सहायता समिति के संस्थापक/कोषाध्यक्ष, श्री मेवाड़ मन्दिर जीर्णोद्धार कमेटी उदयपुर के मंत्री, श्री केशरियानाथ तीर्थ रक्षा कमेटी, श्री राजस्थान जैन संघ संस्थान के मंत्री पद पर सेवारत हैं।

9. श्री बच्छराज अभानी

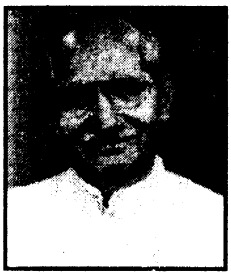

बीकानेर के श्री भिखनचंदजी अभानी के सुपुत्र श्री बछराजजी बम्बई, सूरत, अहमदाबाद आदि की प्रसिद्ध मीलों के एजेंट रूप में व्यवसायरत हैं। आप वीरायतन (राजगृह), महावीर विकलांक केन्द्र (बीकानेर), श्री जैन कल्याण संघ, श्री जिनेश्वर सूरि भवन भवानीपुर, श्री जैनसभा (1997 से 1999) के अध्यक्ष रहे हैं एवं श्री जैन हॉस्पिटल एवं रिसर्च सेंटर हबड़ा के आजीवन ट्रस्टी हैं।

10. श्री सुन्दरलाल दूगड़

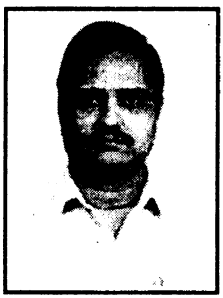

बीकानेर के श्री मोतीलालजी दूगड़ के सुपुत्र श्री सुन्दरलाल जी भवन निर्माण के क्षेत्र में अग्रणी हैं। आप श्री जैन विद्यालय, हावड़ा के अध्यक्ष श्री श्वे. स्था. जैन सभा, कार्यकारिणी समिति के सदस्य, जैन कल्याण संघ के संरक्षक, महेन्द्र मुनि मिशन के ट्रस्टी, बीकानेर का.के. संघ ट्रस्ट के ट्रस्टी, श्री जैन सभा, कोलकाता के कार्यकारिणी समिति सदस्य, जैन गौतम समिति के कार्यकारिणी सदस्य, श्री जीतयश स. ट्रस्ट के ट्रस्टी, श्रीकरणी गौशाला के उपाध्यक्ष, म.आ. विद्यालय के संरक्षक, देशनोक नागरिक संघ के संस्थापक/अध्यक्ष, जैन श्वे. श्री संघ, कोलकाता के ट्रस्टी एवं कार्यकारिणी अध्यक्ष, आदिनाथ जैन श्वे. श्री संघ ट्रस्टी, भगवान महावीर श्वे. श्रीसंघ के ट्रस्टी एवं मंत्री एवं एस.एल. दुगड़ दान ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।

11. श्री रिखबदास भंसाली

सेठ श्री नेमचन्द भंसाली के सुपुत्र श्री रिखबदासजी वस्त्र व्यवसायरत हैं। आपने श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के सहमंत्री, मंत्री, उपाध्यक्ष, अध्यक्ष एवं ट्रस्ट्री के रूप में अनुपम योगदान दिया। श्री जैन विद्यालय, कोलकाता के कार्यकारिणी सदस्य, अध्यक्ष एवं वर्तमान में परामर्शदाता के रूप में निरन्तर 40 वर्षों से जुड़े हैं। सम्प्रति श्री जैन विद्यालय, फॉर बॉयज एवं श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स हावड़ा के संस्थापक सदस्य, श्री जैन हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च सेन्टर हावड़ा के संस्थापक सदस्य एवं ट्रस्टी, वीरायतन-राजगीर के कार्यकारिणी के सदस्य एवं चेम्बर ऑफ टेक्सटाइल्स ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रीज, कोलकाता के पूर्व अध्यक्ष रहे हैं।

12. रिधकरन बोथरा

श्री तोलारामजी बोथरा के सुपुत्र श्री रिधकरणजी बोथरा वस्त्र व्यवसायरत हैं। आप श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता में सहमंत्री, मंत्री और वर्तमान में उपाध्यक्ष पद पर आसीन, श्री जैन विद्यालय, कोलकाता के कार्यकारिणी सदस्य, पूर्व मंत्री, श्री जैन विद्यालय फॉर बॉयज एवं श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स हावड़ा के संस्थापक सदस्य, कार्यकारिणी सदस्य, श्री जैन हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च सेन्टर के संस्थपक सदस्य, ट्रस्टी एवं कार्यकारिणी सदस्य, श्री हरखचंद कांकरिया जैन विद्यालय के संस्थापक सदस्य हैं।

13. जयचंदलाल मिन्नी

श्री तोलारामजी मिन्नी के सुपुत्र श्री जयचंदलालजी मिन्नी वस्त्र व्यवसायरत हैं। आप श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के पूर्व अध्यक्ष, वर्तमान में ट्रस्टी, वस्त्र व्यवसाय संगठन के संरक्षक एवं श्री जैन हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च के ट्रस्टी (आजीवन) है।

14. श्री सरदारमल कांकरिया

श्री किशनलालजी कांकरिया के सुपुत्र श्री सरदारमलजी कोलकाता में पाट, ऊन, भवन निर्माण, वस्त्र, केमिकल के व्यवसाय में संलग्न हैं। आप अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के पूर्व मंत्री, श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के ट्रस्टी। श्री जैन विद्यालय,

कोलकाता के मंत्री, श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स के संस्थापक सदस्य एवं 11 वर्षों से मंत्री, श्री जैन विद्यालय फॉर बॉयज के संस्थापक सदस्य एवं 11 वर्षों से मंत्री, श्री जैन हॉस्पिटल एवं रिसर्च सेन्टर, हावड़ा के मंत्री (प्रशासनिक) निर्माण, स्थापना एवं संयोजन में अग्रणी, श्री जैन बुक बैंक एवं श्री हरखचंद कांकरिया जैन विद्यालय, जगतदल के मंत्री एवं श्री जैन सभा के पूर्व अध्यक्ष रहे हैं।

15. श्री सुरेन्द्र बांठिया

श्री सोहनलालजी बांठिया के सुपुत्र श्री सुरेन्द्रजी बांठिया छाता व्यवसाय में संलग्न हैं। आप श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा– कार्यकारिणी सदस्य, श्री जैन विद्यालय फॉर बॉयज के उपाध्यक्ष, श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स के उपाध्यक्ष, आनन्दलोक हॉस्पिटल, विशुद्धानन्द हॉस्पिटल, भीनासर नागरिक परिषद्, जैन कल्याण संघ के सदस्य हैं।

16. श्री पन्नालाल कोचर

डॉ. पीरचन्द कोचर के सुपुत्र श्री पन्नालालजी ट्रांसपोर्ट व्यवसाय में संलग्न हैं। आप श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा के कार्यकारिणी सदस्य एवं श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स हावड़ा के अध्यक्ष हैं।

17. श्री विनोद मिन्नी

श्री जयचन्दलालजी मिन्नी के सुपुत्र श्री विनोद वस्त्र व्यवसाय में संलग्न हैं। आप श्री श्वेताम्बर, स्थानकवासी जैन सभा के मंत्री, जैन विद्यालय, कोलकाता के उपाध्यक्ष, जैन विद्यालय फॉर बॉयज कार्यकारिणी सदस्य, जैन विद्यालय फॉर गलर्स के कार्यकारिणी सदस्य एवं जॅन हॉस्पिटल एण्ड रिसर्च सेन्टर, हावड़ा के ट्रस्टी हैं।

18. श्री महेन्द्रकुमार करनावट

श्री भंवरलालजी करनावट के सुपुत्र श्री महेन्द्रकुमारजी वस्त्र एवं तिरपाल व्यवसाय में संलग्न हैं। आप हिन्दुस्तान क्लब एवं शार्क्स इन्टरनेशनल के सदस्य, श्री जैन विद्यालय फॉर गर्ल्स के उपाध्यक्ष, श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा, कोलकाता कार्यकारिणी के सदस्य, हनुमान परिषद् एवं श्री जैन हॉस्पिटल एवं रिसर्च सेन्टर के सदस्य हैं।

19. श्री डालचन्द जैन

सागर (मध्यप्रदेश) के सेठ भगवानदासजी जैन के सुपुत्र श्री डालचन्दजी जैन का जन्म सन् 1928 में हुआ। सन् 1945 में आपका विवाह बैरिस्टर श्री जमुनाप्रसादजी की सुपुत्री से हुआ। छात्र जीवन से ही आप स्वतंत्रता संग्राम को समर्पित रहे। स्थानीय नगरपालिका के पाँच वर्ष तक आप अध्यक्ष रहे। सन् 1967 एवं 1972 में आप काँग्रेस विधायक चुने गए। सन् 1984 में दमोह-पन्ना संसदीय क्षेत्र से आप लोकसभा के सांसद चुने गए। आप मध्यप्रदेश काँग्रेस कमिटी के कोषाध्यक्ष हैं। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाणोत्सव पर आपको उल्लेखनीय सेवाओं के लिए स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया।

20. श्री चम्पालाल सकलेचा

दान-पुण्य के आनन्द को जीवन-मंत्र बनाने वाले श्री चम्पालालजी सकलेचा का जन्म सन् 1927 में बलुंदा (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता श्री घिसूलाल जी धर्मप्रेमी सज्जन थे। सन् 1945 में जालना (महाराष्ट्र) आकर आप वहीं बस गए। लगातार पचीस वर्ष तक आप स्थानीय स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष रहे। आप अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर जैन कॉन्फ्रेंस के मंत्री रह चुके हैं। सभी जैन आचार्यों एवं मुनियों के आशीर्वाद से आप सदैव समाज हितकारी प्रवृत्तियों से जुड़े रहते हैं।

21. श्री शार्दूलसिंह भूतोड़िया

लाडनूँ निवासी स्व. सेठ आशकरणजी भूतोड़िया के सुपुत्र शार्दूलसिंहजी ने अपने अध्यवसाय एवं सद्व्यवहार से कलकत्ता के सार्वजनिक जीवन में प्रशंसनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। कलकत्ता युनिवर्सिटी से स्नातकीय परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर सन् 1959 में आप कलकत्ता हाईकोर्ट के एडवोकेट बने। तभी से बतौर 'टेक्स कल्सल्टेंट' आप सेवारत हैं। आप अनेक व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संचालन में मार्गदर्शक हैं। आपकी संचालन क्षमता के साक्षी हैं ये सार्वजनिक ट्रस्ट, जिनके आप ट्रस्टी हैं, यथा—श्री सत्यानन्दजी महापीठ, उद्बोधन ट्रस्ट, सेठ गंगाराम भूतोड़िया जन-कल्याण ट्रस्ट, श्री सच्चियाय माँ सेवा ट्रस्ट, लाडनूँ, नागरिक परिषद् एवं ओसवाल नवयुवक समिति ट्रस्ट। अभिनव भारतीय हाईस्कूल एवं संगीत श्यामला के कोषाध्यक्ष एवं राजस्थान परिषद् एवं ओसवाल नवयुवक समिति के आप मानद मंत्री हैं। सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में उच्च स्तरीय प्रतिमान स्थापित करने का श्रेय आपको ही है।

22. डॉ. जतनराज कुम्भट

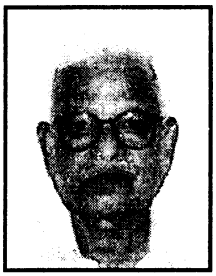

बिशन सुगन कुम्भट चेरीटेबल ट्रस्ट, जोधपुर के मेनेजिंग ट्रस्टी डॉ. जतनराज कुम्भट का जन्म सन् 1929 में हुआ। सम्पूर्ण शिक्षा जोधपुर में ही हुई। राजकीय महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर रहते हुए आपने ''अमरीकी अर्थ सहयोग का भारतीय अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव'' विषय पर डाक्टरेट कर पी-एच.डी. की उपाधि हासिल की। 1984 में प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण कर आप समाज एवं धर्म प्रभावना की प्रवृत्तियों से जुड़े हैं।

23. श्री रुगलाल सुराणा

लाडनूँ के श्री शिवराज जी सुराणा के सुपुत्र श्री रुगलाल सुराणा उभरती युवा शक्ति के प्रतीक हैं। कलकत्ता के दो प्रमुख शिक्षण संस्थानों, यथा–श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी विद्यालय एवं बालिका विद्या भवन का संचालन आपकी देखरेख में हो रहा है। सम्प्रति आप राजस्थान परिषद्, कोलकता के संगठन मंत्री एवं लाडनूँ नागरिक परिषद् के उपाध्यक्ष हैं।

24. श्री अभयसिंह सुराणा

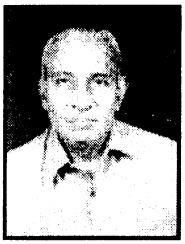

चूरू के श्री बच्छराजजी सुराणा के सुपुत्र श्री अभयसिंहजी अपने छात्र जीवन से अभूतपूर्व प्रतिभा के धनी हैं। आपने विकासोन्मुख चिंतन से समाज में अपना अप्रतिम स्थान बना लिया है। सुश्री रुनु गुहा नियोगी के बंगला उपन्यास 'गोरा आमिं काला आमि' का हिन्दी अनुवाद आपने प्रकाशित करवाया। आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित 'चूरू पत्रिका' ने काफी लोकप्रियता हासिल की। आचार्य तुलसी रचित 'अग्नि परीक्षा' का विवाद सुलझाने में आपकी सराहनीय भूमिका रही। आप अनेक सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के संचालक, ट्रस्टी एवं अध्यक्ष हैं।

25. डॉ. निर्मला प्रियदर्शी

श्री मांगीलाल भूतोड़िया की सुपुत्री निर्मला प्रियदर्शी को ओसवाल समाज में पहली महिला इंजीनियर (Electronics) होने का श्रेय प्राप्त है। संयोगवशात उनकी रुचि आल्टरनेटिव मेडीशन में हुई। उन्होंने कलकत्ता संस्थान से M.D. की उपाधि हासिल की। वे नाड़ी विशेषज्ञ हैं। सम्प्रति मुम्बई में एक्यूपंक्चर पद्धति में चिकित्सा करती हैं। उनकी चिकित्सा प्रक्रिया में योग, ध्यान, आसन एवं प्राणायाम का मिश्रण रोगी को एक नई ऊर्जा युक्त जीवनशैली 'प्रदान' करता है।

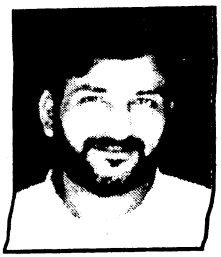

26. श्री सुभाष प्रियदर्शी

स्नातकीय उपाधि हासिल कर श्री मांगीलाल भूतोड़िया के ज्येष्ठ पुत्र सुभाष शुरु से ही पिता के वकालत पेशे में सहयोगी रहे हैं। कन्ज्यूमर कोर्ट केसों में गहरी पेठ है। ग्रीटिंग कार्ड्स का निर्माण, *सिक्कों एवं स्टाम्पों का दुर्लभ संग्रह उनकी हॉबी है। ''प्रियदर्शी प्रकाशन'' का समस्त कार्यभार इन्हीं के कंधों पर है।*

27. डॉ. संदीप प्रियदर्शी

श्री मांगीलाल भूतोड़िया के मंझले पुत्र संदीप वैज्ञानिक हैं। उन्होंने Cyto Genetics में डॉक्टरेट की। सम्प्रति पूना में उनकी अपनी टीश्यू कल्चर लेबोरेट्री एवं ग्रीन हाउस हैं। वे ड्रिप एरीगेशन टेकनीक के व्याख्याता हैं। पपीता, केला, गन्ना, स्ट्राबेरी एवं विभिन्न फूलों के पौधे परखनली में Cell पद्धति से पैदा कर जमीन में रोपने की अधुनातन प्रणाली को देशभर में लोकप्रिय बनाने में संलग्न हैं।

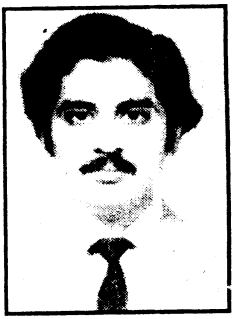

28. डॉ. शिवम प्रियदर्शी

श्री मांगीलाल भूतोड़िया के कनिष्ठ पुत्र शिवम ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम.बी.बी.एस. परीक्षा के 10 विषयों में विशेष योग्यता के लिए 17 पदक जीते एवं तदर्थ फिल्जर एवार्ड से सम्मानित हुए। एम.एस., एम.सी.एच. एवं डी.एन.बी. की डिग्रीयाँ हासिल कर सम्प्रति सवाई मानसिंह अस्पताल, जयपुर में यूरोलॉजी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर पद पर बतौर सर्जन सेवारत हैं। उनकी धर्मपत्नि डॉ. वर्षा उसी अस्पताल में बतौर 'एनेसथेसिस्ट' एसोसिएट पद पर सेवारत हैं।

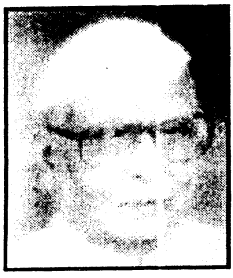

29. स्व. प्रकाशचन्द जैन

पू. श्रीगणेशप्रसाद वर्णी के अनन्य भक्त खण्डेलवाल लुहाड़या परिवार में जन्मे श्री प्रकाशचन्दजी ने सासनी (अलीगढ़) में काँच उद्योग स्थापित कर ख्याति अर्जित की। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं धर्म प्रभावना के लिए आपने प्रशंसनीय अनुदान दिये। सम्मेद शिखर जैन तीर्थ की सुरक्षा एवं जीर्णोद्धार हेतु आपका योगदान अनुरकणीय था। सन् 1995 में आप स्वर्गस्थ हुए। समाज ने मानवीय मूल्यों

के इस प्रतिष्ठापक का सम्मान कर उन्हें मरणोपरान्त 'समाज रत्न' के विरुद से अलंकृत किया। उनके सुपुत्र उन्हीं आदर्शों के उन्नयन हेतु संकल्पबद्ध हैं।

30. स्व. महालचन्द बोथरा (1908-2002)

श्री कन्हैयालाल बोथरा

धर्म एवं समाज की रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी लाडनूँ के श्री धनसुखदासजी बोथरा के सुपुत्र श्री महालचन्दजी धार्मिक एवं सामाजिक क्रांति के सूत्रधार थे। उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन एवं रियासती राज्यों में रजवाड़ों के जुल्मों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया। लाडनूँ नगर में उनके क्रांतिकारी गीतों की महक बसी है। वे गाँधी, विनोबा से जुड़े रहे। नशा मुक्ति, गौ-सेवा, हरिजनोद्धार, खादी, शिक्षा, साहित्य एवं खेल जगत उनके सक्रिय सहयोग से सदैव लाभान्वित होते रहे। उनके सुपुत्र श्री कन्हैयालालजी खादी उद्योग से जुड़े रहकर उस राष्ट्रीय परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रयत्नशील हैं।

31. श्री रतनचन्द जैन

सन् 1939 में जन्मे श्री डूँगरगढ़ (राजस्थान) के ओसवाल श्रेष्ठि श्री सोहनलालजी डागा के सुपुत्र श्री रतनचन्द धर्म एवं समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध कलकत्ता में तरुण संघ के नेतृत्व में हुए आन्दोलनों की परम्परा के युवा प्रतिनिधि हैं। वे निरन्तर सरिता, आचार आदि पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। हाल ही में 'सर्जना' प्रकाशन बीकानेर से उनके दो ग्रंथ 'प्रेरक सूक्तियाँ' एवं 'प्रेरक प्रसंग' प्रकाशित हुए हैं।

ग्रंथ-संयोजक

स्व. श्री हजारीमलजी बांठिया

धर्म व सेवा के क्षेत्र में प्रशंसित व राजनीति, साहित्य, कला, पुरातत्त्व के क्षेत्र में सदैव अग्रणी श्री बांठिया जी ने 22 वर्ष की वय में बीकानेर छोड़ दिया और हाथरस को अपना कर्मक्षेत्र बनाया। वे 10 साल निरंतर भारतीय जनसंघ, हाथरस के एकछत्र नेता और नगर अध्यक्ष रहे। श्री कल्याणसिंह (पूर्व मुख्यमंत्री, उत्तरप्रदेश) को प्रथम बार विधायक बनाने में भरपूर सहयोग दिया। आज के भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी व स्व. श्री दीनदयालजी उपाध्याय जैसे नेताओं से प्रशंसित-पुरस्कृत भी हो चुके हैं।

आपने सन् 1972 से सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लिया और तब से साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में पूर्णरूपेण रूचि लेने लगे हैं। श्री बांठिया ने ग्वालियर में सन् 1857 की क्रांति के अमर शहीद श्री अमरचन्द बांठिया की तथा कानपुर और बीकानेर में इटली निवासी राजस्थानी भाषा के पुरोधा स्व. डॉ. एल.पी. टैस्सीटोरी की मूर्तियाँ स्थापित करवाई। बीकानेर में राजस्थानी साहित्य की समृद्धि हेतु 'सेठ स्व. श्री फूलचन्द बांठिया राजस्थानी पुरस्कार' की स्थापना की। इटली सरकार के निमंत्रण पर सन् 1987 और 1994 में 'तैस्सीतोरी समारोह' में दो बार इटली व अन्य यूरोपीय देशों की यात्रा की। बीकानेर और उदीने (इटली) में बनने वाले 'जुड़वां शहर' प्रोजेक्ट के प्रारंभिक सूत्रधार आप ही थे।

अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन से आपका 44 साल का लगाव रहा और सम्मेलन के अनेक पदों पर संस्थापित रहे। अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ, दिल्ली जैसी सर्वोच्च संस्था के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे। उत्तरप्रदेश में जैन तीर्थों (कल्याणक भूमि) के जीर्णोद्धार व विकास में इनकी हमेशा से अभिरूचि रही। पंचाल जनपद की राजधानी कम्पिल को भगवान श्री विमलनाथ की चार कल्याणक भूमि होने का श्रेय प्राप्त है। आप उसके सर्वांगीण विकास के लिए कृतसंकल्प थे। आप ने वहाँ एक दातव्य चिकित्सालय भी स्थापित करवाया।

श्री बांठिया जी के प्रयास से वेनिस एवं पादोवा (इटली) के पुरातत्त्वविद् प्रोफेसरों ने कम्पिल में उत्खनन कार्य प्रारम्भ किया है। वहाँ पर महाभारत-कालीन संस्कृति उजागर हुई है। ब्रज भाषा के लिए भी आपने सराहनीय कार्य किया है। ब्रज कला केन्द्र, मथुरा के आप राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रहे। श्री बांठिया जैन समाज की सर्वोच्च संस्था सेठ आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी के प्रादेशिक प्रतिनिधि और श्री श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट की गवर्निंग काउंसिल के उत्तरप्रदेशीय सदस्य थे।

साहित्य सृजन, प्रकाशन, संपादन और अनुसंधान कार्य भी आपने प्रचुर मात्रा में किया। इतिहास के गर्त में खोई हुई जर्मन जैन श्राविका डॉ. शार्लेट क्राउजे के सम्पूर्ण साहित्य का संग्रह कर एक वृहद् पुस्तक आपने पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित करवाई।

प्रतिभा के धनी, लक्ष्मी और सरस्वती के वरद् पुत्र श्री बांठिया सेवा और सादगी के प्रतीक थे। वर्ष 1995 में श्री हजारीमल बांठिया सम्मान समारोह समिति, अलीगढ़ ने एक विशेष समारोह में इन्हें 'श्री हजारीमल बांठिया अभिनन्द ग्रंथ' नामक एक विशाल ग्रंथ कानपुर में भेंट किया था।

प्रस्तुत ग्रंथ की कल्पना एवं संयोजन का श्रेय बांठिया जी को ही है। दिनांक 15 फरवरी, 2004 के दिन अचानक हाथरस से कम्पिल जाते हुए रास्ते में ही उनका देहावसान हो गया।

सह-संयोजक

श्री ललित कुमार नाहटा

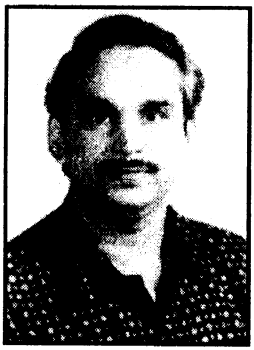

खरतरगच्छ महासंघ के पुरोधा श्रेष्ठि श्री हरखचन्दजी नाहटा के सुपुत्र श्री ललित कुमार अजस्त्र युवा शक्ति के प्रतीक हैं। आपने कपड़े, गल्ले, किराणे, ऑटोमोबाईल्स, नमक, चाय आदि के थोक व्यापार करते हुए फाइनैन्स व फिल्म-फाइनैन्स तक का कार्य कुशलतापूर्वक करने के उपरान्त जमीन-ज़ायदाद के काम में महारथ प्राप्त की। आज 25 से अधिक फर्म/कम्पनियों का कुशलतापूर्वक संचालन कर रहे हैं। 1985 में नई दिल्ली के राज्यपाल के हाथों 'जैन उद्योग व्यापार रत्न एवार्ड' के सम्मान से सम्मानित होने वाले सबसे छोटी उम्र के उद्यमी हैं। आप तीन पत्रिकाओं 'ज्योति संदेश वार्ता', 'स्थूलभद्र संदेश' व 'णमो तित्थस्स' का संचालन कर रहे हैं।

आप 'जैन कुशल युवक मण्डल' के 1996 से 1998 तक अध्यक्ष रहे। अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष, अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ महासंघ के उपाध्यक्ष (उत्तर भारत), श्री श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट के संयोजक (उत्तर भारत), अहिंसा कीर्ति न्यास के महामंत्री, श्री जैन श्वेताम्बर महासभा, उत्तरप्रदेश के ट्रस्टी, श्री वर्धमान जैन सार्वजनिक चिकित्सालय कम्पिल के मंत्री, श्री अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर पेढ़ी के ट्रस्टी, श्री जैन देवस्थान संरक्षण ट्रस्ट, रतनगढ़ के ट्रस्टी, जैन खरतरगच्छ समाज, दिल्ली के संयोजक, श्री जिनकुशल सूरि एज्यूकेशनल ट्रस्ट के ट्रस्टी, पंचाल शोध संस्थान, जैन सोशियल ग्रुप फेडरेशन (इन्दौर), जैन महासभा, जैन समाज, श्री जिन कुशल सूरि खरतरगच्छ दादाबाड़ी ट्रस्ट मन्दिर जिर्णोद्धार समिति, ऋषभदेव फाउंडेशन, न्यूज पेपर एसोसिएशन, श्री जिनकुशल सूरि जैन सेवा संघ, जैन एकता महासमिति आदि की बहुआयामी गतिविधियों के केन्द्र पुरुष श्री नाहटा स्वयं में ही एक संस्था हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के सह-संयोजन का श्रेय श्री नाहटा को ही है। समाज को इस युवा शक्ति से अनेक अपेक्षाएँ एवं आशाएँ हैं।

श्री मांगीलाल भूतोड़िया

जन्म : लाडनूँ, १४ सितम्बर १९३४
पिता : श्री तखतमल भूतोड़िया
मूल निवास : लाडनूँ (राजस्थान)–३४१ ३०६
शिक्षा : साहित्यरत्न–१९५१
बी.ए.–१९५७, एम.ए.–१९५९
एल.एल.बी.–१९६० (स्वर्ण पदक)
अर्थ कर्म : अधिवक्ता–उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) कोलकाता एवं उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) नई दिल्ली।
रचनाकर्म : कुमार प्रियदर्शी एवं किशोर उपनाम से विविध लेखन तरुण, धर्मयुग, श्रमण, चौराहा, मुक्ता, समाज विकास विग्रह, विश्वमित्र आदि में प्रकाशित।
शोध पत्र : तुलसी प्रज्ञा, शोधादर्श, श्रमण, Journal of Asiatic Society, All India Reporter आदि में प्रकाशित
प्रकाशित ग्रंथ : ओसवाल जाति का इतिहास
(प्रथम खण्ड–१९८८, परिवमर्द्धित–१९९५
द्वितीय खण्ड–१९९२, परिवर्द्धित–२००१
गुजराती संस्करण–१९९८
अंग्रेजी (संक्षिप्त)–२००१)
भूतोड़िया वंश–२०००
Healthy Habits-2001
सम्पादन : शेष अशेष–१९८६, साधु श्रेष्ठि–१९९३
चयनिका–२०००
लाडनूँ (चन्देरी) का इतिहास–२००१
पता : ७ ओल्ड पोस्ट आफिस स्ट्रीट
कोलकाता–७००००१

हमारे अन्य प्रकाशन

		मूल्य
1.	**ओसवाल जाति का इतिहास** (इतिहास की अमर बेल-ओसवाल) लेखक : श्री मांगीलाल भूतोड़िया प्रथम खण्ड (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण) पृष्ठ-410, चित्र-100 द्वितीय खण्ड (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण) पृष्ठ-510, चित्र-150	रू० 175.00 रू० 225.00
2.	**ओसवाल जाति नो इतिहास** (गुजराती संस्करण) लेखक : श्री मांगीलाल भूतोड़िया अनुवादक : श्री पार्श्व भाई (पृष्ठ-510, चित्र-150) (संरक्षित मूल्य)	रू० 200.00
3.	**History of Oswals** (Abridged) Author : Shri Mangilal Bhutoria	रू० 150.00
4.	**शेष – अशेष** (श्री रायचन्द कुडंलिया स्मृति ग्रंथ)	रू० 50.00
5.	**साधु श्रेष्ठि** (श्री रूपचन्द सेठिया स्मृति ग्रंथ)	रू० 30.00
6.	**भूतोड़िया वंश** (वंश वृक्ष सहित)	रू० 30.00
7.	**चेतना के पड़ाव** काव्य : श्रीमती किरण भूतोड़िया	रू० 50.00
8.	**Healthy Habits** Author : Kumar Priyadarshi	रू० 100.00
9.	**The Glimpse Supreme** Poems : Smt. Kiran Bhutoria	रू० 50.00
10.	**चयनिका** (संत काव्य)	रू० 100.00
11.	**लाडनूँ (बूढ़ी चन्देरी) का प्राचीन इतिहास**	रू० 150.00
12.	**History of Oswals** (Enlarged) Author : Shri Mangilal Bhutoria In Press	रू० 500.00
13.	**"Historicity of 24 Jain Tirthankars"** Author : Shri Mangilal Bhutoria	रू० 100.00

PRIYADARSHI PRAKASHAN

6th Street, Ladnun (Rajasthan) - 341 306

7, Old ... - 700 001

Contact Phone – ... Contact Phone – ... 17, Jaipur : 2654631

... Phone – ... 2137

... Phone – ... Pun...

PRA... DEMY

13-A, ... PRA... PRA... PRAKA... -302017

ISBN - 81-900940-0-9